राजनीतिक विचारधाराएँ

[POLITICAL IDEOLOGIES]

—

पी० के० चड्ढा, एम० ए०
प्रवक्ता राजनीति शास्त्र
राजकीय लोहिया महाविद्यालय
चूरू (राजस्थान)

1972

अशोक बुक डिपो
रामपुरा बाजार, कोटा (राजस्थान)

लेखक

मूल्य दस रुपये मात्र

अशोक बुक डिपो, रामपुरा बाजार, कोटा (राज०) द्वारा
प्रकाशित तथा राष्ट्रभाषा प्रेस, राजा की
मण्डी, आगरा–2 द्वारा मुद्रित ।

राजनीतिक विचारधाराएँ

RAJASTHAN UNIVERSITY SYLLABUS

B A (Pass) Final Year Examinations

Paper I Political Ideologies

Modern Political Ideologies—Socialism, Utopian, Scientific Marxism—Anarchism, Communism—Fascism—Anarchism Democratic Socialism—Secularism—Guild Socialism and Gandhian Political Thought and Sarvodaya

राजनीतिक विचारधाराएँ

आधुनिक राजनीतिक विचारधाराएँ—समाजवाद, कल्पनावादी समाजवाद, वैज्ञानिक मार्क्सवाद—अराजकतावाद, साम्यवाद—फासिज्म—अराजकतावाद। प्रजातान्त्रिक समाजवाद—धर्म निरपेक्षता—श्रेणी समाजवाद और गांधी के राजनीतिक विचार और सर्वोदय।

प्रथम् सस्करण की भूमिका

इस पुस्तक को सामान्य जनता तथा महाविद्यालयो के राजनीति शास्त्र विषय को अध्ययन करने वाले स्नातक तथा स्नातकोत्तर छात्रो के समक्ष प्रस्तुत करते हुए मुझे अपार हर्ष हो रहा है। यद्यपि प्रस्तुत पुस्तक का विषय क्षेत्र राजस्थान विश्व विद्यालय के तृतीय वर्ष के पाठ्यक्रम तक सीमित रखा गया है फिर भी प्रत्येक अध्याय मे इतनी सामग्री अवश्य रख दी गई है कि वह प्रतियोगिता परीक्षाओ के लिए भी पर्याप्त सिद्ध हो सके। प्रत्येक अध्याय मे उन प्रश्नो की विस्तारपूर्वक व्याख्या की गई है जिन्हे लेखक ने अपने अध्यापन काल मे विद्यार्थियो के लिए हल करना कठिन पाया है। इसी कारण आलोचनात्मक तथा तुलनात्मक प्रश्नो को सम्बन्धित अध्यायो मे विस्तारपूर्वक हल किया गया है। विद्यार्थियो की सुविधा तथा निर्देशन के लिए प्रत्येक अध्याय के अन्त मे, अभ्यास के लिए प्रश्नो की एक सूची दी गई है। इस सूची मे वे प्रश्न दिये गये हैं जो भारत के भिन्न भिन्न विश्वविद्यालयो की वार्षिक परीक्षाओ तथा प्रतियोगिता परीक्षाओ मे समय समय पर पूछे गये है।

पुस्तक की भाषा को बहुत ही सरल बनाने का प्रयास किया गया है ताकि साधारण से साधारण विद्यार्थी भी विषय को भली भाति समझ सके। परन्तु कही भी विषय की कीमत पर भाषा को सरल नही बनाया गया। पुस्तक मे विषय सम्बन्धी पर्याप्त सामग्री है जो सर्वोत्तम तथा साधारण दोनो प्रकार के विद्यार्थियो के लिए उपयोगी है।

पुस्तक को 14 अध्यायो मे बाँटा गया है। प्रत्येक अध्याय अपने मे पूर्ण है। विषय सूची को इतना विस्तारपूर्वक दिया गया है कि कोई भी विद्यार्थी सम्बन्धित पहलू को आसानी से ढूढ सकता है।

लेखक को विश्वास है कि प्रस्तुत पुस्तक विद्यार्थियो की सभी आवश्यकताओ की पूर्ति करेगी। यदि पाठकगण पुस्तक का और अधिक उपयोगी बनाने के लिए इसमे सुधार की गुन्जायश समझते है तो उनके सुझावो को सहर्ष स्वीकार किया जायगा तथा पुस्तक के द्वितीय सस्करण मे समाविष्ट कर दिया जायगा। लेखक इन सुझावो के लिए पाठको का आभारी रहेगा।

लेखक राजनीति शास्त्र के उन उच्च कोटि के विद्वानो के प्रति आभार प्रकट करता है जिनसे उसे प्रस्तुत पुस्तक को लिखने की प्रेरणा मिली तथा जिनके

ज्ञान भण्डार को उसने, संक्षेप में, पाठ्यक्रम की सीमाओं को ध्यान में रखते हुए, इसमें सकलित करने का प्रयास किया है। लेखक उन ग्रन्थकारों के प्रति भी आभारी है जिनकी सहायता से उसने लाभ उठाया है तथा पुस्तक में उनके विचारों को उद्धृत किया है। लेखक राजकीय लोहिया महाविद्यालय, चूरू (राज०) के भूतपूर्व आचार्य डॉ० श्रुतिधर गुप्त तथा महाविद्यालय के वर्तमान आचार्य श्री आर० एस० भटनागर के प्रति आभारी है जिन्होंने अपने स्नेह से उसे प्रोत्साहित किया। लेखक महाविद्यालय के हिन्दी विभाग के प्राध्यापकों, विशेषकर श्री आर० एस० मिश्र, श्री पी० पी० भट्ट, श्री बी० एस० सामोर और श्री जे० पी० शर्मा का विशेष रूप से आभारी है जिन्होंने पुस्तक की पाण्डुलिपि में त्रुटियों को दूर करने में उसकी सहायता की। लेखक श्री मानमल जैन, प्रवक्ता अर्थशास्त्र, राजकीय महाविद्यालय, रामगढ़, का भी आभारी है जिन्होंने लेखक को श्री चौथमल जैन, अशोक बुक डिपो, रामपुरा बाजार, कोटा वालों से परिचय कराया। लेखक श्री चौथमल जैन का विशेष रूप से आभारी है जिन्होंने इस पुस्तक को प्रकाशित कर उसे अनुगृहीत किया।

चूरू (राज०)
जुलाई, 1972

—पी० के० चड्ढा

पृष्ठ

10. अराजकतावाद (Anarchism) 230—265

अराजकतावाद का अर्थ तथा परिभाषा, अराजकतावाद के मूल विचार, अराजकतावादी साधन, दार्शनिक और क्रान्तिकारी अराजकतावादी, अराजकतावादी दार्शनिक—विलियम गाडविन, थॉमस हॉजस्किन पियर जोसफ प्रोधां जोसिया वारेन, बेंजिमन टकर, मक्स स्टनर, काउण्ट लियो टॉलस्टॉय, माईकल बेकुनिन, प्रिंस पीटर क्रोपोटकिन, आतंकवादी अराजकतावाद साम्यवाद और अराजकतावाद का तुलनात्मक अध्ययन, अराजकतावाद का मूल्यांकन, Exercises

11. फासिज्म (Fascism) 266—311

परिचय, इटली में फासिस्टवाद का विस्तार, फासिस्ट दर्शन, फासिज्म के सिद्धांत, निगमात्मक राज्य व्यवस्था, फासिस्टवाद और साम्यवाद का तुलनात्मक अध्ययन, फासिस्टवाद का मूल्यांकन Exercises

12. गांधीवाद (Gandhism) 312—379

परिचय, गांधीवाद के स्रोत धर्म और राजनीति अथवा राजनीति का आध्यात्मीकरण, साध्य और साधन मानव प्रकृति पर गांधीजी के विचार, अहिंसा पर गांधीजी के विचार, अहिंसा के प्रकार सत्याग्रह पर गांधीजी के विचार सत्याग्रह और निष्क्रिय प्रतिरोध, सत्याग्रह के युद्ध कौशल—असहयोग, हड़ताल, सामाजिक बहिष्कार, धरना, प्रव्रजन (हिजरत), सविनय अवज्ञा उपवास, सत्याग्रह का मूल्यांकन, क्या सत्याग्रह संवैधानिक है ? गांधीजी के आर्थिक विचार—वर्तमान सभ्यता पर विचार, यन्त्र पर गांधीजी के विचार, वर्तमान आर्थिक विषमताओं को दूर करने के गांधीजी के सुझाव—वर्ण व्यवस्था, अस्तेय और अपरिग्रह, ट्रस्टीशिप का सिद्धांत, आर्थिक समानता, रोटी के लिए श्रम स्वदेशी, खादी का अर्थशास्त्र, गांधीजी के आर्थिक विचारों का मूल्यांकन, गांधीजी के राजनीतिक विचार—राज्य पर विचार, संसद पर विचार—विकेन्द्रित राजनीतिक व सामाजिक व्यवस्था राम राज्य, गांधी और मार्क्स—एक तुलनात्मक अध्ययन, गांधीवाद मानवतावाद है, गांधीजी की देन, गांधीजी के विचारों का मूल्यांकन, क्या गांधीजी दार्शनिक अराजकतावादी थे ? Exercises

अध्याय पृष्ठ

13. सर्वोदय (Sarvodaya) 380—408
परिचय, सर्वोदय का अर्थ तथा स्वरूप, भूदान—अर्थ तथा विकास, भूदान का मूल्यांकन, सम्पत्तिदान, श्रमदान, प्रेम और बुद्धिदान, जीवनदान, ग्रामदान, सर्वोदय समाज के लक्षण, सर्वोदय का मूल्यांकन, क्या सर्वोदय समाजवाद है ? Exercises

14 धर्म निरपेक्षता (Secularism) 409—426
धर्म निरपेक्ष विचारों की उत्पत्ति तथा उनका विकास धर्म निरपेक्ष, धर्म निरपेक्षवादी तथा धर्म निरपेक्षता शब्दों के अर्थ, धर्म निरपेक्षता के स्थूल, धर्म निरपेक्ष राज्य का अर्थ, धर्म निरपेक्ष राज्य की परिभाषा, धर्म निरपेक्ष राज्य की विशेषताएँ, धर्म निरपेक्ष राज्य में धर्म का स्थान, क्या धर्म निरपेक्ष राज्य धर्म में हस्तक्षेप कर सकता है ? क्या धर्म विरोधी राज्य धर्मनिरपेक्ष राज्य हो सकता है ? धर्म निरपेक्ष राज्य का मूल्यांकन, Exercises

Bibliography 1—11

विषय-सूची

अध्याय | पृष्ठ

1. समाजवाद (Socialism) 1—22
समाजवाद का विकास, समाजवाद की निश्चित परिभाषा देने म कठिनाइया, समाजवाद की परिभाषा समाजवाद के आवश्यक तत्त्व या मूल सिद्धान्त समाजवाद के गुण, समाजवाद के अवगुण, व्यक्तिवाद का केन्द्र बिन्दु स्वतन्त्रता है, समाजवाद का केन्द्र बिन्दु समानता है, Exercises

2 कल्पनावादी या स्वप्नलोकीय समाजवाद (Utopian Socialism) 23—43
कल्पनावाद का अर्थ, कल्पनावादी समाजवाद शब्द का प्रयोग, कल्पनावादी समाजवाद की विशेषताएँ, काल्पनिक समाजवादी विचारक, सेंट साइमन, चार्ल्स फ़ोरियर रॉबर्ट ओवेन, Exercises

3. मार्क्सवाद (Marxism) 44—99
मार्क्स का जीवन, मार्क्स की रचनाएँ मार्क्स का युग तथा उसका वैज्ञानिक समाजवाद मार्क्स के विचारों के स्रोत, द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद आर्थिक निर्धारणवाद या इतिहास की भौतिकवादी व्याख्या, अतिरिक्त मूल्य का सिद्धान्त, वर्ग संघर्ष, पूँजीवाद की प्रकृति या पूँजीवाद स्वयं अपनी कब्र खोदता है, मार्क्स का राज्य विषयक सिद्धान्त, धर्म के बारे म मार्क्स के विचार मार्क्स का कार्यक्रम, मार्क्सवाद का मूल्यांकन, मार्क्स की देन, Exercises

4. साम्यवाद (Communism) 100—118
साम्यवाद की विशेषताएँ, साम्यवाद की आलोचना, साम्यवाद का मूल्यांकन, समाजवाद और साम्यवाद मे अन्तर, Exercises

5 फेबियनवाद (Fabianism) 119—134
फेबियनवाद के सारभूत तत्त्व या मूल विचार, फेबियनवाद की

अध्याय पृष्ठ

तव सगति, फेबियनवाद के साधन, फेवियनवाद की सफलताएँ, फेबियन समाजवाद मे दोप, फेवियन समाजवाद तथा मार्क्सवाद साम्यवाद मे अन्तर, Exercises

6 समष्टिवाद या राज्य समाजवाद (Collectivism or State Socialism) 135—150
परिचय, समष्टिवाद की परिभाषा, समष्टिवाद के उद्देश्य, समष्टिवादी व्यवस्था का स्थापित करने के कारण, समष्टिवाद के साधन, समष्टिवाद के गुण, समष्टिवाद के दोष, समष्टिवाद का मूल्याकन, Exercises

7. प्रजातान्त्रिक समाजवाद (Democratic Socialism) 151—177
परिचय, प्रजातान्त्रिक समाजवाद के विकास के कारण, इगलैण्ड प्रजातान्त्रिक समाजवाद का घर है, प्रजातान्त्रिक समाजवादी लेखको की विचारधाराएँ—आर० एच० टॉनी, क्लेमेन्ट एटली, एवन एफ० एम० डर्विन, फ्रासिस विलियम, आर० एच० एस० क्रासमन, अमरीका मे प्रजातान्त्रिक समाजवाद—नामन थामस, भारत मे प्रजातान्त्रिक समाजवाद, समाजवादी अन्तराष्ट्रीय और एशियन समाजवादी सम्मेलन, प्रजातान्त्रिक समाजवाद के मूल सिद्धात, प्रजातान्त्रिक समाजवाद का मूल्याकन—गुण तथा दोष, प्रजातान्त्रिक समाजवाद और प्रजातान्त्रिक पूँजीवाद, Exercises

8 श्रम सघवाद (Syndicalism) 178—202
श्रम सघवाद का अर्थ, श्रम सघवाद की परिभाषा, श्रम सघवाद की विशेषताएँ, श्रम सघवाद के साधन—हडताल, तोडफोड, बहिष्कार, लेवल, श्रमसघवादी समाज का स्वरूप, श्रम सघवाद का मूल्याकन—गुण तथा दोष, श्रम सघवादी विचारक—फरनेन्ड पेलोटियर, सोरेल, नवीन श्रम सघवाद, Exercises

9 श्रेणी समाजवाद (Guild Socialism) 203—229
श्रेणी समाजवाद की उत्पत्ति तथा विकास, श्रेणी समाजवाद के विकास के कारण, श्रेणी समाजवाद का अर्थ, श्रेणी समाजवाद के मूल सिद्धान्त, गिल्डा या समाज, श्रेणी समाजवाद के साधन, श्रेणी समाजवाद के अन्तर्गत राज्य की स्थिति, श्रेणी समाजवाद की आलोचना, श्रेणी समाजवाद के गुण तथा महत्व, श्रेणी समाजवाद का दर्शन, श्रम सघवाद और समष्टिवाद का विश्राम समूह है Exercises

1

समाजवाद
(Socialism)

वर्तमान युग की सबसे बड़ी देन समाजवाद तथा समाजवादी विचारधारा का विकास है। यह एक ऐसी विचारधारा है जो सबका कल्याण चाहती है, जो व्यक्तिगत हित का सामाजिक हित के अधीन समझती है, जो लाभ के स्थान पर सेवा भाव पर बल देती है, जो पूंजीवादी अर्थ व्यवस्था और स्वतन्त्र प्रतियोगिता की विरोधी है, जो शोषण, अन्याय, गम्भीर आर्थिक असमानताओं तथा अन्य सामाजिक बुराइयों का अन्त चाहती है, जो भूमि तथा अन्य प्राकृतिक उपलब्धियों को सामान्य लाभ के लिए प्रयोग में लाना चाहती है जो कम से कम बड़े उद्योगों का सामाजीकरण चाहती है, जो सबको विकास के समान अवसर प्रदान करना चाहती है। एक शब्द में, राज्य को कल्याणकारी राज्य बनाने के लिए समाजवाद समय की पुकार है। यह ऐसा वाद है जो करोड़ों की आशाओं को व्यक्त करता है।

समाजवाद का विकास

यह कहना बहुत कठिन है कि समाजवाद का जन्म कब और कैसे हुआ। इतना अवश्य है कि समाजवाद शब्द की उत्पत्ति 'सोशियस' (Socius) शब्द से हुई है जिसका अर्थ समाज से है। इस तरह समाजवाद का सम्बन्ध समाज के सुधार से है।

समाजवाद का जन्म सम्भवतः प्रारम्भिक व्यक्तियों से हुआ क्योंकि उनमें सम्पत्ति सामूहिक होती थी। यह भी कहा जाता है कि स्पार्टा में कुछ समय के लिए समाजवादी शासन भी रहा। प्लेटो की रचना रिपब्लिक (Republic) में भी समाजवादी तत्त्वों को ढूंढा जा सकता है। उसके द्वारा प्रतिपादित संरक्षक वर्ग (Guardian Class) के पास कोई व्यक्तिगत सम्पत्ति नहीं थी। वे शक्ति का प्रयोग केवल लोक कल्याण के लिए करते थे। परन्तु प्लेटो का साम्यवाद आध्यात्मिक था

आर्थिक नहीं । इसके अतिरिक्त उसका साम्यवाद साधारण जनता पर लागू नहीं होता था । वह तो केवल शासक वर्ग पर ही लागू होता था ।

ओल्ड टेस्टामेन्ट (Old Testament) समाजवादी विचारों की प्रथम संहिता (Code) है । इसमें मजदूरों, स्त्रियों, और निबलों की सुरक्षा पर बल दिया गया है । जेसस क्राइस्ट (Jesus Christ) ने समता के सिद्धान्त का प्रचार किया । प्रारम्भिक ईसाई मत वालों ने 'मेरे' और 'तेरे' (Mine and Thine) के विचार को स्वीकार नहीं किया था ।

मध्य युग में चर्च ऐसे जीवन का समर्थन करता था जो सम्पत्ति, साहूकारी, और व्यापार के विरुद्ध था । चर्च सम्पत्ति और व्यापार को 'दुराचार' मानता था जो ईसाई धर्म से असंगत था । मध्य युग के अनेक धार्मिक आन्दोलनों ने सम्पत्ति को एकत्रित करने तथा लालच और लोभ का विरोध किया । वह (चर्च) कठोर जीवन में विश्वास करता था ।

पुनर्जागरण और सुधार आन्दोलनों के काल में सम्पत्ति पर आधारित असमानताओं के विरुद्ध विरोध उठ खड़ा हुआ । इस नवीन तर्कनावाद (rationalism) को टामस मूर (Thomas Moor) की रचना यूटोपिया (Utopia, 1516) में देखा जा सकता है । इस रचना में मूर ने आदर्श समाजवादी व्यवस्था की कल्पना की ।

सत्रहवीं शताब्दी की विशुद्धिवादी क्रान्ति (Puritan Revolution) में मध्य युग के मुख्य आन्दोलन के साथ साथ एक आमूल परिवर्तनवादी समूह (Radical group) का जन्म हुआ जिसे दी डिगर्ज या दी लेवलरस (The Diggers or The Levelers) कहते हैं । ये आमूल परिवर्तनवादी भूमि पर सामाजिक परिवर्तन चाहते थे । सन्त साइमन, फोरियर, ओवेन, के विचारों में काल्पनिक (आदर्शपूर्ण) समाजवाद का विकास हुआ ।

औद्योगिक क्रान्ति ने समाज को दो वर्गों में बाँट दिया था । एक शोषक वर्ग था जो विलासितापूर्ण जीवन व्यतीत करता था और दूसरा शोषित वर्ग था जिसके पास जीविकोपार्जन के साधन भी उपलब्ध नहीं थे । श्रमिकों की दशा दिन प्रतिदिन बिगड़ती जा रही थी । उनका जीवन असहाय होता जा रहा था । इस दशा को सुधारने के लिए बुद्धिजीवियों ने तर्कनापरक (rational) विचारों का विकास किया । पूँजीवादी अर्थव्यवस्था की उन्होंने भर्त्सना की । आर्थिक विषमताओं को दूर करने, शोषण और लाभ वृत्तियों का अन्त करने के लिए दार्शनिकों ने सामाजिक और आर्थिक न्याय पर बल दिया । यह कहा जाता है कि नोयल बाबेफ नामक फ्रांसीसी लेखक ने गरीबों की दशा सुधारने के लिए सम्पत्ति के राष्ट्रीयकरण पर बल दिया ।

यद्यपि औद्योगिक और बौद्धिक क्रान्तियाँ अठारहवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में हुईं परन्तु समाजवाद शब्द का प्रयोग उन्नीसवीं शताब्दी के आरम्भ में किया गया ।

सम्भवत सन 1833 म पुअर म न गार्डियन (Poor Man s Guardian) म पहली बार समाजवाद शब्द का प्रयोग किया गया। उसके बाद सन् 1835 म राबर्ट ओवेन की अध्यक्षता मे स्थापित सब राष्ट्रो के सब वर्गों के समुदाय (Association of all Classes of all Nations) न समाजवाद और समाजवादी शब्दो का प्रयोग किया।

रबाद (Reybaud), जो फ्रांसीसी लेखक था, ने इन शब्दो को ब्रिटिश विचारको से उधार लेकर अपनी रचना Reformation Moderner म खूब प्रयोग किया। इस लेखक न ही समाजवाद शब्द को विस्तृत रूप से चलित बना दिया।

कार्ल मार्क्स पहला समाजवादी लेखक था जिसने समाजवाद की वैज्ञानिक व्याख्या की। उसका समाजवाद स त साइमन फोरियर और ओवेन की भाँति काल्पनिक नही था। मार्क्स न अपनी रचनाओ म विशेषकर साम्यवादी घोषणा पत्र (1848) और दास कैपिटल (1867) म समाजवाद की वैज्ञानिक व्याख्या की। उसका समाजवाद पूर्णतया समाजवादी था। मार्क्स ने न केवल उस समाज का चित्र खीचा जिसकी वह स्थापना चाहता था बल्कि उसने उन अवस्थाओ की विस्तृत व्याख्या भी की जिनके द्वारा उस समाज की स्थापना हो सकती थी।

समाजवाद की निश्चित परिभाषा देने मे कठिनाइयाँ

राजनीति शास्त्र म बहुत कम ऐसे शब्द हैं जिन्होने इतने अधिक विवाद को जन्म दिया है जितना कि समाजवाद शब्द न दिया है। इसका मुख्य कारण यह है कि यह एक समशील विचार (Homogeneous idea) नही। इसके भिन्न भिन्न रूप हैं भिन्न भिन्न दृष्टिकोण हैं। यह ऐसा अनेक रूपी दर्शन (Many sided philosophy) है जिसे प्रत्येक दार्शनिक अपनी ही दृष्टि से देखता है। प्रत्येक देश म इसका स्वरूप स्थानीय परिस्थितियो के अनुकूल होता है। डा० शडवैल के शब्दो मे, "समाजवाद अत्यन्त जटिल, अनेक तरफा और भ्रान्तियो से पूर्ण ऐसा प्रश्न है जिसने मानव के मस्तिष्क को सबसे अधिक उलझाया है।"[1]

समाजवाद का कोई निश्चित क्षेत्र नही। इसकी कोई निश्चित सीमा नही। इसका कोई निश्चित सिद्धान्त नही। यह एक राजनीतिक आन्दोलन है, यह एक दर्शन है, यह एक आर्थिक प्रणाली है, यह एक सामाजिक व्यवस्था है। यह न केवल उत्पादन से प्राप्त लाभो को स्वामियो और सेवको (पूँजीपतियो और श्रमिको) म साम्यिक आधार (Equitable basis) पर बाटना चाहता है बल्कि व्यक्ति के जीवन को राज्य द्वारा नियोजित करके उसका चौमुखी विकास करना चाहता है। 'समाजवाद सामाजिक सगठन का एक राजनीतिक और आर्थिक सिद्धान्त है जिसकी मूल विशेषता आर्थिक कार्यों

1 'Socialism is the most complicated many sided and confused question that ever plagued the minds of men —Dr Schadwell

आर्थिक नहीं। इसके अतिरिक्त उसका साम्यवाद साधारण जनता पर लागू नहीं होता था। वह तो केवल शासक वर्ग पर ही लागू होता था।

ओल्ड टेस्टामेंट (Old Testament) समाजवादी विचारों की प्रथम संहिता (Code) है। इसमें मजदूरों, स्त्रियों और निर्बलों की सुरक्षा पर बल दिया गया है। जेसस क्राइस्ट (Jesus Christ) ने समता के सिद्धान्त का प्रचार किया। प्रारम्भिक ईसाई मत वालों ने 'मेरे और तेरे' (Mine and Thine) के विचार को स्वीकार नहीं किया था।

मध्य युग में चर्च ऐसे जीवन का समर्थन करता था जो सम्पत्ति, साहूकारी, और व्यापार के विरुद्ध था। चर्च सम्पत्ति और व्यापार को 'दुराचार' मानता था जो ईसाई धर्म से असंगत था। मध्य युग के अनेक धार्मिक आन्दोलनों ने सम्पत्ति को एकत्रित करने तथा लालच और लोभ का विरोध किया। वह (चर्च) कठोर जीवन में विश्वास करता था।

पुनर्जागरण और सुधार आन्दोलनों के काल में सम्पत्ति पर आधारित असमानताओं के विरुद्ध विरोध उठ खड़ा हुआ। इस नवीन तर्कनावाद (rationalism) को टामस मूर (Thomas Moor) की रचना यूटोपिया (Utopia, 1516) में देखा जा सकता है। इस रचना में मूर ने आदर्श समाजवादी व्यवस्था की कल्पना की।

सत्रहवीं शताब्दी की विशुद्धिवादी क्रान्ति (Puritan Revolution) में मध्य युग के मुख्य आन्दोलन के साथ साथ एक आमूल परिवर्तनवादी समूह (Radical group) का जन्म हुआ जिसे दी डिगर्ज या दी लेवलरस (The Diggers or The Levelers) कहते हैं। ये आमूल परिवर्तनवादी भूमि पर सामाजिक परिवर्तन चाहते थे। सन्त साइमन, फोरियर, ओवेन, के विचारों में काल्पनिक (आदर्शपूर्ण) समाजवाद का विकास हुआ।

औद्योगिक क्रान्ति ने समाज को दो वर्गों में बाँट दिया था। एक शोषक वर्ग था जो विलासितापूर्ण जीवन व्यतीत करता था और दूसरा शोषित वर्ग था जिसके पास जीविकोपार्जन के साधन भी उपलब्ध नहीं थे। श्रमिकों की दशा दिन प्रतिदिन बिगड़ती जा रही थी। उनका जीवन असहाय होता जा रहा था। इस दशा को सुधारने के लिए बुद्धिजीवियों ने तर्कनापरक (rational) विचारों का विकास किया। पूँजीवादी अर्थव्यवस्था की उन्होंने भर्त्सना की। आर्थिक विषमताओं को दूर करने, शोषण और लाभ वृत्तियों का अन्त करने के लिए दार्शनिकों ने सामाजिक और आर्थिक न्याय पर बल दिया। यह कहा जाता है कि नोयल बावेफ नामक फ्रांसीसी लेखक ने गरीबों की दशा सुधारने के लिए सम्पत्ति के राष्ट्रीयकरण पर बल दिया।

यद्यपि औद्योगिक और बौद्धिक क्रान्तियाँ अठारहवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में हुईं परन्तु समाजवाद शब्द का प्रयोग उन्नीसवीं शताब्दी के आरम्भ में किया गया।

सम्भवत सन् 1833 म पुअर मैं म गार्डियन (Poor Man s Guardian) मे पहली बार समाजवाद शब्द का प्रयोग किया गया। उसके बाद सन् 1835 म राबर्ट ओवेन की अध्यक्षता से स्थापित सब राष्ट्रो के सब वर्गों के समुदाय (Association of all Classes of all Nations) न समाजवाद और 'समाजवादी' श दो का प्रयोग किया।

रेबॉद (Reybaud), जो फ्रांसीसी लेखक था, न इन शब्दो को ब्रिटिश विचारको से उधार लेकर अपनी रचना Reformation Moderne में खूब प्रयोग किया। इस लेखक ने ही समाजवाद शब्द को विस्तृत रूप से चलित बना दिया।

कार्ल मार्क्स पहला समाजवादी लेखक था जिसने समाजवाद की वैज्ञानिक व्याख्या की। उसका समाजवाद स त साइमन फोरियर और ओवन की भाति काल्पनिक नही था। मार्क्स ने अपनी रचनाओ मे विशेषकर साम्यवादी घोषणा पत्र (1848) और दास कैपिटल (1867) म समाजवाद की वैज्ञानिक व्याख्या की। उसका समाजवाद पूर्णतया समाजवादी था। मार्क्स न न केवल उस समाज का चित्र खींचा जिसकी वह स्थापना चाहता था बल्कि उसने उन अवस्थाओ की विस्तृत व्याख्या भी की जिनके द्वारा उस समाज की स्थापना हो सकती थी।

समाजवाद की निश्चित परिभाषा देने मे कठिनाइयाँ

राजनीति शास्त्र म बहुत कम ऐसे शब्द हैं जिन्होंने इतने अधिक विवाद को जन्म दिया है जितना कि समाजवाद शब्द ने दिया है। इसका मुख्य कारण यह है कि यह एक समशील विचार (Homogeneous idea) नही। इसके भिन्न भिन्न रूप हैं भिन्न भिन्न दृष्टिकोण हैं। यह ऐसा अनेक रूपी दर्शन (Many sided philosophy) है जिसे प्रत्येक दार्शनिक अपनी ही दृष्टि से देखता है। प्रत्येक देश म इसका स्वरूप स्थानीय परिस्थितियो के अनुकूल होता है। डा० शडवल के शब्दो म, "समाजवाद अत्यन्त जटिल, अनेक रूपो और भ्रान्तियो से पूर्ण ऐसा प्रश्न है जिसने मानव के मस्तिष्क को सबसे अधिक उलझाया है।"[1]

समाजवाद का कोई निश्चित क्षेत्र नही। इसकी कोई निश्चित सीमा नहीं। इसका कोइ निश्चित सिद्धान्त नही। यह एक राजनीतिक आन्दोलन है, यह एक दर्शन है, यह एक आर्थिक प्रणाली है यह एक सामाजिक व्यवस्था है। यह न केवल उत्पादन से प्राप्त लाभो को स्वामियो और सेवको (पूंजीपतियो और श्रमिको) मे साम्यिक आधार (Equitable basis) पर बाँटना चाहता है बल्कि व्यक्ति के जीवन को राज्य द्वारा नियोजित कर उसका चौमुखी विकास करना चाहता है। "समाजवाद सामाजिक संगठन का एक राजनीतिक और आर्थिक सिद्धान्त है जिसकी मूल विशेषता आर्थिक कार्यों

---

1 Socialism is the most complicated many sided and confused question that ever plagued the minds of men —Dr Schadwell

पर सरकारी नियन्त्रण को स्थापित करना है, जिसमे प्रतियोगिता का स्थान सहयोग ले लेगा, जिसमे जीवन के विकास के अवसर सबको प्राप्त होंगे तथा जिसमे श्रम का पारितोषिक सब मे साम्यिक रूप से बाँट दिया जायगा।"[1] यह राज्य के कार्य क्षेत्र को विस्तृत बनाना चाहता है।

समाजवाद की निश्चित परिभाषा देने म जो कठिनाइयाँ उत्पन्न होती हैं उन्हें सी० ई० एम० जोड ने इस प्रकार व्यक्त किया है कि "समाजवाद ऐसी टोपी है जिसकी आकृति बहुत अधिक पहनने से बिगड गयी है।"[2] उनकी धारणा है कि एक परिधि मे समाजवाद की विस्तृत व्याख्या करना कठिन है। प्रत्येक व्यक्ति के हाथो म यह भिन्न सिद्धान्त, आन्दोलन, प्रणाली, या व्यवस्था प्रतीत होती है।

समाजवाद की परिभाषा देने मे जो कठिनाइयाँ आती हैं उन्हे निम्न प्रकार से व्यक्त किया जा सकता है —

(1) समाजवाद शब्द का प्रयोग 'सिद्धान्त' (Doctrine) और 'आन्दोलन' (Movement) दोनो शब्दो को व्यक्त करने के लिए किया जाता है।

(2) समाजवादी सिद्धान्त पूर्ण रूप से या मुख्य रूप से एक राजनीतिक सिद्धान्त नही। यह अधिकांशत आर्थिक सिद्धान्त है।

(3) समाजवादी विरोधी स्कूलो मे बँटे हुए हैं जैसे साम्यवादी, श्रम संघवादी, श्रेणी समाजवादी, आदि। इनके उद्देश्यो और पद्धतियो मे तीव्र भेद होने के कारण ये पृथक पृथक स्कूलो तथा विचारधाराओ मे बँट गये हैं। ये अपने आपको समाजवादी कहने के स्थान पर साम्यवादी, श्रम संघवादी या श्रेणी समाजवादी कहना अधिक पसन्द करते है।

(4) समाजवादी अपने सिद्धान्तो को समय, परिस्थिति और आवश्यकता के अनुसार बदल देते हैं। समाजवाद की तुलना ऐसी औषधि से की गयी है जिसे रोगी के स्वभाव और रोग की प्रकृति के अनुसार जिससे रोगी पीडित है अवश्य बदल देना चाहिए। रैम्जे म्यूर (Ramsay Muir) के शब्दो मे, 'समाजवाद एक गिरगिट के समान है जो परिस्थितियो के अनुकूल अपना रंग बदलता रहता है।"

(5) समाजवाद व्यावहारिक सिद्धान्त होने से एक जटिल सिद्धान्त है। यह कार्यो पर बल देता है ठोस सिद्धान्त पर नही। इसकी कोई स्थिर व निश्चित योजना नही बन सकती। इसलिए इसकी स्पष्ट व निश्चित व्याख्या करना कठिन है।

समाजवादियों को स्वय भी अपनी स्थिति का पूरा आभास नही। वे यह

---

1 Thomas Norman Quoted by William Ebenstein in his *Modern Political Thought* (1960) p 636

2 Joad, C E M *Introduction to Modern Political Theory* (1953) p 39

पूर्ण रूप से नही जानन कि इसका पूरा अथ क्या है ? रापोपोट (Rappoport) ने बहुत सुन्दर शब्दा म लिखा है कि "यदि मुझसे पूछा जाय कि क्या मैं समाजवादी हूँ तो मैं स्पष्ट रूप से उत्तर दूगा कि मुझे मालूम नही। यह सब इस बात पर निभर करता है कि कोई व्यक्ति समाजवाद से क्या समझता है ? यदि समाजवाद का अथ न्याय, समता, वास्तविक प्रजातन्त्र, मनुष्य से प्रेम दूसरा का उपकार करना, सहनशीलता, व्यक्तिगत स्वतन्त्रता, उच्च नैतिक आदश, शान्ति तथा सद्भावना है तब मैं एक समाजवादी हूँ। यदि दूसरी ओर, समाजवाद निजी स्वतन्त्रता को नष्ट करता है यदि इसका अथ निरकुशता, अत्याचार, दमन और निराशा है ता मैं समाजवाद का विरोधी हू।"

(6) समाजवाद की परिभाषा दने म सबसे बडी कठिनाई यह है कि समाजवाद को साम्यवाद और साम्यवाद को समाजवाद समझा जाता है। परन्तु दोना बिल्कुल अलग अलग विचारधाराएँ हैं।

समाजवाद की परिभाषा

उपर्युक्त कठिनाइया क बावजूद भी अनेक लेखका ने समाजवाद की परिभाषा देने का प्रयास किया है जो उसके भिन्न भिन्न पहलुआ और दृष्टिकोणा का व्यक्त करती है। सन 1892 म ली फीगारो नामक एक फ्रासीसी पत्र म समाजवाद की छ सौ परिभाषायें प्रकाशित की गयी थी। मुख्य परिभाषाएँ निम्न है —

(1) अपादोराय क शब्दा म, "समाजवाद एक सिद्धान्त और एक आन्दोलन है जो उत्पादन और विनिमय के साधना पर सामूहिक स्वामित्व और सामूहिक नियन्त्रण द्वारा जन साधारण के हित के लिए लोक समाज का सामूहिक सगठन चाहता है।"

(2) हुअर्ट बलाण्ड के शब्दा म, 'उत्पादन और विनिमय साधना पर सामान्य नियन्त्रण को समाजवाद कहते हैं और यह सामान्य नियन्त्रण सबके समान लाभ के लिए है।"

(3) विश्वकोश ब्रिटानिका के अनुसार समाजवाद 'वह नीति या सिद्धान्त है जो केन्द्रीय प्रजातान्त्रिक सत्ता द्वारा आजकल की अपेक्षा श्रेष्ठतम वितरण तथा उसके अधीन श्रेष्ठतम उत्पादन की व्यवस्था करना चाहता है।"

(4) शफ्ल के शब्दो म समाजवाद का उद्देश्य 'निजी तथा प्रतियोगिता मे लगी पूजी को सगठित तथा सामूहिक पूजी म बदलना है।"

(5) जी० डी० एच० कोल के शब्दो म "समाजवाद का अथ चार बाता से है—(i) एक मानवीय सभा जिसम वग विभेद को समाप्त कर दिया गया है, (ii) एक सामाजिक प्रणाली जिसम कोई व्यक्ति अपने पडोसी से न ही तो इतना अमीर है और न ही इतना गरीब कि वे आपस म समान शर्तो पर मिल भी न सकें, (iii)

समस्त उत्पादन के मुख्य साधनों पर सार्वजनिक स्वामित्व एवं प्रयोग, (iv) समस्त नागरिक अपनी पूर्ण क्षमता के अनुसार एक दूसरे की सेवा करें।"

(6) जार्ज बर्नार्ड शा के शब्दों में, "समाजवाद आय की समानता के अतिरिक्त और कुछ नहीं।"

(7) प्रो० पीगू के शब्दों में, "उत्पादन के साधनों पर व्यक्तिगत अधिकार को पूंजीवाद कहते हैं और इन साधनों पर सामाजिक अधिकार को समाजवाद कहते हैं।"

(8) बर्ट्रेण्ड रसल के शब्दों में "यदि हम समाजवाद को भूमि तथा सम्पत्ति के सामाजिक स्वामित्व की वकालत कहें तो हम समाजवाद के मूल तत्व के अधिक निकट पहुँच जाते हैं।"

(9) जय प्रकाश नारायण के शब्दों में समाजवाद "एक ऐसा वर्ग विहीन समाज है जिसमें सभी श्रमिक हैं, जिसमें निजी सम्पत्ति के हितों के लिए मानव श्रम का शोषण नहीं होता, जिसमें सभी सम्पत्ति वास्तविक रूप से राष्ट्र की या कॉमनवल्थ की है, जिसमें किसी की अनुपार्जित आय नहीं, जिसमें आय की अधिक असमानतायें नहीं, जिसमें मानव जीवन का संचालन तथा उन्नति योजना बद्ध तरीके से होती है, जिसमें सब सबके लिए जीते हैं।"

उपर्युक्त परिभाषाओं से स्पष्ट है कि समाजवाद भिन्न भिन्न दार्शनिकों के लिए भिन्न भिन्न अर्थ रखता है। जो जिस रंग या दृष्टि से इसकी ओर देखता है उसे वही रंग और दृष्टि नजर आती है। कुछ के लिए यह उत्पादन, वितरण और विनिमय के साधनों पर सार्वजनिक स्वामित्व है, कुछ के लिए यह उत्पादन के मुख्य साधनों पर सार्वजनिक स्वामित्व और छोटे मोटे उत्पादन के साधनों पर सीमित निजी स्वामित्व है, कुछ के लिए यह अच्छे उत्पादन और अच्छे वितरण की व्यवस्था है, कुछ के लिए यह नागरिकों की आर्थिक और सामाजिक स्थिति सुधारने की प्रणाली है, कुछ के लिए यह नियन्त्रण की प्रक्रिया है, कुछ के लिए यह पूंजीवादी अर्थ व्यवस्था के लाभ, शोषण और अन्याय का वृत्ति तथा निजी निवेश (Investment) का अन्त करने का तरीका है, कुछ के लिए यह धन के वितरण की पूर्णतया नवीन प्रणाली है, कुछ के लिए यह साम्यिक आधारों (Equitable basis) पर सार्वजनिक लाभों का बँटवारा है, कुछ के लिए यह आय की न्यूनतम दरों को निश्चित करने का माध्यम है ताकि इन भिन्नताओं के कारण कोई किसी का शोषण न कर सके, कुछ के लिए यह लाभ, भाड़े, ब्याज की वर्तमान प्रणालियों का अन्त करने की विधि है, कुछ के लिए यह निजी सम्पत्ति, स्वतन्त्र प्रतियोगिता और असंयमित व्यक्तिवाद को अन्त करने का साधन है, कुछ के लिए यह भूमि और प्राकृतिक साधनों पर सार्वजनिक स्वामित्व को स्थापित करने का आधार है कुछ के लिए यह वर्गीय आन्दोलन है, कुछ के लिए यह पारस्परिक सहयोग की प्रेरणा और वर्ग विहीन समाज की स्थापना का यन्त्र है, कुछ के लिए यह सबको श्रमिक बनाने का तरीका है, कुछ के लिए यह

समाज म सामाजिक और आर्थिक न्याय की स्थापना का सर्वोत्तम साधन और समता का आधार है। सक्षेप मे, समाजवाद ऐसा सिद्धान्त, आन्दोलन और जीवन पद्धति है जो सार्वजनिक कल्याण पर आधारित है।

समाजवाद एक विरोध भी है। यह एक सुधार आन्दोलन भी है। यह पूजीवाद के विरुद्ध विरोध है यह उसके व्यक्तिगत लाभो के विरुद्ध विरोध है, यह उससे उत्पन्न सामाजिक और आर्थिक बुराइयो तथा विषमताओ के विरुद्ध विरोध है, यह स्वतन्त्र प्रतियोगिता के विरुद्ध विरोध है। यह मानव के कल्याण के लिए तथा उसे जीवन की न्यूनतम आवश्यकताएँ उपलब्ध कराने के लिए सुधार आन्दोलन भी है।

समाजवाद के आवश्यक तत्त्व या मूल सिद्धान्त
(Essential Features of Socialism or Fundamentals of Socialism)

समाजवाद की परिभाषा देने म जो कठिनाइया सामने आती है उसी प्रकार की कठिनाइयाँ समाजवाद के मूल सिद्धान्तो को व्यक्त करने म भी उत्पन्न होती है। इसका मुख्य कारण यही है कि, सम्भवतया जीवन का कोई ऐसा क्षेत्र नही जिस समाजवादी क्षेत्र न कहा जा सके। वर्तमान कल्याणकारी राज्य के लिए तो समाजवाद आवश्यक तत्त्व बन चुका है। यह समय की माग भी है।

समाजवाद के मूल तत्त्वो को निम्न प्रकार स व्यक्त किया जा सकता है —

1 **समाजवाद व्यक्ति क स्थान पर समाज को अधिक महत्त्व देता है**

समाजवाद शब्द की उत्पत्ति ही सासियस (Socius) शब्द से हुई है जिसका अर्थ समाज है। स्वाभाविक है कि यह विचारधारा व्यक्ति के स्थान पर समाज को अधिक महत्त्व देती है। समाजवाद के लिए समाज व्यक्ति से अधिक उच्चतर, महानतर और पवित्र है। समाजवाद उन नीतियो का अनुसरण करता है जिससे समाज का कल्याण हो, व्यक्ति विशेष का नही। यह व्यक्तियो के हितो को समाज के हितो के अधीन समझता है।

2 **समाजवाद समाज को आगिक एकता म गूथना चाहता है**

समाजवाद समाज को आगिक एकता म गूथना चाहता है परन्तु सर्वसत्तावादी या एकदलीय शासन की भाँति व्यक्तियो की स्वतन्त्रता की बलि चढा कर नहीं अपितु उसकी सुरक्षा की व्यवस्था करके। समाजवाद न तो व्यक्तिवादियो की असीमित या अनियन्त्रित स्वतन्त्रता के पक्ष म है और न साम्यवादियो या सर्वसत्तावादियो के अति नियन्त्रण के पक्ष म है। यह तो मध्यम मार्ग अपनाता है तथा व्यक्ति को आने वाले कल के खतरो स तथा भूख और नगेपन की गुलामी स स्वतन्त्र रखना चाहता है। जहाँ व्यक्तिवाद स्वतन्त्रता के माध्यम स सबको समता प्रदान करता है वहाँ समाजवाद समता के माध्यम स सबकी स्वतन्त्रता सुरक्षित रखना चाहता है।

3 समाजवाद पूंजीवाद का उन्मूलन चाहता है

समाजवाद का मुख्य उद्देश्य पूंजीवाद का उन्मूलन करना है। उसकी धारणा है कि समाज में विद्यमान शोषण तथा अन्य आर्थिक विषमतायें पूंजीवाद के लाभ, भाड़े और ब्याज की प्रवृत्तियों के कारण है। उसका विश्वास है कि पूंजीवाद ही श्रमिकों में असन्तोष, निराशा और वर्ग चेतना उत्पन्न करता है। श्रमिकों को जीविकोपार्जन के साधन सुलभ न होने के कारण उनमें ईर्ष्या, द्वेष और बदले की भावना पैदा होती है। अरस्तू ने भी कहा था कि 'आर्थिक विषमतायें क्रान्तियों को जन्म देती हैं।''

4 समाजवाद स्वतन्त्र प्रतियोगिता का अन्त करना चाहता है

समाजवादी स्वतन्त्र प्रतियोगिता को समाज विरोधी तत्त्व मानते हैं। उनकी धारणा है कि (i) अत्यधिक धनी और अत्यधिक निर्धन में निष्पक्ष प्रतियोगिता सम्भव नहीं, (ii) स्वतन्त्र प्रतियोगिता में अन्यायपूर्ण और कुटिल साधनों का प्रयोग किया जाता है, (iii) अपनी वस्तुओं का प्रचार करने के लिए धनी विज्ञापनों पर अनावश्यक व्यय करते हैं जिससे धन का अपव्यय होता है, (iv) इसमें एकाधिकार (Monopoly) की प्रवृत्तियां जन्म लेती हैं। इसलिए समाजवादी स्वतन्त्र प्रतियोगिता के स्थान पर सहयोग पर बल देते हैं। डा० हेडन गेस्ट (Haden Guest) के शब्दों में, "स्थानीय, राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय कार्यों में समाजवाद प्रतियोगिता के स्थान पर सहयोग की भावना को स्थापित करना चाहता है।''[1]

5 समाजवाद समाज में समता स्थापित करना चाहता है

समाजवाद समाज में विद्यमान आर्थिक विषमताओं को दूर कर सम्पत्ति का वितरण इस प्रकार करना चाहता है कि धन (सम्पत्ति) कुछ लोगों के हाथों में केन्द्रित न हो पाये। इस तरह यह अमीर और गरीब की खाई को कम करना चाहता है। यह समता चाहता है। लैवेली के शब्दों में, "प्रत्येक समाजवादी सिद्धान्त का उद्देश्य सामाजिक व्यवस्था में अधिक समानता उत्पन्न करना है। समाजवाद समकारी और तलक्षक है।'[2] वुल्से के शब्दों में, 'समाजवाद की शक्ति तर्क नहीं अपितु समता की मांग है।''[3]

समाजवादियों का समता से अभिप्राय निरपेक्ष या पूर्ण समानता से नहीं है।

---

1 'Socialism is the substitution of cooperation for competition in local, national and international affairs —*Guest Dr Haden*

2 Every socialistic doctrine aims at introducing greater equality into social conditions Socialism is an equaliser and leveller —*Laveleye*

3 The strength of socialism is not argument but the demand for equality —*Woolsey*

पूर्ण समानता न तो सम्भव है और न ही अपेक्षित है। समाजवादियों की समता से इतना आशय अवश्य है कि सबको विकास के पर्याप्त अवसर मिलें, श्रमिकों को अपने श्रम का पारितोषिक ठीक मिले। समाजवादी उस सामाजिक या आर्थिक व्यवस्था को समाप्त करना चाहते हैं जिसमें कुछ को बिना श्रम किये जीवन की सुख सुविधाएं प्राप्त हो जाती हैं और बहुसंख्यक लोगों को कठोर श्रम करने पर भी पेट भर कर भोजन प्राप्त नहीं होता। समाजवाद सामाजिक न्याय की माँग करता है। वह श्रमिकों के समाज, अर्थात् जहाँ सब काम करते हैं, का विकास करना चाहता है परजीवियों (Parasites पूंजीपतियों) के समाज का नहीं।

6 समाजवाद निजी सम्पत्ति का उन्मूलन चाहता है

समाजवाद निजी सम्पत्ति को शोषण का मुख्य कारण मानता है। उसका विश्वास है कि निजी सम्पत्ति के कारण प्रजातान्त्रिक प्रणालियाँ विकृत बन जाती हैं, वे पूंजीपतियों के हाथों में कठपुतली मात्र बन कर रह जाती हैं। अनेक समाजवादियों ने निजी सम्पत्ति को "चोरी" अथवा "न्याय के प्रति अपराध माना" है। हैलोवेल का कहना है कि 'बुराई मुख्यतः उत्पादन के साधनों पर निजी स्वामित्व के कारण उत्पन्न होती है।'[1] इस तरह समाजवाद निजी सम्पत्ति का उन्मूलन कर समाज में विद्यमान विषमताओं को दूर करना चाहता है। परन्तु समाजवाद उस निजी सम्पत्ति को, जैसे निजी वस्तुओं, छोटे छोटे व्यवसायों या अपने रहने योग्य घरों आदि में लगी हुई सम्पत्ति, बनाये रखना चाहता है जो समाज में शोषण का कारण नहीं।

7 समाजवाद भूमि और खानों पर से निजी स्वामित्व को समाप्त करना चाहता है

भूमि और खानों को समाजवादी प्राकृतिक देन मानते हैं। इसलिए उन पर किसी व्यक्ति विशेष या व्यक्ति समूह का स्वामित्व नहीं होना चाहिए। समाजवादी इनका प्रयोग सामाजिक लाभ के लिए करना चाहते हैं।

समाजवादियों में इस बात पर मतैक्य नहीं कि भूमि पर से या खानों पर से निजी स्वामित्व को कैसे समाप्त किया जाय। कुछ तो बिना मुआवजे के इन्हें सार्वजनिक स्वामित्व में लाना चाहते हैं और कुछ मुआवजा दे कर। रेम्जे मैकडानाल्ड के शब्दों में, 'समाजवाद सम्पत्ति के हस्तगत किये जाने से ही नहीं आ सकता।'[2] वह लूट के विचार से सहमत नहीं था। परन्तु इतना अवश्य है कि सभी समाजवादी भूमि और खानों पर सार्वजनिक स्वामित्व चाहते हैं।

---

1 'Evil springs primarily from the private ownership of the means of production' —Hallowell, John H *Main Currents in Modern Political Thought* (1963) p 397

2 "Socialism cannot come by confiscation" —*MacDonald, Ramsay*

8 समाजवाद उद्योगों का राष्ट्रीयकरण या सामाजीकरण चाहता है

समाजवाद उत्पादन के सभी साधनों पर सार्वजनिक नियन्त्रण रखने के पक्ष में है। वह उनका राष्ट्रीयकरण या समाजीकरण चाहता है। उसके लिए 'निजी उद्योग निजी लूट है।'[1] समाजवाद के राष्ट्रीयकरण या सामाजीकरण की नीति का यह अभिप्राय नहीं कि वह सभी छोटे बड़े उद्योगों का राष्ट्रीयकरण या सामाजीकरण चाहता है। वह तो केवल उन उद्योगों का राष्ट्रीयकरण या सामाजीकरण चाहता है जिनमें शोषण की सम्भावना है। जिन उद्योगों में व्यक्ति स्वयं कार्य करता है या जिनमें अधिक नौकरों (employees) की आवश्यकता नहीं होती जैसे भूमि के छोटे छोटे टुकड़े जिन्हें व्यक्ति स्वयं जोतता है, मकान या घर जिसमें व्यक्ति स्वयं रहता है या अन्य सीमित सम्पत्ति जिससे किसी के शोषण होने की सम्भावना नहीं, समाजवाद उनका राष्ट्रीयकरण या सामाजीकरण नहीं चाहता। वह तो बड़े-बड़े उद्योगों को सार्वजनिक स्वामित्व के अधीन लाना चाहता है ताकि पूँजीपति कृत्रिम कमी (artificial shortage) न पैदा कर सकें, उपभोक्ता वस्तुओं की कीमतों में अनावश्यक वृद्धि न कर सकें और समाज को सार्वजनिक सेवाएँ निरन्तर उपलब्ध होती रहें।

9 समाजवाद व्यक्तिगत अधिकारों की सुरक्षा चाहता है

समाजवाद जहाँ औद्योगिक पूँजी, भूमि तथा उत्पादन, वितरण और विनिमय पर सार्वजनिक नियन्त्रण चाहता है वहाँ वह व्यक्तियों को धार्मिक, सांस्कृतिक, सामाजिक, राजनीतिक आदि क्षेत्रों में स्वतन्त्र छोड़ देता है। आर्थिक क्षेत्र में भी समाजवाद व्यक्तियों को सीमित स्वतन्त्रता देता है। समाजवादी व्यवस्था में भी व्यक्ति अपने स्वतन्त्र विचार रख सकता है उनका प्रचार कर सकता है, किसी धर्म का अनुयायी बन सकता है। इस तरह समाजवाद में मौलिक स्वतन्त्रताएँ सुरक्षित रहती हैं।

10 समाजवाद राजनीतिक स्वतन्त्रता के साथ आर्थिक स्वतन्त्रता का इच्छुक है

समाजवाद की धारणा है कि जब तक व्यक्तियों को आर्थिक स्वतन्त्रता प्राप्त नहीं होती तब तक राजनीतिक स्वतन्त्रता केवल धोखा मात्र है। यही कारण है कि समाजवादी आर्थिक स्वतन्त्रता पर बल देते हैं, मजदूरों के न्यूनतम वेतन निर्धारित करते हैं, रोजगार की व्यवस्था करते हैं, वस्तुओं के मूल्य निर्धारित करते हैं, उद्योगों पर नियन्त्रण रखते हैं, उत्पादन, वितरण और विनिमय की उचित व्यवस्था करते हैं।

11 समाजवाद राज्य को धनात्मक अच्छाई मानता है

समाजवाद राज्य को धनात्मक अच्छाई (Positive good) मानता है। इस

---

1 "Private enterprise means private robbery. —*Johnston, Tom*

लिए समाजवाद राज्य के कार्य क्षेत्र का विस्तार चाहता है। उसकी धारणा है कि राज्य कानूनों द्वारा विकास में सहयोग दे सकता है। आधुनिक प्रजातान्त्रिक समाजवादी राज्य में राज्य का कार्य क्षेत्र अत्यधिक विस्तृत है। आज व्यक्ति केवल बाह्य सुरक्षा या आन्तरिक व्यवस्था के लिए ही राज्य पर निर्भर नहीं करता बल्कि जीवन की प्रत्येक आवश्यकता के लिए—भोजन, शिक्षा, स्वास्थ्य, चिकित्सा, पानी, विद्युत, गैस, निवास, रोजगार आदि—राज्य पर निर्भर करता है।

समाजवाद के गुण
(Merits of Socialism)

समाजवाद में निम्न गुण पाये जाते हैं—

1 यह सामान्य कल्याण पर आधारित विचारधारा है

समाजवाद का सबसे उत्तम गुण यह है कि यह सामान्य कल्याण पर आधारित वाद है। यह किसी वर्ग के विशेष हितों की सुरक्षा नहीं करता बल्कि समाज के सभी वर्गों के हितों की सुरक्षा करता है। यह निर्धनों और दुर्बलों के लिए सहानुभूति की भावना जाग्रत करता है, सताए हुओं के लिए न्याय की माँग करता है, रोग हुए एवं अनाश्रित लोगों के लिए उत्तरदायित्व को स्वीकार करता है, सामाजिक सेवा और सार्वजनिक सहायता के लिए अपील करता है।

2 यह व्यक्ति को विकास के साधन उपलब्ध कराता है

समाजवाद ऐसी सामाजिक व्यवस्था है जिसमें किसी का शोषण नहीं होता। इस व्यवस्था में सबको विकास के पर्याप्त अवसर प्राप्त होते हैं। यह सबकी स्वतन्त्रता को सुरक्षित रखता है तथा समता बनाये रखता है। इस व्यवस्था में प्रत्येक व्यक्ति के व्यक्तित्व का महत्त्व और गौरव समझा जाता है।

3 इसने पूँजीवाद की बुराइयों का अन्त किया है

समाजवादी व्यवस्था पूँजीवादी व्यवस्था की बुराइयों—शोषण, अन्याय, असमानता—का अन्त कर देती है। यह व्यवस्था धन का केन्द्रीयकरण नहीं होने देती। इस व्यवस्था में उद्योगों से प्राप्त लाभों को सामान्य सेवाओं में लागू किया जाता है। इसमें आय की गम्भीर भिन्नताएँ नहीं होतीं। संक्षेप में, इस व्यवस्था में पूँजीवाद के दोषों को दूर करने का प्रयास किया जाता है तथा सम्पत्ति का अधिक से अधिक साम्यिक वितरण (Equitable distribution) किया जाता है।

4 इसने निजी पूँजी का उन्मूलन कर सार्वजनिक कल्याण में वृद्धि की है

समाजवाद निजी पूँजी का उन्मूलन कर समाज को उससे उत्पन्न होने वाली बुराइयों से बचाता है। यह उत्पादन के मुख्य साधनों पर सार्वजनिक स्वामित्व चाहता है। भूमि और खानों का सामाजीकरण कर यह उनसे होने वाले लाभ को सामान्य कल्याण में खर्च करता है।

5 इसने श्रमिकों की दशा में सुधार किया है

समाजवाद ने उन लोगों को, जो वर्षों से दासता की जंजीरों में जकड़े हुए थे, जिन्हें निर्धनता, अज्ञानता, अनभिज्ञता घेरे हुए थी, मुक्ति दिलाई है। इसने न केवल उनकी स्वतन्त्रता को सुरक्षित किया है बल्कि उन्हें समानता का दर्जा भी दिया है।

6 इसने प्रतियोगिता के स्थान पर सहयोग पर बल दिया है

समाजवाद ने स्वतन्त्र प्रतियोगिता के स्थान पर सहयोग पर, निजी सम्पत्ति के स्थान पर सामाजिक सम्पत्ति पर, और उत्पादन में लाभ के स्थान पर सेवा की भावना पर अत्यधिक बल दिया है। सार्वजनिक कल्याण के लिए राज्य जो अनेक कार्य करता है वह समाजवादी विचारधारा के विकास का ही परिणाम है।

7 इसने प्रजातन्त्र को वास्तविक प्रजातन्त्र बनाया है

प्रजातन्त्र तब तक वास्तविक प्रजातन्त्र नहीं हो सकता जब तक नागरिकों को राजनीतिक स्वतन्त्रता के साथ आर्थिक स्वतन्त्रता प्रदान नहीं की जाती। समाजवाद ने समाजवादी नीतियों को अपना कर सर्वसाधारण को आर्थिक स्वतन्त्रता प्रदान करने का प्रयास किया है। यदि समाजवाद को "प्रजातन्त्र का आर्थिक पूरक" (Economic Complement) कहा जाय तो कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी।

समाजवाद के अवगुण
(Demerits of Socialism)

समाजवाद के जहाँ अनेक प्रशंसक हैं वहाँ इसके अनेक आलोचक भी हैं। इसे अव्यावहारिक, अमनोवैज्ञानिक कह कर इसकी आलोचना की गयी है। हर वेबल के शब्दों में, "समाजवाद वास्तव में दर्शन का एक पूरा संसार है। यह धर्म के क्षेत्र में नास्तिकता का, राज्य के क्षेत्र में जनतन्त्रात्मक गणराज्य का, उद्योग के क्षेत्र में औद्योगिक समष्टिवाद का, नैतिकता के क्षेत्र में एक अनन्त आशावाद का, अध्यात्मवाद के क्षेत्र में एक प्रकृतिवादी भौतिकवाद का तथा पारिवारिक क्षेत्र में पारिवारिक एवं वैवाहिक बन्धनों के लगभग पूर्ण अन्त का सूचक है।"[1]

समाजवाद की निम्न आधारों पर आलोचना की गयी है —

1 समाजवाद सर्वसत्तावाद की प्रथम सीढ़ी है

आलोचकों का कहना है कि प्रजातन्त्र और लोक कल्याण के नाम पर समाज

---

1 "Socialism is in reality an entire world of philosophy, in religion it means atheism in the state a democratic republic, in industry a popular collectivism, in ethics a measureless optimism, in metaphysics a naturalistic materialism, in the house an almost entire loosening of family ties and of marriage bond"

—*Bebble, Herr*

वाद राज्य के हाथो म अत्यधिक सत्ता का केन्द्रित कर देता है । सत्ता का यह केन्द्रीय-करण न केवल सवसत्तावादी प्रवृत्तियो को जन्म देता है बल्कि जो सत्ता का प्रयोग करते है उन्हे भी भ्रष्ट कर देती है । इससे प्रजातान्त्रिक प्रणालियो और व्यक्तियो की स्वतन्त्रता को सदैव खतरा बना रहता है ।

2 राज्य कमचारी नागरिक हितो के प्रति उदासीन होते हैं

समाजवादी व्यवस्था म यह मान लिया जाता है कि राज्य व्यक्तियो के हितो को समझता है । परन्तु वास्तविकता यह है कि राज्य कमचारी, जो राज्य शक्ति का प्रयोग करते हैं, लोगो की आकाक्षाओ और आवश्यकताओ को समझने मे न केवल असमथ होते है बल्कि वे उनके प्रति उदासीनता भी दिखाते हैं । व्यक्ति अपने आर्थिक हितो को स्वय अच्छी तरह समझता है । राज्य उनकी रक्षा कर सकता है उनका प्रतिनिधित्व नही ।

3 समाजवाद काय की प्रेरणा के तत्त्वो को नष्ट कर देता है

आलोचको का कहना है कि समाजवाद काय की प्रेरणा और उत्साह के स्रोतो को नष्ट कर देता है । काय की प्रेरणा का मुख्य स्रोत व्यक्तिगत लाभ होता है । मौलिकता और दक्षता अपनी श्रेष्ठता का पुरस्कार चाहती है । परन्तु जहा कुशलता अकुशलता के समान समझी जाती है अर्थात जहा बुद्धिमान, परिश्रमियो और मेहनतियो को आलसियो और अयोग्यो के समान समझा जाता है वहाँ प्रेरणा उदासीनता म और कुशलता अकुशलता म परिवर्तित हो जाती है । किसी न ठीक कहा है कि समाजवाद का परिणाम होगा "स्फूर्ति मे शिथिलता, साहस की समाप्ति, आविष्कार मे कमी उद्योग म स्थिरता और ये सब उन्नति और उत्पादन के लिए घातक है ।" सरकार नियमो या प्रतिबन्धो द्वारा नियन्त्रण तो रख सकती है पर सभी उद्योगो को स्वय सुचारु रूप से नही चला सकता ।

4 उत्पादन में अकुशलता एव कमी

राज्य कमचारियो की उदासीनता न केवल उत्पादन म कमी ला देती है बल्कि उत्पादन वस्तुओ के गुणो (quality) म भी कमी आ जाती है । जहाँ प्रतियोगिता समाप्त कर दी जाती है वहाँ वस्तुओ के गुणो म कमी होना स्वाभाविक है । समाजवाद भूल जाता है कि स्पर्धा काय की प्रेरणा का सर्वोत्तम साधन है और कला के विकास का सर्वोत्तम आधार है । इस तरह समाजवाद व्यक्ति को आलसी, अकमण्य और निष्क्रिय बनाता है ।

5 समाजवाद लाल फीताशाही और भ्रष्टाचार को बढ़ावा देता है

समाजवाद राज्य कमचारियो के महत्त्व को अनावश्यक और आश्चयजनक गति से बढ़ा देता है । जस जस राज्य के कार्यों म विस्तार होता है वस-वस राज्य कमचारियो क हाथो म शक्ति केन्द्रित होती जाती है । शक्ति के आ जाने से राज्य

कर्मचारी भ्रष्ट हो जाते हैं, कुनबापरस्ती, पक्षपात का बोलबाला हो जाता है। इस तरह नौकरशाही राज्य के अन्दर अपना नवीन साम्राज्य स्थापित कर लेती है।

6 समाजवाद मे चरित्र का पतन होता है

राज्य के कार्यों मे वृद्धि, प्रशासन मे भ्रष्टता और व्यवहार मे उदासीनता न केवल राज्य कर्मचारियो के चरित्र का पतन करते हैं बल्कि साधारण नागरिको के चरित्र पर भी इसका प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। इस तरह सामान्य चरित्र का अध पतन हो जाता है।

7 समाजवाद मे अपव्यय की अधिक सम्भावना है

समाजवादियो ने पूजीवादी व्यवस्था पर यह आरोप लगाया है कि इसमे विज्ञापनो और प्रचार पर अनावश्यक व्यय होता है। समाजवादी यह भूल जाते हैं कि पूजीपति 10 व्यक्तियो से जितना काम लेता है वहाँ सार्वजनिक व्यवस्था मे उसी काम को करने के लिए 40 50 व्यक्तियो की आवश्यकता होती है। पूजीवाद मे व्यक्तिगत जोखिम होता है। सार्वजनिक व्यवस्था मे व्यक्तिगत जोखिम नही होता। इस तरह समाजवादी व्यवस्था मे धन के अपव्यय की अधिक सम्भावना है।

8 समाजवाद भौतिकवादी एव अनैतिक सिद्धान्त है

समाजवाद केवल भौतिक सम्बन्धो पर बल देता है। धार्मिक, नैतिक या आध्यात्मिक सम्बन्धो पर वह बल नही देता। इस तरह समाजवादी उपयोगितावादी, अवसरवादी और भौतिकवादी होते है। इस व्यवस्था मे सत्य और न्याय के किसी शाश्वत नियम की अपील नही की जाती। डेविडसन का विचार है कि धनिको की जेबें काट कर निर्धनो की जेबें भरना अन्यायपूर्ण है। यह सामाजिक लूट है।

9 समाजवाद एक सकीर्ण विचारधारा है

समाजवाद मानव के केवल एक पहलू पर बल देता है। यह "जीविकोपार्जन" तक सीमित है। यह भूल जाता है कि जीवन मे "सुन्दरता" और "अच्छे जीवन" का अपना महत्वपूर्ण स्थान है। पेट पालना ही मानव का उद्देश्य नही। समाजवाद उन चीजो की व्याख्या नही करता जिनसे मानव मे सौन्दर्य वेदना (aesthetic sense) का विकास होता है।

10 समाजवादी व्यवस्था मे उपभोक्ता की कठिनाइया बढ सकती हैं

समाजवादी व्यवस्था मे राज्य ही उत्पादन, वितरण और विनिमय की मात्राओ को निर्धारित करता है। राज्य कर्मचारियो की उदासीनता, अकुशलता और भ्रष्टता के कारण उपभोक्ताओ को अनेक कठिनाइयो का सामना करना पड सकता है।

11 समाजवाद निजी सम्पत्ति के महत्त्व को समझने मे असफल हुआ है।

समाजवाद निजी सम्पत्ति का उन्मूलन चाहता है। परन्तु निजी सम्पत्ति को नष्ट करना मानो व्यक्ति की क्षमता, उसके उल्लास तथा उसकी कुशलता पर कुठारा

प्राप्त करना है। निजी सम्पत्ति क्रय करने की प्रेरणा है, उत्साह है। व्यक्ति का स्वाभाविक गुण यह है कि वह अपने पड़ोसी के समान बनना नहीं चाहता। वह उससे आगे बढ़ना चाहता है। निजी सम्पत्ति उसके विकास का प्रतीक है। निजी सम्पत्ति न केवल आत्म निर्भरता और स्वावलम्बन का आधार है बल्कि समाज में श्रेष्ठता और सम्मान का प्रतीक भी।

12 समाजवादी विचारधारा व्यापार के लिए सहायक नहीं

समाजवादी व्यापार को 'धोखा' कहते हैं। वे वर्तमान विनिमय की प्रणाली, नयी मण्डियों के लिए प्रतिस्पर्धा, विज्ञापन के लिए व्यय और व्यापारिक यात्राओं की आलोचना करते हैं। वे व्यापार के विस्तार के पक्ष में नहीं बल्कि वे उतना ही उत्पादन चाहते हैं जितना कि जीविकोपार्जन के लिए पर्याप्त हो। समाजवादी भूल जाते हैं कि समृद्धि और विकास के लिए प्रतियोगिता अनिवार्य है। प्रतियोगिता मानव का स्वाभाविक गुण है जिसका अन्त करना कठिन है।

13 समाजवाद मनोवैज्ञानिक दृष्टि से दोषपूर्ण है

समाजवाद समाज में समता लाने के लिए कटिबद्ध है। परन्तु मानव न तो बुद्धि में, न कार्यशीलता में, न क्षमता में और न आवश्यकता में समान है। जब मानव इन सब क्षेत्रों में असमान है तो समाज में कृत्रिम समानता पैदा करना न केवल हानिकारक है बल्कि अवांछनीय भी है।

14 समाजवाद व्यक्तिगत स्वतन्त्रता का हनन करता है

केन्द्रीय व्यवस्था समाजवाद का उद्देश्य है। परन्तु इस प्रकार की व्यवस्था से चाहे वह प्रजातान्त्रिक ही क्यों न हो व्यक्तियों की स्वतन्त्रता को सदैव खतरा बना रहता है। योजनायें, जो समाजवादी व्यवस्था की आधारशिलायें हैं, व्यक्ति के जीवन के प्रत्येक क्षेत्र पर प्रभावी होती हैं। प्रो० लीकाक ने ठीक कहा है कि 'समाजवाद में स्वतन्त्रता का अपहरण होता है।'

15 समाजवाद पारिवारिक जीवन पर भी प्रहार करता है

यद्यपि समाजवाद विवाह की प्रथा से प्रत्यक्ष रूप से सम्बन्धित नहीं फिर भी कुछ समाजवादी लेखक ऐसे हैं जिनका विश्वास है कि विवाह की प्रथा और पारिवारिक जीवन पूंजीवाद की ओर ले जाती है। इसलिए वे इन संस्थाओं को नष्ट करना चाहते हैं। हरी क्वेल्च ने शब्दों में "मैं विवाह का उन्मूलन चाहता हूँ। हम किसी प्रकार का बन्धन नहीं चाहते। हम उन्मुक्त प्रेम में विश्वास करते हैं।"[1] जी० इविल

---

1 'I want to abolish marriage. We want no bonds. We want free love.'
—Quelch Herry

(G Deville) के शब्दो मे, 'विवाह सम्पत्ति को नियमित करना है। वह स्त्री पुरुष के सम्मिलन से अधिक एक व्यापारिक समझौता है।"

16 समाजवाद धर्म विरोधी है

समाजवाद धर्म को पूजीवाद का मित्र मानता है। उसके लिए धर्म प्रतिक्रियावादी शक्ति है। मार्क्स ने तो धर्म को अफीम कह कर निन्दित किया है। हो सकता है कि धर्म ने अन्धविश्वास और भाग्यवादिता को जन्म दिया हो परन्तु जीवन मे धार्मिक मूल्यो की उपेक्षा करना गलत है। धर्म अनेक मानवीय मूल्यो का स्रोत है, नैतिकता का आधार है।

17 श्रम ही उत्पादन का स्रोत नहीं

समाजवाद श्रम को उत्पादन का स्रोत मानता है। परन्तु वास्तविकता यह नही है। उत्पादन के लिए जहा श्रम की आवश्यकता है वहा उन यन्त्रो की आवश्यकता भी है जिन पर श्रम किया जा सकता है। उस प्रबन्ध (management) की भी आवश्यकता है जिसके माध्यम से उत्पादित वस्तुओ को मण्डियो मे बेचा जा सके।

18 समाजवाद की ऐतिहासिक व्याख्या एक तरफा है

समाजवादी इतिहास की भौतिकवादी व्याख्या करते हैं। इस बात से कोई इन्कार नही करता कि आर्थिक तत्त्व महत्त्वपूर्ण तत्त्व है परन्तु यह कहना कि आर्थिक तत्त्व ही सब संस्थाओ और क्रियाओ का नियमन करता है गलत है। इतिहास विरोधी वर्गों के संघर्ष की कहानी मात्र नही। मानव मे जहा लाभ वृत्ति विद्यमान है वहा उसमे सेवा, त्याग, बलिदान, प्रेम, सहयोग, इत्यादि की भावनायें भी विद्यमान हैं।

19 राष्ट्रीय लाभो को वितरित करने का समाजवादियो के पास कोई निश्चित आधार नहीं

समाजवादी सभी को श्रमिक बनाना चाहते हैं। परन्तु उन्होने यह बताने का प्रयास नही किया कि राष्ट्रीय लाभो (national dividends) को किस आधार पर बाटा जाय। कुछ का कहना है कि सबको समान वेतन मिलने चाहिए। परन्तु न्याय की यह माग है कि बुद्धिजीवियो और कुशल व्यक्तियो को उनकी योग्यता और क्षमता के आधार पर पारितोषिक मिले अन्यथा आलसियो और अकुशल व्यक्तियो की संख्या मे वृद्धि होगी। कुछ का कहना है कि सभी को उनकी आवश्यकतानुसार मिलना चाहिए परन्तु आवश्यकता का सही मूल्याकन करना कठिन है। कुछ का कहना है कि वेतन योग्यतानुसार दिया जाय परन्तु इससे समाजवादियो का समता का भवन गिर जाता है। वास्तविकता यह है कि वेतन (payment) का प्रश्न इतना सरल नही जितना कि समाजवादी समझते हैं।

20 समाजवाद यथार्थता से दूर है

समाजवाद अधिक प्रचारात्मक है। समाज के जिस रूप का चित्रण समाजवाद करता है वह यथार्थवाद से दूर है। पूजीवाद का भी जो चित्रण समाजवाद

करता है वह अनिशयाक्तिपूण है। समाजवाद भूल जाता है कि पूजीवाद म अत्यधिक मात्रा मे लचीलापन है जा समाजवाद म नही। पूजीवादी राष्ट्रो ने जिस सीमा तक मजदूरो की दशा को सुधारा है उतना तो समाजवादी राष्ट्रा ने भी नही किया।

21 समाजवाद की असफलता

यद्यपि रूस, चीन तथा अय कुछ राज्या मे समाजवादी व्यवस्था सफल होती नजर आती है परतु इन राष्ट्रा म जिस कीमत पर—मानवीय स्वतन्त्रताओ का दमन करके—समाजवादी व्यवस्था को सफल बनाने का प्रयास किया गया है वह अमानवीय है। इसके अतिरिक्त अनेक दाशनिको के समाजवादी प्रयास असफल हुए हैं जैसे काल्प निक समाजवादियो—सत साइमन, फोरियर, और ओवन—के समाजवादी व्यवस्था को सफल बनाने के प्रयास असफल हुए। आस्ट्रिया, स्वीडन, चकोस्लोवाकिया और डैनमाक म समाजवादी प्रयास असफल हुए है।

"व्यक्तिवाद का केन्द्र बिन्दु स्वतन्त्रता है
समाजवाद का केन्द्र बिन्दु समानता है।"
("The keynote of Individualism is liberty,
the keynote of Socialism is equality")

व्यक्तिवाद और समाजवाद दोनो व्यक्ति के कल्याण और उसके विकास से सम्बन्धित विचारधाराएँ है। दोनो सिद्धान्तो मे विधियो और साधनो म भिनता होते हुए भी वे एक दूसरे के पूरक हैं। व्यक्ति को स्वतन्त्रता और समानता दोनो की आवश्यकता है। उसका विकास तभी सम्भव है जब उसे स्वतन्त्रता और समानता समुचित रूप स प्राप्त हो। स्वतन्त्रता के अभाव मे व्यक्ति जहा पशु बन जाता है वहाँ समानता के अभाव म स्वतन्त्रता केवल दिखावा मात्र या खोखली बन कर रह जाती है। यदि व्यक्तियो से समाज बनता है तो समाज से ही व्यक्तियो का महत्त्व है। दोना एक दूसरे पर अन्योन्याश्रित होने से एक दूसरे के पूरक है।

व्यक्तिवाद और समाजवाद म एक मुख्य भिनता भी है। वह यह है कि व्यक्तिवाद व्यक्ति के विकास और कल्याण के लिए उसके कार्यों म पूण या निरपेक्ष स्वतन्त्रता का प्रतिपादन करता है। व्यक्ति के कार्यों म व्यक्तिवाद तभी हस्तक्षेप स्वीकार करता है जब उसके कार्यों का प्रभाव दूसरो पर प्रतिकूल पड़ता है। दूसरी और समाजवाद मानव के सामाजिक पहलू पर अत्यधिक बल देता है। वह उसे केवल मर्यादित स्वतन्त्रतायें देना चाहता है। वह स्वतन्त्रता की अपेक्षा मानव समानता पर अत्यधिक बल देता है। इसी कारण स्वतन्त्रता को व्यक्तिवाद का केन्द्र बिन्दु और समानता को समाजवाद का केन्द्र बिन्दु कहा जाता है।

स्वतन्त्रता व्यक्तिवाद का केन्द्र बिन्दु है

व्यक्तिवाद का अथ है यथेच्छाकारिता (laissez faire—अहस्तक्षेप) अर्थात व्यक्ति का अकेला छोड दो क्योंकि वह अपने निजी हितो का सर्वोत्तम सरक्षक है।

उसे अपनी इच्छानुसार कार्य करने की स्वतन्त्रता होनी चाहिए। राज्य को उसके कार्यों मे हस्तक्षेप नही करना चाहिए। फ्रीमेन के शब्दो मे, "शासन का सर्वोत्तम रूप शासन का अभाव है। किसी भी रूप मे शासन का अस्तित्व मानव की अपूर्णता का सूचक है।"[1]

व्यक्तिवाद राज्य को एक आवश्यक बुराई मानता है। राज्य आवश्यक इस लिए है कि व्यक्ति अपूर्ण है। उसमे अपराध की भावना है। उसमे अतिक्रमण की प्रवृत्ति है। वह स्वार्थी और लालची है। इन समाज विरोधी या ऐसी ही प्रवृत्तियो को नियन्त्रित करने के लिए व्यक्तिवादी राज्य की आवश्यकता समझते है। जसाकि विलोबी ने लिखा है कि "मानव स्वभाव की दुर्बलताओ के लिए ही राज्य सत्ता की आवश्यकता है"। स्पन्सर का भी यही विश्वास है कि "राज्य की सत्ता इसलिए आवश्यक है कि समाज मे अपराध की भावना विद्यमान है।" दूसरी ओर, व्यक्ति वादी राज्य को बुराई मानते हैं। उनकी धारणा है कि प्रत्येक कानून या नियम जो राज्य द्वारा बनाया जाता है वह प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से व्यक्ति की स्वतन्त्रता का मर्यादित करता है। प्रतिबन्ध के अभाव को व्यक्तिवादी स्वतन्त्रता कहते हैं। उनके लिए राज्य और स्वतन्त्रता परस्पर विरोधी हैं।

व्यक्तिवादी राज्य को केवल पुलिस कार्य (police functions) ही सौपना चाहते हैं अर्थात् वे राज्य के कार्यों को सीमित रखना चाहते हैं। वे राज्य को केवल बाह्य आक्रमण से सुरक्षा और आन्तरिक व्यवस्था सम्बन्धी कार्य सौंपना चाहते हैं। इससे अधिक व राज्य के कार्य क्षेत्र को नही बढाना चाहते। स्पन्सर के शब्दो मे, राज्य पारस्परिक आश्वासन के लिए सयुक्त सुरक्षा कम्पनी है मैं केवल सुरक्षा के लिए राज्य के साथ बीमा करता हूँ, किसी अन्य चीज के लिए नही"। एक अन्य स्थान पर स्पेन्सर लिखता है कि "राज्य का मुख्य कर्तव्य रक्षा करना तथा मर्यादित करना है न कि पोषण करना और समुन्नत करना।"

व्यक्तिवादियो ने, विशेषकर जे० एस० मिल ने, व्यक्ति के कार्यों का दो भागो मे बाटा है। एक व कार्य हैं जिनका प्रभाव मानव तक सीमित है और दूसरे वे जिनका प्रभाव समाज के अन्य सदस्यो पर पडता है। व्यक्तिवादियो का कहना है कि राज्य को तभी हस्तक्षेप करना चाहिए जब व्यक्तियो के कार्यों का प्रभाव दूसरो पर प्रतिकूल पडे अन्यथा उसे व्यक्ति को अकेला छोड देना चाहिए। मिल लिखता है कि 'सभ्य समाज के किसी सदस्य पर उसकी इच्छा के विरुद्ध सत्ता का समुचित प्रयोग केवल एक ही उद्देश्य से किया जा सकता है और वह है दूसरो को हानि से बचाना।"

---

1 The ideal form of government is no government at all the existence of government in any shape is a sign of man s imperfection
—*Freeman.*

इस तरह व्यक्तिवादी मानव के ऐसे ही आचरण म हस्तक्षेप करने की आज्ञा देते हैं जहाँ उस आचरण का प्रभाव दूसरा पर वास्तविक, प्रत्यक्ष और विपरीत पडता हो।

अनेक क्षेत्रो म व्यक्तिवादी व्यक्ति को पुण या अबाध या निरपेक्ष स्वतन्त्रता देने के पक्ष म हैं। विशेषकर विचारो के क्षेत्र म, आर्थिक प्रतियोगिता के क्षेत्र म और काय के क्षेत्र मे व्यक्तिवादी व्यक्ति का अकेला छोडना चाहते हैं।

विचारो की स्वतन्त्रता के बारे म मिल लिखता है कि "यदि सम्पूण समाज एक विचार का है और केवल एक व्यक्ति ही विरोधी विचारधारा का है तो मानव जाति के लिए उसे शान्त रखना उसी प्रकार न्याय सगत नही होगा जिस प्रकार यदि वह व्यक्ति शक्ति सम्पन्न होने पर दूसरे व्यक्तिया को चुप करा दे।" मिल की धारणा है कि किसी विचार का आरम्भ म ही दमन करना चाहे वह कानूनी दण्ड द्वारा किया गया हो या जनता द्वारा निन्दित करके किया गया हो, सत्य का गला घोटना है। उसका विश्वास है कि विरोधी विचारधारा ही सत्य की परख है। विरोधी विचारधारा ही सत्य की गहराई तक पहुँचा सकती है। मिल कहता है कि यह आवश्यक नही कि परम्परागत या सवमान्य विचार अवश्य ही सत्य हो, वे असत्य भी हो सकते है। सरकार, बहुमत और सामाजिक कुलीनतन्त्र निर्भ्रान्त (infalli-ble) नही होते। यह भी सम्भव है कि आज कुछ भक्की ऐसे विचारा को मानते हैं जिन्हे आने वाली सन्तानें ठीक समझें और उनका अनुसरण करें।

व्यक्तिवादी प्रतिबन्ध की नीति को व्यक्ति और समाज दोनो के लिए हानि-कारक मानते हैं। प्रतिबन्ध या हस्तक्षेप से व्यक्ति की योग्यताओ का दमन होता है, अन्त प्रेरणा और आत्मनिभरता नष्ट होती है, काय करने की प्रवृत्ति, स्वावलम्बन तथा निणय करने की शक्ति का ह्रास होता है, उत्तरदायित्व की भावना निवल होती है, चरित्र पगु बन जाता है, व्यक्ति निरुद्यमी और आलसी बन जाता है। सक्षेप म, हस्तक्षेप की नीति से व्यक्ति का विकास रुक जाता है।

व्यक्तिवादी आर्थिक क्षेत्र मे भी व्यक्ति को स्वतन्त्रता देने के पक्ष म हैं। उनका विश्वास है कि अन्तराष्ट्रीय व्यापार म वृद्धि स्वतन्त्र प्रतियोगिता पर आधारित है। एडम स्मिथ के शब्दो म "वाणिज्य और उद्योग यदि निजी साहसिक उपक्रम (आरम्भन) पर छोडे जाएँ तो अधिक समृद्ध होते हैं। उसका विश्वास था कि स्वतन्त्र प्रतियो-गिता से व्यक्ति क्रियाशील बनते हैं, समाज की प्रगति होती है, उत्पादन म वृद्धि होती है, मूल्य स्वत नियमित होते है, पूजी और श्रम की स्वतन्त्र गति को प्रोत्साहन मिलता है। व्यक्तिवादियो का विश्वास है कि राज्य के नियमन द्वारा अयोग्य और आलसी व्यक्तियो को बढावा मिलता है उनका निष्कासन नही होता। इससे योग्य व्यक्तियो पर बोझ पडता है।

व्यक्तिवादी व्यक्ति को काय की पूण स्वतन्त्रता देना चाहते हैं। उनकी

धारणा है कि राज्य को कभी भी व्यक्ति के कार्यों को निर्धारित नहीं करना चाहिए। धाय अर्थात व्यवसाय की स्वतन्त्रता कुशलता और दक्षता के लिए अनिवाय है।

समानता समाजवाद का केन्द्र बिन्दु है

समाजवाद की विचारधारा व्यक्तिवाद से भिन्न है। वह व्यक्ति के हितो की सुरक्षा के साधनो को जुटाते हुए भी समाज के हितो पर अत्यधिक बल देता है। उसकी धारणा है कि व्यक्ति सामाजिक प्राणी है और समाज के हित और कल्याण मे ही व्यक्ति के हित और कल्याण का समावेश है। समाज से अतिरिक्त या समाज के विरुद्ध या समाज से बाहर व्यक्ति का कोई हित नही। समाजवाद व्यक्तिवाद की तरह व्यक्ति को अबाध या निरपेक्ष स्वतन्त्रता प्रदान नही करता। वह उसे केवल सामाजिक स्वतन्त्रताएँ ही प्रदान करता है।

समाज मे समता लाने के लिए समाजवाद निम्न उपायो, साधनो या नीतियो का पालन करता है —

(1) समाजवाद सभी की समानता पर बल देता है। वह पूजी, धम, वश, जाति, लिंग आदि आधारो पर किसी प्रकार की भिन्नता नही करता। उसकी दृष्टि मे बडे छोटे, ऊँच-नीच, अमीर गरीब, समान है।

(2) समाजवाद प्रत्येक व्यक्ति को विकास के समान अवसर प्रदान करना चाहता है। उसकी धारणा है कि यदि किसी व्यक्ति का विकास असहाय परिस्थितियो के कारण रुक जाता है तो उससे समाज की हानि होती है। इसलिए समाजवाद अवसर की समानता सबको देना चाहता है।

(3) समाजवाद आर्थिक शोषण के विरुद्ध है। वह समाज म विद्यमान शोषण की प्रणालियो—लाभ, ब्याज और भाडा – को समाप्त कर देना चाहता है ताकि सबको विकास के अवसर समान प्राप्त हो सकें।

(4) समाजवाद निजी सम्पत्ति का विरोधी है। लाभो को सार्वजनिक कल्याणकारी कार्यो मे लगाने हेतु समाजवाद भूमि और उद्योगो पर सार्वजनिक स्वामित्व चाहता है। समाजवाद उत्पादन वितरण और विनिमय की समुचित व्यवस्था चाहता है।

(5) समाजवाद के समता के सिद्धान्त से यह अभिप्राय नही कि प्रत्यक को समान वेतन प्राप्त होगे। यह न तो सम्भव है और न ही विकास, कुशलता, निपुणता, दक्षता और प्रोत्साहन व प्रेरणा के लिए वाछनीय है। परन्तु समाजवाद वेतनो की गम्भीर भिन्नताओ का अवश्य समाप्त करना चाहता है। वह वेतनो मे इतनी अधिक भिन्नता नही चाहता कि इन भिन्नताओ के कारण कोई किसी का शोषण कर सके। समाजवाद राष्ट्रीय वेतन की न्यूनतम दरो को निश्चित करना चाहता है। समाजवाद आर्थिक प्रजातन्त्र द्वारा राजनीतिक प्रजातन्त्र को वास्तविक बनाना चाहता है।

(6) समाजवादी राज्य को आवश्यक बुराई नही मानते । उनके लिए राज्य एक धनात्मक अच्छाई (positive good) है वे राज्य के काय क्षेत्र को व्यक्तिवादियो की भाँति सीमित नही करना चाहत । वे राज्य को केवल पुलिस काय नही सौपते । समाजवादी तो राज्य के काय क्षेत्र का विस्तार चाहते है । उनका विश्वास है कि राज्य का काय न कवल सुरक्षा और व्यवस्था बनाय रखना है बल्कि पोषण और सगुन्नत करना भी है ।

समाजवादी राज्य को जनता का प्रतिनिधि एव सरक्षक, अभिभावक एव व्यावसायिक प्रबन्धकर्त्ता, सचिव एव साहूकार मानते हैं । उनके लिए राज्य व्यक्ति का विरोधी नहीं बल्कि रक्षक और अभिभावक है । राज्य ही कानूनो द्वारा आर्थिक शोषण को दूर करन का प्रयास करता है, सामाजिक विषमताओ को दूर करता है और राजनीतिक स्थिरता उत्पन्न करता है ।

समाजवादियो की धारणा है कि नियन्त्रण म ही वास्तविक स्वतन्त्रता सम्भव है । नियन्त्रण के अभाव म स्वतन्त्रता वास्तविक नही रहती । अनियन्त्रित स्वतन्त्रता उच्छृखलता बन जाती है । कानून या नियम स्वतन्त्रता के विरोधी नही बल्कि उसके सरक्षक हैं । कानून उन्ही स्वतन्त्रताओ को प्रदान करते हैं जो प्रदान करने योग्य और उपभोग करन योग्य हैं । उच्छृखल स्वतन्त्रताओ पर नियन्त्रण रखना स्वतन्त्रता की रक्षा करना है विरोध करना नही । लास्की के शब्दो म, "ऐतिहासिक अनुभव ने हमारे लिये ऐसे नियम बना दिये हैं कि जो समुचित जीवन की सुविधा देत हैं । उनको पालन करने के लिए विवश करना मनुष्य को परतन्त्र करना नही है । जब भी आचार व्यवहार के ऐसे मार्गों को जो सामान्य हित म न हो प्रतिबन्धित करना आवश्यक हो जाय तो उनका स्वच्छन्द काय क्षेत्र से हटाया जाना स्वतन्त्रता पर आक्रमण नही समझा जाना चाहिए ।"

उपर्युक्त वणन से स्पष्ट है कि व्यक्तिवाद का केन्द्र बिन्दु स्वतन्त्रता और समाजवाद का केन्द्र बिन्दु समानता है ।

EXERCISES

1 समाजवाद से आप क्या समझते है ? समाजवाद के पक्ष तथा विपक्ष म दी जान वाली युक्तियो का उल्लेख कीजिये ।

2 समाजवाद पर सक्षिप्त टिप्पणी लिखिये ।

3 समाजवाद की व्याख्या करन म जो कठिनाइया आती हैं उनका उल्लेख कीजिये ।

4 "समाजवाद का उद्देश्य व्यक्तिगत हित के स्थान पर सामाजिक सेवा की भावना है" विवचना कीजिए ।

5 'एक आर्थिक तथा राजनीतिक सिद्धान्त के रूप म समाजवाद की उत्पत्ति पूजीवाद के दुर्गुणो का विरोध करने के लिए हुई ।" समाजवाद दशन की

क्रान्तिकारी तथा विकासवादी श्रेणियो का अन्तर स्पष्ट करते हुए इस कथन की व्याख्या कीजिये।

6 समाजवाद के उद्देश्यो की व्याख्या कीजिए।

7 यह कहना कहा तक सत्य है कि समाजवाद प्रजातन्त्रात्मक सिद्धान्त का आर्थिक जीवन मे प्रयोग है।

8 इस कथन की व्याख्या कीजिये कि "समाजवाद उस टोप की भाति है जिसने अपनी आकृति को खो दिया है क्योकि प्रत्येक व्यक्ति उसे पहनता है।"

9 'समाजवाद मनुष्य को आर्थिक चिन्ताओ से मुक्त करना चाहता है जिससे वह इच्छानुसार जीवन व्यतीत कर सके तथा स्वतन्त्रतापूर्वक अपने व्यक्तित्व का विकास कर सके।" (जोड) इस कथन की विवेचना कीजिए।

10 "समाजवादियो तथा व्यक्तिवादियो के उद्देश्य अन्ततोगत्वा एक दूसरे से भिन्न नही। प्रत्येक व्यक्ति को अधिक से अधिक स्वतन्त्रता देना चाहता है।" (जोड) इस कथन की व्याख्या कीजिए और बताइये कि इन दोनो मे कहा पर अन्तर है?

11 राज्य के कर्तव्यो को बढाने के पक्ष मे समाजवादी सिद्धान्त की विवेचना कीजिए।

12 'जहा व्यक्तिवाद स्वतन्त्रता पर बल देता है वहा समाजवाद समानता पर।" इस कथन की व्याख्या कीजिए।

13 इस कथन की व्याख्या कीजिए कि "व्यक्तिवाद का केन्द्र बिन्दु स्वतन्त्रता है तथा समाजवाद का समानता।"

14 व्यक्तिवाद मूल रूप से व्यक्तिगत हित पर आधारित है, समाजवाद का आधार सामाजिक हित है। विवेचना कीजिये।

2 कल्पनावादी या स्वप्नलोकीय समाजवाद
(Utopian Socialism)

कल्पनावाद का अर्थ
(Meaning of Utopianism)

काल्पनिक या आदर्शवादी सिद्धान्त उसे कहते हैं जो वर्तमान समाज की अपूर्णताओं को दूर करने के लिए किसी पूर्ण सामाजिक व्यवस्था की कल्पना करता है। इस सिद्धान्त पर आधारित व्यवस्था वास्तविक या यथार्थ नहीं होती। यह तो विचारक की कल्पनाओं या भावनाओं में निवास करती है। विचारक आदर्श या काल्पनिक समाज को विचारों में स्थापित कर सामाजिक ढांचे को उस पर आधारित करना चाहता है। उसका विषय सदैव वर्तमान समाज के दोष होता है। इसलिए वह मानव की बुद्धि, विवेक तथा न्याय और नैतिकता को अपील कर सामाजिक अपूर्णताओं को दूर करना चाहता है।

राजनीतिक चिन्तन के इतिहास में काल्पनिक या आदर्श सामाजिक व्यवस्था के अनेक उदाहरण मिलते हैं। प्लेटो ने एथेन्स (Athens) में पाये जाने वाले भयकर वर्ग संघर्ष और राजनीतिक स्वार्थपूर्ण आचरण को दूर करने के लिए अपनी रचना रिपब्लिक (Republic) में आदर्श राज्य और दार्शनिक राजा की कल्पना की। टामस मूर ने इंगलैण्ड की दरिद्रता और जन संकट को दूर करने के लिए अपनी रचना यूटोपिया (Utopia) में ऐसी सामाजिक व्यवस्था की कल्पना की जिसमें सभी चीजें सामान्य थीं और प्रत्येक व्यक्ति सुखी एवं प्रसन्न था।

काल्पनिक सामाजिक व्यवस्थाएँ बहुधा दिखावटी, हवाई घोड़े एवं साकार न होने वाली व्यवस्थाएँ होती हैं। फिर भी राजनीतिक चिन्तन में उनका विशेष महत्त्व होता है। वे समाज का ध्यान सामाजिक बुराइयों, विषमताओं, असमानताओं, आदि की ओर आकर्षित करती है तथा इनको दूर करने में सहायक सिद्ध होती हैं। वे *समाज की न्यायिक भावना, विवेक तथा बुद्धि को जाग्रत करती हैं। वे समाज के समक्ष* एक उद्देश्य रखती हैं जिसकी प्राप्ति समाज का लक्ष्य बन जाता है।

कल्पनावादी समाजवाद शब्द का प्रयोग
(Use of the Word Utopian Socialism)

कल्पनावादी समाजवादी शब्द का प्रयोग इगलैण्ड के राबर्ट ओवन (Robert Owen), फ्रास के इतिएँ केबेट (Etienne Cabet), काउण्ट हेनरी द सेंट साइमन (Count Henri de Saint Simon) और चार्ल्स फोरियर (Charles Fourier) की विचारधाराओ के लिए किया जाता है। कार्ल मार्क्स ने इन लेखकों के समाजवादी विचारो को घृणात्मक स्वर मे कल्पनावादी, स्वप्नलोकीय, आदर्शवादी कह कर निन्दित किया था और अपने समाजवाद को, जिसकी व्याख्या उसने ऐतिहासिक आधार पर तथा आर्थिक विश्लेषण द्वारा की, वैज्ञानिक समाजवाद कह कर पुकारा। उसने इन लेखको को काल्पनिक समाजवादी इसलिए कहा था कि उनकी समाज का पुनर्गठित करने की योजनाएँ ठोस नहीं थी और न ही उन्होने सामाजिक अवस्थाओ का विश्लेषण वैज्ञानिक ढग से किया था। वे व्यक्ति की अच्छी प्रकृति, बुद्धि, सद्भावना और विवेक मे विश्वास करते थे। उनकी धारणा थी कि समाजवाद स्वेच्छा मे स्थापित हो सकता है।

कल्पनावादी समाजवादियो का अस्तित्व विश्व मे समाप्त हो चुका है। उनके द्वारा प्रतिपादित सामाजिक पुनर्गठन की योजनाओ मे अब कोई रुचि नही लेता। फिर भी राजनीतिक चिन्तन के इतिहास मे समाजवाद के इन सन्देश वाहको (Fore runners) की पूर्णतया उपेक्षा भी नही की जा सकती। अठारहवी और उन्नीसवी शताब्दी के बीच की वे आवश्यक कडी है।

कल्पनावादी समाजवाद की विशेषताएँ
(Features of Utopian Socialism)

यद्यपि कल्पनावादी समाजवादियो की समाज को पुनर्गठित करने की योजनाएँ भिन्न भिन्न थी परन्तु फिर भी उन सबमे कुछ सामान्य तत्त्व विद्यमान थे जिन्हे कल्पनावादी समाजवाद की विशेषताएँ कहा जा सकता है। ये विशेषताएँ मुख्य रूप से निम्न हैं —

1 निर्धनता सामाजिक बुराइयो की जड है

कल्पनावादी समाजवादियो की धारणा है कि निर्धनता समाज मे विद्यमान बुराइयो की मुख्य जड है। इसलिये वे निर्धनता को समाप्त कर गरीबो की दशा सुधारना चाहते है। परन्तु उन्होने अपनी योजनाओ मे श्रमिक वर्ग का नाम नही जोडा जैसा कि बाद मे मार्क्स ने जोडा था। वे तो समाज के सभी निर्धन वर्गों की दशा सुधारना चाहते हैं। सर्वोदय की भाति वे सबका उत्थान चाहते है। वे पूंजीपति का नैतिक दृष्टि से और निर्धन का आर्थिक दृष्टि से उत्थान चाहते है। वे सबके हित और कल्याण मे समाज का पुनर्गठन चाहते है।

2 निजी सम्पत्ति का उन्मूलन चाहते हैं

कल्पनावादी समाजवादी निजी सम्पत्ति को निधनता, शोषण, अन्याय और अनैतिकता का कारण मानते है। उनका विश्वास है कि जहाँ निजी सम्पत्ति कुछ के लिए विलास और बिना श्रम के जीवन की सुख सुविधाएँ उपलब्ध करती है वहाँ बहुसंख्यक लोगो के लिए दुख, पीड़ा और क्लेश को जन्म देती है। उनकी यह भी धारणा है कि निजी सम्पत्ति धनवान लोगो को विशेषाधिकार प्रदान करती है। इसलिए कल्पनावादी समाजवादी सम्पत्ति का सामाजीकरण चाहते हैं।

3 पूँजीवाद अनुचित एव अन्यायिक है

कल्पनावादी समाजवादी पूँजीवाद को अनुचित एव अन्यायिक मानते हैं। उनकी धारणा है कि पूँजीवाद का अनिवार्य परिणाम मानव का अध पतन और निधनता है। व इसे शोषण की प्रतिमूर्ति (embodiment) मानते है। उनका विश्वास है कि पूँजीवाद श्रमिक को पण्य (Commodity) म परिवर्तित कर देता है जिसे बाजार मे अन्य पण्यो की भाति खरीदा और बेचा जाता है। इस व्यवस्था से श्रमिक जीवन की अनिवार्य आवश्यकताओ से वचित रह जाते है, धन का असमान और असाम्यिक (inequitable) बँटवारा होता है। वे पूँजीवाद की लाभ वृत्ति को हिंसा और धोखा समझते है जिसके द्वारा पूँजीपति श्रमिक को अपने श्रम के उत्पादन से (पारितोषिक से) वचित रखता है। वे पूँजीवाद के स्थान पर ऐसी प्रणाली की व्यवस्था चाहते हैं जिसमे सभी क्षमता के अनुसार काय करें और श्रम के अनुसार पारितोषिक प्राप्त करें।

4 क्रान्तिकारी साधनो में विश्वास नहीं करते

कल्पनावादी समाजवादी न तो क्रान्तिकारी और न ही राजनीतिक काय क्रम का सहारा लेना चाहते हैं। वे हिंसा के तो पूणतया विरोधी हैं। व शिक्षा प्रसार, व्याख्यान और भाषण द्वारा समाज म न्याय की भावना तथा विवेक को जाग्रत करना चाहते है। ओवेन के लिए तो ज्ञान सद्गुण (virtue) और अज्ञान अवगुण तथा कलुष है। इनकी प्रेरणा शक्ति नतिकता की है दमन की नहीं। इस तरह य विचारक मानव विवेक को जाग्रत कर सुधार लाना चाहते है।

5 मानव की अच्छाई मे उनका अटल विश्वास है

कल्पनावादी समाजवादी मानव स्वभाव को मूलत अच्छा समझते हैं। उनके लिए ईश्वर अच्छाई है और उसने अच्छाई के लिए तथा मानव प्रसन्नता के लिए मानव को विश्व मे पैदा किया है। उनकी धारणा है कि दुख अथवा अप्रसन्नता मानव के लालच, स्वार्थ और प्रतियोगिता का परिणाम हैं। व इन स्वार्थी तत्त्वो को दूर करने के पक्ष म है।

6 स्वेच्छा से समाजवाद लाना चाहते हैं

कल्पनावादी समाजवादी ऐच्छिक समाजवादी है। उनकी धारणा है कि

समाजवाद ऐच्छिक साधनो से ही स्थापित किया जा सकता है। वे अनच्छिक को विवेक, अनुनय और शिक्षा द्वारा परिवर्तित करना चाहते हैं। उन्होने विशिष्ट समाजो अथवा समुदायो की स्थापना भी की ताकि सामाजिक न्याय के सिद्धान्तो, परोप कारिता आदि नैतिक नियमो की स्थापना की जा सके। उनकी धारणा है कि शनै शनै पूरा समाज इन समुदायो के विचारो और आदर्शो को ग्रहण कर लेगा। परन्तु ये विशिष्ट समाज अथवा सहकारी समुदाय (Cooperative Association) या प्रयोगात्मक लोक समाज (Experimental Communities) अपने उद्देश्यो म असफल हुए। परन्तु असफल होने पर भी उनका सहकारिता (Cooperative) का सिद्धान्त आज के समाजवाद म, विशेषकर फेबियन समाजवाद और समष्टिवाद मे विद्यमान है। ईसाई समाजवाद का सिद्धान्त भी सहकारिता है।

7 प्रतियोगिता के स्थान पर 'सहयोग' पर बल देते हैं

कल्पनावादी समाजवादी स्वतन्त्र प्रतियोगिता पर आधारित अर्थ व्यवस्था के विरोधी हैं। वे इस धारणा के भी विरोधी हैं कि सरकार यथेच्छाकारिता की नीति अपनाकर जनहित मे सर्वाधिक वृद्धि कर सकती है। उन्होने मानवीय सम्बन्धो मे सामाजिक तत्त्व पर अत्यधिक बल दिया और "सहयोग" की भावना का विकास करना चाहा। वे राजनीतिक और राजनीतिज्ञ शब्दो म विश्वास नही करते। सामाजिक सम्बन्धो का नियन्त्रण वे मन्त्रियो के स्थान पर उत्पादको के हाथो मे रखना चाहते हैं।

8 उनकी विचारधारा में सर्वहारा या वर्ग संघर्ष का उल्लेख नहीं

कल्पनावादी समाजवादी विचारको के विचारो की एक विशेषता यह है कि उन्होने अपनी विचारधारा म 'सर्वहारा' या 'वर्ग संघर्ष' शब्दो का प्रयोग नही किया। वे मार्क्स की भाति सम्पत्ति के असमान वितरण, श्रमिको के शोषण तथा समाज मे विद्यमान अन्य बुराइयो को पूँजीवाद म नही ढूँढते बल्कि कुलीनतन्त्र के विशेषा धिकारो मे ढूँढते थे।

जी० डी० एच० कोल का विश्वास है कि "समाजवाद" और "समाजवादी" शब्दो का प्रयोग (जिनका प्रयोग सर्वप्रथम ओवेन ने किया) अवश्य नवीन था परन्तु जिन विचारो का व अभिव्यक्त करते थे वे नवीन नही थे। कोल के शब्दो मे, 'व्यक्ति के अधिकारो के स्थान पर समाज के अधिकारो पर बल देना कोई नवीन बात नही थी, सामाजिक असमानताओ या धनिको द्वारा निर्धनो के शोषण की निन्दा करना कोई नवीन बात नही थी, नागरिको को सामाजिक आचार की शिक्षा देने की आवश्यकता पर बल देना कोइ नवीन बात नही थी। सम्पत्ति के सामाजीकरण की बात भी नवीन नही थी। कल्पनावादी समाजवादी सिद्धान्तो की रचना करने मे अथवा समस्त व्यक्तियो के लिए आर्थिक, नागरिक और राजनीतिक अधिकारो की माग करने मे निश्चित रूप से कोई नवीन बात की व्याख्या नही कर रहे थे।'[1]

---

1 Cole, G D H *Socialist Thought The Forerunners*, p 8

काल्पनिक समाजवादी विचारक
(Utopian Socialist Thinkers)

काल्पनिक समाजवादी विचारकों की संख्या यद्यपि अत्यधिक है परन्तु यहां तीन मुख्य काल्पनिक समाजवादी विचारकों के विचारों की व्याख्या की जा रही है। ये हैं—

(1) सेन्ट साइमन,
(2) चार्ल्स फोरियर,
(3) राबर्ट ओवेन।

1 सेन्ट साइमन
(Saint Simon 1760-1825)

(अ) सेन्ट साइमन का जीवन तथा रचनाएँ

सेन्ट साइमन का पूरा नाम काउण्ट हनरी डी रूराय डी सेन्ट साइमन (Count Henry de Rouvroy de Saint Simon) था। उसका जन्म 1760 में फ्रांस के एक प्राचीनतम और सामन्तवादी परिवार में हुआ था। उसकी मृत्यु 1825 में 65 वर्ष की आयु में हुई। सेन्ट साइमन की वंश परम्परा शालमेन (Charlmagne) से बताई जाती है।

सेन्ट साइमन का जीवन बड़ा ही रोमांचकारी था। वह एक भक्की और सनकी वृत्ति का व्यक्ति था उसने बचपन से ही अपने पिता से झगड़ा कर लिया तथा अपने आपको उस सम्पत्ति से वंचित कर लिया जो उसे प्राप्त हो सकती थी। उसने अपने जीवनकाल में अत्यधिक धन एकत्रित किया परन्तु एक समय ऐसा आया कि उसकी निर्धनता और दुर्भाग्यता ने उसे लिपिक बनने के लिए बाध्य किया।

सेन्ट साइमन विश्व का बड़ा आदमी बनने का इच्छुक था। वह सुकरात की तरह मानव को नवीन दिशा दिखाना चाहता था। उसने अपने जीवन का यही लक्ष्य निर्धारित किया तथा उसे प्राप्त करने की कोशिश भी की। उसने दार्शनिकों और वैज्ञानिकों की संगत में बैठना शुरू कर दिया। उसने वैज्ञानिक और राजनीतिक लेख भी लिखे। उसके विचार उसकी निम्न रचनाओं में संग्रहीत हैं —

(1) Letters of a Resident of Geneva (1802)
(2) The Organization of European Society (1814)
(3) The Industrial System (1821)
(4) The New Christianity (1825)

सेन्ट साइमन के विचार उन लोगों को अधिक अपील कर सके जो रूसोवाद, बोनापार्टवाद और वैधतावाद से तंग आ चुके थे। लोगों के हृदयों में यह विचारधारा बैठ गयी थी कि सेन्ट साइमन ने सरकार की समस्याओं का हल ढूंढ़ लिया है।

(ब) सेंट साइमन के विचार

सेंट साइमन के विचारों को निम्न बिंदुओं में व्यक्त किया जा सकता है —

1 समाज का पुनर्गठन चाहता था

सेंट साइमन की धारणा थी कि मानव पूर्ण बन सकता है। इसलिए वह नैतिक और भौतिक दृष्टि से समाज का पुनर्गठन चाहता था। वह समाज को 'समुदाय' के आधार पर संगठित करना चाहता था। वह अच्छे परिणामों को प्राप्त करने के लिए श्रम और पूंजी में सहयोग चाहता था। उसने इनमें संघर्ष की कल्पना नहीं की जैसा कि बाद में मार्क्स ने की।

सेंट साइमन समाज को उत्पादक समुदायों (productive associations) के आधार पर पुनर्गठित करना चाहता था जिसमें सरकार का स्वरूप राजनीतिक के स्थान पर आर्थिक होगा। उसका यह पूर्ण विश्वास था कि सरकार में प्रतिनिधित्व आर्थिक हितों और व्यवसाय के आधार पर होना चाहिए। उसके लिए सरकार का सर्वोच्च कार्य राष्ट्र के आर्थिक साधनों का विकास करना है अर्थात् औद्योगिक उन्नति सरकार का मुख्य उद्देश्य है। वह औद्योगिक और उत्पादक फार्मों की स्थापना के पक्ष में था।

2 सुधारों का आधार आध्यात्मिक होना चाहिए

सेंट साइमन का विश्वास था कि सामाजिक और राजनीतिक सुधार तभी सफल हो सकते हैं जब उनका आधार आध्यात्मिक हो। वह ईसा मसीह की शिक्षाओं पर आधारित ऐसे समाज की स्थापना करना चाहता था जिसमें निर्धनों का कल्याण हो। वह उद्योगपतियों को निर्धनों के लिए एक ट्रस्टी बनने की प्रेरणा देता था। वह उत्पादन और लोगों की क्रय शक्ति में वृद्धि कर सामान्य जनता के स्तर को ऊँचा उठाना चाहता था।

3 वर्ग विहीन समाज की कल्पना

सेंट साइमन वर्ग विहीन समाज की कल्पना करता था। उसके नवीन औद्योगिक समाज में केवल उत्पादकों अर्थात् श्रमजीवियों का स्थान है। औद्योगिक समाज में सभी श्रमिक होंगे। वह अनुत्पादकों का सफाया चाहता था चाहे वे किसी वर्ग के ही क्यों न हों। वह श्रमजीवी वर्ग को नष्ट नहीं होने देना चाहता था। उसके लिए तो श्रम ही जिन्दगी है। परन्तु वह उस सामाजिक व्यवस्था को अवश्य बदलना चाहता था जो कुछ को तो आलसी और अधिकांश को परिश्रमी बनाती है।

4 प्रजातन्त्रवादी विचारों में उसका विश्वास नहीं था

सेंट साइमन के लिए 'स्वतन्त्रता', 'समानता' तथा 'लोक सम्प्रभुता' जैसे विचारों का महत्त्व नहीं था। वह समाजवादी अधिनायकवाद का पक्षपाती था। उसके लिए 'उद्योग स्वतन्त्रता का आधार है और औद्योगिक प्रणाली से पृथक् कोई वास्तविक

स्वतन्त्रता नही। उसके लिए उद्योग का विकास और स्वतन्त्रता का विकास एक दूसरे के पर्यायवाची शब्द थे। वह किसी प्रकार की समानता म विश्वास नही करता था। वह वेतनो की समानता नही चाहता था। वेतन को वह 'योग्यता','क्षमता' और 'व्यवसाय' पर आधारित करना चाहता था।

5 सरकार वैज्ञानिको की होनी चाहिए दार्शनिको की नहीं

सेन्ट साइमन धनात्मक सरकार (positive government) की स्थापना चाहता था जो वैज्ञानिको की सरकार होगी दार्शनिको की नही। उसका पूर्ण विश्वास था कि राज्य का प्रथम और अन्तिम उद्देश्य लोगो की आर्थिक उन्नति करना है। उसका सुझाव था कि समाज की शक्ति ऐसी ससद म हो जिसमे तीन सदन हो। प्रथम आविष्कार सदन जिसमे इन्जीनियर कवि और कलाकार सम्मिलित हो द्वितीय, परीक्षा सदन जिसमे गणितज्ञ और भौतिक शास्त्री हो, तृतीय निष्पादन सदन (कार्य कारिणी) जिसके सदस्य औद्योगिक नेता हो। प्रथम सदन का काय कानूनो को प्रस्तावित करना, दूसरे का उन्हे पारित करना तथा तीसरे का उन्ह कार्यान्वित करना है। सेन्ट साइमन अपने आदश समाज को निर्माणशाला (factory model) के नमूने पर आधारित करना चाहता था। उसकी धारणा थी कि यदि उद्योगपतियो को समुचित मान प्राप्त हो जाय और उनमे उत्तरदायित्व की भावना जाग्रत हो जाय तो वे सवसाधारण के कल्याण के लिए काय करेंगे। सेन्ट साइमन जहाँ उत्पादन को उद्योग पतियो के हाथो मे रखना चाहता है वहाँ वह समाज का आध्यात्मिक नेतृत्व विद्वानो के हाथो मे छोडना चाहता है।

6 सम्पत्ति सावजनिक उपयोगिता की वस्तु है

सेन्ट साइमन के लिए सम्पत्ति कोई ऐसी चीज नही जो पवित्र और अबाध्य (sacred and inviolable) है। उसके लिए सम्पत्ति सावजनिक उपयोगिता की वस्तु है। "यह सामाजिक तथ्य है जिसे अन्य सामाजिक तथ्यो की भाँति प्रगति के नियमो के अधीन होना चाहिए। भिन्न भिन्न समयो पर इसका विस्तार किया जा सकता है, इसे कम किया जा सकता है या इसे भिन्न भिन्न साधनो से नियन्त्रित किया जा सकता है।" उसकी धारणा थी कि जिस चीज (धन, सम्पत्ति) का उत्पादन करने मे व्यक्ति सहयोग देता है उसमे उसका भाग उसकी सेवाओ के आधार पर होना चाहिए।

सेन्ट साइमन ने निजी सम्पत्ति के उन्मूलन का प्रतिपादन नही किया। परन्तु वह उत्तराधिकार की सस्था का उन्मूलन अवश्य चाहता था। भूमि के स्वामित्व के बारे म भी वह क्रान्तिकारी परिवतन लाने के पक्ष म था। सेन्ट साइमन तथा उसके अनुयायी निजी सम्पत्ति का विरोध केवल इसलिए करते थे कि 'यह आलस्य की आदतें उत्पन्न करती है और दूसरो के श्रम पर जीवित रहने की परम्परा का पोषण करती है।' वह निजी सम्पत्ति का क्रमिक उन्मूलन चाहता था। सेन्ट साइमन की धारणा थी कि उत्पादन के साधन उन लोगो के हाथो म होने चाहिए जिनका काय

उन य त्रो का प्रयोग करता है । उसका उद्देश्य "समाज म ऐसी व्यवस्था स्थापित करना था जिसमे समाज के सभी सदस्यो को अपनी शक्तियो के अधिकतम विकास के लिए पूरा-पूरा अवसर मिले और प्रत्येक व्यक्ति वह काय करे जिसकी योग्यता उसे ईश्वर से प्राप्त हुई है और उसे अपने काय के अनुसार पारितोषिक प्राप्त हो ।" "मैं समाज के सभी सदस्यो को अपनी शक्तियो के विकास का पूरा अवसर देना चाहता हूँ ।"

सेन्ट साइमन 'क्रियाहीन सम्पत्ति (functionless property) का विरोधी था उसका विश्वास था कि 'निजी सम्पत्ति मे परिवतन किये बिना सामाजिक व्यवस्था मे परिवतन सम्भव नही ।" परन्तु उसने सम्पत्ति को जब्त करने या उस पर सामूहिक स्वामित्व को स्थापित करने की सिफारिश नही की । वह तो अनुपार्जित (unearned) सम्पत्ति को शोषण कहता है । वह उस वग का अन्त चाहता है जो दूसरो के श्रम पर जीवित रहता है । उसका विश्वास है कि "उद्योग और विज्ञान पर आधारित नवीन सामाजिक व्यवस्था, उत्तराधिकार की समाप्ति और समष्टिवाद के विकास द्वारा नवीन समाज की स्थापना आसानी से हो सकती है ।"

7 मानवता का सुनहरी युग आगे है पीछे नहीं

सेन्ट साइमन राज्य को श्रम के यन्त्र का प्रबन्धक मानता है जिसका निर्देशक नियम योग्यता है । यह सत्य है कि वह वतमान प्रणाली का, जो स्वतन्त्र प्रतियोगिता पर आधारित है आलोचक है परन्तु उसने भूत की ओर वापस लौटने के सिद्धान्त का प्रतिपादन नही किया । उसका विश्वास था कि मानवता का सुनहरी युग आगे है, पीछे नही ।

8 विश्व ससद का समथक

अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र मे सेन्ट साइमन ने एक विश्व ससद (World Parliament) की कल्पना भी की थी ।

(ख) सेन्ट साइमन के विचारों का प्रभाव

भविष्य के सामाजिक आन्दोलन पर सेन्ट साइमन के विचारो का प्रभाव पर्याप्त मात्रा म पडा । लेडलर के शब्दो मे, "भविष्य के सामाजिक आन्दोलन पर उसके प्रभाव का मूल्याकन करते हुए वूथ लिखता है कि वर्गो मे पृथक्ता पर टिप्पणी करने, व्यक्ति के विकास मे सम्पत्ति और श्रम के महत्त्व को बताने, उत्तराधिकार की बुराइयो की ओर ध्यान आकर्षित करने और यह बताने मे कि सरकार का मुख्य कत्तव्य सामाजिक सुधारो का प्रतिनिधित्व करना है सेन्ट साइमन माग दशक था । वह सवहारा की प्रथम अभिव्यक्ति है । निसन्देह, उसके विचारो ने भविष्य के सामाजिक आन्दोलन पर अत्यन्त प्रभाव डाला ।"

मक्सी के शब्दो म, 'यद्यपि सेन्ट साइमन का प्रभाव व्यापक रहा है फिर भी उसके विचार विरोधाभासी रहे है । उसने समानसाधनो से प्रतिक्रियावादियो और रेडिकल्स (Radicals) का तिरस्कार किया । जमनी मे वह प्रेरणा का स्रोत था और

बिस्मार्क तथा कार्ल मार्क्स के विचारों का आधार था। फ्रांस में अनुदारवादी अगस्टे काम्टे और प्रसिद्ध समाजवादी लुई ब्लांक (Louis Blanc) का विश्वास पात्र मन्त्री था। इंगलैण्ड में उसका प्रभाव जे० एस० मिल और राबर्ट ओवेन तथा अन्य समाजवादियों पर अत्यधिक था। सेंट साइमनवाद से अनेक परस्पर विरोधी आन्दोलनों की उत्पत्ति हुई जैसे नव कैथोलिकवाद (Neo Catholicism), पादरियत विरोधवाद (Anti Clericalism), और वैज्ञानिक पूंजीवाद (Scientific Capitalism)। ये विरोधाभास वास्तव में उतने विरोधाभासी नहीं हैं जितने कि ये दिखाई देते हैं। बहुधा विरोधाभासों में सम्बन्ध होता है और जो विरोधी विचारधाराएँ सेंट साइमन के सिद्धान्तों से उत्पन्न हुई उनमें विज्ञान की शक्ति में विश्वास का सामान्य तत्त्व विद्यमान था। इस कारण उन्नीसवीं शताब्दी के राजनीतिक विचारों पर उसका निर्माणात्मक प्रभाव था।"

अनेक आलोचकों का विश्वास है कि सेंट साइमन समाजवादी ही नहीं था क्योंकि उसने अनेक स्थानों पर उद्योगपतियों के गुणों का वर्णन किया है। अलेक्जेण्डर ग्रे के शब्दों में, "सेंट साइमन के समाजवाद के एक जनक होने के दावे का आधार बहुत पतला है।" परन्तु उसकी विचारधारा में अनेक समाजवादी तत्त्व हैं जिनसे स्पष्ट होता है कि वह समाजवादी लेखक है। उसकी विचारधारा में निम्न समाजवादी तत्त्व विद्यमान हैं —

(1) वह श्रम को मानव का मूल कार्य तथा उसका कर्तव्य मानता है।
(2) वह प्रत्येक व्यक्ति का सामाजिक सम्मान उसके द्वारा की गयी सामाजिक सेवा के अनुपात में देना चाहता है।
(3) वह विशेषाधिकारों को अस्वीकार करता है और विलासितापूर्ण जीवन की निन्दा करता है।
(4) वह सम्पत्ति के अधिकार को सामान्य हित की वृद्धि के लिए ही स्वीकार करता है।
(5) वह उत्तराधिकार के सिद्धान्त का उन्मूलन चाहता है।
(6) वह आयोजित संगठन और नियन्त्रण पर बल देता है।
(7) यद्यपि सेंट साइमन ने उत्पादन के साधनों पर निजी स्वामित्व के उन्मूलन की सिफारिश नहीं की परन्तु उसके अनुयायियों ने उन पर सामान्य स्वामित्व की बात कही।

२ चार्ल्स फोरियर
(Charles Fourier 1772 1837)

(अ) फोरियर का जीवन

चार्ल्स फोरियर सेंट साइमन की भांति एक फ्रांसीसी समाजवादी लेखक था। दोनों कल्पनावादी समाजवादी विचारक थे। परन्तु उनके जीवन और विचारों में अनेक भिन्नताएँ भी विद्यमान थीं। सेंट साइमन फ्रांस के एक कुलीन वर्ग में

पैदा हुआ था परन्तु चार्ल्स फोरियर एक सामान्य परिवार में, सेंट साइमन ने नवीन सामाजिक व्यवस्था के लिए तत्वों को ऐतिहासिक पन्नों में ढूढ़ने का प्रयास किया परन्तु फोरियर ने अपने विचारों में ही विकास के नियमों को निगमनात्मक (deductively) ढंग से निकालने की कोशिश की, सेंट साइमन बड़े पैमाने पर उद्योग धन्धों को पसन्द करता था परन्तु फोरियर केन्द्रीयकरण के पक्ष में नहीं था, वह तो छोटे छोटे समुदायों को सबसे अधिक उपयुक्त समझता था। फोरियर ने अपने सिद्धान्तों की व्यावहारिक प्रकृति को प्रदर्शित करने का प्रयास किया। उसने अपनी प्रणाली को तर्क और विज्ञान पर आधारित किया भावनाओं और आवेगों पर नहीं।

जीवन की प्रारम्भिक घटनाओं ने ही फोरियर की विचारधारा की दिशा निश्चित कर दी थी। जिन घटनाओं ने फोरियर के जीवन पर अत्यधिक प्रभाव डाला वे इस प्रकार है—(1) जब वह पांच वर्ष का ही था तो उसके पिता ने उसे इस कारण दण्डित किया, कि उसने एक ग्राहक को व्यापार का भेद बता दिया था। इस बात पर फोरियर ने यह शिकायत की कि चर्च में तो उससे सत्य बोलने के लिए कहा जाता है और दूकान पर उससे झूठ बोलने के लिए कहा जाता है। (2) दूसरी घटना वह थी जब उसने अपने कार्य को करते हुए मार्सिलीज (Marseilles) की बन्दरगाह पर चावलों को समुद्र में फेंकते हुए देखा। चावलों को समुद्र में केवल इस कारण फेंका जा रहा था कि उनके मालिक मूल्य वृद्धि की आशा को नष्ट होने नहीं देना चाहते थे। इन दोनों घटनाओं ने फोरियर के मस्तिष्क में यह विचार पैदा कर दिया कि वर्तमान सभ्यता और सामाजिक तथा आर्थिक व्यवस्था में अवश्य ही दोष हैं जिनके कारण उन वस्तुओं का अपव्यय होता है जिनकी समाज को अत्यधिक आवश्यकता होती है। उसने उस नवीन सामाजिक व्यवस्था के बारे में सोचना आरम्भ कर दिया जिसमें इस प्रकार का अपव्यय न हो।

चार्ल्स फोरियर का जन्म सन् 1772 में और मृत्यु सन् 1837 में हुई। उसने अपना अधिकांश जीवन एक सौदागर के यहां लिपिक और सफरी विक्रेता (travelling salesman) के रूप में बिताया। वह अपने फालतू समय का उपयोग सामाजिक समस्याओं पर विचार प्रकट करने तथा उन्हें लिपिबद्ध करने में व्यतीत करता था। सन् 1822 और 1829 में उसने दो पुस्तकें क्रमश: प्रकाशित कीं। एक में उसने कृषि की उपयोगिता और दूसरे में आदर्श समाज की रूप रेखा प्रस्तुत की।

फोरियर अपनी तुलना न्यूटन से करता था। उसका विश्वास था कि विश्व निश्चित नियमों द्वारा प्रशासित होता है। उन नियमों की खोज कर उन्हें समाज में लागू करने की आवश्यकता है ताकि मानव सुखी व खुशहाल रहें। उसका यह विश्वास था कि समाज में तभी शान्ति स्थापित हो सकती है जब लोग छोटे समुदायों में रहें और उनको भावनाओं को व्यक्त करने की पूर्ण स्वतन्त्रता हो। फोरियर की यह भी धारणा थी

कि उसने पारस्परिक आकर्षण (mutual attraction) के रूप मे सामाजिक सम्बन्धो के अन्तर्निहित सिद्धान्त का आविष्कार कर लिया है।

(ब) फोरियर के विचार

फोरियर के विचारो को निम्न बिन्दुओ मे व्यक्त किया जा सकता है —

1 समकालीन व्यवस्थाओ का आलोचक

फोरियर ने समकालीन समाज मे विद्यमान सामाजिक, राजनीतिक, और नैतिक व्यवस्थाओ की आलोचना की। उसका विश्वास था कि निजी सम्पत्ति के अधिकारो के कारण समाज मे निधनता, सामाजिक असमानता तथा युद्ध उत्पन्न होते हैं और पारिवारिक जीवन असफल होता है। वह प्रतिस्पर्धा की प्रणाली का अन्त चाहता था क्योंकि इस व्यवस्था मे अपव्यय होता है तथा अव्यवस्था फैलती है। उसका विश्वास था कि इस प्रणाली मे व्यक्तियो की अधिकाश शक्ति ऐसी वस्तुओ को उत्पन्न करने मे नष्ट हो जाती है जो जीवन मे सुख की वृद्धि नही करती। वह क्रय विक्रय की जटिल प्रणाली को समाप्त कर ऐसी प्रणाली की स्थापना चाहता था जिसमे उत्पादन मे आनन्द का अनुभव हो और उपभोग की वस्तुएँ आसानी से उपलब्ध हो। मैक्सी ने ठीक लिखा है कि फोरियर "समाज की प्रतिक्रियाओ मे व्यवस्था, कुशलता और मितव्ययता लाना चाहता था।"[1]

2 पूजीवाद की मूल्य पद्धति का विरोधी

फोरियर पूजीवाद की मूल्य पद्धति (price system) का विरोधी था। उसकी धारणा थी कि पूजीवाद के अन्तर्गत मूल्यो के स्तर को बनाये रखने के लिए वस्तुओ को नष्ट किया जाता है वह उत्पादक वस्तुओ के अपव्यय का कटु आलोचक था। वह उत्पादन आवश्यकता के लिए चाहता था अपव्यय के लिए नही।

3 कार्य सुख का आधार होना चाहिए लाभ का नहीं

फोरियर की धारणा थी कि कार्य को सुख या आनन्द का स्रोत होना चाहिए न कि केवल लाभ का। प्रत्येक व्यक्ति को उस कार्य को करना चाहिए जिसम उसकी रुचि हो और जिसने करने से उसे आनन्द का अनुभव हो। इस तरह उसने आनन्द या व्यावसायिक अनुकूलता (Vocational adaptation) के आधार पर समस्याओं का हल ढूढने का प्रयास किया। एक व्यक्ति हमेशा के लिए एक ही कार्य नहीं करेगा बल्कि अनेक कार्यों का सम्पादन करेगा। फोरियर इस तरह कार्य को रोचक बनाने और उसम नीरसता को समाप्त करने के लिए कार्य परिवर्तन म विश्वास करता था।

---

1 Fourier wished to bring about "order, efficiency, and economy in societal process —Maxey *Political Philosophies*, ch. [illegible]

4 प्रतिस्पर्धा की प्रणाली मानव क्लेशों का कारण है

फोरियर प्रतिस्पर्धा की प्रणाली को मानव क्लेशो का कारण मानता है। अलेग्जेण्डर ग्र ने फारियर के इस दृष्टिकोण को इस प्रकार व्यक्त किया है। फोरियर इस दृश्य को देखकर पागल हो उठता था। "तीन सौ छोटे छोटे घरो मे, तीन सौ छोटी छोटी अग्नियां जलाकर 300 छोटे छोटे बतनो मे अपने काम से लौटकर आने वाले 300 छोटे छोटे पुरुषो के लिए 300 स्त्रिया द्वारा थोडा थोडा भोजन पकाने के दुखद दृश्य को देखता जबकि तीन या चार स्त्रियाँ एक बडे बतन की सहायता से और एक बडी अग्नि पर अधिक अच्छा काम कर सकती थी।"

5 व्यक्ति स्वभाव से अच्छा है

फोरियर व्यक्ति को स्वभाव से अच्छा मानता है। उसकी धारणा थी कि केवल परिस्थितिया ही व्यक्ति को कुमार्ग पर चलने के लिए बाध्य करती हैं। उसका विश्वास था कि जब व्यक्ति की कामनाओ और भावनाओ का शोषण, दमन या अवरोध होता है तो ही व्यक्ति बुराई की ओर अग्रसर होता है। इसलिए फोरियर छल, कपट, दमन और असत्य के वातावरण का अन्त चाहता था।

6 सहकारी आन्दोलन का समर्थक तथा पिता

फारियर सहयोग' मे विश्वास करता था। वह मुख्यत 'सहयोगवादी' (Cooperationist) था अराजकतावादी नही। उसने पितृत्ववाद (*Paternalism*) और व्यक्तिवाद दोनो को अस्वीकार कर दिया। फ्रास म उसने सहकारी आन्दोलन का समर्थन किया। उसका कल्पनावाद अराजनीतिक था और वह वतमान राजनीतिक ढाचे के भीतर ही ऐच्छिक सहयोग द्वारा अपने उद्देश्यो को प्राप्त करना चाहता था।

7 राज्य का विघटन होना चाहिये

फोरियर राज्य सत्ता के केन्द्रीयकरण के पक्ष मे नही था। वह राज्य का विघटन चाहता था। परन्तु वह राज्य का तभी विघटन चाहता था जब फलैक्स (Phalanx) उसका स्थान ले लें और सामान्य विषयो के प्रबन्ध के लिए ऐच्छिक समुदायो की स्थापना ही हो जाय। इस तरह फोरियर का नवीन समाज विकेन्द्रित समाज है।

8 निजी सम्पत्ति और वशानुक्रमण के उन्मूलन के पक्ष मे नहीं था—फलैक्स अर्थ व्यवस्था।

फोरियर निजी सम्पत्ति को समाज मे विद्यमान बुराइयो, विषमताओ और असमानताओ का कारण मानता था परन्तु उसने न तो निजी सम्पत्ति और न ही वशानुक्रमण (inheritance) के अधिकारो के उन्मूलन की बात कही। वह तो लोगों की विवेक तथा न्याय की भावना को जागरूक करना चाहता था। वह प्रत्येक फलैक्स

(Phalanx) को संयुक्त पूंजी के निगम (Joint Stock Corporation) में संगठित करना चाहता था। इस निगम व्यवस्था में लाभों पर पूंजी के स्वामियों का स्वामित्व नहीं होगा बल्कि लाभों को एक निश्चित अनुपात में बांटा जायगा, 5/12 भाग श्रम को, 4/12 भाग पूंजी को 3/12 भाग बुद्धिजीवियों को। फोरियर वेतन प्रणाली (Wage System) के उन्मूलन के पक्ष में था। वह तो श्रम के पारितोषिक को लाभ के उपयुक्त भाग पर आधारित करना चाहता था। इसके अतिरिक्त फैलेंक्स में सब सदस्यों के भोजन, निवास, कपड़ा और मनोरंजन आदि की न्यूनतम आवश्यकताओं की पूर्ति होगी। इस योजना द्वारा फोरियर तीनों वर्गों (पूंजीपति, श्रमिक और बुद्धिजीवी) को संगठित करना चाहता था। फैलेंक्स के बारे में गाइड और रिस्ट लिखते हैं कि "फैलेंक्स स्वयं में एक छोटा परन्तु आत्मनिर्भर विश्व था। यह एक ऐसा संसार (microcosm) था जो प्रत्येक उस वस्तु का उत्पादन करता था जिसका वह उपभोग करता था और जहां तक सम्भव था वह उस सारे उत्पादन का उपभोग करता था जिसे वह पैदा करता था।"[1]

9 समाज का पुनर्गठन फलैंक्स के आधार पर चाहता था

फोरियर सामाजिक आनन्द की उन्नति के लिए समाज का पुनर्गठन चाहता था। इसके लिए उसने एक आदर्श फैलेंक्स की योजना तैयार की। जिस प्रकार से प्लेटो ने आदर्श राज्य की संख्या को 5040 निश्चित किया उसी प्रकार फोरियर ने फलैंक्स की संख्या को 1620 निश्चित किया। इस संख्या को उसने वैज्ञानिक ढंग से फैलेंक्स की आवश्यकताओं को देखते हुए निश्चित किया था। फोरियर की नवीन सामाजिक व्यवस्था भ्रान्तरिक सहयोग पर आधारित थी।

मूल सामाजिक इकाई के रूप में फोरियर ने 7 व्यक्तियों के एक ऐसे समूह की कल्पना की जो अपने स्वादों (इच्छाओं विचारों, रुचियों या हितों) में समान हों और जो कला, विज्ञान या उद्योग को चलाने के लिए सामान्य रूप से संगठित होना चाहते हों। पांच या अधिक समूहों को मिलाकर एक बड़े समूह का निर्माण होगा जिसे फोरियर ने सीरिज (Series) की संज्ञा दी। 25 से 28 सीरिज को मिलाकर एक फैलेंक्स का निर्माण होगा जिसकी संख्या 1620 से 1800 तक होगी। फोरियर के सामाजिक संगठन में फैलेंक्स सब से बड़ी इकाई होगी। फलेंक्स एक पूर्ण सामाजिक समुदाय होगा तथा जो आर्थिक दृष्टि से आत्मनिर्भर होगा। इन फलैंक्स को एक संयोजक शासन के अधीन रखा जायगा और उनका संगठन एक लचीला, ढीला ढाला संघात्मक संगठन होगा।

---

1 'The Phalanx was to be a small self sufficing world, a microcosm producing everything it consumed and consuming as far as it could all it produced —Gide and Rist Quoted by Hallowell, *Ibid*, p 387

10 फैलेंक्स ऐच्छिक समुदाय होंगे

फोरियर फलेंक्स की स्थापना ऐच्छिक रूप से चाहता था जिनमे व्यक्तियों का सहयोग स्वाभाविक हो। वह किसी प्रकार की सरकार की आवश्यकता नही समझता था। फोरियर ने पूजीपतियो से अपील की कि वे उसकी योजनाओ को कार्यान्वित करने के लिए धन को उपलब्ध करायें परन्तु उसकी अपील का प्रभाव कुछ नही हुआ क्योकि किसी व्यक्ति ने उसकी सहायता नही की। उसके स्वय के पास आवेन की भाति धन भी नही था कि वह अपनी योजनाओ को स्वय अपने जीवन काल मे प्रयोग मे ला सकता।

(स) अमरीका मे फोरियर की योजनाओ के असफल प्रयोग

फोरियर की मृत्यु के बाद उसके शिष्यो ने फ्रास, ब्रिटन और अमरीका म फलेंक्स समुदायो के प्रयोग किये। सबसे अधिक प्रयोग अमरीका मे हुए। वहाँ अल्बर्ट ब्रिसबेन (Albert Brisbane), होरेस ग्रीले (Horace Greelay), चार्ल्स ए० डाना (Charles A Dana), जार्ज रिपले (George Ripley) आदि व्यक्तियो ने फोरियर के विचारो का प्रचार किया। ब्रिसबेन ने न्यू जर्सी (New Jersey) मे उत्तरी अमरीकन फैलेंक्स समुदाय की स्थापना की और विस्कान्सिन (Wisconsin) मे भी इसी प्रकार के फैलेंक्स की स्थापना की गयी। सन 1841 मे मैसाचुसेटस मे पश्चिमी राक्सबरी (West Roxbury) के स्थान पर रल्फ वेल्डो इमर्सन (Ralf Waldo Emerson) नेथेनीयल हाथोर्न (Nathaniel Hawthorne), थ्योडोर पार्कर (Theodore Parker) आदि की सहायता से ब्रुक फार्म (Brook Farm) की स्थापना की गयी जिसका सन 1846 मे विघटन हो गया। जितने भी प्रयास "फलेंक्स समुदायो" से किये गये (और यह कहा जाता है कि इस प्रकार के लगभग 30 समुदाय बनाये गये) उनमे से कोई भी पाच छ वर्ष से अधिक जीवित नही रहा क्योकि वे अपने उद्देश्यो म असफल रहे।

(द) फोरियर के विचारो का मूल्याकन

फोरियर के विचारो के बारे मे यह कहा जाता है कि जो कुछ भी उसने लिखा उसमे अधिकाश मूर्खतापूर्ण (madness) या भ्रमात्मक (fantastic) था। कोल ने उसके विचारो को "कोरी मूर्खता (Plainly mad) कहा है। अलेक्जेण्डर ग्रे के अनुसार फोरियर "मूर्खता से अधिक दूर कभी नही था।" इन आलोचको के विचारो के बाद भी यह कहना गलत होगा कि फोरियर के विचारो मे कुछ वास्तविकता नही थी। यह ठीक है कि उसके विचारो को वास्तविक समस्याओ के समाधान करने म नहीं लाया गया परन्तु उसके विचारो का प्रभाव पर्याप्त था। उसके विचारो ने औद्योगिक समाज की समस्याओ के प्रति ध्यान आकर्षित किया और समाजवादी विचारधारा के लिए सामग्री प्रदान की। फोरियर सुधार चाहता था क्राति नही। वह उत्पादन की परिस्थितियो मे सुधार चाहता था, प्रतियोगिता के कुपरिणामो का अन्त करना चाहता

था। वह सहयोग चाहता था प्रतियोगिता नही। वह "सहकारी आन्दोलन (Cooperative Movement) का पिता था।

फोरियर अराजकतावादी या साम्यवादी नही था। परन्तु उसके विचार पूजीवाद के विरोधियो के लिए लाभदायक सिद्ध हुए। यथेच्छाकारिता (laissez faire) के विरोधियो ने अपने विचारो को फोरियर के दशन से प्राप्त किये। समाजवादियो ने फोरियर के इस विचार को स्वीकार किया कि "श्रम लाभ के लिए नही बल्कि काय से लगाव' (labour not for profit but for the love of job) के कारण किया जाता है। लेडलर के शब्दो मे, "अनेक बिन्दुओ पर उसका दशन प्रमादपूण था। फिर भी उसने आधुनिक आर्थिक प्रणाली के अपव्यय की ओर ध्यान आकर्षित कर अमूल्य सेवा की। उसने कार्य को अधिक सुखद बनाने के लिए नवीन प्रणाली की आवश्यकता पर बल दिया, विश्व के कार्यो मे यन्त्र के मूल्य पर भी बल दिया। उसकी रचनाओ का प्रभाव फैक्टरी नियमो और सफाई अथवा स्वास्थ्य सुधारो पर अत्यधिक पडा।"

3 रावट ओवेन
(Robert Owen 1771-1858)

(अ) जीवन परिचय तथा काय

रावट ओवेन को "ब्रिटिश समाजवाद" और "ब्रिटिश सहयोग आन्दोलन" का पिता कहा जाता है। उसका जन्म इगलैण्ड मे न्यू टाउन मे वेल्श (Welsh) ग्राम मे एक दरिद्र घराने म मई 14, 1771 मे हुआ। सन् 1858 मे 87 वष की दीघ आयु म उसकी मृत्यु हुई। वह एक काठी बनाने वाले मोची का पुत्र था। उसन 9 वष की आयु मे ही पढाई छोड दी। ग्यारह वष की आयु म वह लन्दन म एक सौदागर के यहाँ अप्रेंटिस (Apprentice) के रूप म काय करने लगा। उन्नीस वष की आयु मे वह मैंचेस्टर के ड्रिंकवाटर (Drinkwater) नाम के व्यक्ति के यहाँ नौकर हो गया जिसने उसे मैंचेस्टर की कताई की मिलो (Spinning Mills) का अधीक्षक (Superintendent) बना दिया। तेईस वष की आयु म उसने साझेदारो के एक समूह से मिलकर एक सूती मिल (factory) को शुरू किया जिसका वह मनेजर बना। *सन् 1799 म ओवेन ने सहयोगियो के साथ मिलकर न केवल न्यू लेनार्क की* मिलो को खरीद लिया बल्कि न्यू लेनाक के ग्राम को ही खरीद लिया।

न्यू लेनाक मे जब ओवेन आया था तो उस समय उस गाव की स्थिति शोचनीय थी परन्तु जब ओवेन ने गाव को छोडा तो वह एक आदश गाव बन चुका था। वह एक वास्तविक समाजवादी बस्ती बन गयी थी। गाव मे नालियो और सफाई का प्रबन्ध किया गया था। शराब का बेचना बन्द करवा दिया गया था। वहाँ की मिलो मे काय के घण्टे निर्धारित कर दिये गये थे। मजदूरो के वेतन म वृद्धि कर दी गयी थी। बच्चो की शिक्षा का प्रबन्ध किया गया था। दस वष से

कम आयु वाले बच्चों को काम पर लेने से इन्कार कर दिया गया था। मजदूरों को कम दामों पर उपभोक्ता वस्तुएँ प्राप्त होती थीं। मजदूरों के लिए घरों की तथा अन्य सुविधाओं की व्यवस्था की गयी थी। इतना ही नहीं, सन 1806 में जब अमरीका द्वारा कपास पर प्रतिबन्ध लगाया गया और इंगलैण्ड की सूती मिलें बन्द हो गयीं तो भी ओवेन ने अपनी मिलों में काम करने वाले मजदूरों को वेतन दिये। आश्चर्य की बात तो यह है कि मजदूरों के लिये अच्छे वेतन तथा अन्य सुविधाओं की व्यवस्था करने के बावजूद ओवेन मिलों से अत्यधिक लाभ प्राप्त करता था। ओवेन इसे अच्छे वेतनों की मितव्ययता (economy of high wages) कहता था। राबर्ट ओवेन और न्यू लेनार्क दोनों पर्यायवाची शब्द बन गये थे।

उत्तरी अमरीका के इण्डियाना (Indiana) राज्य में ओवेन ने 150,000 डालर की लागत से 30,000 एकड़ का एक भूखण्ड खरीदा और वहाँ न्यू हार्मनी (New Harmony) नामक एक सहकारी बस्ती (Cooperative Colony) की स्थापना की। परन्तु यह सहकारी प्रयोग कुछ तो कुप्रबन्ध (mis management) और कुछ अनियन्त्रित (undisciplined) व्यक्तिवाद और अराजकता के कारण असफल हुआ। ओवेन का मनिक चर्च विरोधी तर्कनावाद भी इस सहकारी प्रयोग की असफलता के लिए उत्तरदायी था। ओवेन ने सगठित धर्म की कपट की निन्दा की। इस उद्यम से ओवेन को न केवल अपनी जायदाद के 4/5 भाग से हाथ धोना पड़ा बल्कि उसकी ख्याति पर भी प्रतिकूल प्रभाव पड़ा।

ओवेन के अनुयायियों ने ओहियो (Ohio), टैनिसी (Tennessee) और न्यूयार्क में न्यू हार्मनी जैसी सहकारी बस्तियों की स्थापना की परन्तु ये सब प्रयास भी असफल रहे। सत्तर वर्ष की आयु में ओवन हैम्पशायर में हार्मनी हाल में सामुदायिक बन्दोबस्त (Community Settlement) का गवर्नर बना। परन्तु यह प्रयास भी असफल रहा। जिन व्यक्तियों ने इसमें हिस्सा लिया उन्हें भी काफी हानि उठानी पड़ी।

उत्तरी अमरीका में असफलता के बाद ओवन इंगलैण्ड वापस आया और सहायता के लिए उसने साधारण व्यक्तियों से अपील की। उसने सहकारी समाजों की स्थापना और श्रमिक संघों के आन्दोलन के विकास में भी सहायता की। वह श्रमिकों की दशा सुधारने का अत्यधिक इच्छुक था। उसने लन्दन में एक राष्ट्रीय साम्यिक श्रमिक विनिमय केन्द्र (National Equitable Labour Exchange) की स्थापना की। इस केन्द्र का उद्देश्य मालिक और दलाल के कार्यों को समाप्त करना था तथा श्रमिकों को विश्वास दिलाना था कि उनकी मुक्ति श्रमिक संघों और आपसी सहयोग द्वारा ही हो सकती है, राजनीतिक कार्यवाही द्वारा नहीं। इंगलैण्ड में श्रम कल्याणकारी कानूनों और सामाजिक सुधारों की ओर प्रगति में उठाये गये कदमों के साथ ओवेन का नाम अभिन्न रूप से जुड़ा हुआ है।

उपर्युक्त वर्णन से स्पष्ट है कि ओवेन का जीवन बड़ा ही भव्य एवं सप्तरंगी था। "वह एक दूकान पर नौकर, एक उद्योगपति, कल कारखानों का सुधारक, शिक्षा शास्त्री, समाजवादी, सहयोग आन्दोलन का प्रवर्तक, ट्रेड यूनियन नेता धर्म निरपेक्षता वादी, आदर्श समुदायों का मूल प्रवर्तक तथा व्यावहारिक व्यापार का व्यक्ति, सभी कुछ रहा।"[1] कोई भी व्यक्ति एक ही साथ "इतना व्यावहारिक और इतना स्वप्न द्रष्टा, इतना प्रेमपात्र और अपने काम करने वाला के साथ इतना असम्भव, इतना उपहास केन्द्र तथा इतना प्रभावशाली नहीं था" जितना कि ओवेन।

(ब) ओवेन के समाजवादी विचार

ओवेन के समाजवादी विचार मार्क्स की भाँति किसी संग्रहालय (Museum) मे अध्ययन के परिणाम नही थे बल्कि उसके स्वयं के औद्योगिक उद्यमो (enterprises) के अनुभवो ने ही उसे सामाजिक समस्याओ का विद्यार्थी बना दिया था।

ओवेन की मुख्य रचनाएँ दो हैं—(1) समाज का नवीन दृष्टिकोण (A New View of Society) जिसे 1813 म प्रकाशित किया गया। इस रचना मे ओवेन ने यह विचार व्यक्त किया कि "सरकार का उद्देश्य शासक तथा शासित दोनो को प्रसन्न (सुखी) बनाना है।" (2) सामाजिक पद्धति (Social System) जिसे 1821 मे प्रकाशित किया गया। इस रचना म ओवेन ने पूर्ण साम्यवादी स्थिति को स्वीकार किया, निजी सम्पत्ति का विरोध किया और वितरण म समानता लाने पर बल दिया। इन दोनो रचनाओ के प्रकाशन के मध्य ओवेन ने सन 1817 म "कारखानो म काम करने वाले निर्धनो की सहायता के लिए ससदीय समिति को एक प्रतिवेदन दिया (Report to the Parliamentary Committee for the Relief of the Manufacturing Poor in 1817)। इस प्रतिवेदन मे ओवेन ने अपनी आदर्श स्वप्नलोकीय योजनायें प्रस्तुत की। इन योजनाओ को साम्यवादी योजनाएँ कहा जा सकता है क्योकि इन योजनाओ म सहकारी गाँवो की स्थापना की व्यवस्था की गयी थी। परन्तु ससदीय समिति ने इस प्रतिवेदन को अस्वीकार कर दिया।

ओवेन के समाजवादी विचारो को निम्न बिन्दुओ मे व्यक्त किया जा सकता है

1 परिस्थितियाँ चरित्र का निर्माण करती हैं

ओवेन का पूर्ण विश्वास था कि परिस्थितियाँ ही व्यक्ति तथा उसके चरित्र का निर्माण करती हैं। व्यक्ति स्वयं अपने चरित्र का निर्माण नहीं करता। ओवेन के शब्दो म, "मानव का चरित्र उसके लिए बनाया जाता है वह उसे नही बनाता।"[2] परन्तु इतना अवश्य है कि यदि व्यक्ति चाहे तो उन परिस्थितियो को बदल सकता

---

1 Cole, G D H Quoted by Ebenstein in his *Political Thought in Perspective* p 449

2 Man s character is made for him, not by him'—*Owen*

हैं। फिर भी उसकी धारणा थी कि अच्छी परिस्थितियाँ अच्छे चरित्र का निर्माण करती हैं और बुरी परिस्थितियाँ बुरे चरित्र का। इस दृष्टि से ओवेन के विचार मार्क्स तथा साम्यवादियों से मिलते हैं। मार्क्सवादियों की भी धारणा है कि व्यक्ति का चरित्र सामाजिक और आर्थिक परिस्थितियों का परिणाम है। ओवेन समाज में इसलिए अच्छी परिस्थितियाँ पैदा करना चाहता है ताकि व्यक्ति में अच्छी आदतों, और अच्छे स्वभाव का विकास हो ताकि अच्छी व्यवस्था को उत्पन्न किया जा सके। अच्छी परिस्थितियाँ होने पर ही जीवन में अच्छा बनने की सम्भावना है।

ओवेन ने अपराध की व्याख्या भी परिस्थितियों के सन्दर्भ में ही की है। उसकी धारणा है कि अपराध और बुराई को कम करने के लिए अच्छी परिस्थितियों का होना अनिवार्य है।

2 व्यक्ति सुख (आनन्द) को प्राप्त करना चाहता है

अपनी रचना समाज विषयक नवीन दृष्टिकोण (A New View of Society) में ओवेन ने यह विचार व्यक्त किया है कि "सरकार का उद्देश्य शासक तथा शासित दोनों को प्रसन्न बनाना है"। उसका विश्वास है कि व्यक्ति आनन्द को प्राप्त करने की इच्छा लेकर पैदा हुआ है और यह इच्छा ही उसके सभी कार्यों का प्राथमिक कारण है। यह इच्छा जीवन पर्यन्त जारी रहती है।

3 दरिद्रता अभिशाप है

ओवेन का पूर्ण विश्वास था कि दरिद्रता मानव जीवन के लिए सबसे बड़ा अभिशाप है। दरिद्रता से ही अनेक सामाजिक बुराइयाँ उत्पन्न होती हैं, अज्ञानता और बीमारी फैलती है, अस्वस्थता और कायरता का जन्म होता है। ओवन इसलिए मानव को दरिद्रता के अभिशाप से मुक्ति दिलाना चाहता था।

4 निजी सम्पत्ति और स्वतन्त्र प्रतियोगिता दुःखों के कारण हैं

ओवेन ने निजी सम्पत्ति की प्रणाली की यह कहकर आलोचना की कि उसका प्रभाव अनैतिक है और वह समाज में अनेक अपराधों, बुराइयों और गम्भीर अन्यायों को जन्म देती है। वह अनियन्त्रित और स्वतन्त्र प्रतियोगिता का भी विरोधी था। उसने मिलों की व्याख्या द्रव्य उत्पादन करने वाली तथा स्वास्थ्य और सुख को नष्ट करने वाली चीजें कह कर की है। औद्योगीकरण पर आधारित सामाजिक व्यवस्था को वह 'समाज विरोधी, अराजनीतिक और विवेकहीन" कहता था। ओवन की धारणा थी कि जब उत्पादन सबके सहयोग का फल है तो उसका वितरण भी सहयोग के आधार पर होना चाहिए। ओवेन उत्पादकों को उत्पादन धन का समुचित भाग देना चाहता था।

5 क्रमिक सुधार ही समाज में परिवर्तन ला सकते हैं

ओवेन क्रान्तिकारी परिवर्तन में विश्वास नहीं करता था। उसकी यह धारणा

नही थी कि बुराई का अन्त एक दिन में हिंसा, शक्ति, उपद्रव, या क्रान्ति द्वारा हो सकता है। उसने अन्यायिक कानूनों और अवस्थाओं को दूर करने के लिए क्रमिक सुधारों का सुझाव दिया। उसकी ब्रिटिश संविधान में पूर्ण आस्था थी और वह यह स्वीकार करता था कि ब्रिटेन में क्रमिक सुधार लाये जा सकते हैं। वह परिवर्तन के लिए समाज पर निर्भर करता था, राज्य पर नही।

6 शिक्षा सुधार का सर्वोत्तम साधन है

ओवेन समाज के उत्थान के लिए शिक्षा को अत्यधिक उपयोगी मानता है। उसकी मान्यता है कि शिक्षा के विस्तार द्वारा सामाजिक विषमताओं, असमानताओं और अन्यायों को दूर किया जा सकता है। ओवेन कहा करता था कि जिस प्रकार अपराध विशेष सामाजिक और आर्थिक परिस्थितियों अर्थात् मानव के अध पतन का परिणाम है उसी प्रकार शिक्षा के माध्यम से ऐसे वातावरण को उत्पन्न किया जा सकता है जिससे व्यक्तियों में ज्ञान शक्ति (Rationality) का विकास हो, व्यवस्था की आदत हो, नियमितता (regularity), परिमितता (temperance) और श्रम की भावनाएँ प्रज्वलित हों। ओवेन के शब्दों में, "सबसे अच्छा शासित राज्य वह है जिसमें राष्ट्रीय शिक्षा की अच्छी व्यवस्था है।"[1]

7 सबके लिए रोजगार की व्यवस्था होनी चाहिए

ओवेन ने सभ्य समाज में पूर्ण रोजगार को बनाये रखने पर बल दिया। परन्तु वह सरकारी अनुदान या बेरोजगारों को नकद सहायता (Cash relief) देने के पक्ष में नहीं था। वह परिश्रमियों, सद्गुणियों को बाध्य नहीं करना चाहता था कि वे अनभिज्ञों, आलसियों और दुर्गुणियों की सहायता करें। वह बेरोजगारी के मानवीय पक्ष से सहमत था परन्तु वह साथ में यह भी चाहता था कि राज्य को रोजगार की व्यवस्था नहीं करनी चाहिए बल्कि उसे (राज्य को) ऐसी शिक्षा प्रणाली की व्यवस्था करनी चाहिए जिससे प्रत्येक व्यक्ति इतनी शिक्षा प्राप्त कर सके कि वह खुले बाजार में रोजगार ढूंढ सके।

8 सहयोग की भावना ही सच्ची सामाजिक व्यवस्था की स्थापना कर सकती है

ओवेन के विचारों का केन्द्र बिन्दु सहयोग था। वह अंग्रेजी सहकारी आन्दोलन का पिता था। वह व्यक्तियों को प्रतियोगिता के विकृत प्रभावों से बचा कर उनमें सहयोग की भावना का विकास करना चाहता था। परन्तु प्रेम और भ्रातृभाव का विकास घृणा और संघर्ष के वातावरण में सम्भव नहीं। उसका विश्वास था कि सद्भावना का वातावरण तभी पैदा हो सकता है जब सहयोग और संगठन हो।

1 'The best governed state will be that which shall possess the best national system of education' Owen Quoted by Ebenstein in his Today's Isms, p 201

न्यू लेनार्क में जिन विचारों को ओवेन ने कार्यान्वित किया उनके पीछे यही विचार धारा छिपी हुई थी। वहां भी उसने सामंजस्य और सहयोग की भावना का विकास करने का प्रयास किया। उसका विश्वास था कि मानव विचारों और चरित्र में परिवर्तन भी सहयोग द्वारा लाया जा सकता है। सहयोग से संघर्ष और विरोध की भावनाओं को अन्त करने में सहायता मिलती है। ओवेन केवल व्यक्तियों में ही सहयोग स्थापित नहीं करना चाहता था वरन् संस्थाओं (सरकार, संसद, चर्च, आदि) और जन समूहों में भी सहयोग की भावना का विकास चाहता था। उसका *विश्वास था कि उत्पादक सहकारी समितियों (Producers Cooperatives)* द्वारा नवीन सामाजिक व्यवस्था की स्थापना की जा सकती है उपभोक्ता सहकारी समितियां (Consumer's Cooperative) द्वारा नहीं।

(स) ओवेन के विचारों का मूल्यांकन

लेडलर (Laidler) के शब्दों में, 'ओवेन की ठोस उपलब्धियों ने उसके जीवन काल में अधिक प्रभाव नहीं डाला उसकी बस्तियां (Colonies) सफल नहीं हुईं। जिन श्रमिक कानूनों को वह तथा अन्य लोग संसद द्वारा पास कराने में सफल भी हुए वे निष्फल रहे। उसके श्रमिक विनिमय का व्यावहारिक लाभ नहीं हुआ। उसकी पूँजी और श्रम को यह अपील की वे 'प्रतिदिन में आठ घण्टे के कार्य के लिए एक दूसरे से सहयोग करें और समाज का पुनर्गठन करें' का अधिक प्रभाव नहीं हुआ। हजारों सामाजिक आदर्शवादियों की भांति, जो उससे पूर्व में और बाद में हुए, उसने भी यह भूल की कि जो परिवर्तन वह चाहता है, वे निकट भविष्य में होने वाले हैं। उसने इस भ्रान्ति का प्रतिपादन किया कि विवेक ही मानव कार्यों का मुख्य प्रेरक है। उसने मानव चरित्र के निर्माण में वंशानुगत शक्तियों के प्रभाव पर बल नहीं दिया और न ही उसने अपने विचारों के विस्तार के लिए अनुयायियों को ही उत्पन्न किया।'

'फिर भी, उसके निर्णयों में त्रुटियां होते हुए भी तथा उसकी योजनाओं के असफल होने पर भी, सामाजिक विचारों पर उसका प्रभाव पर्याप्त पड़ा। उसने वर्तमान सामाजिक व्यवस्था के अपव्यय और उसके अन्यायों की ओर ध्यान आकर्षित किया, बेरोजगारी के दुःखों का वर्णन किया। मानव प्रगति के आदर्श को प्राप्त करने के लिए सामाजिक प्रसन्नता (आनन्द) पर बल दिया। उसने यह विचार व्यक्त किया कि सामाजिक वातावरण का प्रभाव चरित्र पर अत्यधिक पड़ता है। उसने धन के उत्पादन और वितरण में सामान्य कल्याण के लिए एक दूसरे से सहयोग करने की आवश्यकता पर महत्त्वपूर्ण तर्क दिये। इन सब तत्त्वों ने भविष्य की पीढ़ियों पर अमिट छाप लगा दी।'

'अपने उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए ओवेन ने जो बाहरी निष्ठा प्रदर्शित की तथा जो अथक प्रयत्न किये थे उन लोगों के लिए एक प्रेरणा का स्रोत बन गये जिन्होंने बाद में समाजवादी, सहकारी और श्रमिक संघों के आन्दोलनों में भाग

लिया। उन लोगो के लिए भी यह प्रेरणा का स्रोत था जिन्होंने शिशु प्रशिक्षण, श्रमिक नियमो, कारावास सुधार और ऐसे ही विषयो मे भाग लिया।"

मैक्सी के शब्दो मे, "अपनी त्रुटियो और असफलताओ के बाद भी ओवन ने औद्योगीकरण के अगमारी दोषो (blighting evils of industrialism) से, अपनी पीढी मे, सबसे अधिक सघर्ष किया। उसके जीवन काल मे ही स्वप्नलोकीय समाजवाद का सितारा आकाश मे ऊँचा उठकर अस्त भी हो गया परन्तु ओवन का कल्पनावाद मे विश्वास कभी नही डिगा। उसका यह पूर्ण विश्वास था कि मानव ऐसे समाज का निर्माण कर सकता है जिसमे अपराध, निर्धनता और अन्याय को समाप्त कर दिया गया हो। ओवेन का स्वप्न व्यक्ति को प्रतियोगितावादी समाज के दमन और विकृतियों से मुक्ति दिलाना चाहता था। उसका विश्वास था और उसने इसका प्रचार भी किया कि समाज ही व्यक्तियो को वैसा बनाता है जैसा वे हैं। सामजस्य और सहयोग से सच्ची (स्वस्थ) सामाजिक प्रणाली का विकास हो सकता है।"[1]

EXERCISES

1. कल्पनावादी समाजवाद की परिभाषा दीजिये। इसकी विशेषताओ पर प्रकाश डालिये।
2. सेन्ट साइमन, चार्ल्स फारियर और राबर्ट ओवन के राजनीतिक विचारो का सक्षिप्त वर्णन कीजिए।
3. "सभी कल्पनावादी विचारक सम्पत्ति के निजी अधिकार की आलोचना करते है परन्तु वे उसका उन्मूलन नही चाहते" इस कथन के सन्दर्भ मे सेण्ट साइमन, चार्ल्स फोरियर और राबर्ट ओवेन के निजी सम्पत्ति के विचारो का वर्णन कीजिए।
4. कल्पनावादी समाजवादियो ने नवीन समाज को किस तरह आयोजित किया है? सेन्ट साइमन के 'उत्पादक समुदाय', फोरियर के 'फैलेंक्स" और ओवेन की बस्तियो का वर्णन कीजिए।

---

1 Maxey, Chester C *Political Philosophies*, pp 519 520

3 मार्क्सवाद

(Marxism)

मार्क्स का जीवन

कार्ल मार्क्स का जन्म जर्मनी में राइन नदी के तटवर्ती भाग में ट्रीव्ज (Treves) नामक स्थान पर मई 5, 1818 को हुआ। मार्क्स के माता पिता यहूदी वंश के थे। मार्क्स का पिता हर्शेल मार्क्स (Herschel Marx) एक मध्यम वर्गीय वकील था। जब मार्क्स छः वर्ष का था तो उसके माता पिता ने यहूदी धर्म त्याग कर ईसाई धर्म (Protestant Christian) अपना लिया और उनके बच्चे भी उसी धर्म के अनुयायी बन गये।

मार्क्स की प्रारम्भिक शिक्षा उसके भावी ससुर एवं उदार विचारक वैस्टफेलन (Westphalen) के घर पर तथा एक विद्यालय में हुई। बचपन में ही मार्क्स की हमदर्दी पीड़ित, शोषित एवं निर्धन लोगों के प्रति अत्यधिक थी। मार्क्स की बुद्धि इतनी कुशाग्र थी कि उसके अध्यापक उसकी प्रशंसा किये बिना नहीं रहते थे। मार्क्स के अध्यापक कहा करते थे कि "वह अनुकूल सम्भावनायें पूर्ण करेगा जो उसकी योग्यता से उचित ठहरती हैं।"

जब मार्क्स 17 वर्ष की आयु का था, अर्थात् 1835 में तो वह बॉन (Bonn) विश्वविद्यालय में कानून (Jurisprudence) की शिक्षा प्राप्त करने हेतु गया। परन्तु सन 1836 में उसने इसके स्थान पर दर्शन और इतिहास पढ़ना आरम्भ कर दिया। इन शास्त्रों का अध्ययन उसने बर्लिन (Berlin) और जेना (Jena) विश्वविद्यालयों में किया। मार्क्स पर हीगल के द्वन्द्वात्मक दर्शन (Dialectic Philosophy), एपिक्यूरस के भौतिकवाद और लुदविग फ्यूरबक के नास्तिक विचारों का अत्यधिक प्रभाव पड़ा। एँजिल्स लिखता है कि "हम सब फ्यूरबकियन बन गये।" सन् 1841 में मार्क्स ने जेना विश्वविद्यालय से डेमाक्रिटस और एपिक्यूरस के प्राकृतिक दर्शन में

भेद" (The Difference between the Natural Philosophy of Democritus and Epicurus) पर डाक्टरेट (Ph D) की उपाधि प्राप्त की।

अपना अध्यापन समाप्त करने पर मार्क्स की इच्छा थी कि वह विश्व विद्यालय मे अध्यापक के पद पर नियुक्त हो जाय। परन्तु जब उससे हमदर्दी रखने वाले फ्यूरबेक और ब्रुनो ब्यूर (Bruno Bauer) को सरकार की प्रतिक्रियावादी नीतियो के कारण अध्यापन कार्य से निष्कासित कर दिया तो मार्क्स के अध्यापक बनने के स्वप्न समाप्त हो गये। अपने जीविकोपार्जन के लिए मार्क्स अक्टूबर 1842 मे कोलोने (Cologne) नगर मे प्रजातान्त्रिक उदार विचारो वाले रीनिशे जीतुंग (Rheinische Zeitung) पत्र का सम्पादक बन गया। परन्तु परशिया के अधिकारियो से, क्रान्तिकारी विचारो के कारण, सघर्ष हो गया और मार्क्स को अगले ही वर्ष पत्र का प्रकाशन बन्द करना पड़ा और वह बेकार हो गया। इस बेकारी के काल मे मार्क्स ने इगलण्ड, फ्रास, जर्मनी और अमरीका के इतिहास का खूब अध्ययन किया, उसने मैक्यावली, रूसो, मौंटेस्क्यू की रचनाओं का तथा काल्पनिक समाजवादियो का विशेषकर सन्त साइमन और फोरियर की रचनाओ का गहरा अध्ययन किया। इसी दौरान मे मार्क्स का ध्यान समाजवादी साहित्य की ओर बढ़ा।

सन् 1843 मे, 25 वर्ष की आयु मे, मार्क्स ने जनी वॉन वैस्टफेलन, जो परशिया के कुलीन की पुत्री थी, विवाह कर लिया और दोनो पेरिस चले गये। पेरिस मे मार्क्स एक क्रान्तिकारी पत्र "फ्रैंको जर्मन अब्द कोशो" (Franco German Year Book) का सम्पादक बन गया। परन्तु पत्र को एक प्रकाशन के बाद ही बन्द करना पड़ा। पत्र मे मार्क्स ने "हर चीज की जो विद्यमान है निष्ठुर आलोचना" की, विशेषकर शस्त्रो की आलोचना तो अत्यधिक मात्रा मे की। मार्क्स ने जनसाधारण और सर्वहारा वर्ग को विशेष अपील की। इस पत्र मे मार्क्स ने 'कानून के आर्थिक आधार" (Economic Basis of Law) लेख लिखा। इस पत्र मे फ्रेड्रिक ऐंजिल्स का भी लेख प्रकाशित हुआ। दोनो एक दूसरे के विचारो से बहुत प्रभावित हुए। सितम्बर 1844 मे जब फ्रेड्रिक ऐंजिल्स फ्रास आया तो उन दोनो मे गहरी मित्रता हो गई जो उन्नीसवी शताब्दी की महत्त्वपूर्ण साहित्यिक मित्रता बन गई। इतिहास मे ऐसी अटूट मित्रता का उदाहरण कम मिलता है। यह बौद्धिक और आध्यात्मिक साझेदारी की अद्वितीय चरमसीमा थी। इसके बाद दोनो ने न केवल राजनीतिक कार्यों मे एक दूसरे का सहयोग दिया बल्कि अपने शोध कार्यों और लेखो मे भी एक दूसरे की सहायता की। यदि मार्क्स समाजवाद के सिद्धान्त बनाने वाला था तो ऐंजिल्स उसका प्रचारक और आयोजक था।

सन 1845 मे मार्क्स को पेरिस छोडने के लिए आदेश दिया गया और वह ब्रूसेल्ज (Brussels) आ गया जहाँ उसने अगले ही वर्ष साम्यवादी पत्राचार समिति

(Communist Correspondence Committee) का गठन किया। परिस और ब्रूसेल्ज मे अपने प्रवास काल म मार्क्स का अनेक समाजवादियो एव उग्र सुधारवादिया से निकट सम्पर्क स्थापित हुआ जिनमे से आदर्श साम्यवादी केबेट (Cabet), दार्शनिक अराजकतावादी प्रोधा (Proudhon), साम्यवादी अराजकतावादी बकुनिन (Bekunin), क्रान्तिकारी कवि हीन (Heine), क्रान्तिकारी देश भक्त मैजिनी का मन्त्री वुल्फ (Wolff) और एँजिल्स, जिसका वर्णन ऊपर किया जा चुका है, मुख्य थे।

सन् 1847 मे मार्क्स और एँजिल्स ने लन्दन मे साम्यवादी लीग (the Communist League) की स्थापना की। इस लीग के आग्रह पर दोनो ने साम्यवादी नियमो का एक वक्तव्य तैयार किया जो फरवरी 1848 मे प्रकाशित हुआ। साम्यवादी नियमो का यह वक्तव्य ही आज विश्व म साम्यवादी घोषणा पत्र (Communist Manifesto) के नाम से प्रसिद्ध है।

सितम्बर 1864 मे मार्क्स ने लन्दन मे अन्तर्राष्ट्रीय श्रमिक वर्ग के समुदाय (International Workingmen's Association), जो विश्व म प्रथम अन्तर्राष्ट्रीय (First International) के नाम से विख्यात है, का गठन किया।

लन्दन मे रह कर मार्क्स ने अपना जीवन बडी गरीबी मे बिताया। इस गरीबी की हालत म एँजिल्स ने उनकी आर्थिक सहायता की। एँजिल्स ने मार्क्स की 350 पौंड वार्षिक पेन्शन लगा दी थी और मार्क्स दिन भर अपना समय ब्रिटिश म्यूजियम के पुस्तकालय तथा अन्य पुस्तकालया म अध्ययन मे गुजारता। मार्क्स ने एँजिल्स के प्रति कृतज्ञता को स्पष्ट शब्दो मे व्यक्त किया है और अपने सिद्धान्ता को "हमारे सिद्धान्तों" (मार्क्स और एँजिल्स) की सज्ञा दी है।

मार्क्स ने जिन रचनाओ का निर्माण किया उनमे से मुख्य निम्न हैं—

1 एन इन्ट्रोडक्शन टू दी क्रिटिसिज्म ऑफ हीगल्स फिलासोफी आफ राइट (An Introduction to the Criticism of the Hegel's Philosophy of Right)—इसमे मार्क्स ने हीगल के अधिकार दर्शन की आलोचना का परिचय दिया।

2 सन 1844 मे एँजिल्स के साथ मिलकर पवित्र परिवार (Holy Family) नामक ग्रन्थ लिखा। इस ग्रन्थ मे निजी सम्पत्ति को सभी आर्थिक और राजनीतिक बुराइयो का मूल कारण बताया गया।

3 सन् 1847 में मार्क्स ने प्रोधा के आर्थिक विचारो के विरुद्ध एक वाद विवाद रचना (Polemic) प्रकाशित की जिसे उसने 'दर्शन की दरिद्रता" (Poverty of Philosophy) की सज्ञा दी।

4 सन् 1848 म मार्क्स और एँजिल्स ने साम्यवादी घोषणा पत्र (Communist Manifesto) तैयार किया।

5 सन् 1859 मे राजनीतिक अर्थ व्यवस्था की विवेचना (Critique of Political Economy, 1859) प्रकाशित की। इसमे उसने इतिहास की भौतिकवादी व्याख्या और अतिरिक्त मूल्य के सिद्धान्त का वर्णन किया।

(6) उद्घाटन भाषण (Inaugural Address, 1864)

(7) सन् 1865 मे मूल्य, कीमत और लाभ (Value, Price and Profit, 1865)

(8) सन 1867 म दास केपिटल का प्रथम खण्ड प्रकाशित हुआ (Das Capital, 1867) । यह मार्क्स के समाजवाद की बाईबल के नाम से प्रसिद्ध है। अन्य दो खण्डो को ऐंजिल्स ने मार्क्स के पूर्ण तथा अपूर्ण पत्रो को एकत्रित कर क्रमश सन् 1885 और सन् 1894 म प्रकाशित किया।

(9) सन् 1870 1871 म सिविल वार इन फ्रास (The Civil War in France)।

(10) गोथा प्रोग्राम (Gotha Programme) और क्रान्ति तथा प्रति क्रान्ति (Revolution and Counter Revolution)।

मार्क्स का युग तथा उसका वैज्ञानिक समाजवाद (Age of Marx and his Scientific Socialism)

जिस युग मे मार्क्स पैदा हुआ तथा जिस युग मे उसका देहान्त हुआ वह एक भौतिक तथा तकनीकी उपलब्धियो का युग था। यह युग जहाँ, एक ओर, भौतिक उपलब्धियो, वैज्ञानिक विश्राम और प्रत्यक्ष पूर्ति का युग था वहा, दूसरी ओर, मानव घटो धार्मिक अविश्वास और शून्यता का भी युग था। मार्क्स ने इस शून्यता की पूर्ति अपने वैज्ञानिक समाजवाद के द्वारा की।

मार्क्स उन्नीसवी शताब्दी का एक मात्र समाजवादी लेखक नही था जिसने 'समाज के परिवर्तन' की बात कही। मार्क्स से पहले अनेक ब्रिटिश और फ्रासीसी लेखक हुए जिन्होंने समाजवादी विचारधारा की अच्छी खासी फसल तैयार कर रखी थी। इनमे से मुख्य लेखक थे रॉबर्ट ओवेन (Robert Owen), हॉजस्किन (Hodgskin), अलेक्जन्डर ग्रे (Alexander Gray), जी० डी० सिसमण्डी (Jean De Sismondi), विलियम थॉम्पसन (William Thompson) डाक्टर हॉल (Doctor Holl), रिकार्डो (Ricardo), एडम स्मिथ (Adam Smith), सन्त साइमन (Saint Simon), चार्ल्स फोरियर (Charles Fourier), केबेट (Cabet), आदि। ये सब लेखक व्यक्तिवाद तथा उदारवाद की अहस्तक्षेप नीति के आलोचक थे। इनका विश्वास था कि व्यक्ति का हित उसे अकेला छोडने मे नही बल्कि सामाजिक हित मे ही उसका हित सम्मिलित है।

मार्क्स ने जिन सिद्धान्तो का प्रतिपादन किया वे उसके मौलिक सिद्धान्त नहीं थे। उसके पूर्व के समाजवादियो ने उन सब सिद्धान्तो की व्याख्या की थी जिनका मार्क्स ने प्रतिपादन किया। सन्त साइमन और ग्यूजाट (Guizot) वर्ग सघर्ष (Class war) के विचार का फला रहे थे, प्रोधों (Proudhon) ने इस विचार की

विस्तृत व्याख्या की कि 'सम्पत्ति चोरी है' फोरियर ने मध्यम वर्ग की व्यावसायिक निरंकुशता की बात की थी, सिसमण्डी ने मंदी, तेजी और मन्दी की अनिवार्यता पर बल दिया था, ओवेन ने यह आशा व्यक्त की थी कि मिल युग (Mill age) प्रतियोगिता के स्थान पर 'सहयोग' का युग होगा। मार्क्स इन सब लेखकों को काल्पनिक समाजवादी (Utopian Socialists) कह कर ही नहीं पुकारता था वरन् उनसे घृणा भी करता था। उसका विश्वास था कि ये काल्पनिक समाजवादी पूँजीवाद की बुराइयों पर तो प्रहार करते हैं, परन्तु पूँजीवादी अवस्था (प्रणाली) का विरोध नहीं करते। वह उन्हें ऐसे हवाई घोड़े दौड़ाने वाले समाजवादी कहता था जिनके पास कोई प्रोग्राम नहीं था।

यह ठीक है कि मार्क्स ने अपने विचारों को अनेक स्रोतों से प्राप्त किया, उनकी 'ईंटें और औजार'' ब्रिटिश और फ्रांसीसी समाजवादियों द्वारा प्रदत्त किये गये थे। परन्तु मार्क्स का महत्त्व सिद्धान्तों या विचारों की मौलिकता के कारण नहीं बल्कि इस कारण है कि उसने इन सिद्धान्तों और विचारों को एकत्रित किया, अपनी आवश्यकतानुसार उनमें काट छाँट की और उन्हें क्रमबद्धता (Sequence) और तार्किक सम्बद्धता (Logical Coherence) प्रदान की। मार्क्स ने ही सर्वहारा वर्ग को 'शक्ति' और 'आन्दोलन' का रूप दिया। मैक्सी के शब्दों में, "मार्क्स से पहले सर्वहारा वर्ग मुख्यतः एक विरोध और आकांक्षा ही थी परन्तु मार्क्स के बाद वह एक भयंकर शक्ति बन गया।"[1]

यह मार्क्स के शक्तिशाली तर्कों का ही फल था कि साम्यवाद एक अन्तर्राष्ट्रीय आन्दोलन बन सका। उसके एक नारे 'विश्व के मजदूरो एक हो जाओ' ने सारे साम्यवादी आन्दोलन में जान पैदा कर दी जो उसके पूर्ववर्ती समाजवादियों के विचारों या सिद्धान्तों में पैदा कर सकने की शक्ति नहीं थी। वेपर ने ठीक लिखा है कि "उन्होंने सुन्दर गुलाब के फूलों की कल्पना तो की परन्तु गुलाब के वृक्षों के लिए कोई धरती तैयार नहीं की।"[2]

मार्क्स ने अपने समाजवाद के सिद्धान्त को वैज्ञानिक समाजवाद (Scientific Socialism) या सर्वहारा वर्ग के समाजवाद (Proletarian Socialism) की संज्ञा दी। उसका समाजवाद "भूत के इतिहास के अध्ययन पर आधारित है" और 'ऐतिहासिक विकास की अनिवार्य उत्पत्ति'' है। यह केवल पूँजीवाद की बुराइयों पर ही प्रहार नहीं करता बल्कि पूँजीवादी व्यवस्था का ही सफाया चाहता है। मार्क्स का समाजवाद इसी कारण वैज्ञानिक समाजवाद है कि उसने समाज के स्वरूप

---

1 "Proletarianism before Marx was mainly protest and aspiration proletarianism after Marx (was) a tremendous force —Maxey Political Philosophies, pp 569 570

2 Wayper, C L *Political Thought*, p 196

और विकास के नियमो का वैज्ञानिक ढग से पता लगाने का प्रयास किया और उसने वैज्ञानिक ढग से बताया कि समाज म परिवतन अकस्मात और अकारण ही नही होते बल्कि बाह्य प्रकृति मे होने वाले परिवतनो की भाति कुछ विशिष्ट नियमो के अनुसार होते हैं। मार्क्स ने वज्ञानिक विश्लेषण द्वारा इन्ही नियमो को ढूढ निकाला और उन्हें वैज्ञानिक समाजवाद की सज्ञा दी।

मार्क्स के विचारों के स्रोत

मार्क्स के वैज्ञानिक समाजवाद के आधारो की व्याख्या करने से पहले यह जान लेना आवश्यक है कि किन विचारधाराओ का प्रभाव उसके मस्तिष्क पर पडा। ये विचारधारायें निम्न है

(1) हीगल का दशन, विशेषकर उसकी द्वन्द्वात्मक प्रणाली,

(2) फ्रेंच समाजवादी, विशेषकर सन्त साइमन, फोरियर और कैबेट,

(3) ब्रिटिश समाजवादी, विशेषकर ओवेन हाजिस्कन, ग्रे, और रिकार्डो।

1 हीगल के दशन का प्रभाव

मार्क्स की विचारधारा पर सबसे अधिक प्रभाव हीगल की विचारधारा का पडा। हीगल से मार्क्स ने इस तथ्य को सीखा कि 'विश्व की प्रकृति गतिशील है, यह स्थिर नही, यह सतत प्रवाह (flux) की स्थिति म है, यदि इसे समझना है तो इसे विकास की प्रक्रिया मे ही समझा जा सकता है, यह विकास आवश्यक रूप से क्रमिक और द्वन्द्वात्मक तरीके से होता है जो सीधी रेखा की भाँति नही बल्कि टेढे मेढे (Zig zag) तरीके से होता है। यह "उस जहाज के समान है जो प्रतिकूल हवा के विरुद्ध सघष कर रहा है।" हीगल ने सारे विकास की प्रक्रिया (process) को द्वन्द्व की सज्ञा दी। समाज की प्रगति सघष के आधार पर होती है, विकास सघष और तुलना से ही सम्भव है। हीगल की द्वन्द्वात्मक पद्धति को इस फारमूले (Formulae) मे व्यक्त किया जा सकता है "वाद, प्रतिवाद और सवाद" (Thesis, anti thesis and Synthesis)। ये ही विकास की तीन अवस्थायें हैं। वाद का पतन उसमे अन्तर्निहित विरोधाभासो से होता है और वह इस कारण अपने विरोधी प्रतिवाद को जन्म देता है। वाद और प्रतिवाद दोनो बहुत देर तक जीवित नही रह सकते। निरन्तर विकसित होने वाला विवेक या स्पिरिट (Spirit) दोनो के विरोध को समाप्त कर एक नये सवाद को जन्म देता है। इस तरह द्वन्द्वात्मक प्रणाली के आधार पर हीगल ने विचारो (Ideas) की व्याख्या की। उसका विश्वास था कि विचार जगत म यह द्वन्द्व निरन्तर प्रकट होता रहता है। हीगल के लिए द्वन्द्व का मुख्य केन्द्र विचार या आत्मा है।

मार्क्स हीगल के विकास की तीन द्वन्द्वात्मक अवस्थाओ को स्वीकार करता है परन्तु वह उसकी आत्मा या ब्रह्म (World Spirit) के सिद्धान्त को स्वीकार नही करता। जहाँ हीगल के लिए 'आत्मा सब कुछ है वहाँ मार्क्स के लिए 'पदार्थ'

(Matter) के अतिरिक्त कुछ नही। मार्क्स ने हीगल के आदर्शवाद का त्यागा और विश्व की भौतिकवादी व्याख्या को स्वीकार किया।

2 फ्रेंच समाजवादियों का प्रभाव

मार्क्स के विचारो पर फ्रास के समाजवादियो का प्रभाव भी अत्यधिक था। सत साइमन ने ऐतिहासिक प्रणाली को अपनाया और यह प्रचार किया कि औद्योगिक युग की सम्भावनाओ को आर्थिक आधारा पर ही समझा जा सकता है अर्थात् उत्पादन के साधना म परिवतन ही राजनीतिक परिवतन के कारण होते हैं। फोरियर ने भी इतिहास की आर्थिक व्याख्या पर बल दिया। परन्तु मार्क्स पर केबट के इन विचारो का कि 'साम्यवाद समाज की स्थापना तभी सम्भव है जब सारे आवश्यक कार्यों पर राज्य का नियन्त्रण हो" अत्यधिक पडा। यह इस बात से स्पष्ट है कि मार्क्स और ऐंजिल्स ने सन् 1847 मे जब साम्यवादी लीग की स्थापना की तो उन्होने 'समाजवाद' शब्द के स्थान पर 'साम्यवाद' शब्द का प्रयोग किया। अपने सिद्धान्त को काल्पनिक समाजवादियो के सिद्धान्त से पृथक रखने के लिए भी उन्होंने साम्यवाद शब्द का प्रयोग किया। 'वग सघर्ष" के वाक्याश को भी मार्क्स ने फ्रासीसी समाजवादियो से प्राप्त किया था। "वर्ग विहीन" समाज की कल्पना को मार्क्स ने सन्त साइमन के विचारो से प्राप्त किया। साइमन ने इस बात का भी प्रतिपादन किया था कि श्रम करने वालो को ही जीवित रहने का अधिकार" है। फ्रासीसी समाजवादियो ने जो अमीर गरीब के सघर्ष पर प्रकाश डाला था मार्क्स ने उसी से मालिक और मजदूर अर्थात पूँजीपति और सर्वहारा के सघर्ष की व्याख्या की।

3 ब्रिटिश समाजवादियो का प्रभाव

मार्क्स के विचारो पर ब्रिटिश समाजवादियो और अर्थशास्त्रियो का प्रभाव भी था। ओवेन की यह विचारधारा कि "मानव का चरित्र परिस्थितियों की बनावट" है मार्क्स के सिद्धान्त का पूर्वानुमान है। थाम्पसन, हॉजस्किन और अन्य ब्रिटिश समाजवादियो ने यह विचार व्यक्त किया था कि "श्रम ही मूल्य का स्रोत है (*Labour* ■ the source of value)। उनकी विचारधारा मे अतिरिक्त मूल्य के सिद्धान्त की भी व्याख्या मिलती है। अलेक्जेण्डर ग्रे का मत है कि 'मार्क्स के मूल्य का सिद्धान्त रिकार्डो के सिद्धान्तो से अधिक नही।'

मार्क्स के सिद्धान्त

मार्क्स के आर्थिक सवाद के मुख्य आधार निम्न हैं —

(1) ■ द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद (Dialectic Materialism)

(2) आर्थिक निर्धारणवाद या इतिहास की भौतिकवादी व्याख्या (*Economic* Determinism or Materialistic interpretation of History)।

(3) अतिरिक्त मूल्य का सिद्धान्त (Doctrine of Surplus Value)।

(4) पूजी के केन्द्रीयकरण का सिद्धान्त (Doctrine of Capitalist Concentration)।

(5) वर्ग सघर्ष का सिद्धान्त (Doctrine of Class War)।

(6) सर्वहारा वर्ग की सतत बढने वाली निधनता का सिद्धान्त (Doctrine of Increasing Proletarian Impoverishment)

(7) आर्थिक सकटो के पुनरागमन का सिद्धान्त (Doctrine of recurrent economic Crisis)।

I द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद
(Dialectic Materialism)

द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद दो शब्दो से मिलकर बना है। एक 'द्वन्द्व' तथा दूसरा भौतिक'। 'द्वन्द्व' का अभिप्राय 'वाद विवाद' या विकास से है।' 'भौतिक' की व्याख्या मार्क्स या एंजिल ने नही की यद्यपि इस शब्द का प्रयोग उनकी रचनाओ म सवत्र व्याप्त है। द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद द्वन्द्व प्रणाली द्वारा प्रकृति म भौतिक पदार्थों के महत्त्व तथा उनके विकास को व्यक्त करने की भौतिकवादी विधि है।

हीगल का द्वन्द्ववाद

हीगल का विश्वास था कि विश्व या अनुभव का ज्ञान जगत निरन्तर प्रवाह मे रहता है। यह निश्चित बिन्दु की ओर गतिमान रहता है। विश्व विकास की प्रक्रिया है जिसमें उसके उद्देश्यो को प्राप्त करने की अनिवार्य आवश्यकता बनी रहती है। विकास की सारी प्रक्रिया तार्किक है और वह तार्किक नियमो द्वारा शासित होती है। "यह कोई पागल या अनियन्त्रित या निरर्थक प्रवाह नही अपितु यह व्यवस्थित विकास है, एक उन्नति है"। हीगल ने इस द्वन्द्ववाद मे परिवर्तन की तार्किक प्रक्रिया को एक त्रैत (triad) मे व्यक्त किया है जो अस्तित्व, असत्व और अनुरूप (being nothing, becoming) है या वाद, प्रतिवाद और सवाद (thesis, anti thesis and Synthesis) है। आरम्भ तो वाद से होता है जो स्वय विरोधाभासो को जन्म देता है जिसे प्रतिवाद कहते है और जब इसके प्रतिवाद उत्पन्न होते हैं तो यह सवाद मे परिवर्तित हो जाता है। दूसरे शब्दो मे, इस परिवर्तन की प्रक्रिया म पहले वाद का प्रतिवाद या विपरिणाम (negation) होता है और बाद मे उच्च स्वरूप के लिए विपरिणाम का विपरिणाम (negation of negation) होना है। इस तरह विकास क्रम पेचकस की गरारियो की तरह टेढी मेढी चक्करदार परन्तु ऊपर की ओर जाने वाली रेखा की तरह है। इसका प्रत्येक चक्कर वाद प्रतिवाद और सवाद के त्रैत (triad) से मिलकर बना है, प्रत्येक कडी पहली कडी का विलोम करती है परन्तु साथ ही नई कडी का जन्म देती है और थोडा ऊँचा उठा देती है।

एंजिल्स ने इस विपरिणाम के विपरिणाम (negation of negation) के अनेक उदाहरण दिये है जिनम स तीन यहाँ प्रस्तुत किये गये हैं। प्रमुख उदाहरण जौ (Barley) क दाने का दिया गया है। वह कहता है कि 'लाखों जौ क दाना का प्रति

दिन पीसा जाता है उबाला जाता है और उनकी शराब बनाई जाती है तथा उनका प्रयोग किया जाता है, परन्तु जब जौ के एक दाने को उन परिस्थितियो से मिलाया जाता है जो उसके लिए स्वाभाविक है अर्थात जब उसे भूमि मे बो दिया जाता है तब इसम भूमि की गर्मी और नमी के कारण, विशेष परिवर्तन होता है। यह गलकर, नष्ट हो कर अकुरित होता है । यह दाने के रूप मे नही रहता । इसका विपरिणाम होता है और इसके स्थान पर पौधा उत्पन्न होता है । यह पौधा बढता है । इसमें फूल आते हैं । इसमे दाने आते हैं और दाने पक कर एक दफा फिर जौ के दानो के रूप मे प्रकट होते हैं और पौधा सूख कर नष्ट हो जाता है । यही विपरिणाम का विपरिणाम है (negation of negation) । परन्तु इस विपरिणाम के फलस्वरूप जौ का एक दाना नही बल्कि दस, बीस या तीस गुणा दाने प्राप्त होते हैं ।"

इसी प्रकार दूसरा उदाहरण तितली का दिया जाता है । तितली वाद है, इसका अण्डे से निकलना प्रतिवाद है और अनेक अवस्थाओ से होते हुए फिर अण्डे को पैदा करना तथा समाप्त हो जाना सवाद है ।

तीसरा उदाहरण चट्टानो का दिया जाता है जो धूप, पानी, आँधी, तूफान, ठण्ड मे टूटती रहती ह और समुद्र के पानी मे इनका प्रतिवाद होता रहता है और फिर प्राकृतिक कारणो से इनका सवाद चट्टानो के रूप मे होता है । ये तीनों दृष्टान्त (जौ, तितली, और चट्टान) वाद, प्रतिवाद और सवाद की प्रक्रिया को स्पष्ट करते हैं जि ह विपरिणाम के विपरिणाम (negation of negation) का नियम भी कहते हैं ।

द्वन्द्ववाद का दूसरा नियम विरोधी तत्त्वो का आन्तरिक सघर्ष है जो विकास और गतिशीलता का मुख्य कारण है । प्रत्येक वस्तु म विरोधी तत्त्व और गुण मिल रहते हैं । इसका उदाहरण चुम्बक (magnet) से दिया जाता है जिसम दो ध्रुव —उत्तरी तथा दक्षिणी ध्रुव—सदा विद्यमान रहते हैं और एक दूसरे से विरोधी होते हुए भी पृथक् नही रह सकते । दोनो ध्रुव चुम्बक के छोटे से छोटे कण और बडे से बडे कण म उसी प्रकार विद्यमान होते हैं ।

द्वन्द्ववाद का तीसरा नियम मात्रात्मक से गुणात्मक परिवर्तन का है । विपरिणाम की क्रिया से केवल दानो की मात्रा म ही वृद्धि नही होती बल्कि यदि बाग के माली की भांति पौधे और बीज की देख रेख की जाय तो अच्छे दाने भी प्राप्त हो सकते हैं अर्थात गुणात्मक परिवर्तन प्राप्त हो सकता है । यह गुणात्मक परिवर्तन सहसा छलाग लगा कर होता है । यहा पानी का उदाहरण दिया जाता है । पानी को यदि गरम किया जाय तो उसम विशेष परिवर्तन नही होता परन्तु जब उसे उष्मा 100° सेन्टीग्रेड तक दी जाय तो उसी पानी म एक सहसा गुणात्मक परिवर्तन हो जाता है और वह भाप की शक्ति पा जाता है । दूसरी ओर यदि उसी पानी को ठण्डा किया

जाय तो उसमे गुणात्मक परिवर्तन तब तक नहीं होता अर्थात तब तक नहीं बनता जब तक 0° सन्टीग्रेड तक ही ठण्डा न किया जाय।

उपर्युक्त द्वन्द्ववाद की प्रक्रिया से स्पष्ट है कि विकास की सारी प्रक्रिया तार्किक है जिसके मुख्य नियम निम्न हैं —

(i) विश्व या अनुभव का ज्ञात जगत निरन्तर प्रवाह या गति मे रहता है। परिवर्तन नीचे से ऊपर की ओर उन्नति के मार्ग पर होता है। पुराने घटकों का अन्त और नये घटकों का आगमन स्वाभाविक है। महत्त्वपूर्ण परिवर्तन धीरे धीरे न हो कर सहसा होते हैं।

(ii) एक युग की सभी संस्थायें, धर्म, दर्शन कला राजनीति, इतिहास आदि एक दूसरे से पृथक या स्वतन्त्र नहीं होती बल्कि उनमें सम्बद्धता और एकता होती है।

(iii) विकास और गतिशीलता का मुख्य कारण विरोधी तत्त्वों का अन्तर्निहित संघर्ष है।

(iv) परिवर्तन मात्रात्मक से गुणात्मक की ओर होता है।

मार्क्स का द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद

हीगल और मार्क्स मे द्वन्द्वात्मक समानता होते हुए भी उनमे मूल भेद है। मार्क्स ने दास कैपिटल (Das Capital) मे इस भेद को इस प्रकार व्यक्त किया है "मेरी द्वन्द्वात्मक प्रणाली हीगल की प्रणाली से केवल भिन्न ही नहीं बल्कि उसके ठीक विपरीत है हीगल की रचनाओं मे द्वन्द्व अपने सिर के बल खडा है। यदि इसकी रहस्यवादी लपेटों में छुपे हुए तार्किक तत्त्व को समझना है तो इसे पैर के बल सीधा खडा करना होगा (और) मैने इसे सीधा पैरों के बल खडा कर दिया है।' यही कारण है कि मार्क्स ने हीगल के इतिहास दर्शन का जो आधार भूत तत्त्व था—विचारों की प्रधानता (Predominance of Ideas)—उसे अस्वीकार कर दिया। दूसरे शब्दों में, मार्क्स ने हीगल के दार्शनिक आदर्शवाद को काल्पनिक कह कर पूर्णतया अस्वीकार कर दिया।

मार्क्स कहता है कि तार्किक एवं श्रेष्ठ विचार जिसकी हीगल कल्पना करता है वह एक रहस्यवादी विचार है (a mystic conception) क्योंकि उसे न तो देखा जा सकता है और न ही उसे स्पर्श किया जा सकता है और न ही इस बात की जाँच की जा सकती है कि उनका मानव मस्तिष्क एवं व्यवहार पर क्या अनुकूल एवं प्रतिकूल प्रभाव पडता है। मार्क्स कहता है कि जब किसी विचार को देखा नहीं जा सकता, जिसे स्पर्श नहीं किया जा सकता, जिसकी जाँच नहीं की जा सकती वह काल्पनिक और रहस्यवादी विचार है वैज्ञानिक नहीं। भौतिक एवं रासायनिक शास्त्रों की भाँति मार्क्स सामाजिक क्षेत्र में केवल उस जगत को वैज्ञानिक मानता है जो दिखायी देता है, जिसको स्पर्श किया जा सकता है या जिसकी जाँच की जा सकती है। अर्थात्

मार्क्स के लिए भौतिक पदार्थ—मिट्टी, पत्थर, हड्डी, मांस, आदि—ही सर्वथा सत्य है अदृश्य विचार या विश्वास नहीं। हीगल के लिए 'विश्वात्मा' रहस्यवादी ज्ञान से अगम्य है परन्तु मार्क्स के लिए पदार्थ दृश्य होने से गम्य है। मार्क्स का विश्वास है कि निरन्तर प्रयत्नों और प्रयोगों द्वारा इसे समझा जा सकता है। मार्क्स ने इन्हीं सतत नियमों और प्रयोगों के आधार पर समाजवाद को एक स्वप्न के स्थान पर मानवता का विज्ञान बना दिया।

हीगल के लिए इतिहास निरपेक्ष मात्र—विवेक (Reason), स्वतन्त्रता (Freedom), ईश्वर (God) और विश्वात्मा (World Spirit)—की सिद्धि है। परन्तु मार्क्स के लिए, हराक्लिटस (Heraclitus) की भांति, अन्तिम वास्तविकता पदार्थ (Matter) है। मार्क्स के लिए विश्व वह ज्योति है जिसका निर्माण क्रमिक रूप से उन्नति और पतन चक्र द्वारा हुआ न कि किसी विश्वात्मा या ईश्वर द्वारा। हीगल की विचारधारा में इतिहास की प्रगति में विचारों (Ideas) की प्रधानता है परन्तु मार्क्स के लिए विचार केवल अनुभव की सृष्टि मात्र या उसका प्रतिबिम्ब मात्र है। "पदार्थ मस्तिष्क की उपज नहीं बल्कि मस्तिष्क स्वयं ही पदार्थ की उपज है।"[1]

हीगल के लिए इतिहास के महत्त्वपूर्ण आन्दोलन विचारों के क्षेत्र में पाये जाते हैं परन्तु मार्क्स के लिए ये आन्दोलन भौतिक क्षेत्र में पाये जाते हैं। जहां हीगल के लिए विश्व के महान धर्मों—यहूदी धर्म, कानफ्यूसियसवाद, इस्लाम, बौद्धधर्म—के आदर्शों का प्रभाव इतिहास में अत्यधिक है वहां मार्क्स के लिए ये मत इतिहास के महान आन्दोलनों के कारण नहीं, परिणाम हैं। मार्क्स कहता है कि क्रान्तियां विचारों से नहीं बल्कि आर्थिक वातावरण से उत्पन्न होती हैं। परन्तु इसका यह अभिप्राय नहीं कि मार्क्स विचारों के अस्तित्व से इन्कार करता है। वह उनके अस्तित्व को स्वीकार तो करता है परन्तु उन्हें द्वितीय स्थान प्रदान करता है। मार्क्स के सिद्धान्त में प्राथमिक स्थान पदार्थ (Matter) का है मस्तिष्क (Mind or Ideas) का नहीं। मानव मस्तिष्क में निःसन्देह विचार होते हैं परन्तु उनका स्वरूप वही होता है जो भौतिक वातावरण निर्धारित करता है 'विश्व का दृश्य ठीक उस प्रकार है जिस प्रकार पदार्थ गति करता है या सोचता है।'[2] 'पदार्थ से विचार अलग करना असम्भव है क्योंकि पदार्थ ही प्रत्येक परिवर्तन का आधार है।'[3]

---

1 'Matter is not a product of mind, but mind itself is merely the highest product of matter"

2 The world picture is a picture of how matter moves and how matter thinks —Lenin Quoted by Stalin *Dialectical and Historical Materialism* p 20

3 It is impossible to separate thought from matter that thinks matter is the subject of all changes

द्वन्द्वात्मक भौतिकवादी के लिए पदार्थ गतिशील है, निष्क्रिय या गतिहीन नहीं। पदार्थ अपनी आन्तरिक प्रकृति की आवश्यकता से गतिमान रहता है। इस तरह द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद पदार्थ से उसकी गति में अधिक रुचि रखता है। जिस तरह हीगल की दैवी इच्छा (Divine Will) स्वतः आत्मा की पूर्ण सिद्धि की ओर ले जाती है उसी प्रकार मार्क्स के पदार्थ की मार्मिक उर्जा (vital energy) अनिवार्यतः पूर्ण मानव समाज की ओर ले जाती है। मार्क्स के लिए यह पूर्ण मानव समाज वर्ग विहीन समाज की स्थापना है जिसमें न तो कोई वर्ग होगा और न किसी वर्ग का शोषण होगा। दूसरे शब्दों में, इस सम्पूर्ण समाज में वर्ग संघर्ष समाप्त हो जायगा।

द्वन्द्वात्मक भौतिकवादी जो हीगल का अनुसरण करते हैं उनके लिये "गति विरोधों के संघर्ष से सम्भव होती है।" इतिहास की प्रत्येक अवस्था अपने अन्तर्निहित विरोधाभासों के कारण विरोधी तत्त्वों को जन्म देती है और दोनों के संघर्ष (वाद तथा प्रतिवाद से) से संवाद की उत्पत्ति होती है। यह क्रिया सर्वत्र बनी रहती है जब तक कि वर्ग विहीन समाज के उद्देश्य की प्राप्ति नहीं हो जाती। इसमें परिवर्तन क्रमिक होता है परन्तु परिवर्तन की एक स्थिति ऐसी आ जाती है जहाँ वह सहसा (अचानक) छलांग लगाता है। जैसे पानी में गुणात्मक परिवर्तन भाप या बर्फ में होता है उसी प्रकार समाज में विरोधाभासों से सामन्तवाद से पूँजीवाद और पूँजीवाद से समाजवाद की ओर गुणात्मक परिवर्तन सहसा होता है। सामाजिक क्षेत्र में इस प्रकार के सहसा परिवर्तनों को क्रान्ति कहा जाता है जैसे औद्योगिक क्रान्ति, फ्रांस की राज्य क्रान्ति, रूसी क्रान्ति, चीनी क्रान्ति।

स्पष्ट है कि हीगल की तरह मार्क्स द्वन्द्वात्मक प्रणाली का अनुसरण करता है। परन्तु जहाँ हीगल के लिए 'आत्मा' (spirit) सर्वव्यापी है। वहाँ मार्क्स के लिए पदार्थ सर्वव्यापी है। दोनों का विकास की आवश्यकता है और दोनों ही आन्तरिक द्वन्द्वात्मक प्रणाली से विकास करते हैं। हीगल का अनिवार्य ध्येय 'विचार' (Idea), 'विश्वात्मा' (World Spirit) है जो स्वतः सचेत है मार्क्स के लिए अनिवार्य ध्येय वर्ग विहीन समाज है जो उत्पादन के लिए पूर्णतया संगठित है और अपने आप में पूर्ण है। लेनिन ने ठीक कहा था कि "हीगल को समझे बिना मार्क्स को समझना कठिन है।"

द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद की आलोचना

1 द्वन्द्व के आधार पर विकास का विचार कोरी कल्पना है

हीगल और मार्क्स दोनों ने अपने उद्देश्य की सिद्धि के लिए—हीगल के लिए 'विचार', 'विवेक', 'विश्वात्मा' और मार्क्स के लिए पदार्थ, वर्ग विहीन समाज—द्वन्द्ववाद का सहारा लिया है। परन्तु दोनों ने यह सिद्ध करने का प्रयास नहीं किया कि जिस उद्देश्य को अनिवार्य समझ कर वे उसकी व्याख्या करते हैं क्या वह वैसा है। दोनों ने उसके दृष्टान्त दिये हैं प्रमाण नहीं। दोनों ने उसकी कल्पना की है उसे सिद्ध

नहीं किया। दोनों में द्वन्द्व रहस्यवादी आवरण पहने हुए है। एक कट्टर मार्क्सवादी को जौ के दाने में वाद, प्रतिवाद और संवाद की प्रक्रिया नजर आ सकती है परन्तु निष्पक्ष वैज्ञानिक को इसमें कोई आन्तरिक संघर्ष या विरोधाभास या द्वन्द्व नजर नहीं आता। द्वन्द्व के बिना भी यह घटना (phenomena) समझ में आ जाती है। इस तरह दोनों में द्वन्द्व कोरी कल्पना है।

2 विकास और गति चेतन पदार्थों में सम्भव है जड़ पदार्थों में नहीं

आलोचकों ने मार्क्स की भौतिकवादी कल्पना को ही चुनौती दी है। उनका कहना है कि द्वन्द्ववाद आदर्शवाद में भले ही सम्भव हो सकता है परन्तु भौतिकवाद में तो उसका तनिक भी मूल्य नहीं। विवेक या विश्वात्मा आन्तरिक आवश्यकताओं के कारण स्वयं विकसित हो सकती है परन्तु पदार्थ, जो केवल जड़ है और जिसकी कोई आत्मा नहीं वह स्वयं विकसित नहीं हो सकता। इसमें कोई ऐसी शक्ति नहीं जिसे वह वास्तविकता में बदल सके। इसमें स्वयं विकसित होने की क्षमताएँ नहीं। जो भी परिवर्तन पदार्थ या जड़ जगत में होते हैं वे बाह्य शक्ति के प्रभाव के कारण हैं जिसके अधीन उसे रहना पड़ता है। इसके अतिरिक्त जड़ जगत की सम्बद्धता की चेतन जगत की सम्बद्धता से तुलना नहीं की जा सकती। यह नहीं कहा जा सकता कि जो नियम भौतिक जगत में काम आते हैं उसी रूप में वे नियम मानव समाज में भी लागू होते हैं।

एक आदर्श समाज की स्थापना (वर्ग विहीन समाज), जिसकी कल्पना मार्क्स करता है, केवल भौतिक आधार पर सम्भव नहीं हो सकती। यदि विवेक के आधार पर मार्क्स की सर्वहारा क्रान्ति का विश्लेषण किया जाय तो यह स्पष्ट हो जायगा कि क्रान्ति की प्रेरणा केवल भौतिक वातावरण से उत्पन्न नहीं होती बल्कि मानवीय चेतना से भी होती है।

3 मार्क्स के विचार असंगति पूर्ण हैं

मार्क्स स्वयं कहता है कि 'व्यक्ति अपना इतिहास स्वयं बनाता है यद्यपि वह अपने द्वारा चुने हुए वातावरण से उसे नहीं बनाता।' इस वाक्य में मार्क्स दो बातों का प्रतिपादन कर रहा है। वाक्य के पहले भाग में वह 'विचारों' के प्रभाव का स्वीकार कर रहा है और दूसरे में भौतिक वातावरण (आर्थिक तत्त्वों) को। मानव अपने भाग्य का तभी निर्माता हो सकता है जब वह अपने मस्तिष्क (विचारों) का प्रयोग करता है अन्यथा वह अपने भाग्य का निर्माता नहीं। दूसरी ओर, मस्तिष्क परिवर्तन [illegible] होता है तो यह [illegible] सम्बन्धता (Sub structure) की [illegible] द्वारा ही निर्धारित हो सकता है जिसकी क्रिया द्वन्द्ववाद द्वारा ही निर्धारित होती है। यदि इन दोनों में (मस्तिष्क और भौतिक वातावरण में) कोई वास्तविक पारस्परिक क्रिया है तो मार्क्स का मौलिक वाद (Thesis) ही परास्त हो जाता है क्योंकि इस स्थिति में

हमारा सम्बन्ध शुद्ध आर्थिक तत्वों से ही नहीं होगा बल्कि अन्य तथ्यों से भी होगा जो आर्थिक नहीं।

4 मार्क्स द्वारा 'आत्मा' की उपेक्षा अनुचित है

मार्क्स ने अपने भौतिकवाद में आत्मा की जो उपेक्षा की है वह अनुचित है। यद्यपि पदार्थ हमें दृष्टिगोचर होते हैं और आत्मा हमें दिखाई नहीं देती परन्तु व्यक्ति पर आत्मा की सत्ता का प्रभाव वैयक्तिक अनुभव के आधार पर स्वतः सिद्ध है। आत्मा की अनुभूति इन्द्रियों के ज्ञान से कहीं अधिक प्रबल होती है।

5 इतिहास केवल मानव की उन्नति का ही इतिहास नहीं। वह उन्नति और पतन दोनों का इतिहास है। मार्क्स द्वारा इतिहास को केवल उन्नति मानना अतिशयोक्ति है।

II आर्थिक निर्धारणवाद या इतिहास की भौतिकवादी व्याख्या
(Economic Determinism or Materialistic Interpretation of History)

मार्क्स के सिद्धान्त में आर्थिक निर्धारणवाद केन्द्रीय स्थिति बनाए हुए है। यह उसका "ऐसा केन्द्र बिन्दु है जिसके चारों ओर व्यक्त एवं विवेचित किये गये विचार घूमते हैं।"[1] सामाजिक जीवन, समाज तथा सामाजिक संस्थाओं के अध्ययन के लिए ऐतिहासिक भौतिकवाद का सिद्धान्त उसके द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद के सिद्धान्त का ही विस्तार है।

मार्क्स के भौतिकवाद की मुख्य सामग्री मानव तथा उसके द्वारा प्रयोग किये जाने वाले वे यन्त्र हैं जिसके द्वारा व्यक्ति अपना पोषण करता है। इन पर महत्त्व देकर मार्क्स ने राजनीतिक सिद्धान्त में एक नया विचलन (departure) पैदा कर दिया।

मार्क्स से पूर्व, हॉब्स भी भौतिकवादी था परन्तु उसका भौतिकवाद टैक्नोलोजिकल (technological) होने के स्थान पर दार्शनिक (philosophical) अधिक था, लॉक ने सम्पत्ति को मुख्य केन्द्र माना परन्तु उसने उत्पादक प्रक्रियाओं के स्थान पर वैध स्वामित्व पर बल दिया। मानव के मनोविज्ञान पर औद्योगिक संगठन के प्रभाव को हीगल और टॉकविल ने अंकित (note) तो किया परन्तु उन्होंने उसे अपने सिद्धान्तों का केन्द्र नहीं माना। मार्क्स और ऐंजिल्स ही पहले दो दार्शनिक हैं जिन्होंने यन्त्रों की 'निर्धारित करने की क्षमता" पर महत्त्व दिया। दूसरे शब्दों में, वर्तमान युग में मार्क्स और ऐंजिल्स ही ऐसे दो व्यक्ति हैं जिन्होंने आर्थिक अवस्थाओं को महत्त्वपूर्ण बताकर उनकी अन्य अवस्थाओं—सांस्कृतिक, राजनीतिक, सामाजिक, धार्मिक आदि अवस्थाओं—पर प्रभाव डालने तथा उनको निर्धारित करने की क्षमता (योग्यता या शक्ति) पर बल दिया।

---

1 It is "The central point around which the entire work of ideas expressed and discussed turns"

इतिहास की भौतिकवादी व्याख्या या सिद्धान्त इस साधारण सत्य से आरम्भ होता है और जो इतिहास के अर्थ की कुंजी है, कि मानव को जीवित रहने के लिए भोजन की आवश्यकता है शरीर ढकने के लिए कपड़ा की आवश्यकता है और रहने के लिए मकान आदि की आवश्यकता है। मानव का अस्तित्व ही इस सफलता पर निर्भर करता है कि प्राकृतिक साधनों में वह अपनी आवश्यकतानुकूल कितना उत्पादन कर सकता है इसलिए उत्पादन ही मानव की क्रियाओं में सर्वोत्तम क्रिया है। मानव अकेले में उतना उत्पादन नहीं कर पाता जितना कि वह दूसरों से मिलकर समूहों में उत्पादन कर पाता है। इसलिए जीवन की अनिवार्य आवश्यकताओं को प्राप्त करने के लिए ही समाज मानव के प्रयत्नों का फल है। परन्तु समाज अपने सभी सदस्यों को सन्तुष्ट करने के लिए सभी की आवश्यकतायें पूरी करने के लिए, पर्याप्त उत्पादन नहीं कर पाता। निर्धन तथा नास्तिमान (have nots) लोगों में असन्तोष होने के कारण समाज में आन्तरिक दबाव और संघर्ष सदा बना रहता है। जब मानव यह अनुभव नहीं कर सका कि उसकी असन्तुष्ट आवश्यकतायें उत्पादन की दोषपूर्ण प्रणालियों के कारण है तो उसने, धर्म के प्रभाव के कारण, यह मानना शुरु कर दिया कि उसकी आवश्यकतायें परलोक में पूरी होगी। मार्क्स का कहना है कि धर्म—जो दोषपूर्ण आर्थिक प्रणाली के प्रतिबिम्ब से अधिक कुछ नहीं—का प्रभाव व्यापक रहा है और उत्पादक शक्तियाँ (अर्थात जिनके हाथों में उत्पादन शक्तियाँ का स्वामित्व होता है) ने उसका प्रयोग सर्वदा अपने हितों की सुरक्षा के लिए किया। इस लिए मार्क्स धर्म को 'अफीम की गोली कहता है'। यह उस रूप में अफीम नहीं है कि यह एक ऐसा दवा की खुराक है जिसे शोषक शोषित को पिला देता है बल्कि उस समाज में जहाँ मानव की आवश्यकतायें पूरी नहीं होती वहाँ धर्म ही लोगों का अंतिम सहारा है। परिणाम स्वरूप, समाज में हमेशा दो वर्ग विद्यमान रहे हैं एक वह जिसके पास उत्पादन के स्रोतों का स्वामित्व होने से आस्तिमान या सम्पन्न (haves) रहा और दूसरा वह जिसके पास उत्पादन के साधनों का अभाव होने से नास्तिमान या विपन्न (have nots) रहा। एक शोषक बन गया, दूसरा शोषित। मार्क्स इस बात पर बल देता है कि उत्पादक वर्ग ने सर्वदा अपनी अधिमान्य स्थिति को बनाये रखने के लिए सभी संस्थाओं—सामाजिक, राजनीतिक, धार्मिक, कानूनी आदि—का प्रयोग किया।

जीवन की आवश्यकताओं को प्राप्त करने के लिए मानव इतिहास को छ अवस्थाओं में व्यान किया जा सकता है जो निम्न प्रकार है—

(1) आदिम साम्यवादी या एशियाटिक अवस्था।
(2) प्राचीन अवस्था।
(3) सामन्तवादी अवस्था।
(4) पूंजीवादी अवस्था।

(5) सर्वहारा वर्ग के अधिनायकवाद की अवस्था।

(6) साम्यवादी अवस्था।

आदिम साम्यवादी या एशियाटिक अवस्था मे उत्पादन की शक्तियां बहुत थी। मानव के भोजन प्राप्त करने का मुख्य साधन शिकार था। उसके साधन र, ताम्बे, कांसे लोहे आदि के बने हथियार थे। उत्पादन के साधनो पर व्यक्तिगत मित्व नही था, स्वामित्व सामाजिक होता था। इस अवस्था म न कोई शोषक और न कोई शोषित। दूसरी अवस्था प्राचीन अवस्था है जिसे दास पद्धति की स्था कहा जा सकता है। इस अवस्था म कृषि के विकास से दास प्रथा का विकास ा। इसका कारण यह था कि कृषि द्वारा एक व्यक्ति अनेक व्यक्तियो के लिए जन सामग्री प्राप्त कर सकता था। इससे समाज दो वर्गों मे विभक्त हो गया— ीदार या भूस्वामी और दास या कृषक दास। ग्रीक के नगर राज्य—एथेन्स और ्टा—इस पद्धति के मुख्य उदाहरण थे। तीसरी अवस्था सामन्तवादी अवस्था जिसम मध्यम वर्ग का विकास होने से समाज तीन वर्गों मे विभक्त हो गया— च्च, मध्यम और भूदास। इतिहास म यह अवस्था तेरहवी और चौदहवी ाब्दी तक रही। चौथी अवस्था सामन्त अवस्था के पतन और पूजीवाद के विकास प्रारम्भ होती है। इस अवस्था म भाप, बिजली, तथा अन्य तकनीकी ज्ञान म विकास ने से क्रान्तिकारी परिवर्तन हुए और समाज दो वर्गों मे, पूजीवादी और सर्वहारा वर्गों , विभक्त हो गया। इन दोनो वर्गों के संघर्ष के फलस्वरूप सर्वहारा वर्ग की विजय सी प्रकार निश्चित है जिस प्रकार पहली तीन अवस्थाओ मे शोषित वर्ग की विजय ई। पांचवीं अवस्था सर्वहारा वर्ग के अधिनायकवाद की है जो पूजीवाद के पतन र उदय होगी। इस अवस्था म उत्पादन के समस्त साधनो का समाजीकरण कर दिया ायगा। इस अवस्था मे सर्वहारा वर्ग का अधिनायकवाद तब तक रहेगा जब तक ूंजीपतियो के अन्तिम अकुर खत्म नही हो जाते। इस अवस्था मे भी वस्तुओ का तरण आवश्यकता के अनुकूल नही होगा बल्कि कार्य की क्षमता के आधार पर होगा। ्व के प्रबल वर्गों के अधिनायकवाद की भांति सर्वहारा वर्ग का अधिनायकवाद भी ासी प्रकार से दमनकारी होगा। राज्य उसी वर्ग का दमनकारी अंग होगा जिसका नियन्त्रण उत्पादन के स्रोतो पर है। दूसरे शब्दो मे, इस अवस्था मे, पूंजीपतियो के प्रति-रोध को कुचलने के लिये तथा पूंजीवाद के अवशेषो को समाप्त करने के लिए सर्वहारा ्ग राजनीतिक शक्ति का प्रयोग करेगा। इस अवस्था म अल्पमत बहुमत का दमन नही करेगा अपितु बहुमत अल्पमत का दमन करेगा। छठी अवस्था साम्यवादी अवस्था है जिसका प्रादुर्भाव सर्वहारा की दरो रंग म होगा। मार्क्स इस साम्यवादी अवस्था की विस्तृत व्याख्या नही करता क्योकि भविष्य के समाज के बारे मे कल्पना करना काल्प-निक (utopian) होगा। फिर भी, इस सामाजिक अवस्था की दो विशेषतायें बताई जा सकती है। एक तो यह कि यह समाज वर्ग विहीन, राज्य विहीन समाज होगा,

इसमे किसी प्रकार के वग नही होंगे, कोई शोषक नही होगा और न कोई शोषित, इस अवस्था मे राज्य का धीरे धीरे लोप हो जायगा। दूसरी यह कि इस समाज म वितरण का सिद्धान्त होगा "प्रत्यक से उसकी योग्यता अनुसार और प्रत्यक को उसकी आवश्यकतानुसार" (From each according to his ability, to each according to his needs)

उपर्युक्त ऐतिहासिक अवस्थाओ से निम्न निष्कष निकलते है—

(i) सभी समाजो म सभी व्यक्ति प्रकृति का शोषण करते हैं। यह सवमान्य सवविदित तथ्य है।

(ii) प्रकृति की उपलब्धियाँ भिन्न भिन्न समाजो म भिन्न भिन्न होती हैं।

(iii) समाज म सभी की आवश्यकतायें पूरी नही होती जिसके कारण समाज मे सघष विद्यमान रहता है।

(iv) प्रत्येक ऐतिहासिक अवस्था म शोषित वग शोषक वग पर विजय प्राप्त करता है।

(v) समाज का स्वरूप उत्पादन के साधनो से निर्धारित होता है। यदि उत्पादन के यन्त्र पथरीली कुल्हाडी है तो समाज का स्वरूप, गठन तथा नागरिको का चरित्र भी उसी प्रकार का होगा, यदि उत्पादन के यन्त्र धातु है तो समाज का स्वरूप, गठन तथा नागरिको का चरित्र भी वसा होगा और यदि उत्पादन का स्वरूप अणु रिऐक्टर, विद्युत और भाप है तो समाज का स्वरूप गठन तथा नागरिको का चरित्र भी उसी प्रकार का होगा। माक्स न इसे इस प्रकार व्यक्त किया है "हस्त चक्की सामन्त आका (म लिक) के समाज को जन्म देती है और भाप चक्की औद्योगिक पूजीपति के समाज को।"[1]

उपर्युक्त निष्कर्षो से स्पष्ट है कि माक्स जिस बात पर बल देना चाहता है वह यह है कि समाज का जो वग 'उत्पादन की शक्तियो पर नियन्त्रण रखता है वही समाज के अन्य वर्गो पर अपना नियन्त्रण स्थापित करता है। इसमे समाज म सघष उत्पन्न होता है। दूसरी बात जिस पर माक्स बल देता है वह यह है कि उत्पादन का स्वरूप तथा अवस्थायें समाज के ढाचे को निर्धारित करती हैं। एक सामाजिक अवस्था से दूसरी सामाजिक अवस्था म परिवतन नये सत्यो, नये तार्किक नियमो या नये न्यायिक नियमो (प्रेम, मानवता और दान वृत्ति) की खोज से नहीं होता बल्कि नये आविष्कारो के परिणामस्वरूप होता है जो उत्पादन की शक्तियो म परिवतन करते हैं।

---

1 The hand mill gives you society with the feudal lord, the steam mill society with the industrial capitalist —Marx Karl Quoted by Wayper *Ibid*, p 203

ई० बर्न्स के शब्दों में, "जैसे ही उत्पादन करने के ढंग में परिवर्तन होता है, संस्थायें और विचार भी बदलते हैं।"[1]

मार्क्स का विश्वास है कि मानव और यन्त्रों के आपसी सम्बन्धों में परिवर्तन होने से सामाजिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक, कानूनी आदि संस्थाओं में परिवर्तन होता है। इतना ही नहीं, 'समाज के ढांचे से ही अभिवृत्तियों, कार्यों और सभ्यताओं का जन्म होता है।" "सभी सामाजिक, राजनीतिक तथा बौद्धिक सम्बन्ध, सभी धार्मिक तथा कानूनी पद्धतियाँ, सभी बौद्धिक दृष्टिकोण जो इतिहास के विकास क्रम में जन्म लेते हैं वे सब जीवन की भौतिक अवस्थाओं से उत्पन्न होती हैं।"[2]

मार्क्स ने जिन बातों पर विशेष महत्त्व दिया है वे हैं 'आर्थिक अवस्थायें तथा उनको निर्धारित करने की शक्ति या क्षमता। मार्क्स तथा ऐंजिल्स सामाजिक जीवन के गैर-आर्थिक (non-economic) तथ्यों से बेखबर नहीं। वे मानते हैं कि कुछ अवस्थाओं में गैर-आर्थिक तत्त्व—धर्म, अध्यात्म, कला, नैतिकता, विचार, साहित्य आदि—भी महत्त्वपूर्ण होते हैं परन्तु उनका यह कहना है कि अन्तत: आर्थिक तत्त्व ही संस्थाओं के उत्थान और पतन का कारण होते हैं। मार्क्स के शब्दों में, "सामान्य रूप में, भौतिक जीवन के उत्पादन की रीतियां, सामाजिक राजनीतिक और बौद्धिक जीवन की क्रियाओं को निर्धारित करती हैं।' "मानवीय चेतना उसके सामाजिक अस्तित्व का निर्धारण नहीं करती, इसके विपरीत, उसका सामाजिक अस्तित्व ही उसकी चेतना का निर्धारित करता है।"[3]

संक्षेप में, इतिहास की भौतिकवादी व्याख्या का अभिप्राय यह है कि "दैनिक कार्य हमारे मस्तिष्क के स्वरूप को निर्धारित करता है। उत्पादक शक्तियों में हमारी स्थिति ही हमारे विचारों और दृष्टिकोणों को निर्धारित करती है।"[4] किसी भी युग की संस्कृति अपना रंग और तान उस युग के उस माध्यम से प्राप्त करती है जिस माध्यम से उस युग में धन का उत्पादन होता है, पण्यों (Commodities) का उत्पादन और विनिमय होता है।

---

1 "When the form of production changed the Institution and ideas also changed —Burns, E : *What is Marxsim* p 8

2 "All the social political and intellectual relations all religious and legal systems all the theoretical outlooks which emerge in the course of history are derived from the material conditions of life —Marx, Quoted by Wayper *Ibid* p 204

3 'It is not the consciousness of men that determines their existence but, on the contrary, their social existence determines their Consciousness —*Marx*

4 'Our daily work forms our mind that it is our position within the productive forces which determines our point of view and the particular side of things that we see —Wayper *Ibid*, p 204

स्पष्ट है कि मार्क्स सामाजिक परिवर्तन के साधनों को सामान्य (impersonal) आर्थिक तत्त्वों में ढूढ़ता है न कि अन्य आदर्शवादी सिद्धान्तों की भांति निरपेक्ष नियमों, धर्म या अन्य आध्यात्मिक या नैतिक तत्त्वों में ।

इतिहास की भौतिकवादी व्याख्या का मूल्यांकन

इतिहास की भौतिकवादी व्याख्या में जहां एक ओर सत्यांश है वहां दूसरी ओर उसमें अतिशयोक्ति भी है । इस सिद्धान्त की समाज शास्त्रों को सबसे बड़ी देन यह है कि इसने इतिहास के आधार को बहुत विस्तृत कर दिया । जो इतिहास अभी तक राजाओं और युद्धों की कहानियों या घटनाओं का संग्रह मात्र समझा जाता था उसे मार्क्स ने ठीक कर दिया । यद्यपि आज हम आर्थिक तत्त्व को इतिहास के विकास का एक मात्र कारण नहीं मानते परन्तु हम आर्थिक तत्त्वों की उपेक्षा करके इतिहास का आज अध्ययन भी नहीं करते । किसी समाज का अध्ययन तभी पूरा समझा जाता है जब वहां के लोगों की आर्थिक स्थिति का अध्ययन कर लिया जाता है । इतिहास की भौतिकवादी व्याख्या, इस तरह, समाज शास्त्रों के अध्ययन के तरीकों में एक बहुमूल्य अभिवृद्धि है । हेकर के शब्दों में, "मार्क्स और ऐंजिल्स के आदर्श (नमूने) में एक तरीका है ।"[1] कारयू हण्ट के शब्दों में, 'समाज शास्त्रों के सभी आधुनिक लेखक मार्क्स के प्रति ऋणी हैं यद्यपि वे इसे स्वीकार नहीं करते ।'[2]

मानव इतिहास के विकास में आर्थिक तत्त्वों का महत्त्व तो रहा ही है । मार्क्स केवल वहीं गलती करता है जहां वह सभी ऐतिहासिक आन्दोलनों और परिवर्तनों को आर्थिक अवस्थाओं द्वारा निर्धारित या सिद्ध करने की कोशिश करता है और आर्थिक तत्त्वों को आवश्यकता से अधिक महत्त्व देता है ।

जिन आधारों पर मार्क्स के इतिहास की भौतिकवादी व्याख्या की आलोचना की गयी है, उनमें से मुख्य निम्न हैं —

1 मानव इतिहास का विकास किसी एक तत्त्व से नहीं हुआ

मानव समाज के इतिहास के विकास में केवल आर्थिक तत्त्व ही महत्त्वपूर्ण नहीं रहे बल्कि धार्मिक, दार्शनिक, राजनीतिक, नैतिक और सांस्कृतिक तत्त्वों का भी महत्त्व रहा है । इन तत्त्वों के अतिरिक्त जलवायु, न्याय की इच्छा, विवेक, काम तथा मानव की महत्त्वाकांक्षायें, भावनाएँ, अभिलाषाएँ भी मानव क्रियाओं में प्रभावी रही हैं । जातीय पक्षपात, षडयन्त्र, अन्ध विश्वास, लैङ्गिक इच्छा, लैङ्गिक आकर्षण, अधिकार, नाम, तथा प्रसिद्धि की लिप्साओं पर मार्क्स का सिद्धान्त प्रकाश नहीं

---

1 There is a method in their model '—Hacker Andrew *Political Theory* p 523

2 All modern writers on social sciences are indebited to Marx even if they do not admit it Any return to pre Marxian Social Theory is inconceivable —Hunt, Carew *Theory and Practice of Communism*

डालता। मार्क्स आर्थिक तत्वों पर बल देकर गैर-आर्थिक (non economic) तत्वों के प्रति उदासीन है तथा उनकी उपेक्षा करता है।

2 मार्क्स का सिद्धान्त एकतरफा है

इतिहास की भौतिकवादी व्याख्या इस मान्यता पर आधारित है कि समाज में जिस वर्ग के पास उत्पादन के साधनों का स्वामित्व होता है उसके हाथों में ही समाज की सत्ता होती है। यद्यपि पूंजीवादी व्यवस्था में यह तथ्य अधिकांशतया सत्य है क्योंकि इसमें राजनीतिक सत्ता आर्थिक सत्ता की कठपुतली बन कर रह जाती है परन्तु यह पूर्णतया सत्य नहीं है। प्राचीन भारत में ब्राह्मणों और क्षत्रियों के पास राजनीतिक सत्ता अत्यधिक थी यद्यपि उनके पास आर्थिक सत्ता का अभाव था। मध्य युग में पोप की शक्ति का आधार आर्थिक स्वामित्व पर निर्भर नहीं था। वर्तमान युग में कर्मचारी वर्ग का महत्व आर्थिक कारण से नहीं। सैनिक विप्लव केवल आर्थिक कारणों से नहीं होते।

3 मार्क्स का सिद्धान्त इतिहास की आकस्मिक दैविक या संयोग वश होने वाली घटनाओं का वर्णन नहीं करता

इतिहास के पन्नों से अनेक उदाहरण दिए जा सकते हैं जिनमें छोटी सी आकस्मिक घटनाओं ने भयंकर रूप धारण कर लिया। महाभारत के युद्ध का मुख्य कारण द्रौपदी के व्यंग्यपूर्ण शब्द थे कि "एक अन्धे का लड़का पानी के तालाब और चमकीले संगमरमर के फर्श में भेद नहीं कर सकता।" एक दुःखी व्यक्ति एवं शव को देख कर गौतम बुद्ध का सारा जीवन ही बदल गया। नेपोलियन कभी भी ख्याति प्राप्त न कर पाता यदि जिनोआ (Genoa) ने कोर्सिका (Corsica) को फ्रांस को सन 1768 में न सौंपा होता। नैपोलियन फ्रांस के स्थान पर इटली का नागरिक होता। सन् 1917 में यदि जर्मन सरकार लेनिन को रूस वापस लौटने की आज्ञा नहीं देती तो बोलशेविक (Bolshevik) क्रान्ति का नाम तक न होता। वर्तमान समय की संसदात्मक प्रणाली आकस्मिक घटनाओं का ही परिणाम है। अगणित उदाहरण दिये जा सकते हैं जहाँ पर प्रभाव आकस्मिक कारणों से हुआ आर्थिक अवस्थाओं से नहीं। आर्थिक अवस्थायें बुद्ध, ईसा, टॉलस्टाय, मुहम्मद, गांधी की व्याख्या नहीं कर सकतीं। मानव इतिहास का झुकाव जुलियस सीजर (Julius Caesar), मुसोलिनी की ओर नहीं ईसा, बुद्ध और गांधी की ओर अधिक है।

4 आर्थिक आवश्यकताओं की पूर्ति कभी नहीं होती

आर्थिक आवश्यकताओं का कोई अन्त नहीं होता। वे तो केवल मृत्यु पर ही समाप्त होती हैं। इसका उपचार केवल ईश्वर कृपा है न कि प्रतिद्वन्द्विता या ऐतिहासिक प्रक्रिया। हेलोवेल का विश्वास है कि शायद ही ऐसा कोई आर्थिक कारण हो जिसने महान आविष्कारों को प्रेरित किया हो। जितनी भी सौन्दर्य सृष्टि कृतियाँ हैं वे अर्थशास्त्र से उतनी ही दूर हैं जितना कि अर्थशास्त्र से विज्ञान।'

है। इस तरह विनिमय मूल्य किसी वस्तु म लगे 'श्रम के समय' (labour time) द्वारा निर्धारित होता है। मार्क्स के शब्दों मे, "श्रम द्वारा उत्पादित सभी वस्तुएं इस बात का प्रमाण हैं कि उनके उत्पादन मे मानव श्रम व्यय किया गया है (और) श्रम की मात्रा ही या सामाजिक आवश्यकता के लिए उसके उत्पादन मे व्यय किया गया समय ही, वस्तुओं के विनिमय मूल्य को निर्धारित करता है।" मार्क्स का अतिरिक्त मूल्य का सिद्धान्त इस "मूल्य के श्रम सिद्धान्त" पर आधारित है कि 'सभी वस्तुओं का वास्तविक मूल्य उसके उत्पादन मे लगाये गये सामाजिक दृष्टि से उपयोगी श्रम द्वारा निर्धारित होता है।"

मार्क्स के अतिरिक्त मूल्य का सिद्धान्त जीविका योग्य मजदूरी (Subsistence Wage) की कल्पना से सम्बन्धित है। जीविका योग्य मजदूरी का सामान्य सिद्धान्त यह है कि श्रमिक को वह मजदूरी दी जाती है जो एक वस्तु की तरह उसके श्रम की होती है अर्थात मजदूर का श्रम एक उस वस्तु की तरह हो जाता है जिसे बाजार में अन्य वस्तुओं की तरह बेचा और खरीदा जाता है और इस मानव श्रम का मूल्य अन्य वस्तुओं की भांति बाजार के नियमों द्वारा निर्धारित होता है। इसलिए मजदूर को उसके श्रम की केवल उतनी ही मजदूरी दी जानी है जिससे वह मानव वस्तु (मानव श्रम) बाजार मे निरन्तर प्राप्त होती रहे। दूसरे शब्दों मे, पूँजीपति मजदूरों को उनके काम के बदले म बस इतनी मजदूरी देते हैं कि उनके (मजदूरो के) प्राण पखेरू उड न जायें और गुजर चलाने के लिए उन्हे दूसरे दिन काम पर आना पड़े। यही मजदूरी का "लौह नियम" (Iron Law of Wages) भी कहलाता है जिसके अनुसार मजदूर अपना तथा अपने परिवार का पेट पाल सकने का मजदूरी प्राप्त करता है ताकि वह पूँजीपति के लिए भावी मजदूरों के रूप मे सन्तानोत्पत्ति कर सके।

मार्क्स का कथन है कि जिस प्रकार प्राचीन काल मे दास या कृषक दास करते थे उसी प्रकार आज श्रमजीवी अपनी सेवाएँ अर्पित करते हैं जिसके लिए उन्हें कोई पारिश्रमिक नही मिलता और जिसके द्वारा निर्मित मूल्यों को सम्पत्ति के स्वामी हडप कर लेते हैं। पूँजीपति उत्पादन के साधनो के स्वामी होते हैं जिन पर मजदूर काम कर सकते हैं। मजदूरो के पास केवल अपना श्रम ही होता है जिसे ऐसे दामों मे व बेच देते हैं जो उन्हे तथा उनके परिवार को केवल जीवित रखने के लिए ही पर्याप्त होता है। श्रमिको द्वारा उत्पन्न वस्तु के विनिमय मूल्य और उनके द्वारा प्राप्त मजदूरी मे जो अन्तर है मार्क्स उसे अतिरिक्त मूल्य कहता है। मार्क्स के शब्दों मे, अतिरिक्त मूल्य "उन दो मूल्यों का अन्तर है जिसे मजदूर पैदा करता है और जिसे वह वास्तव मे पाता है।[1] यह वह मूल्य है जिसे पूँजीपति बिना मुआवजे के और

1 Surplus Value is the difference between the value of the wages which a labourer produces and which he actually receives
—*Marx Karl*

मजदूरा के श्रम से प्राप्त करता है। मैक्सी के शब्दों म, "यह वह मूल्य है जिसे पूँजीपति मजदूरा के खून पसीने की कमाई से पथ कर (toll) के रूप म वसूल करता है।"[1] यह वह मूल्य है "जिसका मूल्य चुकाया नही गया"।[2]

मार्क्स के अतिरिक्त मूल्य के सिद्धान्त को एक उदाहरण द्वारा और अधिक स्पष्ट किया जा सकता है। मान लो कि एक मजदूर एक कारखाने म आठ घण्टे काम करके एक वस्तु का उत्पादन करता है जिसका विनिमय मूल्य 8 रु० है। परन्तु मजदूर को दिन भर की मजदूरी केवल 2 रु० मिलती है। स्पष्ट है कि मजदूर ने अपनी मजदूरी पैदा करने के लिए केवल 2 घण्टे समय लिया। परन्तु बाकी 6 घण्टे उसने काम करके 6 रु० मूल्य का जो उत्पादन किया उसे उसका मालिक (उत्पादक साधनो का स्वामी) हडप कर गया। यही 6 रु० का मूल्य जिसे मजदूर ने तो उत्पन्न किया और जिसे पूँजीपति ने हडप किया मार्क्स उसे अतिरिक्त मूल्य कहता है।

मार्क्स का यह विश्वास है कि पूँजीपति सदा इस अतिरिक्त मूल्य को बढाने की इच्छा रखता है जिसे वह लाभ, किराये और ब्याजद्वारा प्राप्त करता है। अपने उत्पादन के साधना का विस्तार कर तथा और अधिक मजदूरो को नौकर रख कर पूँजीपति अतिरिक्त मूल्य को और अधिक बढाता है।

अतिरिक्त मूल्य के सिद्धान्त की आलोचना

1 विनिमय मूल्य उपयोग मूल्य पर निर्भर करता है

मार्क्स न कहीं भी इसे सिद्ध करने की कोशिश नही की कि जो मूल्य समस्त वस्तुओ म सामान्य है वह उस पर लगे श्रम के अनुसार ही है। उसने केवल इसकी कल्पना की है इसे सिद्ध नही किया। यदि उपयोग मूल्य का सम्बन्ध विनिमय मूल्य से नही तो फिर मार्क्स यह क्या कहता है कि "किसी वस्तु का उपयोग के बिना उसका कोई मूल्य नही।' वास्तविकता यह है कि किसी वस्तु के विनिमय मूल्य मे उपयोग मूल्य ही निर्णायक महत्व का होता है। बिना उपयोग मूल्य के विनिमय मूल्य नही होता।

2 उत्पादन के लिए केवल श्रम की नहीं वलिक श्रम पूँजी और मस्तिष्क तीनो की आवश्यकता है

मार्क्स के अनुसार श्रम ही मूल्य का स्रोत है। परन्तु यह कल्पना अर्द्ध सत्य है क्योंकि मूल्य के उत्पादन के लिए 'श्रम" और "पूजी' तथा "मस्तिष्क" तीनो की आवश्यकता होती है। यदि यन्त्रो को उत्पादन के लिए श्रमिक के श्रम की और बुद्धि-जीवी के विवेक की आवश्यकता होती है तो श्रमिक को भी उत्पादन के लिए यन्त्रा

---

1 It is 'a toll wrung from the grinding toil of the masses' Maxey, Chester C. *Political Philosophies* p 570

2 It is "congealed labour"—*Marx, Karl*

की आवश्यकता होती है। तीनो ही एक दूसरे के बिना अनुत्पादक रहगे। उत्पादन मे पूजी, यन्त्र, कच्चा माल, धातुय, परिश्रम, साहस, ज्ञान, सगठन, योग्यता, आदि सबकी आवश्यकता होती है। इन सबके सहयोग से ही उत्पादन होता है। मार्क्स ने केवल श्रम पर ही बल देकर बाकी उत्पादन मे सहायक तत्त्वो की उपेक्षा की है। मूल्य को केवल मानव श्रम पर आधारित करना उतना ही गलत है जितना कि यह विचार कि उत्पादन का सारा मूल्य मजदूर को मिलना चाहिए।

3 पूँजीपति सारे अतिरिक्त मूल्य को स्वय हडप नहीं करता

मार्क्स का यह कहना अतिशयोक्ति पूर्ण है कि पूजीपति सारे अतिरिक्त मूल्य को स्वय हडप कर लेता है। मार्क्स यहा भूल जाता है कि पूजीपति को मजदूर की मजदूरी के अतिरिक्त अन्य बहुत सी बातो पर व्यय करना पडता है। पूजीपति को करो की अदायगी करनी पडती है, यन्त्रो के निरन्तर प्रयोग द्वारा जो उनके मूल्य का ह्रास (घिसावट के कारण) होता है उसके लिए उसे व्यवस्था करनी पडती है, उसे यन्त्रो के विकास और मजदूरो को जीवन की सुख सुविधाएँ देने पर भी व्यय करना पडता है, आदि।

4 मार्क्स ने शब्दो की व्याख्या तो नहीं की परन्तु उनका प्रयोग मनमाने ढग से किया

मार्क्स ने आर्थिक शब्दो —मूल्य (Value) दाम (Price), पूजी (Capital)— की स्पष्ट व्याख्या करने के स्थान पर उनका प्रयोग मनमाने ढग से किया है। मार्क्स ने कही भी यह बताने का प्रयास नही किया कि दाम (Price) क्या है ? दामो म उतार चढाव (घटाव बढाव) क्यो होता है ? पूजी की भी जो व्याख्या उसने की है वह स्वीकार नही की जा सकती। मार्क्स के लिए पूजी केवल वह है जो अतिरिक्त मूल्य को उत्पन्न करती है। यन्त्र, मकान, कच्चा माल, ईंधन आदि तभी पूजी है जब वे मजदूरो को काम पर लगाते हैं जो उत्पादन द्वारा अतिरिक्त मूल्य पैदा करते हैं और जब इनका स्वामी स्वय उनका प्रयोग करता है तो वे पूजी नही।

5 अतिरिक्त मूल्य का सिद्धान्त प्रचारात्मक अधिक है आर्थिक कम

मार्क्स का अतिरिक्त मूल्य का सिद्धान्त आर्थिक होने के स्थान पर प्रचारात्मक अधिक है। मार्क्स बीयर के शब्दो म, "इस विचार को रद्द करना असम्भव है कि मार्क्स का सिद्धान्त आर्थिक सत्य के स्थान पर राजनीतिक और सामाजिक नारेबाजी है।"[1] एक अन्य आलोचक ने ये विचार व्यक्त किये हैं कि "मूल्य के सिद्धान्त के रूप

---

1 'It is impossible to set aside the view that Marx's theory of value has rather the significance of a political and social slogan than of an economic truth —*Beer, Marx*

मे अतिरिक्त मूल्य का सिद्धात कचरा (कूडा करकट) मात्र है। एक अपील के रूप मे कि श्रमिक के साथ एक वस्तु की तरह व्यवहार करना अपमान जनक है, यह शक्तिशाली है।[1]

(6) मार्क्स दोहरी बात करता है

मार्क्स दोहरी बात करता है। एक ओर तो वह यह कहता है कि पूँजीपति अपने अतिरिक्त मूल्य को बढाने के लिए नये यन्त्रो का निर्माण करता है और दूसरी ओर वह यह कहता है कि यन्त्रो (जो अचल पूँजी है—Fixed Capital) से कोई अतिरिक्त मूल्य पैदा नही होता। अतिरिक्त मूल्य तो मजदूर के शोषण द्वारा ही उत्पन्न होता है। यदि वास्तविकता ऐसी होती जसाकि मार्क्स कहता है तो पूँजीपति अपने लाभ को कम करने के लिए नये और अधिक कुशल यन्त्रो–जिन पर कम मजदूरो की आवश्यकता होती है—का निर्माण नही करता। अनुभव यह बताता है कि अतिरिक्त मूल्य मे वृद्धि काम करने वाले मजदूरो की मात्रा बढाने से नही अपितु कुशल यन्त्रो के निर्माण और इस्तेमाल से होती है। इसके अतिरिक्त लाभ की रफ्तार (rate of profit) प्रतिद्वंद्वता (माग और पूर्ति के नियमानुसार) पर भी निर्भर करती है। यदि अचल पूँजी (fixed capital) वास्तविक रूप से अनुत्पादक होती तो वर्तमान पूँजीपति कभी भी अचल पूँजी को बढाने की कोशिश नही करता। क्योकि उसके लाभ की रफ्तार अचल पूँजी के वर्धन से भी बढती है इसलिए वह अचल पूँजी बढाता है।

IV वर्ग सघर्ष
(Class War)

इतिहास की भौतिकवादी व्याख्या का सिद्धान्त यदि सामाजिक परिवर्तन के लिए आवश्यक सिद्धात है तो वर्ग सघर्ष उस परिवर्तन का आवश्यक यन्त्र है। इसे भौतिकवादी व्याख्या का आवश्यक परिणाम या उप सिद्धान्त भी कहा जाता है। वर्ग सघर्ष यह बताने का प्रयास करता है कि इतिहास के विकास मे समाज का एक अवस्था से दूसरी अवस्था मे परिवर्तन कैसे हुआ। मार्क्स का विश्वास है कि यह विकास दो विरोधी वर्गों के निरन्तर सघर्षों—दास का स्वामी से, निर्धन का धनी से, शोषित का शोषक से—से हुआ है। इन दोनो वर्गों मे कोई समझौता नही, कोई सहयोग नही। [illegible] मे यह सघर्ष स्पष्टतया पूँजीपति और सर्वहारा वर्ग मे होता है जिसमे सर्वहारा वर्ग की विजय अवश्यम्भावी है।

मार्क्स इतिहास को राजाओ और युद्धो की कहानी नही मानता, वह तो इसे विरोधी आर्थिक वर्गों की कहानी मानता है। उसके लिए वर्ग सघर्ष 'इतिहास की

---

1 "As a theory of price, the theory of Surplus Value is rubbish As an appeal that it is degrading to treat labour as a commodity, it is powerful"

समझने की कुंजी है।" मानव इतिहास का सही अध्ययन आर्थिक इतिहास का अध्ययन है।

मार्क्स और एंजिल्स के वर्गों की विचारधारा का आधार आर्थिक अर्थात् उत्पादन शक्तियां हैं। इन्हीं आर्थिक हितों के आधार पर वर्गों का निर्माण होता है, पतन होता है और फिर निर्माण होता है। सामान्य आर्थिक हितों वाले व्यक्ति या व्यक्तियों का समूह अपने आपको एक वर्ग में संगठित कर लेते हैं और जब उनके आर्थिक हित दूसरे वर्ग के आर्थिक हितों से टकराते हैं तो संघर्ष उत्पन्न होता है।

मार्क्स और एंजिल्स साम्यवादी घोषणा पत्र में लिखते हैं कि "अब तक के समाज का इतिहास वर्ग संघर्ष का इतिहास रहा है। स्वतन्त्र तथा दास, कुलीन तथा नीच, नवाब तथा कृषक दास, संघ नेता तथा यात्री, एक शब्द में, शोषक तथा शोषित निरंतर एक दूसरे का विरोध करते रहे हैं और कभी गुप्त रूप में और कभी प्रकट रूप में यह संघर्ष बिना किसी रुकावट के निरंतर होता रहा है। यह ऐसा संघर्ष है जिसका अंत या तो समाज के क्रान्तिकारी पुनर्गठन में हुआ या विरोधी वर्गों के सामान्य पतन में।"[1]

वर्ग संघर्ष की विस्तृत व्याख्या करने से पहले कुछ शब्दों जैसे, संघर्ष, पूंजीपति, और सर्वहारा वर्ग को समझ लेना उपयोगी होगा।

संघर्ष—संघर्ष का अभिप्राय यह कदापि नहीं है कि समाज में निरंतर युद्ध होता रहता है अपितु इसमें केवल इतना अर्थ है कि समाज में एक वर्ग ऐसा अवश्य होता है जिसकी आवश्यकतायें पूरी न होने से वह सर्वदा असन्तुष्ट रहता है। इस असन्तोष को वह वर्ग समय समय पर कई रूपों में—असहयोग द्वारा या हड़ताल द्वारा या अन्य किसी रूप से—व्यक्त करता रहता है और जब असन्तोष असहनीय हो जाता है तो द्वन्द्ववाद के आधार पर यह संघर्ष क्रान्ति का रूप ले लेता है जिसमें शोषित वर्ग की विजय और शोषक वर्ग का पतन अवश्यम्भावी है।

पूँजीपति—पूंजीपति वह है जो उत्पादन के साधनों—भूमि, कल कारखाने, कच्चे माल, कार्य पूंजी (Working Capital) आदि का स्वामी है। इस वर्ग की विशेषता यह है कि यह समाज का शक्तिशाली, ऐश्वर्य तथा विलास में डूबा हुआ

---

1 The history of all hitherto existing society is the history of class struggles Freeman and slave patrician and plebean lord and serf guildmaster and journeyman in a word oppressor and oppressed stood in constant opposition to one another, carried on an uninterrupted, now hidden now open fight a fight that each time ended either in a revolutionary reconstruction of society at large or in the common ruin of the contending classes —Marx and Engels *Communist Manifesto in Selected Works* Vol I, p 34

वर्ग है। उत्पादन के साधनों का स्वामी होने से यह दूसरा को वैसा कार्य करने के लिए बाध्य करता है जैसा वह चाहता है। यह वर्ग नियुक्ति (employment) उत्पादन, निवेश (investment), कीमतों के क्षेत्र में निर्णायक शक्ति रखता है। इस वर्ग का विशेष गुण यह है कि यह अपने लाभ को बढ़ाने के लिए श्रमिकों के न केवल श्रम का बल्कि उसके समय, उत्पादन और परिवार का भी शोषण करता है। यह वर्ग अतिरिक्त मूल्य को हड़प करने वाला परजीवी (Parasite) है। यह वर्ग उत्पादन सामाजिक आवश्यकता की पूर्ति के लिए नहीं बल्कि अपने लाभ की वृद्धि के लिए कराता है।

सर्वहारा वर्ग—सर्वहारा वर्ग औद्योगिक श्रमिक वर्ग है। यह मजदूरों का वह आधुनिक वर्ग है जिसके पास अपने उत्पादन के साधन नहीं और जिन्हें जीवित रहने के लिए अपनी श्रम शक्ति को मजबूरन बेचना पड़ता है। इस वर्ग की विशेषता यह है कि इसके पास उत्पादन सम्पत्ति नहीं है। जिस यन्त्र पर या जिस कारखाने में श्रमजीवी कार्य करता है वह उसका नहीं। वह यन्त्र या कारखाना बुर्जुआ वर्ग में से किसी बुर्जुआ का है। इस वर्ग की दूसरी विशेषता यह है कि श्रमजीवी को श्रम के बाजार में अपने आपको मजबूरन फेंकना पड़ता है अर्थात् यदि उसे तथा उसके परिवार को जीवित रहना है तो उसे अपने श्रम (या अपनी योग्यता) को आवश्यक रूप से बेचना पड़ेगा। यह वर्ग स्पष्टतया बुर्जुआ वर्ग की दया पर निर्भर करता है। श्रमजीवी को वह मजदूरी स्वीकार करनी पड़ती है जो उसे बुर्जुआ द्वारा दी जाती है। उसे अपनी मजदूरी निर्धारित करने का अधिकार नहीं। वह तो बुर्जुआ की इच्छा और बाजार के मूल्य पर निर्भर करती है। इस तरह श्रमजीवी अपनी पसन्द का जीवन व्यतीत नहीं कर सकता। उसकी पसन्द तो बुर्जुआ की पसन्द (इच्छा) है।

वर्ग संघर्ष की विस्तृत व्याख्या

मार्क्स और ऐंजिल्स अपने इतिहास के सिद्धान्त की व्याख्या का वर्णन सामन्त समाज से पूँजीवादी समाज के संक्रमण का विश्लेषण करके करते हैं। सामन्त समाज की अर्थ व्यवस्था गृह विनिर्माता (home manufacturers) और स्थानीय दस्तकारों पर आधारित थी। इस अवस्था में गिल्ड ही आर्थिक संगठन का सार्वलौकिक स्वरूप था। परन्तु बाह्य शक्तियों के प्रभाव से—जनसंख्या में वृद्धि होने से लोगों की रुचियां और उपभोग के तरीकों में परिवर्तन आया—जिन पर गिल्ड का कोई नियन्त्रण नहीं था, निर्मित वस्तुओं की मांग बढ़ने लगी। सामन्त आर्थिक व्यवस्था (गिल्ड व्यवस्था) मांग की पूर्ति करने में अपर्याप्त सिद्ध हुई। इसके फलस्वरूप गिल्ड व्यवस्था के साथ कारखानों की व्यवस्था का विकास हुआ। मांगें बढ़ती गईं, मण्डियों का विकास होता गया। विद्युत, भाप और यन्त्रों ने औद्योगिक उत्पादन में क्रान्तिकारी परिवर्तन ला दिया। विनिर्मिति का स्थान आधुनिक भीमकाय उद्योगों ने ले लिया। औद्योगिक मध्यम वर्ग का स्थान औद्योगिक करोड़पतियों ने ले लिया।

फेक्टरी अवस्था के परिणाम स्वरूप दो प्रकार के वर्गों की उत्पत्ति हुई एक सम्पत्ति के स्वामी जो बिना श्रम किये उत्पादन के स्वामी थे और दूसरे श्रमजीवी जो उत्पादन तो करते परन्तु उत्पादन पर उनका स्वामित्व न था। उस पर स्वामित्व मालिक का था, उन्हे तो केवल मजदूरी प्राप्त होती थी । इस तरह, मार्क्स और एंजिल्स के शब्दो म, "आधुनिक बुर्जुआ समाज की उत्पत्ति साम त समाज के विध्वस पर हुई है।"[1]

इस फेक्टरी अवस्था म पूजीपति और श्रमजीवी दोनो का एक दूसरे की आवश्यकता है । पूजीपति के उत्पादन के यन्त्र (साधन) किसी काम के नही यदि उन पर श्रम जीवी अपने श्रम का प्रयोग करके उत्पादन नही करता । दूसरी ओर, श्रमजीवी का श्रम तभी उपयोगी है यदि वह श्रम का प्रयोग उत्पादन म करता है । परन्तु इस अवस्था मे पूजीपति और श्रमजीवी के पारस्परिक सम्बन्धो म घोर अन्तर होता है। पूजीपति उत्पादन के यन्त्रो का स्वामी होने से श्रमजीवियो पर काय की शर्तें लगा सकता है । इस अवस्था म उत्पादन लाभ के लिए होता है और पूजीपति अपने लाभ को बढाने के लिए श्रमजीवी का शोषण करता है, उसके (श्रमजीवी के) काय के घण्टे बढा देता है, उसे मजदूरी कम देता है । मार्क्स इसे ही पूजीपति के हाथो म दमन और अत्याचार का यन्त्र कहता है । दूसरी ओर, श्रमजीवी की बडी असहाय अवस्था होती है । यदि वह पूजीपति द्वारा लगाई गयी शर्तो को स्वीकार नही करता तो उसे तथा उसके परिवार को भुखमरी और बेरोजगारी का सामना करना पडता है । इस तरह इस अवस्था मे पूजीपति और श्रमजीवी (सवहारा) वग म सघष उत्पन्न होता है । एक अपनी लाभ वृद्धि के लिए मजदूरो का शोषण करता है और दूसरा अपनी दशा सुधारने के लिए अच्छे वेतन और कम काय के घण्टो की माँग करता है।

इस बुर्जुआ अवस्था की एक विशेषता यह भी है कि इसने वग विरोध को सरल कर दिया है । जहा प्राचीन रोम म कुलीन, योद्धा, नीच और दास थे और जहाँ मध्य युग मे सामन्त आका (स्वामी), दास सघ स्वामी, यात्री, प्रशिक्षु (apprentices), कृषक दास तथा इनकी निम्न श्रेणिया थी वहाँ बुर्जुआ समाज म बडे बडे कारखाने और नगरो के विकास से दो विरोधी वर्गो—बुर्जुआ और सवहारा वग—का ही अस्तित्व रह जाता है जिनम द्वन्द्वात्मक द्वन्द्ववाद के विरोध के फलस्वरूप सवहारा वग की अन्तिम विजय और बुर्जुआ अर्थात् पूजीपति वग का पतन अवश्यम्भावी है।

वग सघष के सिद्धान्त की आलोचना

मार्क्स के वग सघष के सिद्धान्त की आलोचना अनेक आधारो पर की गयी है जिनम मुख्य निम्न है —

---

1 Modern bourgeois society has sprouted from the ruins of feudal society '—Marx and Engels *Communist Manifesto* in *Selected Works*, Vol I, p 35

1 समाज को केवल दो वर्गों मे विभक्त करना सकीर्णता का द्योतक है

मार्क्स ने समाज में विद्यमान वर्गों को केवल आर्थिक अवस्थाओं के आधार पर दो विरोधी आर्थिक वर्गों में देखा है। उसने वर्गों का विश्लेषणात्मक अध्ययन नहीं किया। समाजशास्त्रियों का कहना है कि वर्गों का केवल आर्थिक आधार पर बाँटना गलत है। समाज को पूर्ण रूप से समझने के लिए उसे जाति, धर्म, शिक्षा, काय (व्यवसाय), रग, योग्यता, सामाजिक स्तर, जनकता (parentage) आदि के आधारों पर भी बाटना चाहिए अन्यथा हमारा समाज का अध्ययन अधूरा रहेगा। इसके अतिरिक्त समाज में जो वर्गों में स्वाभाविक मिलान होता है, विवाह आदि के द्वारा, मार्क्स ने उसकी कल्पना ही नहीं की। इतिहास पृथकत्व की अपेक्षा समन्वयात्मक अधिक रहा है (more synthetic than analytical)

2 सामाजिक जीवन सहयोग पर आधारित है सघर्ष पर नहीं

मार्क्स ने अपने साम्यवादी घोषणा पत्र मे लिखा है कि 'अब तक के समाज का इतिहास वर्ग सघर्षों का इतिहास रहा है।' परन्तु मार्क्स की यह विचारधारा मिथ्या है। सघर्ष जगल का नियम हो सकता है, सामाजिक जीवन का नहीं। उत्पादन, जिसके आधार पर मार्क्स समाज को दो वर्गों मे बाट कर उनमें सघर्ष की बात करता है, में भी पूजीपति और श्रमजीवी के सहयोग की आवश्यकता है सघर्ष की नहीं, अन्यथा उत्पादन सम्भव नहीं। मार्क्स के वर्ग सघर्ष का सिद्धान्त इस तरह रचनात्मक नहीं। यह 'बिना किसी उद्देश्य के है इसलिए घृणा के योग्य है।"

3 वर्ग सघर्ष का सिद्धान्त मध्यम वर्ग की उपेक्षा करता है

समाज को केवल दो वर्गों में बाँटना उसका सरलीकरण Simplification) करना है। शताब्दियों से विचारकों ने मध्यम वर्ग की कल्पना की है। अरस्तू के समय से लेकर आज तक इस वर्ग ने राजनीति में महत्वपूर्ण भूमिका अदा की है। पूजीवादी अवस्था में मार्क्स इस वर्ग के काय से स्वय परिचित था। अर्थशास्त्रियों के सस्थापकों, विशेषकर रिकार्डो, के विरुद्ध उसका आरोप यही था कि उन्होंने मध्यम वर्ग की उपेक्षा की है। इतना जानते हुए भी मार्क्स समाजवादी या साम्यवादी अवस्था में इस वर्ग के भविष्य की कल्पना नहीं करता। मार्क्स का विश्वास है कि ये वर्ग या तो सर्वहारा वर्ग के साथ मिल जायेंगे और या उसका विरोधी होने से, बुर्जुआ के साथ, उनका (मध्यम वर्गों का) पतन हो जायगा। परन्तु टेक्नोलोजी की अभिवृद्धि से यह वर्ग न ही तो सर्वहारा वर्ग में मिला है और न ही बुर्जुआ के साथ इसका पतन हुआ है बल्कि इसका महत्त्व दिन प्रतिदिन बढ़ता जा रहा है। सर्वहारा वर्ग की सख्या भी बढ़ने के स्थान पर कम होती जा रही है। जैसे जैसे टेक्नोलोजी में वृद्धि होती है वैसे वैसे लिपिक, पर्यवेक्षकों, टैक्निशियनों (technicians), अध्यापकों, वकीलों, डाक्टरों, कारखाने के प्रबन्धकों इन्जीनियरों, उच्च सरकारी सेवकों, एक शब्द में,

मध्यम वर्ग मे वृद्धि हो रही है। इस वर्ग के महत्त्व से मुह मोड लेना वास्तविकता को छिपाना है।

4 इतिहास आर्थिक वर्गों के संघर्ष की कहानी नहीं

इतिहास मे संघर्ष केवल आर्थिक कारणो से नहीं हुए। इन कारणो मे मनोवैज्ञानिक, धार्मिक, लैङ्गिक इच्छाओ, आदि का भी उतना ही महत्त्व रहा है। अनेक युद्धो का कारण या तो व्यक्तिगत महत्त्वाकाक्षायें रही हैं या धार्मिक कट्टरता।

5 वर्ग संघर्ष खतरनाक अतिसाधारणीकरण (dangerous simplification) है

मार्क्स ने समाज को दो वर्गों मे बाट कर इतिहास का इतना साधारणीकरण कर दिया है कि वह खतरनाक बन गया है। यदि हम इसे स्वीकार करले तो इतिहास के अन्य तथ्यो (शाही खानदानो के पारस्परिक झगडे, एक ही वर्ग के आपसी झगडे, पोप तथा राजाओ के झगडे आदि) को समझना कठिन हो जायगा और इन तथ्यों की उपेक्षा करना वास्तविकता से आखें मूदना है।

6 राष्ट्रीय तत्त्व आर्थिक तत्त्वो से अधिक महत्त्वपूर्ण हैं

मार्क्स संघर्षो मे आर्थिक तत्त्वो पर ही बल देता है। परन्तु पिछले दो महायुद्धो ने सिद्ध कर दिया है कि एक राष्ट्र के नागरिक भिन्न भिन्न आर्थिक वर्गों के होने पर भी राष्ट्र की आपत्ति के समय एक हो कर कार्य करते हैं। क्या पूँजीपति क्या श्रमजीवी, क्या मध्यम वर्गीय सभी एक होकर राष्ट्रीय संकट मे शत्रु का सामना करते है। यदि आर्थिक तत्त्व ही युद्धो के कारण होते और उत्पादन प्रणाली के आधार पर ही समाज का विभाजन होता तो राष्ट्रो का श्रमजीवी वर्ग कभी भी राष्ट्र की रक्षा के लिए अपने जीवन को नष्ट नही करता। वास्तविकता तो यह है कि "राष्ट्रीयता' जैसा मनोवैज्ञानिक तत्त्व मानव के मनोवेगो पर आर्थिक तत्त्वो से कही अधिक प्रभावी होता है।

7 मार्क्स की भविष्यवाणी (पूँजीवाद का पतन, वर्ग विहीन राज्य की स्थापना और राज्य का लोप) गलत सिद्ध हुई है

जिस आधार पर मार्क्स ने अन्य समाजवादियो की 'काल्पनिक' (utopian) कह कर आलोचना की मार्क्स स्वय उसी 'कल्पना' का शिकार हो गया। मार्क्स ने यह भविष्यवाणी की थी कि पूँजीपति और सर्वहारा मे चल रहे संघर्ष मे पूँजीवाद का पतन और सर्वहारा वर्ग की विजय अवश्यम्भावी है। परन्तु यह भविष्यवाणी ठीक सिद्ध नही हुई। दो भयकर युद्धो के बाद भी पूँजीवाद का पतन नजर नही आता अपितु यह आर्थिक व्यवस्था और सुदृढ हुई है। पूँजीवाद मे जो अपने आप को सुधारने की वृत्ति है वह उसे शक्ति प्रदान करती है। उदाहरणतया अमरीका मे, जो पूँजीवादी राष्ट्रो मे सबसे अधिक पूँजीवादी देश है, वहा सर्वहारा वर्ग के बनने मे निरन्तर वृद्धि से उसकी संख्या बढने के स्थान पर कम हुई है, मध्यम वर्ग मे वृद्धि हुई है।

मार्क्स की यह भविष्यवाणी भी गलत सिद्ध हुई है कि राज्य का अन्तत लोप हो जायगा। सोवियत रूस म राज्य की शक्ति कम होने के स्थान पर तीव्र गति से बढी है।

मार्क्स का यह कहना कि विश्व के सभी देशो के सर्वहारा वग के लाग एकत्रित हो जायेंगे और उनमे सगठन बना रहेगा या 'अ तर्राष्ट्रीय साम्यवाद' का उदय होगा तो यह भी भविष्यवाणी ठीक सिद्ध नही हुई। रूस और चीन के वतमान सघष सर्वहारा वग के विश्व सगठन म दरारें नही तो क्या है? प्रजाताि त्रक समाजवाद क विकास न भी अ तराष्ट्रीय साम्यवाद के स्वप्न को यदि समाप्त नही किया तो कम से कम शताब्दियो पीछे धकेल दिया है। इसके अतिरिक्त राज्यो मे जो राष्ट्रीय साम्यवाद का विकास हुआ है, जसे माशल टीटो के शासन काल मे युगोस्लाविया मे, वह अ तर्राष्ट्रीय साम्यवाद के स्वप्न का पूरा नही होने देगा।

उपर्युक्त वणन से स्पष्ट है कि मार्क्स का वग सघष का सिद्धा त "निराशापूण एव अति नाटकीय है" (pessimistic and over dramatic)।

V पूँजीवाद की प्रकृति या पूँजीवाद स्वय अपनी कब्र खोदता है
(Nature of Capitalism or Capitalism digs its own grave)

वग सघष के आधार पर मार्क्स का यह विश्वास है कि पूँजीवाद की प्रकृति आत्मनाशी (self destructive) है। पूँजीवाद की लाभ वृत्ति, अतिरिक्त मूल्य को अकेले हडप करने की उसकी अभिलाषा, पूँजी का केन्द्रीयकरण (एकाधिकार पूँजी—monopoly capital) और वित्त पूँजी (finance capital), श्रमिक वग की बढती हुई बेराजगारी, कम राजगारी गलत राजगारी त था इसके फलस्वरूप उसकी निधनता, श्रमजीवियो का शोषण, पूँजीपतियो का श्रमिको म अ याय और अत्याचार का व्यवहार, माग से अधिक पूर्ति, जरूरत से अधिक उत्पादन, बाजार का माल से पाटा जाना, आर्थिक सकट, विश्व के बाजारो की माग, यातायात और सचार साधनो का विकास श्रमिको मे वग चेतना का विकास तथा उनमे सहयोग की भावना का उत्प न होना—ये सब तत्त्व पूँजीवाद के आवश्यक परिणाम हैं और य सब मिलकर पूँजीवाद की कब्र का तैयार करते हैं। पूँजीवाद के इन आवश्यक परिणामो का निम्न पाँच नियमो म व्यक्त किया जा सकता है —

(1) पूजी (सचय—सग्रह) का नियम (Law of Capital Accumulation)
(2) श्रमिको के निरन्तर बढते हुए दु ख का नियम (Law of Increasing Misery of the Proletariat)
(3) स्थानीयकरण का नियम (Law of Localisation)
(4) आवर्ती आर्थिक सकट (Recurring Economic Crisis)
(5) विश्व बाजारो की माग तथा साम्राज्यवाद (Demand for World Market and Imperialism)

1 पूँजी सचय (सग्रह) का नियम (Law of Capital Accumulation)

मार्क्स की धारणा है कि पूँजीवाद दोहरे तरीके से आत्मनाशी है। एक तो य पूँजी सचय के सिद्धान्त द्वारा आत्मनाशी है और दूसरा आन्तरिक विरोधाभासो के कार भी आत्मनाशी है। ज्योंही पूँजीपति अतिरिक्त मूल्य का हडप करता है त्योंही पूँजी सचय का सिद्धान्त आरम्भ हो जाता है। इस सिद्धान्त के अनुसार "पहले से ही रक्षि (उत्पादित) पूँजी का केन्द्रीयकरण आरम्भ हो जाता है, व्यक्तिगत स्वतन्त्रता नष्ट ह जाती है, बडे पूँजीपतियो द्वारा छोटे और मध्यम वर्गीय पूँजीपतियो की सम्पत्ति का हरण आरम्भ हो जाता है जिससे बहुत से छोटे और मध्यम वर्गीय पूँजीपतियो के स्थान पर कुछ थोडे से बडे बडे पूँजीपतियो का निर्माण होता है। छोटे छोटे और मध्यम वर्गीय पूँजीपतियो द्वारा उत्पादित वस्तुएँ बडे पूँजीपतियो द्वारा उत्पादित वस्तुओ से प्रतिद्वन्द्विता नही कर सकतो क्योकि बडे पैमाने पर उत्पादित चीजो का मूल्य छोटे पैमाने पर उत्पादित चीजो से कम होता है। इस तरह बाजार की प्रतियोगिता मे छोटे पूँजीपति पराजित हो जाते हैं, उनकी मिले या कारखाने आदि बन्द हो जाते है या बिक जाते है और उत्पादन गिने चुने बडे उद्योगपतियो के हाथो मे केन्द्रित हो जाता है जो पूँजी के मालिक बन जाते है। इस तरह जो तत्त्व सम्पत्ति का सचय करते है तथा उसकी केन्द्रीयकरण की प्रवृत्ति को बढाते है वे है प्रतिद्वन्द्विता, साख की वृद्धि (growth of credit), सयुक्त पूँजी की प्रणाली का विकास, तकनीकी उन्नति के कारण प्रारम्भिक पूँजीगत लागत मे अधिक धन की आवश्यकता, आदि।

मार्क्स का यह विश्वास है कि 'पूँजी का सचयन इसलिए अवश्यम्भावी नहीं है कि सम्पत्ति के विषय मे पूँजीपति कजूस के भावावेग का सहयोगी है बल्कि इसलिए कि जो कजूस मे केवल पागलपन है वह पूँजीपति मे सामाजिक बनावट का प्रभाव है जिसका वह एक पुर्जा मात्र है'। इस सचयन के प्रभावो पर प्रकाश डालते हुए मार्क्स लिखता है कि सचयन का अभिप्राय सामाजिक सम्पत्ति के विश्व पर विजय प्राप्त करना है। जो पूँजीपति पूँजी का सचयन करने मे असफल रहते हैं वे सर्वहारा वर्ग मे शामिल हो जाते हैं।

पूँजीवाद का पतन अपने अन्तर्निहित विरोधाभासो के कारण भी अवश्यम्भावी है। पूँजीवाद व्यक्ति का अपव्यय करता है, श्रमिक को कम वेतन दे कर उसकी क्रय शक्ति को क्षीण करता है, काम के घण्टे बढा कर उसके सामाजिक जीवन को नष्ट करता है। मार्क्स का विश्वास है कि यह अपव्यय अन्तत पूँजीवाद का दम घोंट डालता है या ही नाश कर देता है क्योंकि व्यक्तियो का अपव्यय करके यह प्रणाली व्यक्तियो के बिना काम नहीं कर सकती।

2 श्रमिकों के निरन्तर बढते हुए दुखो का नियम (Law of Increasing Misery of the Proletariat)

पूँजी के सचय के नियम से स्पष्ट है कि जहाँ एक ओर कुछ पूँजीपतियो के

हाथों में धन का संचय होता है वहाँ दूसरी ओर असंख्य लोगों की निर्धनता में वृद्धि होती है। यन्त्रों के विकास से श्रमिक का व्यक्तित्व नष्ट हो जाता है, उसकी स्थिति यन्त्र में उपकरण (appendage) जैसी हो जाती है और वह एक पण्य (commodity) मात्र बन कर रह जाता है। तकनीकी ज्ञान में वृद्धि से श्रमजीवियों की आवश्यकता कम होती जाती है, पुरुष श्रम का स्थान स्त्री श्रम या बच्चे का श्रम ले लेता है, बेरोजगारी की समस्या गम्भीर होती जाती है, मजदूरी की दर कम होती जाती है, उनका दमन, अधःपतन और शोषण अत्यधिक होने लगता है। दुःख (क्लेश), कठोर परिश्रम, सन्ताप, दासता, अनभिज्ञता, मानसिक पतन तथा लाचारी उनके लिए दिन प्रतिदिन का आहार बन जाता है। अन्त में वह समय आ जाता है जब उनके पास सिवाय अपनी बेड़ियाँ के तोड़ने के कुछ शेष नहीं रहता। सर्वहारा वर्ग का विद्रोह आरम्भ हो जाता है और वे संगठित होकर क्रांति करते हैं जिसमें विजय सर्वहारा वर्ग की अवश्यम्भावी है। व्यक्तिगत पूँजी जो इस सारी दुर्दशा के लिए उत्तरदायी होती है "उसकी मौत का बिगुल बज जाता है सम्पत्ति के हरण करने वालों का ही हरण हो जाता है।"[1] संक्षेप में, इस सारी प्रक्रिया को इन शब्दों में व्यक्त किया जा सकता है। प्रतिद्वन्द्विता से पूँजीपति के लाभ की मात्रा कम होती है लाभ की मात्रा बढ़ाने के लिए पूँजीपति अतिरिक्त मूल्य में वृद्धि करता है, अतिरिक्त मूल्य में वृद्धि से बेरोजगारी बढ़ती है बेरोजगारी से असन्तोष बढ़ता है, असन्तोष से क्रांति उत्पन्न होती है और क्रान्ति से समाजवाद की स्थापना होती है।

3 स्थानीयकरण का नियम (Law of Localisation)

पूँजीवाद की एक प्रवृत्ति स्थानीयकरण की है। इसका अर्थ यह है कि उत्पादन के बड़े-बड़े कारखाने एक स्थान पर केन्द्रित हो जाते हैं जिससे बड़े बड़े नगरों का निर्माण होता है। यह स्थानीयकरण श्रमजीवियों के संघर्ष के लिए वरदान सिद्ध होता है क्योंकि एक स्थान पर काम करने से वे अपनी कठिनाइयों और आवश्यकताओं की ओर जागृत होते हैं। इन्हें दूर करने के लिए उनमें संगठन और अनुशासन की भावना पैदा होती है तथा उनमें सहयोग सरल हो जाता है। जो संघर्ष पहले व्यक्तिगत, फिर एक स्थान में केन्द्रित होता है वह बाद में राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय बन जाता है। प्रारम्भ में संगठित मजदूर हड़तालों या सामूहिक हड़तालों द्वारा सामाजिक जीवन को अस्त व्यस्त या ठप्प (paralyze) करने की कोशिश करते हैं तथा बाद में क्रान्ति द्वारा व्यक्तिगत सम्पत्ति की प्रणाली को समाप्त कर देते हैं और उस पर समाज का नियन्त्रण स्थापित हो जाता है। सर्वहारा वर्ग के द्वारा इस नवीन अवस्था को स्थायित्व प्रदान किया जाता है।

---

1 The knell of capitalist private sounds The expropriators are expropriated' – *Marx*

मार्क्स ने क्रान्ति की स्ट्रेटेजी (strategy) का विस्तार नहीं किया। फिर भी इतना स्पष्ट है कि शक्ति और हिंसा इसके मुख्य आधार हैं। 'बल एक नए समाज को जनने वाले प्रत्येक पुराने समाज की दाई है।'[1]

4 आवर्ती आर्थिक संकट का नियम (Law of Recurring Economic Crisis)

पूँजीवाद की एक अन्य प्रवृत्ति अति उत्पादन की है जिससे आर्थिक मंदा की सम्भावनायें अधिक रहती हैं। उपभोक्ता उत्पादित वस्तुओं का अत्यन्त सीमित भाग ही खरीद सकते हैं जिससे उत्पादित वस्तुएँ एकत्र हो जाती हैं। आर्थिक संकट दिन प्रतिदिन बढते जाते हैं जिससे सारे समाज का जीवन संकटमय हो जाता है। जब यह निश्चित हो जाता है कि पूँजीवाद सुरक्षा प्रदान नहीं कर सकता और उसके दास (श्रमजीविया) के लिए तुच्छ स्थिति (Slavish existence) में भी रहना सम्भव नहीं है तो पूँजीपति से लेखा जोखा करने का दिन समीप आ जाता है अर्थात क्रान्ति जन्म लेती है।

5 विश्व बाजारों की माग तथा साम्राज्यवाद (Demand for World Markets and Imperialism)

पूँजीवाद की एक प्रवृत्ति यह है कि वह अपनी उत्पादक वस्तुओं की खपत के लिए जब राष्ट्रीय मण्डिया में खपत सतृप्ति बिंदु (saturation point) पर पहुँच जाती है विश्व की मण्डियो की होड करने लगता है। उसकी दृष्टि अविकसित क्षेत्रों पर पड़ती है क्योंकि जहा एक ओर ये क्षेत्र उसकी उत्पादक वस्तुओं के लिए खपत का काम करते हैं वहा, दूसरी ओर, उत्पादन के लिए उन्हे वहाँ से कच्चा माल भी प्राप्त होता है। इसके दो महत्वपूर्ण परिणाम निकलते हैं—(1) यातायात और संचार साधनो मे तीव्र विकास होता है और (2) साम्राज्यवाद की भावना पनपती है। पूँजीवादी राष्ट्र अपने साम्राज्य क्षेत्र को बढाने के लिए विश्व युद्धो को जन्म देते हैं। यद्यपि युद्धो से व्यापार की क्षति तो होती है परन्तु वस्तुओं के भाव बढ़ जाते हैं जिससे श्रमिकों का पहले से ही दुखी जीवन और दुखमयी हो जाता है। मार्क्स की यह धारणा भी थी कि सब राष्ट्रो के श्रमजीविया—इगलण्ड, जर्मनी, फ्रास आदि राष्ट्रों के श्रमजीवियो—की कठिनाइया और आवश्यकतायें एक जैसी होती हैं। यातायात और संचार के साधनो मे वृद्धि से उन्हें अपने संघर्ष को अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर संगठित करने का अवसर मिलता है। जो संघर्ष पहले राष्ट्रीय स्तर तक सीमित रहता है वह अब अन्तर्राष्ट्रीय बन जाता है। इस तरह, मार्क्स की धारणा है कि 'बुर्जुआ स्वय सर्वहारा वर्ग को उससे लडने के यन्त्र प्रदान करता है।'[2]

---

1 Force is the mid wife of every old society pregnant with a new one —Marx Das Capital, p 824 Quoted by Hacker, *Ibid* p 550

2 The bourgeoisie itself furnishes the proletariat with weapons for fighting the bourgeoisie —Marx and Engels *Communist Manifesto* p 43

कोकर ने पूँजीवाद म आत्मनाशी तत्त्वों को इस प्रकार व्यक्त किया है। "पूजीवादी प्रणाली मजदूरो की सख्या बढाती है, उन्हे वह सुसगठित समुदायो मे एकत्र कर देती है, उनमे वग चेतना का प्रादुर्भाव करती है और उनमे परस्पर सम्पक तथा सहयोग स्थापित करने के लिए विश्वव्यापी पैमाने पर साधन प्रदान करती है, उनकी क्रय शक्ति का कम करती है और उनका अधिकाधिक शोषण करके उन्हें सगठित प्रतिरोध करने के लिए प्रोत्साहित करती है। अपनी स्वाभाविक आवश्यकताओ की पूर्ति के लिए निरन्तर प्रयत्न करते हुए और मुनाफे के आधार पर स्थिर प्रणाली की सतत रक्षा करते हुए पूँजीपति सदैव ऐसी अवस्थायें उत्पन्न करते रहते हैं जिनसे मजदूरो को श्रमिक समाज की आवश्यकता तो के अनुकूल प्रणाली स्थापित करने के लिये तयारी करने के अपने स्वाभाविक प्रयत्नो म प्रोत्साहन तथा बल मिलता है।"[1]

आलोचना

पूँजीवाद की प्रकृति के बारे मे मार्क्स की सब भविष्यवाणिया गलत सिद्ध हुई हैं। सयुक्त पूँजी की कम्पनियो (Joint Stock Companies) के विकास से मार्क्स की यह भविष्यवाणी कि पूँजीवादी राष्ट्रो म पूँजी कुछ मुट्ठी भर पूँजीपतियो के हाथो म एकत्रित हो जायगी गलत सिद्ध हुई है। इन सयुक्त पूँजी की कम्पनियो के हिस्सो को न केवल पूँजीपति ही खरीदते है बल्कि मध्यम वग और श्रमिक वग के लोग भी खरीदते ह। इतना ही नही सयुक्त पूँजी से होने वाले लाभो को सब हिस्सेदार (share holders) प्राप्त करते है।

मार्क्स की यह भविष्यवाणी भी गलत सिद्ध हुई है कि आर्थिक सकट से पूँजीवाद अपनी कब्र की ओर अग्रसर होगा। सन् 1929-30 म आर्थिक सकट अवश्य हुआ परन्तु वह पूँजीवाद के लिए अभिशाप सिद्ध होने के स्थान पर वरदान सिद्ध हुआ। इससे पूँजीवाद ने अपनी अन्तर्निहित त्रुटिया को दूर कर लिया अर्थात् पूँजीवाद म जो अपने आपको सुधारने की प्रवृत्ति है और नयी परिस्थितियो के साथ अपने आपको समायोजन (adjust) करने की प्रवृत्ति है उसकी मार्क्स न कल्पना ही नही की।

मार्क्स की यह भविष्यवाणी कि औद्योगिक और तकनीकी ज्ञान के विकास से सर्वहारा वग के सदस्यो की सख्या म अभिवृद्धि होगी वह भी गलत सिद्ध हुई है। विश्व के सबसे बडे पूँजीवादी तथा औद्योगिक और तकनीकी दृष्टि से विकसित राष्ट्र अमरीका मे सर्वहारा वग के सदस्यो की सख्या म वृद्धि होने के स्थान पर उनकी सदस्य सख्या म कमी हुई है। जिस सर्वहारा वग के सदस्यो की सख्या सन् 1910

1 Coker Francis W *Recent Political Thought*, p 52

मे 29 2 थी सन 1950 मे वह घटकर 12 4[1] रह गई और दिन प्रतिदिन उनकी सख्या कम हो रही है।

मार्क्स की यह भविष्यवाणी कि श्रमिको के दुखो मे निरतर वृद्धि होगी गलत सिद्ध हुई है। मार्क्स लोक कल्याणकारी राज्य की कल्पना ही नही कर सका। आज के लोक कल्याणकारी राज्य मे, इगलण्ड, अमरीका सहित, राज्य कानूनो द्वारा सर्वहारा वर्ग के सदस्यो की दशा सुधारने मे लगा हुआ है। मजदूरी की दरो म वृद्धि, काय के घण्टो मे कमी तथा उनकी निश्चितता और सामाजिक सुविधाएँ जो आज श्रमिको को प्राप्त हैं वे कानून के द्वारा ही सम्भव हो सकी हैं। वास्तविकता यह है कि आज का श्रमिक न केवल जीवन की अनिवाय आवश्यकतायें—भोजन, वस्त्र तथा मकान—को ही सुलभ तरीका से प्राप्त करता है बल्कि भौतिक सुविधाएँ जसे रेडियो, टलिविजन, टलिफोन, मोटर, आदि भी उसे प्राप्त हैं।

मध्यम वर्ग, जिसके भविष्य की कल्पना ही मार्क्स नही करता, का महत्त्व दिन प्रतिदिन बढता ही जा रहा है। जैसे जसे तकनीकी ज्ञान मे वृद्धि हुई है वसे वस लिपिक, पयवेक्षको, टेकनिशियनो, अध्यापको, वकीलो, डाक्टरो, कारखाने के प्रबन्धकों, इन्जीनियरो, उच्च सरकारी सेवा करने वालो में निरन्तर वृद्धि हुई है।

मार्क्स का राज्य विषयक सिद्धान्त (Marx's theory of State)

मार्क्स का राज्य विषयक सिद्धान्त राजनीतिक शास्त्र के सस्थापकों की विचारधारा के ठीक विपरीत है। प्लेटो और अरस्तू के लिए राज्य एक प्राकृतिक और नतिक सस्था थी जिसका उद्भव मानव आवश्यकताओ के कारण हुआ और जिसका अस्तित्व इसलिए विद्यमान है कि वह अच्छे जीवन मे सहायक है। अधिकाश राजनीतिक लेखको के लिए राज्य समाज के भिन्न भिन्न तत्त्वो मे सामजस्य स्थापित करने वाली सस्था है। यह मानव व्यक्ति के विकास मे उसकी सहायक है। परन्तु मार्क्स और ऐंजिल्स के लिए राज्य न तो सामान्य हित का पोषक है और न ही यह व्यक्ति के व्यक्तित्व के विकास मे सहायक है। उनके लिये यह तो 'सम्पूर्ण बुर्जुआ के सामान्य उद्देश्यो का प्रबन्ध करने के लिए उसकी कायकारिणी समिति है।"

मार्क्स और ऐंजिल्स की धारणा है कि राज्य बुर्जुआ सस्था है। इसका उद्देश्य बुर्जुआ की सम्पत्ति और उसके हितो की रक्षा करना है। यह वही स्वरूप ग्रहण कर लेता है जो बुर्जुआ अपने आन्तरिक और बाह्य उद्देश्यो को प्राप्त करने के लिए ग्रहण करता है। सक्षेप म, हेकर के शब्दो मे, 'पूँजीवादी राज्य व्यक्तिगत आर्थिक शक्ति की पवित्रता का हामीदार है।'[2]

---

1 यहाँ दिये गये आँकडे हरिदत्त वेदालकार की पुस्तक प्रमुख राजनीतिक विचारक से उद्धत किये गये हैं पृ० 151

2 The Capitalist state underwrites the sanctity of private economic power —Hacker Andrew *Political Theory*, p 540

मार्क्स और एंजिल्स के लिए राज्य एक शोषण का यन्त्र है। एंजिल्स के शब्दों में, "राज्य केवल एक ऐसा यन्त्र है जिसकी सहायता से एक वर्ग दूसरे वर्ग का शोषण करता है।" इनके लिए राज्य प्राकृतिक संस्था नहीं। इसका विकास तो तब होता है जब इतिहास के विकास में समाज दो असमंजित समूहों (two irreconcilable groups) में विभक्त हो जाता है जो परस्पर विरोधी हितों का अनुसरण करते हैं। इस तरह मार्क्स और एंजिल्स के लिए राज्य वर्ग संघर्ष का परिणाम है। लेनिन के शब्दों में, "कहाँ, कब और किस रूप में राज्य का विकास होना है, यह ठीक उस बात पर निर्भर करता है कि कब, कहाँ और किस सीमा तक किसी समाज के वर्गों के विरोध का वस्तुनिष्ठ ढंग से समंजन नहीं किया जा सकता और विलोमत (conversely), राज्य का अस्तित्व सिद्ध करता है कि वर्ग विरोध असमंजित है।"

मार्क्स दृढ़तापूर्वक कहता है कि सामाजिक विकास में सरकार "रचनात्मक शक्ति" होने के स्थान पर "रुकावट शक्ति" है। यह ऐसा माध्यम है जिसके द्वारा शासक वर्ग शासित वर्ग पर अपनी इच्छा थोपता है तथा इसके माध्यम से अपनी अधिमान्य स्थिति को बनाये रखता है। मार्क्स इस बात पर बल देता है कि सामाजिक विकास की प्रत्येक अवस्था में शासक वर्ग अपनी इच्छा को कानून का रूप देने में सर्वथा सफल हुआ है। यह इच्छा पूँजीपतियों द्वारा सामान्य जनता के विरुद्ध कोई षड्यन्त्र नहीं, ऐसा कहना इसका अत्यन्त साधारणीकरण करना होगा, यह इच्छा आर्थिक अवस्थाओं का स्वाभाविक अनिवार्य परिणाम है।

मार्क्स का दृढ़ विश्वास है कि राज्य श्रमजीवियों का शोषण करने में बुर्जुआ (पूँजीपतियों) की सहायता करता है, अतिरिक्त मूल्य को बढ़ाने में उनकी मदद करता है, राज्य की पुलिस और सेना, न्याय व्यवस्था, अपराधिक कानून (criminal law) आदि सब पूँजीपति वर्ग के हितों की रक्षा करते हैं। इतना ही नहीं पूँजीपतियों के हितों की रक्षा के लिए राज्य धार्मिक और सांस्कृतिक संस्थाओं—चर्च और स्कूल—का प्रयोग भी करता है। इन संस्थाओं द्वारा राज्य श्रमजीवियों को अपने नियन्त्रण में रखता है ताकि वे उसके विरुद्ध विद्रोह न कर सकें।

मार्क्स की धारणा है कि इस वर्ग राज्य और निर्दय अवस्थाओं का अन्त सर्वहारा वर्ग की क्रान्ति द्वारा ही अवश्यम्भावी है। क्रान्ति इसलिए अनिवार्य है कि असन्तोष की शक्तियाँ दिन प्रतिदिन संगठित हो जाती हैं जो अन्त में सब बेड़ियों को तोड़ डालती हैं। क्रान्ति द्वारा राजनीतिक सत्ता प्राप्त कर सर्वहारा वर्ग शासक वर्गों को अपनी अधिमान्य स्थिति त्यागने के लिए बाध्य करेगा। क्रान्ति में श्रमजीवियों का सर्वप्रथम कार्य सर्वहारा वर्ग को शासक वर्ग की स्थिति प्रदान करना तथा प्रजातन्त्र के युद्ध में विजय प्राप्त करना है। श्रमजीवी अपनी इस राजनीतिक सर्वोच्चता का प्रयोग बुर्जुआ से क्रमश: उसकी पूँजी छीनने में करेगा, निजी और पैतृक सम्पत्ति के अधिकारों को समाप्त कर उत्पादन के साधनों पर समाज का नियन्त्रण स्थापित

करेगा, यातायात एव सचार साधनो का केन्द्रीयकरण करेगा, शिक्षा का विस्तार तथा उत्पादक शक्तियो का विकास शीघ्रता से करेगा। सक्षेप मे, क्रान्ति द्वारा सवहारा वग अपनी स्थिति दृढ करेगा और पूँजी के अंतिम शेषों को समाप्त करेगा।

निर्बाध अवस्था (Idyllic State) के स्थापित होने से पूव सवहारा वग के अधिनायकवाद को स्थापित किया जायगा जिसमे समाजवादी व्यवस्था स्थापित की जायगी। सब प्राकृतिक एव उत्पादन साधनो का सामाजीकरण कर दिया जायगा। पूँजीवाद के अन्तिम अशो को भी नष्ट कर दिया जायगा। इस सक्रमण अवस्था में वस्तुओ का वितरण आवश्यकता के अनुसार नही होगा बल्कि काय की क्षमता के आधार पर होगा। पहने के प्रबल वर्गों (शासन वर्गों) के अधिनायकवाद की भांति सवहारा वग का अधिनायकवाद भी उसी प्रकार से दमनकारी होगा। राज्य उसी व (सवहारा वग) का दमनकारी अग होगा जिसका नियत्रण उत्पादन के स्रोतो पर है सक्षेप मे, पूँजीवाद के प्रतिरोध को कुचलने और उसके अवशेषो को समाप्त करने लिए सवहारा वग राजनीतिक शक्ति का प्रयोग करेगा। परन्तु इस अवस्था म अल्पम बहुमत का दमन नही करेगा, बहुमत अल्पमत का दमन करेगा। परन्तु यह अवस्थ पश्चिमी देशो की प्रजातान्त्रिक एव व्यक्तिगत स्वतन्त्रता जैसी अवस्था नहीं है ऐंजिल्स ने स्पष्ट लिखा है कि "चूँकि राज्य केवल अस्थायी सस्था है जिसका प्रयो क्रान्ति मे विरोधियो के बलपूवक दमन के लिए किया जाता है इसलिए स्वतन्त्र तथ लोकप्रिय राज्य की बात करना सवथा हास्यप्रद होगा। जब तक सवहारा वग क राज्य की आवश्यकता है उसे उसकी स्वतन्त्रता के हितो के लिए नही वरन विरोधिय का दमन करने के लिए है और जब स्वतन्त्रता की बात करना सम्भव हो जाता है तब राज्य का अस्तित्व ही नही रह जाता।"[1]

साम्यवाद का प्रादुर्भाव सवहारा की देख रेख मे होगा। यद्यपि मार्क्स ने इस साम्यवादी अवस्था की विस्तृत व्याख्या नही की फिर भी इसकी दो मुख्य विशेषताओं को बताया जा सकता है। एक तो यह है कि यह वग विहीन राज्य विहीन सामाजिक अवस्था होगी, इसमे किसी प्रकार के वग नही होंगे, न कोई शोषक होगा न कोई शोषित, राज्य का धीरे धीरे लोप हो जायगा क्योंकि जब वग ही नहीं रहेंगे तो राज्य की आवश्यकता भी नही रहेगी। दूसरी यह कि इस समाज मे वितरण का सिद्धान्त

1 'Since the state is only a temporary institution which is to be made use of in the revolution in order forcibly to suppress the opponents it is perfectly absurd to talk about a free popular State so that as the proletariat needs the state it needs it not in the interests of freedom but in order to suppress its opponents and when it becomes possible to speak of freedom, the state as such ceases to exist —*Engels*

"प्रत्येक से उसकी योग्यतानुकूल और प्रत्येक को उसकी आवश्यकतानुकूल" पर आधारित होगा।

मार्क्स के राज्य विषयक सिद्धान्त को, संक्षेप मे, निम्न प्रकार से व्यक्त किया जा सकता है —

(1) राज्य बुर्जुआ की कार्यकारिणी समिति है।
(2) राज्य वर्ग संघर्ष का परिणाम है।
(3) राज्य शोषण का यन्त्र है।
(4) राज्य शक्ति और हिंसा पर आधारित है।
(5) राज्य स्थायी संस्था नही, यह अस्थायी संस्था है।
(6) साम्यवादी अवस्था म राज्य का धीरे-धीरे लोप हो जायगा।

आलोचना

मार्क्स के राज्य विषयक सिद्धान्त की अनेक आधारो पर आलोचना की गयी है, जिनमे मुख्य निम्न हैं —

1 राज्य नैतिक संस्था है वर्ग संस्था नही

मार्क्स का यह विचार कि राज्य 'आर्थिक लूट (Economic Spoliation) है न केवल एक तरफा विचार है वरन मिथ्या विचार भी है। उसका सिद्धान्त राज्य का क्रिया विज्ञान (physiology) होने के स्थान पर उसका रोग विज्ञान (pathology) है। यह सत्य है कि शासको ने कभी-कभी अपने स्वार्थ हितो का अनुसरण किया है परन्तु राज्य विज्ञान के सिद्धान्तो को अपराधियो के कार्यों और लूट के उदाहरणो पर आधारित कर मानवीय प्रकृति को विकृत सिद्ध करना गलत है। राज्य कोई वर्ग संस्था नही जो समाज के किसी एक वर्ग के हाथो में दूसरे वर्ग का शोषण करने का यन्त्र है। यह हिंसा पर आधारित नही। "इसका आधार इच्छा है शक्ति नही" (ग्रीन)। यह एक नैतिक संस्था है जिसका उद्देश्य मानव व्यक्तित्व के विकास मे सहायक होना है।

2 राज्य जन समूह का शत्रु नहीं मित्र है

मार्क्स ने राज्य को केवल "शोषण का यन्त्र', "वर्गीय संगठन", "बुर्जुआ की कार्यकारिणी समिति", तथा "हिंसा" पर आधारित संस्था माना है। परन्तु हमारा दैनिक अनुभव ठीक इसके विपरीत है। आज का कल्याणकारी राज्य व्यक्ति का सहायक एव मित्र है उसका शत्रु नही। यह निर्दय अवस्थाओ का सुधारक है जनक नही। यह आन्तरिक और बाह्य सुरक्षा का साधन है दमन का स्रोत नही। यह व्यक्ति के विकास म सुविधा प्रदान करता है बाधा प्रस्तुत नही करता। इस तरह मार्क्स न राज्य के मौलिक कार्यों की उपेक्षा कर उसके दमनकारी कार्यों पर अनावश्यक महत्त्व दिया है। इसलिए मार्क्स के राज्य विषयक विचार अतिशयोक्तिपूर्ण एव अवास्तविक हैं जिन्हे स्वीकार नही किया जा सकता।

3 परिवर्तन के लिए क्रान्ति आवश्यक नहीं, संवैधानिक उपायों द्वारा भी परिवर्तन लाया जा सकता है

मार्क्स का यह विचार कि पूँजीवाद से समाजवाद की ओर परिवर्तन केवल सर्वहारा वर्ग की हिंसक क्रान्ति द्वारा ही सम्भव है अतिशयोक्तिपूर्ण है। सामाजिक परिवर्तन शान्तिपूर्ण एवं संवैधानिक साधनों द्वारा भी सम्भव है। बुद्ध, ईसा, और गांधी ने जिन क्रान्तियों का आवाहन किया वे हिंसा पर आधारित नहीं थी। पूँजीवादी राष्ट्रों में श्रमजीवियों की दशा को सुधारने के लिए जो प्रयत्न किये गये हैं वे हिंसा द्वारा नहीं बल्कि संवैधानिक तरीकों द्वारा (कानूनों द्वारा) किये गये हैं। शान्तिमय साधनों से भी क्रान्तिकारी परिवर्तन लाये जा सकते हैं। उदाहरणतया भारत में जमींदारी व्यवस्था का उन्मूलन, बड़े बड़े बैंकों का राष्ट्रीयकरण, राजाओं के निजी कोश (Privy purse) की समाप्ति, को कानून द्वारा प्राप्त किया गया है। वर्तमान में बिनोबा भावे भूदान यज्ञ द्वारा समाज में शान्तिमय साधनों से जो क्रान्तिकारी परिवर्तन ला रहे हैं उनकी मार्क्स कल्पना नहीं कर सका।

मार्क्स का यह विचार गलत है कि परिवर्तन केवल क्रान्ति द्वारा ही सम्भव है। एबनस्टिन ने ठीक लिखा है कि 'मार्क्स यदि राजनीतिक तत्त्वों को उचित महत्त्व या बल देता, यदि वह इंगलैण्ड में सुधार अधिनियम (Reform Act) और अमरीका में जैक्सन द्वारा किये गये क्रान्तिकारी परिवर्तन का भली भांति समझ लेता तो हो सकता है कि मार्क्स महसूस करता कि समाजवाद को बिना हिंसा के उन देशों में प्राप्त किया जा सकता है जिनमें प्रजातान्त्रिक परम्पराएँ सबल रूप से विद्यमान हैं और जो बिना गृह युद्ध के विस्तृत एवं महत्त्वपूर्ण सामाजिक और आर्थिक परिवर्तनों को अपने अन्दर समा सकती हैं। परन्तु सामाजिक परिवर्तन की प्रक्रिया में सांस्कृतिक और राजनीतिक तत्त्वों के महत्त्व को स्वीकार करने का अभिप्राय यह होता कि मार्क्स को अपनी इस केन्द्रीय स्थिति को त्यागना पड़ता कि इतिहास वर्ग संघर्ष का इतिहास है और शासक वर्ग सर्वदा अपनी स्थिति को बनाये रखने के लिए अन्तिम सीमा तक संघर्ष करते हैं।"[1]

4 राज्य स्थायी संस्था है अस्थायी नहीं

मार्क्स का यह विश्वास था कि साम्यवाद की स्थापना से अर्थात् वर्ग विहीन समाज की स्थापना पर राज्य की कोई आवश्यकता नहीं रहेगी। जब वर्ग ही नहीं रहेंगे तो राज्य अनावश्यक हो जायगा और उसका धीरे धीरे लोप हो जायगा। परन्तु राज्य कोई अस्थायी संस्था नहीं जिसका लोप हो जायगा। यह व्यापारिक समझौते की भाँति पक्षों की इच्छा पर भी निर्भर नहीं करता। राज्य तो मनुष्य स्वभाव पर आधारित है। इसके लोप की कल्पना मिथ्या है। रूस में सन् 1917

1 Ebenstein, William *Today's Isms*, p 11

साम्यवादी क्रान्ति सफल हुई परन्तु वहाँ अभी तक राज्य का लोप नही हुआ और न आने वाले भविष्य में इसके लोप होने की सम्भावना है। वहा तो राज्य पहले से भी अधिक सुदृढ एव शक्तिशाली बना है।

धर्म के बारे मे मार्क्स के विचार (Marx s Views on Religion)

मार्क्स धर्म विरोधी था। उसके लिए धर्म सामाजिक असमानता, अन्याय और शोषण को स्थायी रखने के लिए पूँजीवादी तरीका है। यह पूँजीवादी शोषण का सहायक एव पोषक है। इसकी आड मे पूँजीपति अपनी निकम्मी करतूतो को समाज मे जारी रखते है। धर्म पूँजीवादी यन्त्र है। इतना ही नहीं धर्म पूर्व स्थिति (Status quo) को बनाये रखना चाहता है। धर्म परिवर्तन मे विश्वास नही करता। वह अनुदारवादी एव प्रतिक्रियावादी होता है।

मार्क्स के लिए धर्म लोगो के लिए "अफीम की गोली" है जिसका रसास्वादन व्यक्ति को भाग्यवादी बनाता है। धर्म व्यक्ति मे निष्क्रियता और दास वृत्ति पैदा करता है। मार्क्स के शब्दो म, "ईसाई धर्म के सामाजिक सिद्धान्त भीरुता एव तिरस्कार, अनादर, सहिष्णुता, नम्रता, सक्षेप मे, केनेली (Canaille) की सभी विशेषताओ का प्रचार करते हैं।"[1]

मार्क्सवादी विचारधारा मे धर्म का कोई स्थान नही। समाजवादी राज्य म धर्म की स्वाभाविक मृत्यु हो जायगी, परम नैतिकता या स्वत सिद्ध नैतिकता जैसी कोई चीज नही रहेगी। समाज मे निरपेक्ष मूल्यो का कोई महत्त्व नही रहेगा। जो कुछ भी नैतिकता समाजवादी राज्य मे रहेगी वह विशिष्ट आर्थिक परिस्थितियो पर निर्भर एक आवश्यक नैतिकता होगी। नैतिकता 'वर्गीय नैतिकता' (Class morality) होगी है। समाजवादी समाज मे बुर्जुआ नैतिकता का स्थान सर्वहारा की नैतिकता (Proletariat morality) ले लेती है।

मार्क्स का कार्यक्रम (Marx's programme of action)

मार्क्स भाग्यवादी नही था। वह कार्य मे विश्वास करता था। राजनीतिक कार्य के लिए उसका समाजवाद इसी कारण एक रचनात्मक कार्यक्रम है। यद्यपि पूँजीवाद म आत्म विनाश के बीज विद्यमान हैं और वह अपनी कब्र की ओर बढ रहा है फिर भी समाजवाद का उत्पत्ति पूँजीवाद के पतन पर स्वमेव हो नही हो जायगी। साम्यवाद के उद्देश्य को प्राप्त करने के लिए सुचिन्तित (deliberate), विवेकपूर्ण (intelligent) और निश्चयात्मक कार्य की आवश्यकता है। इस कार्यक्रम की रूप रेखा को मार्क्स ने अपने साम्यवादी घोषणा-पत्र मे व्यक्त किया है।

---

1 'The social principles of Christianity preach cowardice self-contempt abasement, submission humility, in brief all the attributes of the Canaille' —Quoted by Bober, M M in his *Karl Marx s Interpretation of History*, p 149

प्रथम कार्यक्रम—क्रान्ति

साम्यवादी घोषणा पत्र म श्रमिको को सवप्रथम् "प्रजातन्त्र की लडाई जीतने के लिए कहा गया है।' इस उद्देश्य की प्राप्ति के लिए श्रमजीविया का अपने आपको एक शोषित वग मे सगठित होने के लिए कहा गया है ताकि व अपने आपको ऊँचा उठाकर 'शासक वग की स्थिति" मे ले आयें। इस उद्देश्य से उन्हें प्रत्येक राष्ट्र म राजनीतिक दलो का निमाण करना चाहिए और चुनाव द्वारा राष्ट्रीय ससदो म बहुमत प्राप्त करना चाहिए। यदि ऐसा सम्भव न हो, क्योकि शासक वग सेना के प्रयोग या अन्य साधनो द्वारा उन्हे सत्ता से वचित रखना चाहेगा, तो श्रमजीविया को राजनीतिक सत्ता हिंसा द्वारा हस्तगत कर लेनी चाहिए अर्थात् सगठित क्रान्ति द्वारा सत्ता प्राप्त करनी चाहिए। मावस और एँजिल्स साम्यवादी घोषणा पत्र म लिखते हैं कि 'श्रमिको के पास खोने के लिए अपनी जजीरो के अतिरिक्त कुछ नही, विजय क लिए उनके सम्मुख सम्पूर्ण विश्व है, विश्व के मजदूरो एक हो जाओ।"

मावस और एंजिल्स न क्रान्ति की नीति की विस्तृत व्याख्या नही की। परन्तु इतना अवश्य स्पष्ट है कि इसमे 'शक्ति' और हिंसा' का बोलबाला होगा। मावर्स का विश्वास है कि पुराना शासक वग शान्ति से या स्वेच्छा से कभी भी अपनी अधिमान्य स्थिति और शक्ति को नही छोडेगा, विशेषकर उस स्थिति मे जबकि वह जानता है कि नवीन समाज म उसकी अधिमान्य स्थिति समाप्त हो जायगी। इस कारण यदि परिवतन महत्त्वपूर्ण होना है तो 'हत्या' अपवाद होने के स्थान पर नियम होगी। मावस के शब्दो मे, 'बल एक नय समाज को जन्म देने वाले प्रत्यक पुराने समाज की दाई है।' केवल गृह युद्ध द्वारा ही सवहारा वग बुजुआ से उत्पादन के यन्त्रो को छीन सकेगा।

मावस एक स्थान पर कहता है कि क्रान्ति परिवतन का एक मात्र साधन नही। जहा प्रजातान्त्रिक सस्थाएँ परिपक्व है, जसे इगलैण्ड और अमरीका मे, वहाँ शान्तिमय साधनो से परिवतन सम्भव है। उसके शब्दो मे, "हम इस बात का दावा नही करते कि सब जगह अपने उद्देश्य पर पहुँचने क लिए एक ही साधन है। हम जानते हैं कि भिन्न भिन्न देशो की सस्थाओ, व्यवहारो और रीति रिवाजो पर विचार करना पडेगा हम इस बात से इन्कार नही करते कि इगलण्ड और अमरीका जसे देश हैं जहाँ पर श्रमजीवी अपने उद्देश्य को शान्तिमय साधनो से प्राप्त कर सकते हैं"।[1] जिन प्रजातान्त्रिक देशो मे प्रजातान्त्रिक सस्थाएँ परिपक्व नही वहा परिवतन के लिए शान्तिमय साधन न ही तो उपलब्ध हैं और न ही सम्भव है।

1 Marx Karl Quoted by Hans Kelsen in his *The Political Theory of Bolshevism*, p 41

मार्क्स के उपर्युक्त विचारो का उसके मूलभूत विचारो या आधारो से समन्जित (reconcile) करना न केवल कठिन है बल्कि असम्भव भी है। मार्क्स के सिद्धान्त के मूलभूत आधार हैं पूँजीवाद के विरोधाभासो का हिंसा मे विस्फोट होना अवश्यम्भावी है, नवीन समाज का निर्माण पुराने समाज के पतन पर ही सम्भव है, आदि। इस पर यह कहना कि श्रमजीवी अपने उद्देश्यो को शान्तिमय साधना से प्राप्त कर सकते हैं ऐसा कहने के बराबर है कि प्रजातान्त्रिक राजनीतिक अवस्था पूँजीवादी अर्थ व्यवस्था से सर्वोच्च है और यह मार्क्स के सिद्धान्त के ठीक विपरीत है।

मार्क्स का कार्यक्रम विकासवादी और क्रान्तिकारी दोनो ही है। यह उस सीमा तक विकासवादी है कि यह पूँजीवाद के स्वाभाविक एव प्रगतिशील पतन मे समाजवाद की उत्पत्ति देखता है। समाजवाद का उदय उसी समय होता है जब समाज की आर्थिक व्यवस्था के परिवर्तन की प्रक्रियायें उसके लिए मार्ग तैयार कर देती हैं। दूसरी ओर, उसका कार्यक्रम इस रूप मे क्रान्तिकारी है कि वह श्रम' और 'पूँजी' के विरोध को असमन्जित समझता है। मार्क्स यहाँ पर यह चेतावनी भी देता है कि श्रमिको को तब तक क्रान्ति के लिए प्रेरित नही किया जा सकता जब तक उन्हे जीवन की सुख सुविधाएँ उपलब्ध हैं"। उनकी क्रान्ति तभी सम्भव है जब उनके दुःख और कष्ट चरम सीमा पर पहुँच जाते हैं। दूसरे शब्दो मे, मार्क्स की क्रान्ति को उस समय तक इन्तजार करना है जब तक बेरोजगारी सर्वत्र विद्यमान न हो जाय, निर्धनता का बोलबाला न हो जाय और जीवन असहाय ही न हो जाय।

स्पष्ट है कि मार्क्स राजनीतिक सत्ता को प्राप्त करने के लिए भिन्न भिन्न साधन अपनाता है। कभी वह "सीधी आर्थिक कार्यवाही" पर बल देता है, कभी "क्रान्ति मे विश्वास" प्रकट करता है और कभी "श्रमिक कार्यक्रम" ही उद्देश्यो को प्राप्त करने के लिए पर्याप्त है। इस तरह मार्क्स के कार्यक्रम के बारे मे उसके विचार अनुभव-मूलक (Pragmatic) हैं। कुछ भी हो, वर्ग सघर्ष और वर्गो के हितो मे सामजस्य की असम्भवता उसके सिद्धान्त के केन्द्र बिन्दु रहे और जब तक वर्गों के हितो मे सामजस्य की सम्भावना उत्पन्न नही होती तब तक उसकी विचारधारा क्रान्तिकारी है।

क्रान्ति के उद्देश्य के बारे मे मार्क्स के विचार स्पष्ट हैं। इसका उद्देश्य 'सम्पत्ति हरण करने वालो की सम्पत्ति का हरण करना है' (The aim of the revolution is to expropriate the expropriators) यदि समाज का पुनर्गठन करना है तो व्यक्तिगत उत्पादन के साधनो का सफाया करना होगा। यदि सर्वहारा वर्ग को ऐसे समाज का निर्माण करना है जहा बहुमत का सच्चा शासन हो तो बुर्जुआ को उसकी आर्थिक शक्ति से, जिसके आधार पर वह समाज के सारे जीवन पर आधिपत्य जमाता है, वचित करना होगा। इन उद्देश्यो की प्राप्ति क्रान्ति द्वारा ही हो सकती है अन्य साधन अपर्याप्त हैं।

द्वितीय कार्यक्रम—सर्वहारा वर्ग के अधिनायकवाद द्वारा समाजवादी अवस्था की स्थापना

मार्क्स के कार्यक्रम में दूसरा स्थान सर्वहारा वर्ग के अधिनायकवाद का है। इसे मार्क्स ने समाजवाद की संज्ञा दी है। शांति (चुनाव या अन्य संवैधानिक साधनों द्वारा)' हिंसा या क्रांति द्वारा राजनीतिक सत्ता पर नियन्त्रण कर श्रमिकों को अपनी स्थिति को सुरक्षित बनाना चाहिए। इसके लिए उन्हें जनतन्त्र के उपायों जैसे सार्वभौमिक मताधिकार, प्रत्यक्ष लोक निर्वाचन, प्रमुख अधिकारियों का जनता द्वारा प्रत्याह्वान (Recall), स्थायी सेना के स्थान पर सशस्त्र जनता, स्वतन्त्र सार्वजनिक शिक्षा, मजदूरों और राज्याधिकारियों के वेतनों में समता आदि को अपनाना चाहिए।

अपनी राजनीतिक सर्वोच्च सत्ता को स्थापित करने के बाद श्रमिकों को समाजवादी कार्यक्रम अपनाना चाहिए। यह कार्यक्रम क्रमशः होना चाहिए यद्यपि प्रारम्भ में सम्पत्ति के व्यक्तिगत अधिकारों पर अतिक्रमण करने की आवश्यकता रहेगी। इसमें उत्पादन के सभी यन्त्रों का सामाजीकरण कर देना चाहिए ताकि न कोई मालिक रहे न कोई नौकर, न कोई शोषक रहे न कोई शोषित, सभी स्वतन्त्र समाज के समान व्यक्ति बना दिये जायें, संघर्ष का स्थान सहयोग ले ले, विरोध का स्थान सहमति और पशु शक्ति का स्थान सामान्य उद्देश्य ले लें।

मार्क्स इस बात को स्पष्ट रूप से व्यक्त करता है कि पूँजीपतियों का सफाया होने के बाद क्रांति नवीन समाज को एक दिन में जन्म नहीं दे देगी। बुर्जुआ आदतें और स्वभाव तथा अभिवृत्तियाँ शताब्दियों की उपज होती हैं उन्हें एक दिन में खतम नहीं किया जा सकता। सारी पूँजीवादी संस्कृति को ही जीवन के नवीन ढंग में परिवर्तन करना होगा। यही कारण है कि मार्क्स और ऐंजिल्स संक्रान्ति काल (transitional period) की बात करते हैं। यद्यपि संक्रान्ति काल के समय को उन्होंने निर्धारित नहीं किया फिर भी यह निश्चित है कि इस काल में पूँजीवादी संस्कृति के अन्तिम अवशेषों को अवश्य समाप्त कर दिया जायगा।

सर्वहारा वर्ग का अधिनायकवाद राज्य की शक्ति का प्रयोग करेगा। इस अवस्था में निरंकुश साधनों की आवश्यकता उसी प्रकार बनी रहेगी जिस प्रकार पूँजीपति राज्य में बनी रहती है। इस संक्रमण अवस्था में निरंकुश साधनों की आवश्यकता और अनिवार्यता इसलिए अधिक है कि पूँजीवाद के अवशेष भी अवसर मिलने पर प्रतिक्रांति (Counter revolution) कर सकते हैं। मार्क्स की यह धारणा है कि सम्पत्ति के स्वामियों के पास ऐसे स्रोत होते हैं जिनसे वे लम्बी लड़ाई लड़ सकते हैं। स्पष्ट है कि इस अवस्था में स्वतन्त्र समुदायों के विद्यमान होने की आशा नहीं की जायगी। वितरण कार्य की योग्यता के अनुसार होगा आवश्यकता के अनुसार नहीं। स्पष्ट है कि संक्रान्ति काल में राज्य के मुख्य दो कार्य हैं संहारक (destructive) और रचनात्मक (creative)।

समाजवादी कार्यक्रम भिन्न भिन्न राष्ट्रों में भिन्न भिन्न हो सकता है। साम्य-वादी घोषणा पत्र में निम्न कार्यक्रम दिया गया है —

(1) भूमि पर व्यक्तिगत स्वामित्व का उन्मूलन कर दिया जाय भूमि से प्राप्त समस्त प्रकार के लगान को सार्वजनिक कार्यों के लिए प्रयोग में लाया जाय।

(2) एक भारी, उत्तरोत्तर वृद्धिशील आयकर की व्यवस्था की जाय।

(3) उत्तराधिकार के समस्त अधिकारों का अन्त कर दिया जाय।

(4) देश से भागे हुए और देशद्रोहियों की सम्पत्ति जब्त (confiscate) कर ली जाय।

(5) राज्य की पूँजी से राष्ट्रीय बैंक खोल कर लेन-देन के सभी कार्य को राज्य के हाथों में केन्द्रित कर दिया जाय। बैंकों पर राज्य का एकाधिकार हो, साख का राज्य के हाथों में केन्द्रीयकरण हो।

(6) डाक-तार तथा यातायात के साधनों पर राज्य का एकाधिकार हो।

(7) उत्पादन के साधनों का विस्तार किया जाय, बिना जोती हुई भूमि में जोत के उपाय किये जायें।

(8) प्रत्येक व्यक्ति के लिए कार्य करना अनिवार्य हो, उद्योग धन्धों को चलाने के लिए और विशेष रूप से खेती बाड़ी के लिए लोगों को संगठित किया जाय।

(9) कृषि और उद्योग का सम्बन्ध स्थापित किया जाय, देश की आबादी को शहरों और गाँवों में उचित रूप से बाँट कर नगरों और ग्रामों के भेद को धीरे धीरे मिटा दिया जाय।

(10) सार्वजनिक पाठशालाओं में निःशुल्क शिक्षा की व्यवस्था की जाय। कारखानों में बाल श्रम का अन्त कर दिया जाय तथा शिक्षा का औद्योगिक उत्पादन के साथ मिला दिया जाय।

उपर्युक्त समाजवादी विशेषताओं को निम्न तीन तत्त्वों में स्पष्ट किया जा सकता है —

(1) इसमें बुर्जुआ तत्त्वों के प्रति निरंकुशता का व्यवहार होगा।

(2) वितरण कार्य की योग्यता पर आधारित होगा आवश्यकता पर नहीं।

(3) आने वाली पीढ़ियों को साम्यवादी सिद्धान्तों में शिक्षित किया जायगा।

तृतीय कार्यक्रम— साम्यवादी समाज की स्थापना

मार्क्स के कार्यक्रम में तीसरा तथा अन्तिम स्थान साम्यवादी समाज का है। परन्तु साम्यवादी समाज की विचारधारा उसी प्रकार काल्पनिक (utopian) है जिस प्रकार से अन्य राजनीतिक दार्शनिकों, जैसे प्लेटो, की विचारधारा काल्पनिक थी। मार्क्स के साम्यवादी समाज की मुख्य विशेषताएँ निम्न हैं —

(1) यह समाज सभी व्यक्तियों की समानता पर आधारित होगा।
(2) यह समाज वर्ग विहीन, राज्य विहीन समाज होगा।
(3) यह समाज तकनीकी दृष्टि से उन्नतिशील होगा।

1 सभी व्यक्तियों की समानता

साम्यवादी समाज की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि यह सब व्यक्तियों की समानता पर आधारित है। सभी व्यक्ति मानव होने के नाते सम्मान के अधिकारी हैं। व्यक्तिगत सम्पत्ति के अधिकारों के उन्मूलन के साथ ही वर्गों का अन्त हो चुका होगा। इसमें शिष्ट वर्ग—कलाकार, वैज्ञानिक, प्रबन्धक, प्रशासक, अध्यापक आदि—हैं तो अवश्य परन्तु उनका सामाजिक स्तर श्रमिकों और कृषकों से बढ़कर नहीं। उन्हें तो केवल विशेष कार्यों के लिए ही नियुक्त किया गया है। सभी को—क्या शिष्ट वर्ग, क्या कृषक तथा श्रमिक—समाज के उपयोगी कार्यों में लगाया गया है। इसमें सभी से उनकी योग्यतानुसार काम लिया जायगा और सभी को उनकी आवश्यकतानुसार दिया जायगा।

2 वर्ग विहीन राज्य विहीन समाज

साम्यवादी समाज की दूसरी विशेषता यह है कि इसमें 'दमन' और 'शक्ति' दोनों का अन्त हो जायगा। इनका अन्त होने से राज्य, जो कि शासक वर्ग के हाथों में शक्ति और दमन का यन्त्र था, का भी लोप हो जायगा। समाज का संगठन स्वतन्त्र समाज के रूप में होगा जिसमें व्यक्ति स्वैच्छिक समुदायों में एकत्रित होंगे।

साम्यवादी समाज में स्वतन्त्रता की विचारधारा प्लेटो, अरस्तू, रूसो और बर्क की विचारधारा से भिन्न नहीं। साम्यवाद तो उदारवादी स्वतन्त्रता का अस्वीकार करता है क्योंकि उससे समाज के अल्पमत को लाभ पहुँचता है। साम्यवादी स्वतन्त्रता सकलित सामुदायिक जीवन (Integrated Community Life) की उपज है। साम्यवाद की विचारधारा के अनुसार सामाजिक प्राणी के रूप में ही व्यक्ति अपनी सर्वोच्च स्वतन्त्रता को प्राप्त कर सकता है। मार्क्स और ऐंजिल्स के शब्दों में "समुदाय में ही दूसरों के साथ मिलकर प्रत्येक व्यक्ति सब दिशाओं में अपनी योग्यताओं के विकास के साधन रखता है, समुदाय में ही व्यक्तिगत स्वतन्त्रता सम्भव है।"[1]

3 तकनीकी दृष्टि से उन्नतिशील समाज

मार्क्स के साम्यवादी समाज की तीसरी विशेषता यह है कि यह रूसो का छोटा या चरागाही समाज नहीं अपितु यह औद्योगिक और तकनीकी दृष्टि से उन्नतिशील समाज है। यह न केवल बुर्जुआ टेक्नोलोजी को अपनाता है बल्कि उसमें सुधार

---

1 Marx and Engels *German Ideology*, p 74

करता है। इसम बुर्जुआ प्रणाली के कोई दोष नही। उत्पादन पर सामाजिक नियन्त्रण है। इसमे कोई "व्यावसायिक कुली या भवन निर्माता (architect) नही।"[1] जहा पूजीवादी टक्नोलोजी श्रमिक के जीवन का विकृत करती है वहा साम्यवादी टेक्नोलोजी उसे अपनी योग्यताओ को भिन्न भिन्न व्यवसाया मे लगाने की प्रेरणा देती है। इसम "व्यक्ति का जीवन होता है पूजीवादी अवस्था की तरह व्यवसाय या वृत्ति नही।'[2] मार्क्स के शब्दा मे साम्यवाद पूर्ण प्राकृतिक रूप मे मानवतावाद है और मानवतावाद के रूप में प्रकृतिवाद है।'[3]

स्पष्ट है कि मार्क्स और ऐंजिल्स के साम्यवादी समाज म प्लटो के सरक्षक वग (Guardian class) की कोई आवश्यकता नही इसम रूसो की भाति राजनीति म लोगो के भाग लेने की भी कोई व्यवस्था नही और न ही बर्क की भाति इस समाज को वग और रीति रिवाज पर ही निर्मित किया गया ह। मार्क्स और ऐंजिल्स तकनापरक साम्यवादी समाज (Rational Communist Society) की भविष्य वाणी ता करत हैं परतु योजना बनाने वाले शिष्ट वग की कोई व्यवस्था नही करते। वास्तव म व विरोधा को दूर करन के लिए सस्थाआ की आवश्यकता नही समझते। उनके लिए तो इस समाज म विरोध है ही नही। स्पष्ट है, मार्क्स का साम्यवादी समाज काल्पनिक है व्यावहारिक नही।

आश्चय की बात ता यह है कि जिस द्वन्द्ववाद क आधार पर इतिहास क विकास को सिद्ध करने का प्रयास किया गया वह साम्यवादी समाज म गति नही करता अर्थात उसमे वाद, प्रतिवाद और सवाद की प्रक्रिया नही हाती।

मार्क्सवाद का मूल्याकन

मार्क्स के महत्त्व के बार म दा परस्पर विरोधी विचारधारायें व्यक्त की गयी हैं। करोडो के लिए, विशेषकर साम्यवादिया के लिए, वह देवता, मसीहा या अवतार था जिसने निधनो को असहाय अवस्था से छुटकारा पान क लिय रोशनी दिखलाई, वह उनके लिए मुक्ति का मसीहा था। दूसरी ओर व करोडा लाग हैं विशेषकर पूंजीपति तथा अन्य छोटे छोटे बुर्जुआ जिनके लिए यह शत्रु, पिशाच और शतान था जिसने अपनी रचनाआ द्वारा अनावश्यक रूप से समाज को दो वर्गों म बाँट कर उसमे शत्रुता, घृणा, सन्देह और भ्रान्ति के बीजा का उपन करन का प्रयास किया है।

इससे पूव कि मार्क्स के सिद्धान्त की समाजशास्त्र को उसकी देन तथा

---

2 Engels Quoted by Hacker in his, *Ibid* p 560
3 "The individual leads a life not a career
4 ' Communism as a complete naturalism is humanism, and as a complete humanism is naturalism Marx Economic and Philosophical Manuscript p 243 Quoted by Hacker, *Ibid* p 560

महत्त्व पर प्रकाश डाला जाय, उसके सिद्धा त पर जो आलोचनाओ का पहाड गिराया गया है उनका सक्षिप्त वणन करना अनिवाय है। ये आलोचनाएँ निम्न प्रकार से हैं—

1 'पदाथ' पर आवश्यकता से अधिक महत्त्व देता है

मावस का यह विचार एक तरफा है कि आर्थिक शक्तिया मानव मस्तिष्क से स्वत त्र होकर काय करती हैं। जहा वाह्य शक्तिया मानव पर प्रभाव डालती हैं वहा मानव मस्तिष्क भी उन पर प्रभाव डालता है। यदि मानव आर्थिक अवस्थाओ की जात है तो वह उन आर्थिक अवस्थाओ का निमाता भी है। मावस यह भूल जाता है कि मानव एक नैतिक प्राणी भी है जिस पर आर्थिक तत्त्वो के अतिरिक्त विचारो, आदर्शो, धम, भावनाओ, निरपेक्ष मूल्यो (याय, सत्य) आदि का भी प्रभाव पडता है।

2 वर्गों का सिद्धान्त स्थतिक (Static) है गतिमान (dynamic) नहीं

वग केवल आर्थिक अवस्थाओ द्वारा निर्धारित नही होते बल्कि धम, जाति, व्यवसाय, सामाजिक स्तर, जनकता (parentage), भाषा, आदि तत्त्वो द्वारा भी वर्गो का निमाण होता है। इतना ही नही, वर्गो मे स्वाभाविक—विवाह आदि द्वारा—आदान प्रदान भी होता रहता है।

3 इतिहास के विकास को छ भागो मे बाटना उचित नहीं

वतमान मानव विज्ञान के शास्त्री मावस के आदिकालीन साम्यवाद की व्याख्या को प्रमाणित नही करते। वेपर के अनुसार 'प्राचीन ससार के विषय म उसकी धारणा का कोई औचित्य नही। इतिहास का ऐसा दशन जो एक सौ वर्षों के अनुभव पर आधारित है और जो उससे पहले हजारो वर्षों के अनुभव की अवहेलना करता है, बहुत अधिक स तोषजनक नही हो सकता।'

4 पूजीवाद के बारे मे मावस की भविष्यवाणिया गलत सिद्ध हुई हैं

पूजीवाद के बारे मे मावस की सब भविष्यवाणिया गलत सिद्ध हुइ हैं। न तो पूजी का थोडे हाथो मे केन्द्रीयकरण हुआ है, न अतिरिक्त मूल्य की वृद्धि से सव हारा कगाल हुआ है। मावस इस बात की कल्पना ही नही कर सका कि लोक कल्याणकारी राज्य के विकास से सवहारा वग की दशा खराब होने के स्थान पर सुधरेगी। आज श्रमिको (सवहारा वग को) को अनेक सुविधाएँ—अच्छे वतन, काय के निश्चित घण्टे सामाजिक अवकाश चिकित्सा, अनिवाय बीमा, सस्ते मूल्यो पर चीजो की उपलब्धि तथा अ य मानवीय व सामाजिक सुविधाएँ—प्राप्त हैं जिनकी रक्षा कानून द्वारा की जाती है।

मावस इस बात को समझ नही सका कि पूजीवाद म अपने अन्दर बडे बडे सुधारो को समा लेने की शक्ति है। टक्नोलाजी के विकास के साथ मध्यम वग मे न केवल वृद्धि हुइ है बल्कि उसका महत्त्व भी बढा है।

5 मार्क्सवाद राजनीति में मनोवैज्ञानिक तत्त्वों की उपेक्षा करता है

मार्क्स राज्य की व्याख्या शक्ति (force) के रूप में करता है परन्तु उसने सत्ता (power) की कहीं भी व्याख्या नहीं की। मार्क्स आर्थिक तत्त्वों पर बल देकर यह भूल जाता है कि मानव भावनाओं और मनोवेगों को सन्तुष्ट करने के लिए भी सत्ता प्राप्त करना चाहता है। केवल आर्थिक लाभ के लिए मानव सत्ता नहीं चाहता। यह भी आश्चर्य की बात है कि मार्क्स जैसा बुद्धिजीवी मानव प्रकृति की त्रुटियों से अनभिज्ञ हो। मार्क्स ने अपनी सारी रचनाओं में मानव प्रकृति की व्याख्या नहीं की। यह कहना अतिशयोक्ति नहीं होगी कि मार्क्स ने "मानव प्रकृति की उपेक्षा' की है (human nature has been ignored by Marx)।

6 क्रान्ति की विचारधारा समाज के लिए हानिकारक है

आलोचकों का विश्वास है कि श्रमिक और वर्ग साधनों से लाये गये परिवर्तन क्रान्ति या हिंसा द्वारा लाये गये परिवर्तनों से कहीं अधिक स्थायी होते हैं। बुद्ध, ईसा, मुहम्मद, गांधी द्वारा लाये गये परिवर्तन स्थायी परिवर्तन होने के साथ साथ शान्ति के द्योतक भी थे। क्रान्ति कभी शान्ति की द्योतक नहीं हो सकती। साम्यवाद की स्थापना के लिए भी मजदूरों में सहयोग, सद्भावना, सहानुभूति, सामाजिक सेवा आदि की आवश्यकता है न कि वर्ग संघर्ष के नारे की। इसमें सन्देह नहीं कि मार्क्स निर्धनों का उत्थान करना चाहता था परन्तु यह कहना बहुत कठिन है कि सर्वहारा वर्ग के नेता अपने अत्याचारों को क्रान्ति की आड़ में नहीं छुपायेंगे। रूस में ठीक यही हुआ है। जार के अत्याचार का स्थान बालशेविक क्रान्ति ने लिया। सर्वहारा वर्ग के नेता भी सत्ता लोलुप हो गये हैं। पोपर ने ठीक लिखा है कि "व्यावहारिक राजनीति के दृष्टिकोण से हिंसात्मक क्रान्ति की भविष्यवाणी मार्क्सवाद में सम्भवत सबसे अधिक हानिकारक तत्त्व है।"[1]

7 मार्क्सवाद धर्म विरोधी है

मार्क्सवाद सिद्धान्त धर्म विरोधी है परन्तु मार्क्स के अनुयायियों के लिए मार्क्सवाद स्वयं एक धार्मिक कट्टरता से बढ़कर है। हैलोवेल ने सुन्दर शब्दों में लिखा है कि "मार्क्सवाद सिद्धान्तत धर्म का अस्वीकार करता है परन्तु व्यवहारतया जो तीव्र भावना मार्क्सवाद के पीछे काम करती है उसकी प्रकृति धार्मिक ही है। एक सच्चा मार्क्सवादी मार्क्स के मत को दिव्य वार्ता' (मुक्ति का मसीहा) मानता है मार्क्स ईश्वर के स्थान पर ऐतिहासिक आवश्यकता की, ईश्वर के प्रिय लोगों के स्थान पर सर्वहारा वर्ग की और राम राज्य के स्थान पर स्वाधीनता के राज्य की स्थापना करता है।"[2]

---

1 Popper *The Open Society and Its Enemies*

2 Hallowell, John H *Main Currents in Modern Political Thought*, pp 443 445

8 मार्क्सवाद काल्पनिक भी है

मार्क्स ने काल्पनिक समाजवादियों की आलोचना तो की परन्तु जिस साम्यवादी समाज की अर्थात वर्ग विहीन, राज्य विहीन समाज की, कल्पना उसने की वह आदर्श या कल्पना से बढ़ कर नही है। 'राज्य के लोप' की कल्पना तो मिथ्या भी है। सन 1917 मे रूस मे साम्यवादी क्रान्ति हुई परन्तु राज्य का लोप होना नजर नहीं आता अपितु राज्य दिन प्रति दिन सुदृढ और शक्तिशाली बनता जा रहा है।

9 राज्य के बारे मे मार्क्स की विचारधारा मिथ्या है

मार्क्स राज्य को वर्गीय संस्था मानता है परन्तु यह विचारधारा मिथ्या है। राज्य एक स्वाभाविक, नैसर्गिक एव नैतिक संस्था है। राज्य कोई अस्थायी संस्था भी नही। राज्य का सम्बन्ध तो मानव स्वभाव से है। इसलिए यह एक स्थायी संस्था है। राज्य शोषण का यन्त्र भी नही, यह तो कल्याणकारी संस्था है। इस तरह राज्य का विरोध मानव स्वभाव का विरोध है।

मार्क्स की देन

कुछ भी हो और चाहे कितनी ही आलोचना मार्क्स के सिद्धान्तो की क्या न की जाय, मार्क्स का महत्व इनमे कम होने वाला नही। कटु से कटु आलोचक भी मार्क्स की प्रशसा किए बिना नहीं रह सकता। इसका मुख्य कारण यह है कि मार्क्स की विश्व को अमिट देन है। मार्क्स पहला व्यक्ति था जिसने अनेक महत्वपूर्ण सत्यो की खोज की और विकास के उस महत्वपूर्ण भविष्य को देखा जो उसके समकालीन नही देख सके। वह पहला व्यक्ति था जिसने व्यापार चक्र (trade cycle) और अति उत्पादन और बेरोजगारी मे घनिष्ठ सम्बन्ध को व्यक्त किया। उसने ही अनुभव किया कि उद्योगो के यन्त्रीकरण का प्रभाव राष्ट्रीय सीमाओ तक सीमित नही रहेगा। उसने ही अनुभव किया कि राष्ट्र की खुशहाली का एक मात्र साधन व्यापार नही। वह पहला व्यक्ति था जिसने उन दोषो को व्यक्त किया जो यन्त्रीकरण से उत्पन्न हो सकते हैं। मार्क्स यह विश्वास करने मे सही था कि एक जगह पर एकत्रित होने से श्रमजीवियो म मनोवैज्ञानिक एकता पैदा हो जायगी। उसने यह भी ठीक ही अनुभव किया कि औद्योगीकरण से सामाजिक सम्बन्धो मे महत्वपूर्ण परिवर्तन होते हैं। मार्क्स ने यह बताकर कि इतिहासकारो द्वारा आर्थिक तत्वो की उपेक्षा की गयी है उसने इतिहास की नई दिशाओ को खोल दिया। मार्क्स का यह कहना ठीक था कि राजनीतिक और कानूनी संस्थाओ तथा आर्थिक प्रणाली मे अन्योन्याश्रितता होती है। मार्क्स ने समाजवाद को वैज्ञानिक एव व्यावहारिक बनाया। उसने ही इसे दर्शन और दिशा प्रदान की। कटलिन के शब्दो मे "मार्क्स ने एक आन्दोलन की व्यवस्था की जिसका अपना स्वीकृत मत अथवा विचारधारा थी। यह एक ऐसा आन्दोलन था जिसका अब तक अपना कोई सन्तोषजनक सिद्धान्त न था मार्क्स ने समाजवादी आन्दोलन के लिए वह कुछ किया जो मकयावली ने राज्य सिद्धान्त के लिए किया।" इन सब सत्यो की खोज के कारण ही मार्क्स उन्नीसवी शताब्दी का सर्वोत्तम सामाजिक दार्शनिक है।

मार्क्स का ही नाम जब से वह रोशनी म आया है, विश्व मे सबसे अधिक लोकप्रिय है। लाखो ही लोग उसकी रचनाओ का अध्ययन करते हैं, मनन करते हैं अनुसरण करते या आलोचना करते हैं। मक्सी ने बहुत सुदर शब्दो म लिखा है कि "मार्क्स के समय से सभी समाजवादी विचारधारा या तो मार्क्सवादी है या मार्क्सवाद विरोधी है या अर्द्ध मार्क्सवादी है। और, अधिकाश मार्क्स विरोधी या गैर मार्क्सवादी विचारो का प्रयोग या तो मार्क्स के विचारो का खण्डन करने के लिए किया गया है या उन्हे विदेशी प्रयोगो मे ग्रहण करने के लिए किया गया है।"[1]

राजनीतिक विचारो के इतिहास म कभी भी पहले किसी एक व्यक्ति या किसी एक साहित्य को राष्ट्रीय प्रणाली मे इतना अधिक स्थान नही दिया गया जितना कि मार्क्स तथा उसके विचारो को दिया गया है। सोवियत रूस तथा चीन व अन्य छोटे-छोटे राष्ट्र (रूमानिया, बलगेरिया, यूगोस्लाविया, चैकोस्लोवाकिया, आदि) न केवल मार्क्स के विचारो का अनुसरण करते है बल्कि राष्ट्रीय नीति और सामाजिक अवस्था के रूप मे उसे वास्तविकता प्रदान करने का प्रयत्न करते हैं। यह ठीक है कि लॉक के विचारो ने अमरीका की क्रान्ति को प्रेरणा दी, यह भी ठीक है कि रूसो के विचारो ने फ्रास की क्रान्ति के मार्ग को प्रशस्त किया परन्तु कभी भी अमरीका या फ्रास के नेताओ ने लॉक या रूसो के विचारो को अपनी राष्ट्रीय नीतियो मे नही दोहराया जैसाकि लेनिन, स्टालिन, ख्रुश्चेव, माओ या टीटो तथा अन्य साम्यवादी नेता मार्क्स की विचार धाराओ को दोहराते हैं। साम्यवादी राष्ट्र मार्क्स की विचारधाराओ का अनुसरण करते हैं, प्रचार करते हैं, उनकी स्तुति करते है। इतना ही नही इन देशो के स्कूलो मे मार्क्स और ऐंजिल्स की रचनाओ का अध्ययन कराया जाता है, उनके वाक्याशो को सार्वजनिक इमारतो पर खुदवाया गया है और उनके उपदेशो की खुल्लम खुल्ला पुष्टि की जाती है। राष्ट्रीय नेताओ द्वारा किसी दार्शनिक के विचारो का खुल्लम खुल्ला अवलम्बन राजनीति मे असाधारण महत्त्व की बात है। साधारणतया इतिहास मे ऐसा नही हुआ।

मार्क्स और ऐंजिल्स के सिद्धात की वास्तविक सफलता उसके 'मुक्ति गुण' (Messianic quality) म है। उनका दृढ विश्वास था कि भविष्य समाजवाद और साम्यवाद की ओर सकेत करता है। पूँजीवाद और प्रजातन्त्र का पतन निश्चित है। सामूहिक अवस्था का विकास अवश्यम्भावी है। यही दृढ आत्म विश्वास मार्क्सवाद को शक्ति और महत्त्व प्रदान करता है। यह विश्वास ही उन लोगो के लिए जो उस शासन से स्वतन्त्र होना चाहते हैं जिसे वे दमनकारी समझते हैं सन्देश और आशा की किरण है। मार्क्स की यह ललकार कि विश्व के मजदूरो एक हो जाओ" "तुम्ह

---

1 Maxey *Ibid*, p 576

अपनी जजीरो (वेडियां) के अतिरिक्त कुछ नही खोना", "विजय के लिए विश्व तुम्हारे सामने है" श्रमजीवियो म वर्ग चेतना पैदा करने के लिए पर्याप्त है।

मार्क्स और ऐंजिल्स की रचनाओं ने ही समाज को निम्न वर्गों के बारे में सोचने, उनका विकास करने तथा उनका उत्थान करने के लिए बाध्य किया है। यह कहना बहुत कठिन है कि पूजीवादी राष्ट्रों ने मजदूरो की दशा सुधारने के लिए जो कदम उठाये हैं—वेतनो म वृद्धि, निश्चित कार्य के घण्टे तथा अन्य सामाजिक सुविधाएँ—वे उन्होंने स्वेच्छा से उठाये हैं। यदि उन्होंने ऐसा किया होता या राबर्ट ओवेन के द्वारा प्रतिपादित प्रबुद्ध कल्याणकारी मार्ग (enlightened benevolent path) को अपनाया होता तो मार्क्सवाद का विकास इतनी तीव्र गति से नहीं होता। इन राष्ट्रों में साम्यवाद का भय ही सुधार लाने के लिए उत्तरदायी है। साम्यवादी क्रान्ति के भय ने ही इन्हे सदाचारी बनाया है।

मार्क्स और ऐंजिल्स ने जो जागृति तथा सगठन की भावना अर्थात वर्ग चेतना श्रमजीवियो मे पैदा की है वह सम्भवत इतिहास मे किसी एक दार्शनिक ने नही की। आज के श्रमजीवी किस तरह और किस सीमा तक कारखाने के मालिको को उनकी शर्तें मानने के लिए बाध्य करने का साहस रखते हैं यह उनकी वर्ग चेतना का ही फल है जिसका श्री गणेश स्वय मार्क्स और ऐंजिल्स ने सन 1864 मे अन्तर्राष्ट्रीय श्रमिक सघ, जिसे प्रथम अन्तर्राष्ट्रीय सघ भी कहते हैं, का निर्माण करके किया।

मार्क्स केवल सैद्धान्तिक दार्शनिक ही नही था। वह तो व्यावहारिक दार्शनिक था जिसके मन मे निर्धनो के लिए तडप थी, दर्द था। वह उनके लिए जीवन भर अन्याय और असमानता से भिडता रहा और श्रमिको का सगठन करता रहा। इसाइआह बर्लिन (Isaiah Berlin) के शब्दो मे, 'उन्नीसवीं शताब्दी मे ऐसे अनेक उल्लेखनीय सामाजिक आलोचक और क्रान्तिकारी हुए हैं जिन्हे मार्क्स की तुलना म कम मौलिक या कम हिंसक या कम कट्टरवादी नही कहा जा सकता। परन्तु इनमे से किसी एक ने भी एकनिष्ठ होकर अपने आपको किसी एक ही ऐसे तत्कालीन व्यावहारिक लक्ष्य की प्राप्ति के लिए समर्पित नही किया जिसके लिए कोई भी त्याग महान नही हो सकता।'[1] वेपर ने ठीक लिखा है कि, "अपने सन्देश के प्रभाव का, अपनी शिक्षाओं द्वारा दी जाने वाली प्रेरणा की तथा भावी विकास पर डाले जाने वाले प्रभाव की दृष्टि से मार्क्स का स्थान विश्व मे राजनीतिक चिन्तन करने वाले आचार्यों के किसी भी समूह म पूर्णरूप से सुरक्षित है।"[2] हेकर के शब्दो मे, "यदि इस

1 Berlin Isaiah *Karl Marx* p 19

2 For the power of his message for the inspiration of his teaching and for his effect upon future developments Marx can be sure of his place in any collection of the world great masters of political thought —Wayper, *Ibid*, p 217

नक्षत्र पर सावियत शक्ति का उदय न भी हुआ होता तो भी राजनीति सिद्धात की उनकी (मार्क्स और एंजिल्स की) मुख्य देन होती। 1

EXERCISES

1 नि सन्देह मार्क्स के विचारो का निर्माण करने वाले तत्त्व विविध स्रोतो से लिए गये हैं। उसने अनेको स्थानो स इटे एकत्रित की लेकिन उनका प्रयोग अपनी इच्छा से किया।" (अलेक्जेण्डर ग्रे) इस कथन की दृष्टि म मार्क्स की विचारधारा पर जिन तत्त्वो का प्रभाव पडा तथा उनका जिस रूप म उसने प्रयोग किया उसकी व्याख्या कीजिये।

2 "एक महान व्यक्ति वह है जो अपने युग के विचारो से काय करता है और उनका पुनरुत्पादन करता है।' किस दृष्टि से यह कथन मार्क्स के राजनीतिक दशन के लिए सत्य है ?

3 माक्सवादी समाज के मुख्य सिद्धान्तो की व्याख्या कीजिये। वतमान परिस्थितियो म यह कहाँ तक लागू किये जा सकते है ?

4 घोषणा पत्र के महत्त्व का प्राक्कलन करना सरल नही। इसमे मुख्य चार विचार हैं।' (लास्की) साम्यवादी घोषणा पत्र के मुख्य विचारो की व्याख्या कीजिये।

5 'पूँजीवाद सामन्तवाद का शिशु एव विजेयता दोनो ही है।' (हेकर) व्याख्या कीजिये।

6 'मार्क्स ही वह प्रथम् समाजवादी है जिसके काय को वैज्ञानिक कहा जा सकता है। जिस प्रकार के समाज को वह चाहता था उसकी न केवल उसने रूप रेखा ही प्रस्तुत की अपितु उन स्तरो का भी सविस्तार उल्लेख किया जिनको अपना कर ऐसे समाज का विकसित होना आवश्यक है।' (जोड) व्याख्या कीजिये।

7 मार्क्स के आर्थिक निर्धारणवाद (नियतिवाद) के सिद्धान्त की आलोचनात्मक व्याख्या कीजिये।

8 "सभ्य समाज की शरीर रचना के शास्त्र को उसके अर्थशास्त्र म ढूँढना चाहिए। (मार्क्स) इस कथन की व्याख्या कीजिये।

---

1 Had Soviet power never emerged on this planet their (Marx and Engels) contribution to political theory would still be a major one —Hacker *Ibid* p 517

9 द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद से आप क्या समझते हैं ? क्या यह मार्क्सवाद के लिए आवश्यक है ?

10 "इतिहास की भौतिकवादी व्याख्या मार्क्स की राजनीति शास्त्र को नूतन देन थी।" इस कथन पर विचार करते हुए मार्क्स के राजनीतिक विचारों पर इसके प्रभाव को स्पष्ट करें।

11 मार्क्स के इस दावे से क्या अभिप्राय था कि वह हीगल को "सीधा खड़ा कर रहा है"। क्या वह अपने प्रयास में सफल हुआ ?

12 "यह मार्क्स की ही निष्पत्ति थी कि वह दो प्रकार के स्कूलों को, जिनके समाज के सम्बन्ध में विचार भिन्न थे, एकत्रित कर सका, हीगलवादी समष्टिवादी थे और उनकी प्रणाली ऐतिहासिक थी, उपयोगितावादी, विशेषकर रिकार्डो, व्यक्तिवादी थे और उनकी प्रणाली विश्लेषणात्मक थी।" स्पष्ट करते हुए व्याख्या कीजिए।

13 कार्ल मार्क्स द्वारा प्रतिपादित अतिरिक्त मूल्य के सिद्धान्त से आप क्या समझते हैं ?

14 मार्क्स के वर्ग संघर्ष के सिद्धान्त की आलोचनात्मक व्याख्या कीजिए।

15 "समाज समष्टि रूप में दो विरोधी दलों में अधिकाधिक बँटता जा रहा है। ये दो महान वर्ग—बुर्जुआ वर्ग और सर्वहारा वर्ग—प्रत्यक्षतः एक दूसरे के विरोधी हैं।" (साम्यवादी घोषणा पत्र) व्याख्या कीजिये।

16 "मार्क्स ने यह प्रमाणित करने का प्रयास किया कि द्वन्द्वात्मक आवश्यकता के वशीभूत होकर पूँजीवादी अवस्था अपने अन्तर्निहित विरोधों के कारण अपनी विरोधी समाजवादी अवस्था का पथ प्रशस्त करेगी।" (सेबाइन) इस कथन को स्पष्ट करते हुए इसकी व्याख्या कीजिये।

17 "पूँजीवाद स्वयं अपनी कब्र के खोदने वालों को पैदा करता है।" (मार्क्स) इस कथन की दृष्टि से व्याख्या कीजिए कि किस तरह पूँजीवाद का रूपान्तरण होता है।

18 "पूँजीवादी उत्पादन स्वयं ऐसी स्थितियाँ उत्पन्न करता है जिसमें उसके विनाश के बीज विद्यमान होते हैं।" (मर्क्सी) व्याख्या कीजिये।

19 मार्क्स के राज्य विषयक सिद्धान्त की व्याख्या कीजिये।

20 'यह सिद्धान्त कि राज्य केवल शोषण का एजेण्ट है, एक क्रान्तिकारी अल्पमत का प्रचार मात्र है। यह ऐसा सिद्धान्त नहीं जिस पर कोई भी शासन कार्य कर सकता हो।' (सेबाइन) व्याख्या कीजिये।

21 राज्य और समाज पर मार्क्सवादी धारणाओं की विवेचना कीजिये। आप मार्क्स द्वारा प्रतिपादित आर्थिक और राजनीतिक सिद्धांत से कहा तक सहमत हैं ?

22 "धर्म को अस्वीकृत कर मार्क्सवाद आज के युग मे नवीन धर्म के समान बन गया है।" इस कथन से आप कहा तक सहमत हैं ?

23 "साम्यवादी घोषणा पत्र जो सन 1848 की क्रान्ति के बिना भी निष्फल होता, वह इसके होने पर भी निष्फल था।" व्याख्या कीजिये।

24 राजनीतिक दर्शन को मार्क्स की क्या देन है ?

4

साम्यवाद
(Communism)

साम्यवाद एक ऐसा शब्द है जिसे भिन्न भिन्न अर्थों मे प्रयोग मे लिया जाता है। कभी कभी इसे 'समाज के सिद्धान्त" के रूप मे प्रयोग मे लिया जाता है जैसा कि प्रारम्भिक ईसाई समाज जिसमे सारी सम्पत्ति साझी समझी जाती थी और 'मेरी' और 'तेरी' सम्पत्ति का प्रश्न नही था कभी कभी इसका प्रयोग समाजवाद के पर्यायवाची शब्द के रूप मे लिया जाता है। परन्तु साम्यवाद समाजवाद का एक रूप होते हुए भी पूर्ण समाजवाद नही। सभी साम्यवादी समाजवादी तो हैं परन्तु सभी समाजवादी साम्यवादी नही। कभी कभी इसका प्रयोग उस प्रणाली को व्यक्त करने के लिए किया जाता है जिसके अन्तर्गत भोजन, कपड़ा, आवास, शिक्षा, चिकित्सा आदि सबको उपलब्ध होते हैं। इसका अर्थ कुछ भी समझा जाय बीसवी शताब्दी के सभी साम्यवादी अपने आपको मार्क्स और ऐंजिल्स की सन्तान समझते है और उन्ही के द्वारा प्रतिपादित सिद्धान्तो को वर्तमान समाज की आवश्यकताओ के अनुकूल ढालते हुए प्रयोग मे लाते हैं। साम्यवाद एक ऐसी क्रान्तिकारी प्रणाली है जो पूजीवादी समाज को समाजवादी समाज मे परिवर्तित करने के लिए क्रान्तिकारी उपायो का सहारा लेती है। इस आन्दोलन के दो मुख्य साधन हैं। वर्ग संघर्ष तथा सर्वहारा वर्ग की क्रान्ति। संक्षेप मे, साम्यवाद ऐसी प्रणाली है जो हिंसात्मक उपायो द्वारा सत्ता हस्तान्तरित करना चाहती है।

साम्यवाद राजनीति मे कोई नवीन दर्शन नही है। इसे राजनीति शास्त्र के जनक प्लेटो की रचनाओ मे विशेषकर रिपब्लिक मे ढूंढा जा सकता है। अपनी रचनाओ मे प्लेटो ने 'सम्पत्ति और स्त्रियो' के साम्यवाद का समर्थन किया था। थामस मोर ने अपनी रचना यूटोपिया (Utopia) मे साम्यवादी समाज का चित्र चित्रित किया है। हैरिंगटन तथा कनपनेल्ला (Canpanella) ने भी अपनी रचनाओ मे साम्यवादी समाज की कल्पना की है। परन्तु वर्तमान साम्यवादी विचारधारा पुरानी साम्यवादी विचारधारा से सर्वथा भिन्न है। जैसा कि ऊपर कहा गया है बीसवी शताब्दी की साम्यवादी विचारधारा मार्क्स और ऐंजिल्स की विचारधाराओ की अनुयायी है।

साम्यवाद की विशेषताएँ

आधुनिक साम्यवाद की मुख्य विशेषताएँ निम्न हैं —

1 साम्यवाद पूँजीवाद का शत्रु है

वर्तमान साम्यवाद मार्क्स और एंजिल्स की भाँति, समाज में विद्यमान शोषण, अन्याय और असन्तोष का पूँजीवाद का अनिवार्य परिणाम मानता है। उसकी धारणा है कि पूँजीवाद व्यक्ति को न तो आर्थिक और सामाजिक सुरक्षा प्रदान करता है और न आत्माभिव्यक्ति की स्वतन्त्रता ही दे सकता है। इसलिए साम्यवाद का सर्वप्रथम उद्देश्य 'सम्पत्ति के हरणकर्ताओं का हरण' करना है। इसलिए साम्यवाद का मुख्य उद्देश्य पूँजीवाद का उन्मूलन करना है। उसका अन्तिम अंशों को मिटाना है, उसकी सभ्यता और संस्कृति का अन्त करना है उसके विरोध का कुचलना है तथा उसके हर उस प्रयास को असफल बनाना है जिसके द्वारा वह पुनः 'वेतन की दासता" (Wage Slavery) और लाभ, ब्याज और किराये की प्रणाली को स्थापित करने का प्रयास करे। पूँजीवाद का पूर्ण उन्मूलन कर साम्यवाद सर्वहारा वर्ग के अधिनायकवाद को स्थापित करना चाहता है। उसकी धारणा है कि पूँजीवाद का पतन और समाजवाद का उदय साथ-साथ होगा।

2 साम्यवाद क्रान्ति का समर्थक है

जो बात साम्यवादियों को समाजवादियों से पृथक करती है उसमें सर्वप्रथम स्थान उन साधनों (means) का है जिनके द्वारा साम्यवादी या समाजवादी समाज में परिवर्तन लाना चाहते हैं। साम्यवादी परिवर्तन के लिए हिंसा, शक्ति, क्रान्ति, हत्या को आवश्यक मानते हैं जबकि समाजवादी परिवर्तन के लिए संवैधानिक एवं शान्तिमय साधनों का उपयोग करते हैं। एक सत्ता को गोली की शक्ति द्वारा और दूसरा मत पत्रों की शक्ति द्वारा प्राप्त करना चाहता है। मार्क्स की भाँति साम्यवादियों का विश्वास है कि पूँजीपति अपनी अधिमान्य स्थिति को कभी भी स्वेच्छा से या शान्तिमय साधनों से नहीं छोड़ेंगे। पूँजीपति की चालाकी, छल और कपट के आगे शान्तिमय साधन किसी काम के नहीं। इसलिए साम्यवादी इस बात पर बल देते हैं कि पूँजीपतियों को पदच्युत (बर्खास्त) करने के लिए उनकी हत्या अनिवार्य है। सर्वहारा वर्ग को राज्य सत्ता प्राप्त करने के लिए हिंसा की आवश्यकता है। साम्यवादी क्रान्ति को कितना अधिक महत्त्व देते हैं वह ऐंजिल्स के इन शब्दों से भी स्पष्ट है 'यदि पेरिस की कम्यून (Commune of Paris) बुर्जुआ लोगों के विरुद्ध सशस्त्र लोगों की अधिकृत शक्ति को अपना आधार न बनाती तो क्या वह चौबीस घण्टे से अधिक सामना कर सकती थी? बुखारिन के शब्दों में 'दल (साम्यवादी दल) का

कार्य बुर्जुआ लोगो के साथ सौदा करना नही अपितु इन्हें उखाड़ फेंकना तथा उनके विरोध को नष्ट करना है ।"[1]

साम्यवादी शान्तिमय तरीको में विश्वास केवल वहा करते हैं जहा उनके उद्देश्यो की पूर्ति हिंसा या क्रान्ति के बिना हो जाती है । परन्तु जहाँ उनके उद्देश्यो की पूर्ति शान्तिमय तरीको से नही होती वहाँ उनके लिए एक मात्र उपाय 'हत्या' और 'क्रान्ति' है । बल प्रयोग ही साम्यवादियो का सत्ता हस्तान्तरित करने तथा सत्ता को बनाये रखने का एक मात्र साधन है ।

3 साम्यवाद प्रजातन्त्र विरोधी है

साम्यवादियो का प्रजातन्त्र मे कोई विश्वास नही । उनके लिए तथाकथित प्रजातान्त्रिक संस्थायें बुर्जुआ प्रणाली की प्रतिबिम्ब मात्र हैं । उनका यह विश्वास है कि कोई भी शासन चाहे कितना ही प्रजातान्त्रिक क्यो न हो उसमे वास्तविक सत्ता सम्पत्ति के स्वामियो के हाथो मे होती है । इस कारण वे सब उन संस्थाओ को नष्ट कर देना चाहते हैं जिनका सम्बन्ध बुर्जुआ प्रजातन्त्र से है ।

सर्वहारा वर्ग के अधिनायकवाद की स्थापना के बाद भी साम्यवादी प्रजातान्त्रिक संस्थाओ को स्थापित करना नही चाहते । यद्यपि रूस मे सन 1936 के स्तालिन संविधान ने प्रजातन्त्र का आवरण पहनने के लिए लोगो को वयस्क मताधिकार दे दिया है परन्तु लोगो की राजनीतिक स्वतन्त्रताओ का स्वरूप वैसा नहीं जैसा कि पश्चिमी राज्यो के प्रजातान्त्रिक स्वरूपो से समझा जाता है । रूस मे न तो स्वतन्त्र राजनीतिक दल है न स्वतन्त्र भाषण या आलोचना के साधन हैं, न स्वतन्त्र छापाखाना है, आदि, आदि । इतना ही नही, राज्य के आलोचको को देशद्रोही करार दे दिया जाता है ।

साम्यवाद मे व्यक्तिगत स्वतन्त्रता जैसी कोई चीज नही । स्वतन्त्रता के बारे मे उसकी विचारधारा सामूहिक है व्यक्तिगत नही । इस दृष्टि मे साम्यवादी विचारधारा अरस्तू, रूसो और बर्क की विचारधारा से भिन्न नही । साम्यवादी स्वतन्त्रता संकलित सामुदायिक जीवन (Integrated Community Life) की उत्पत्ति है । मार्क्स और एंजिल्स के शब्दो मे, "समुदाय मे ही व्यक्तिगत स्वतन्त्रता सम्भव है ।"[2]

---

1 The task of the party (Communist Party) is not to bargain with the bourgeoisie but to over throw them and break their resistance" —Bukharin and Preobraschensky *The A B C of Communism* p ...

2 Only in the community is personal freedom possible —Marx and Engels *German Ideology* p 74

4 साम्यवाद धर्म विरोधी है

मार्क्सवाद की भाँति साम्यवाद धर्म विरोधी है। साम्यवादियों का विश्वास है कि धर्म की आड़ में पूँजीपति शोषण, अन्याय और असमानता को बनाये रखते हैं। धर्म पूर्व स्थिति (Status quo) को बनाये रखने में पूँजीपतियों की सहायता करता है। धर्म प्रगतिशील विचारों का विरोधी है। मार्क्स ने धर्म को "अफीम की गोली" कह कर पुकारा है जिसका रसास्वादन व्यक्ति को भाग्यवादी बनाता है, उसमें निष्क्रियता और दास वृत्ति पैदा करता है। इस तरह साम्यवादी राज्य में धर्म के नामो निशान को मिटा देना चाहते हैं। साम्यवादी राज्य में परम नैतिकता या स्वतः सिद्ध नैतिकता जैसी कोई चीज नहीं। इसमें जीवन के निरपेक्ष मूल्यों का कोई महत्व नहीं। साम्यवादी बुर्जुआ नैतिकता को समाप्त कर 'सर्वहारा नैतिकता' की स्थापना करना चाहते हैं।

5 साम्यवाद अन्तर्राष्ट्रीय साम्यवाद में विश्वास रखता है

साम्यवाद एक अन्तर्राष्ट्रीय आन्दोलन है। वह साम्यवाद का विस्तार न केवल एक राष्ट्र में चाहता है बल्कि सारे विश्व में उसका विस्तार चाहता है। उसका विश्वास है कि श्रमिकों के हित सभी स्थानों पर—चाहे जर्मनी हो या जापान, इंगलैण्ड हो या भारत, अमरीका हो या अफ्रीका—समान हैं। साम्यवादी मार्क्स और ऐंजिल्स के इस कथन को कि "श्रमिकों को क्रान्ति में अपनी बेड़ियों के अतिरिक्त कुछ नहीं खोना, उनके पास जीतने के लिए एक विश्व है तथा सब देशों के मजदूरो संगठित (एकत्रित) हो जाओ" न केवल दोहराते हैं बल्कि उसका प्रचार करते है, तथा उसके आधार पर श्रमिकों को उत्तेजित करते हैं। एक सच्चा साम्यवादी राष्ट्रीय सीमाओं को लाँघ कर अपने दल के आदेशों को मानता है।

6 साम्यवाद द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद में विश्वास करता है

मार्क्स की भाँति साम्यवाद द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद में विश्वास करता है। कार्ल मार्क्स ने द्वन्द्ववाद की पद्धति को हीगल से प्राप्त किया था। द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद के अनुसार 'समाज का विकास अन्तर्विरोधों का परिणाम है।' परन्तु मार्क्स का द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद हीगल के द्वन्द्ववाद से सर्वथा भिन्न है। मार्क्स ने हीगल के इतिहास दर्शन में जो आधारभूत तत्व था—विचारों की प्रधानता (Predominance of ideas)—उसे अस्वीकार कर दिया। मार्क्स के लिए भौतिक पदार्थ—मिट्टी, पत्थर, हड्डी, मांस आदि—ही सर्वथा सत्य है, अदृश्य विचार या विश्वात्मा नहीं। हीगल की विचारधारा में इतिहास की प्रगति में विचारों या महान धर्मों जैसे यहूदी धर्म, कनफ्यूसियसवाद, इस्लाम, बौद्ध धर्म आदि की प्रधानता है परन्तु मार्क्स के लिए विचार केवल अनुभव की सृष्टि मात्र या उसका प्रतिबिम्ब मात्र है। "पदार्थ मस्तिष्क की उपज नहीं बल्कि मस्तिष्क स्वयं पदार्थ की उपज है।"

द्वन्द्ववाद की प्रक्रिया में पहले वाद (thesis) का प्रतिवाद (anti thesis) या

विपरिणाम (negation) होता है और बाद में उच्च स्वरूप के लिए प्रतिवाद का संवाद (synthesis) या विपरिणाम का विपरिणाम (negation of negation) होता है। समाज का वाद आदिवासी साम्यवाद (Primitive communism) था, उसका प्रतिवाद (विपरिणाम) औद्योगिक क्रान्ति अर्थात पूँजीवाद का युग है और इसका संवाद अर्थात् साम्यवादी अवस्था की स्थापना पूँजीवाद के विपरिणाम द्वारा होगी।

7 साम्यवाद इतिहास की भौतिकवादी व्याख्या में विश्वास करता है

मार्क्सवाद की भांति साम्यवाद समाज के विकास में आर्थिक तत्वों की प्रधानता को स्वीकार करता है। इसके लिए समाज के विकास में अन्य तत्वों—विचार धर्म, संस्कृति, नैतिकता, आदि—का महत्व आर्थिक तत्वों की अपेक्षा गौण है। इसका विश्वास है कि जो वर्ग उत्पादन की शक्तियों पर नियन्त्रण रखता है वही समाज के अन्य वर्गों पर अपना नियन्त्रण स्थापित करता है। "उत्पादन के स्वरूप तथा अवस्थायें समाज के ढांचे का निर्धारित करती है।" मार्क्स के शब्दों में, "सभी सामाजिक, राजनीतिक तथा बौद्धिक सम्बन्ध, सभी धार्मिक तथा कानूनी पद्धतियाँ, सभी बौद्धिक दृष्टिकोण जो इतिहास के विकास क्रम में जन्म लेते हैं व सब जीवन की भौतिक अवस्थाओं से उत्पन्न होती है।" "आर्थिक तत्त्व ही अन्ततः संस्थाओं के उत्थान और पतन का कारण होते हैं।" "प्रत्येक परिवर्तन तथा विश्वास जनता के आर्थिक स्वार्थों तथा वर्ग स्वार्थों के साथ सम्बद्ध है।" "मानवीय चेतना उसके सामाजिक अस्तित्व का निर्धारण नहीं करती, इसके विपरीत, उसका सामाजिक अस्तित्व ही उसकी चेतना को निर्धारित करता है।'

8 साम्यवाद वर्ग संघर्ष में विश्वास करता है

मार्क्सवाद की भांति साम्यवाद भी वर्ग संघर्ष में विश्वास करता है। इसकी धारणा है कि इतिहास का विकास वर्ग संघर्ष का इतिहास है। उत्पादन के साधन सर्वदा दो विरोधी वर्गों को उत्पन्न करते हैं जिनके हित एक दूसरे के हितों से सर्वथा विपरीत होते हैं। इनके हितों में कोई समन्वय सम्भव नहीं। इस तरह साम्यवादियों के लिए वर्ग संघर्ष अनिवार्य है। वर्तमान में यह संघर्ष पूँजीपति और सर्वहारा वर्ग में है जिसमें पहले के संघर्षों की भांति निम्न वर्ग की अर्थात शोषित वर्ग (सर्वहारा वर्ग) की विजय अवश्यम्भावी है।

9 साम्यवाद अतिरिक्त मूल्य के सिद्धान्त में विश्वास करता है

मार्क्सवाद की भाँति साम्यवाद उस मूल्य को अतिरिक्त मूल्य कहता है जिसे उत्पन्न तो मजदूर करता है परन्तु जिसे हड़प पूँजीपति करता है। यह वह मूल्य है जिसे पूँजीपति बिना मुआवजे के और मजदूरों के श्रम से हड़प कर लेता है। मार्क्स के शब्दों में यह वह मूल्य है जिसे पूँजीपति मजदूरों के खून पसीने की कमाई से पथ कर (toll) के रूप में हड़प कर लेता है।'

10 साम्यवाद पूँजीवाद को आत्मनाशी मानता है

मार्क्सवाद की भाँति साम्यवाद का विश्वास है कि पूँजीवाद की प्रकृति आत्मनाशी है। इसमें वे सब बीज विद्यमान हैं जो इसकी कब्र खोदते हैं। पूँजीवाद की लाभ वृत्ति, उसके अतिरिक्त मूल्य को अकेला हड़पने की अभिलाषा, पूँजी का केन्द्रीयकरण (एकाधिकार पूँजी और वित्त पूँजी), श्रमिक वर्ग की बढ़ती हुई निर्धनता, बेरोजगारी, कम रोजगारी और गलत रोजगारी की समस्या, श्रमिकों का अधिकाधिक मात्रा में शोषण तथा पूँजीपतियों का श्रमिकों से अन्याय और अत्याचार का व्यवहार, माँग से अधिक पूर्ति, जरूरत से अधिक उत्पादन, बाजार का माल से पाटा जाना, आर्थिक संकट, विश्व के बाजारों की माँग, यातायात और संचार साधनों में वृद्धि, श्रमिकों में वर्ग चेतना का विकास तथा उनमें आपसी सहयोग की भावना का विकास, ये सब मिल कर उसकी (पूँजीवाद की) कब्र को खोदते हैं।

11 साम्यवाद सर्वहारा वर्ग के अधिनायकवाद में विश्वास करता है

मार्क्सवाद की भाँति साम्यवाद का विश्वास है कि पूँजीपतियों का सफाया होने के बाद क्रान्ति नवीन समाज को एक दिन में जन्म नहीं दे देगी। बुर्जुआ आदतें और स्वभाव तथा अभिवृत्तियाँ शताब्दियों की उपज होती हैं, उन्हें एक दिन में खतम नहीं किया जा सकता। पूँजीवाद की सभ्यता और संस्कृति को जीवन के नए ढंग में परिवर्तन करने के लिए कुछ समय की आवश्यकता होगी जिसे वह संक्रान्ति काल कहता है। यद्यपि संक्रान्ति काल के समय को साम्यवाद निर्धारित नहीं करता परन्तु इतना अवश्य है कि इस काल में पूँजीवादी सभ्यता तथा संस्कृति के अंतिम अवशेषों को अवश्य समाप्त कर दिया जायगा। इस अवस्था में निरंकुश साधनों की आवश्यकता उसी प्रकार बनी रहेगी जिस प्रकार पूँजीपति राज्य में बनी रहती है। इस अवस्था में राज्य शक्ति का प्रयोग सर्वहारा वर्ग अपने उद्देश्यों को प्राप्त करने तथा अपनी सफलताओं को सुदृढ़ करने के लिए करेगा। इस काल में राज्य के मुख्य दो कार्य होंगे : संहारक (destructive) और रचनात्मक (creative)। इस अवस्था में स्वतन्त्र समुदायों की स्थापना नहीं की जायगी और न ही उनकी स्थापना की आज्ञा दी जायगी। दूसरे शब्दों में इस अवस्था में क्रान्ति को जारी रखा जायगा, वितरण काम की योग्यता के अनुसार होगा, आवश्यकतानुसार नहीं होगा।

12 साम्यवाद राज्य के विलीनीकरण में विश्वास करता है

मार्क्सवाद की भाँति साम्यवाद राज्य को स्थायी संस्था नहीं मानता। उसके लिए राज्य एक प्राकृतिक, स्वाभाविक या नैतिक संस्था नहीं। यह तो एक वर्गीय संस्था है। साम्यवादी राज्य का प्रयोग संक्रान्ति काल में अपने उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए तथा प्रतिरोधियों के प्रतिरोध को नष्ट करने के लिए करते हैं। जब पूँजीपतियों के अवशेष नष्ट हो जायेंगे और वर्ग विहीन समाज की स्थापना हो जायगी तो राज्य की आवश्यकता नहीं रहेगी, इसका लोप या विलीनीकरण हो जायगा। एंजिल्स के

शब्दो मे, "राज्य के यन्त्र को पुराने समय के पदार्थों के साथ, जिनमे चरखा तथा कासे का कुल्हाडा सम्मिलित है, अजायब घर मे रख दिया जायगा।"[1]

साम्यवाद की आलोचना

साम्यवाद की जिन आधारो पर आलोचना की गयी है उनम मुख्य आधार निम्न हं—

1 साम्यवाद एक पक्षीय सिद्धान्त है

साम्यवाद आर्थिक तत्वो पर अत्यधिक बल देकर अन्य तत्वो की उपेक्षा करता है। यह ठीक है कि आर्थिक तत्त्व इतिहास के विकास मे महत्त्वपूर्ण योग देते हैं परन्तु केवल आर्थिक तत्वो को ही सामाजिक, राजनीतिक तथा सास्कृतिक सस्थाओ का निर्माता कहना न केवल अतिशयोक्ति है वल्कि अनभिज्ञता और अवज्ञाति कता का भी परिचायक है। इतिहास के विकास मे धार्मिक, दार्शनिक, राजनीतिक, नैतिक, सास्कृतिक, मनोवैज्ञानिक आदि तत्वो का उतना ही महत्व है जितना कि आर्थिक तत्वो का रहा है। इन तत्वो के अतिरिक्त जलवायु न्याय की इच्छा, मानव की महत्वाकाक्षायें, भावनायें तथा अभिलाषायें भी मानव क्रियाओ मे प्रभावी रही हैं। साम्यवादियो का यह कहना मिथ्या है कि मानव क्रियाओ मे केवल लाभ वृत्ति ही क्रियाशील रही है। यदि इस तथ्य मे कोई वास्तविकता होती तो आत्म बलिदान, देश भक्ति और त्याग की कहानियाँ इतिहास मे विद्यमान नही होती। जातीय पक्षपात, षडयन्त्र, अन्धविश्वास लैङ्गिक आकर्षण, अधिकार, नाम तथा प्रसिद्धि की लिप्साओ आदि सब तत्वो की साम्यवाद ने उपेक्षा की है। वास्तविकता यह है कि इतिहास के विकास म सब तत्वो का योग रहा है केवल आर्थिक तत्वो का नही। बर्ट्रेण्ड रसल के शब्दो मे, "हमारे राजनीतिक जीवन म बडी-बडी घटनायें भौतिक अवस्थाओ और मानव भावनाओ की पारस्परिक क्रिया तथा प्रतिक्रियाओ से निश्चित होती हैं।"

2 साम्यवाद व्यक्तिगत स्वतन्त्रता का शत्रु है

साम्यवाद मे व्यक्तिगत स्वतन्त्रता का महत्त्व नहीं। इस सामाजिक अवस्था मे समाज या राज्य ही सब कुछ है। इसम व्यक्ति की इतनी अधिक मात्रा म उपेक्षा की गयी है कि राज्य या समाज ही उसके बारे मे सोचता है कि उसके लिए क्या अच्छा है क्या बुरा, क्या उचित है क्या अनुचित, राज्य ही उसके कार्यों को निर्धारित करता है। यह पूर्णतया एक निरकुश अवस्था है। इसमे प्रचार के यन्त्रो, मच, भाषण, समाचार, पत्रिकाओ, छापाखाना, शिक्षा केन्द्रो आदि सब पर राज्य का एकाधिकार है। इसमें स्वतन्त्र विचार विमर्श, तर्क वितर्क का कोई स्थान नहीं। इसमे स्वतन्त्र आलोचना को देश द्रोह समझा जाता है। इस अवस्था म व्यक्ति राज्य रूपी मशीन म एक पुर्जा

---

1 The machine of the State is put into the museaum of antiquities alongside of the spinning wheel and the bronze axe.'
—*Engels*

मात्र है। सक्षेप मे, साम्यवाद के अतर्गत व्यक्ति का कोई महत्त्व नही, उसकी स्वतन्त्रता सामाजिक है व्यक्तिगत नही।

3 वर्ग सघर्ष का सिद्धात ऐतिहासिक तथ्यो द्वारा प्रमाणित नहीं होता

साम्यवाद का वर्ग सघर्ष का सिद्धात निराशापूर्ण एव अति नाटकीय है। इतिहास केवल वर्ग सघर्ष की कहानी नही। यह मानव सहयोग, प्रेम, सहानुभूति और बलिदान की कहानी है। यदि सहयोग जीवन का वास्तविक तथ्य न होता तो समाज अभी तक नष्ट हो गया होता। समाज मे सघर्ष सदा विद्यमान नहीं होता। यदि सघर्ष को स्वीकार भी कर लिया जाय तो यह कहना बहुत कठिन है कि सघर्ष केवल आर्थिक वर्गों का सघर्ष होता रहा है। सघर्ष तो एक अपूर्ण (imperfect) समाज का चिह्न है, पूर्ण समाज का नहीं। वर्ग सघर्ष का सिद्धान्त साम्यवादियो की कल्पना से अधिक कुछ नही। वर्तमान युग की माँग शान्तिपूर्ण सह-अस्तित्व, सहयोग और पारस्परिक समझ (mutual understanding) की है, सघर्ष की नही।

4 साम्यवाद की पूँजीवाद के बारे मे भविष्यवाणियाँ गलत सिद्ध हुई हैं

साम्यवाद का विश्वास है कि पूँजीवाद मे अपने पतन के बीज विद्यमान होते हैं अर्थात् पूँजीवाद अपने विरोधी तत्त्वो को जन्म देता है जो उसकी कब्र खोद देते है। परन्तु वास्तविकता ठीक इसके विपरीत है। पूँजी का थोडे हाथो मे केन्द्रीयकरण नही हुआ। श्रमिको की अवस्था असहाय बनने के स्थान पर सुधरी है। आज बडे बडे पूँजीपतियो के साथ छोटे छोटे पूँजीपति भी विद्यमान है। मध्यम वर्ग का महत्त्व दिन प्रति दिन बढता जा रहा है। तथ्य यह है कि साम्यवाद लोक कल्याणकारी राज्य की कल्पना ही नही कर सका और इस बात को नही समझ सका कि पूँजीवाद मे अपने आप मे परिवर्तन करने की अपार शक्ति है जिसमे उग्र से उग्र परिवर्तन भी समा सकते हैं। आज कानूनो द्वारा श्रमिको की दशा—उनके वेतनो मे वृद्धि, काम के निश्चित घण्टे, सामयिक अवकाश, मुफ्त चिकित्सा, सस्ते मूल्यो पर वस्तुओ का उपलब्ध होना, अनिवार्य बीमा आदि—सुधारने का पूरा प्रयास किया है और अब भी ये प्रयास जारी हैं। यह कहना कोई अतिशयोक्ति नही होगी कि पूँजीवादी राष्ट्रों—ब्रिटेन, फ्रान्स, अमरीका, जर्मनी—मे श्रमिको की आर्थिक दशा साम्यवादी राष्ट्रो—रूस और चीन—के श्रमिको की आर्थिक दशा से कही अधिक अच्छी है।

5 राज्य वर्ग संस्था नहीं एक नैतिक संस्था है

साम्यवाद राज्य को एक वर्ग संस्था, [illegible] मानता है। परन्तु राज्य एक वर्ग संस्था नही और न ही यह [illegible] है। यह नैतिक संस्था है। यह शक्ति पर आधारित नही। जैसा कि ग्रीन ने कहा है कि "राज्य का आधार इच्छा है शक्ति नही"। इसका उद्देश्य मानव व्यक्तित्व के विकास मे सहायक होना है [illegible] नही। यह व्यक्तिगत स्वतन्त्रता का [illegible]। [illegible]

सिद्धा त कि राज्य केवल शोषण के एजेंण्ट ह एव क्रान्तिकारी अल्पमत का प्रचार मात्र है, यह ऐसा सिद्धान्त नही है जिस पर कोई शासन कार्य कर सकता है।"[1]

6 राज्य सवसाधारण का शत्रु नहीं मित्र है

साम्यवाद राज्य को केवल "शोषण का यन्त्र", "वर्गीय सगठन", बुर्जुआ की कार्यकारिणी समिति" तथा "हिंसा' व "शक्ति" पर आधारित सस्था मानता है। परन्तु हमारा दैनिक अनुभव ठीक इसके विपरीत है। आज का कल्याणकारी राज्य व्यक्ति का सहायक एव मित्र है उसका शत्रु नही। राज्य निदय अवस्थाओ का सुधारक है जनक नही। राज्य आन्तरिक और बाह्य सुरक्षा का साधन है दमन का साधन नही। सक्षेप म, यह व्यक्ति के विकास म सुविधा प्रदान करता है बाधा प्रस्तुत नहीं करता।

7 राज्य स्थायी सस्था है अस्थायी नहीं

साम्यवाद का विश्वास है कि राज्य अस्थायी सस्था है जिसका लोप वर्गों के अन्त के साथ हो जायगा। परन्तु राज्य के लोप की कल्पना मिथ्या है। राज्य मानव स्वभाव पर आधारित होने से स्थायी सस्था है। वग विहीन समाज की कल्पना भी मिथ्या है क्योंकि वग भी ऐसे जातीय, धार्मिक, मनोवैज्ञानिक, जनकता (parentage) आदि के तत्त्वो पर आधारित हैं कि उनका अन्त होना कठिन है। वग विभेद तथा सघर्ष मानव प्रकृति के अग ह जिनका अन्त तो सम्भव नही, अधिक से अधिक और अच्छी से अच्छी स्थिति मे वे कम हो सकते है। राज्य जसी सस्था के लोप की बात करना मूखता है। राज्य का लोप असम्भव है। स्वय रूस मे जहा साम्यवादी क्रान्ति सन 1917 म सफल हुई वहा राज्य का लोप अभी तक नहीं हुआ। अपितु राज्य की शक्ति पहले से कही अधिक सुदृढ हुई है।

8 साम्यवाद सर्वसत्तावाद को जन्म देता है

साम्यवाद के अन्तगत सवहारा वग का अधिनायकवाद सवसत्तावाद से अधिक कुछ नही। एक सवसत्तावाद को समाप्त कर (पूँजीवाद के सवसत्तावाद) साम्यवाद दूसरे सवसत्तावाद (सवहारा वग के सवसत्तावाद) को स्थापित करना चाहता है। सवसत्तावाद तो सवसत्तावाद ही रहेगा चाहे वह किसी का हो। सभी प्रकार के सवसत्तावाद मे व्यक्ति के अधिकारो की राज्य रूपी देवी पर बलि चढा दी जाती है। रूस मे व्यक्तिगत स्वतन्त्रता तो दूर वहा तो सस्कृति कला, विज्ञान आदि भी राज्य के नियन्त्रण के अधीन हैं।

---

1 The theory that states are merely agents of exploitation is essentially the propaganda of a revolutionary minority it is not a theory upon which any government in power can operate —Sabine

9 साम्यवाद एक दलीय पद्धति का समर्थक है

साम्यवादी देशों में केवल साम्यवादी दल की सत्ता को ही स्वीकार किया जाता है। अन्य दलों को संवैधानिक मान्यता भी नहीं। उदाहरणतया रूस में सन् 1936 के स्तालिन संविधान की 125वीं धारा साम्यवादी दल को ही सर्वहारा का अग्रिम दस्ता स्वीकार करती है। अनुच्छेद 141 के अनुसार केवल साम्यवादी दल को ही राजनीतिक दल माना गया है और अनुच्छेद 143 के अनुसार केवल साम्यवादी दल को ही चुनाव में उम्मीदवार खड़े करने का अधिकार है। साम्यवाद एकरूपता में विश्वास करता है भिन्नता में नहीं।

10 साम्यवाद की द्वन्द्वात्मक प्रणाली कोरी कल्पना है

साम्यवाद की यह धारणा गलत सिद्ध हुई है कि समाज का विकास द्वन्द्वात्मक प्रणाली द्वारा होता है। यदि ऐसा होता तो साम्यवाद का विकास रूस और चीन के स्थान पर अमरीका और ब्रिटेन में होना। ये दोनों राज्य पूंजीवादी देश हैं। पर इन देशों में साम्यवादी क्रान्ति होने के स्थान पर औद्योगिक दृष्टि से पिछड़े हुए देशों जैसे रूस में (सन 1917) और चीन में (सन 1949 में) साम्यवादी क्रान्ति हुई।

11 वर्ग संघर्ष में सर्वहारा की ही जीत होगी यह निश्चित नहीं है

मार्क्स तथा साम्यवादियों की धारणा है कि वर्ग संघर्ष में सर्वहारा वर्ग की विजय अवश्यम्भावी है। परन्तु इतिहास इस बात का साक्षी नहीं। इटली और जर्मनी के ऐसे उदाहरण हैं जहां सत्ता को क्रमशः मुसोलिनी और हिटलर ने हस्तगत कर लिया। दोनों ही साम्यवाद के कट्टर शत्रु थे। लास्की ने ठीक लिखा है कि 'पूंजीवाद का अन्त साम्यवाद न होकर एक ऐसी अराजकता में हो सकता है जिससे साम्यवादी आदर्शों से असम्बद्ध कोई निरंकुशतावाद निकले।'

12 साम्यवाद धर्म विरोधी है

साम्यवाद धर्म का तिरस्कार करता है परन्तु धर्म तिरस्कार करने योग्य नहीं। यदि यह वास्तविक रूप से ही शोषण का यन्त्र होता तो मानव इसके साथ चिपका नहीं रहता। धर्म से मानव को जो स्वाभाविक एवं आध्यात्मिक शान्ति मिलती है वह साम्यवादी नैतिकता से नहीं मिल सकती। कोई धर्म मानव को दूसरे का शोषण करना नहीं सिखाता अपितु प्रत्येक धर्म मानव को प्रेम, सहानुभूति परोपकार सदाचार आदि की शिक्षा देता है। साम्यवाद धर्म को तिलांजलि देकर मानव को एक शुष्क या अनैतिक प्राणी बनाना चाहता है।

13 साम्यवाद एक खतरनाक सिद्धान्त है

साम्यवाद का विश्वास षड्यन्त्र, तोड़ फोड़ हिंसा, शक्ति एवं क्रान्ति में है इसलिए यह एक खतरनाक सिद्धान्त है। नेहरूजी के शब्दों में 'इसकी भाषा हिंसक है इसके विचार हिंसक हैं। यह अनुनय या शान्तिपूर्ण प्रजातान्त्रिक दबाव द्वारा परिवर्तन में विश्वास नहीं करता, यह तो बल प्रयोग और विनाश में विश्वास करता

है।"[1] यह समझ नही आता कि जिस समाज की उत्पत्ति हिंसा द्वारा साम्यवादी करना चाहते हैं तथा जिसे व्यक्ति की स्वतन्त्रता के दमन पर आधारित बनाना चाहते है वह समाज कैसे वर्ग विहीन, राज्य विहीन समाज हो सकता है। शक्ति या हिंसा का परिणाम तो क्रूरता और बर्बरता होता है शान्तिपूर्ण, न्यायोचित एव सुगठित समाज नही। षड्यन्त्र और तोड फोड ने विभाजन किया है एकीकरण नहीं जैसे जर्मनी, कोरिया, वियतनाम का शक्ति या हिंसा के प्रयोग ने विभाजन किया है एकीकरण नही। साम्यवाद पूँजीवाद की जजीरें तोडना तो चाहता है परन्तु साथ ही वह तथाकथित मुक्त लोगो के पाव मे साम्यवादी बेडिया पहनाना चाहता है।

14 साम्यवाद एक अनैतिक सिद्धान्त है।

साम्यवादी अपने उद्देश्यो को प्राप्त करने के लिए वैध तथा अवैध, नैतिक तथा अनैतिक, न्यायिक एव अन्यायिक, अच्छे तथा बुरे सभी साधनो को उचित मानते हैं। उनका विश्वास है कि साध्य की पवित्रता साधनो की अपवित्रता को पवित्र कर देती है। आलोचक इसकी कटु आलोचना करते हैं। उनका कहना है कि जब साधन ही अपवित्र है तो साध्य पवित्र हो ही नही सकता।

15 साम्यवाद राष्ट्रवाद के विरुद्ध है

साम्यवाद के लिए 'राष्ट्रवाद या 'देश भक्ति' जसी कोई चीज नही। उसके लिए तो सर्वहारा वर्ग के हित सभी राष्ट्रो मे समान हैं। वह राष्ट्रीय सीमाओ को स्वीकार नही करता तथा श्रमजीवियो से राष्ट्रीय सीमाओ को पार कर साम्यवादी दल के आदेशो को मानने की माग करता है। यही कारण है कि सभी राष्ट्रों को साम्यवाद से भय बना रहता है

16 साम्यवाद मे आदर्श और वास्तविकता मे असगति है

साम्यवादी सिद्धान्त मे आदर्श और वास्तविकता मे बहुत अन्तर है। साम्यवादी जिन सिद्धान्तो का प्रचार करते हैं वे उनकी पालना उनकी उल्लघना से करते हैं। इसके अनेक उदाहरण दिये जा सकते हैं। प्रथम, द्वितीय महायुद्ध सन् 1939 में एक साम्राज्यवादी युद्ध था परन्तु जब सन् 1941 म जर्मनी ने रूस पर आक्रमण कर दिया तो वह "जन युद्ध' (Peoples war) और "मुक्ति युद्ध' (War of liberation) बन गया। दूसरे, साम्यवादी वर्ग विहीन समाज की स्थापना का दावा करते हैं परन्तु

1 "Its language is of violence, its thought is violent and it does not seek to change by persuation or peaceful democratic pressures but by coercion and, indeed by destruction and extermination' Nehru Quoted by Grimes and Horwitz Modern Political Ideologies (1959), p 197

रूस मे ही एक ऐसे वर्ग[1] का उदय हुआ है जो अपने आपको किसी के प्रति—मानव या ईश्वर—उत्तरदायी नही समझता। तीसरे, साम्यवाद समानता की डींग हाकता है परन्तु वेतनो[2] मे जो भिन्नता रूस मे विद्यमान है वह तो पूँजीवादी राष्ट्रों में भी विद्यमान नही। चौथे, साम्यवाद अन्तर्राष्ट्रीय भातृत्व और राष्ट्रो की समानता का दावा करता है परन्तु उसके कार्यों म साम्यवादी साम्राज्यवाद की झलक नजर आती है। यूगोस्लाविया के टीटो को साम्यवादी खेमे से जिस तरह निकाला गया वह 'राष्ट्रीय समानता' का परिचायक नही। जिस तरह चैकोस्लोवाकिया मे 1968 मे वारसा राष्ट्रों ने आक्रमण किया वह "राष्ट्रीय स्वतन्त्रता" का भी परिचायक नही। पाँचवें, साम्यवाद अपने आपको सवहारा के हितो का प्रतिनिधि मानता है परन्तु जिस तरीके से हगरी की क्रान्ति का दमन किया गया उससे स्पष्ट होता है कि रूस सवहारा के हितो का प्रतिनिधित्व नही करता बल्कि अपने साम्राज्यीय हितो को सुरक्षित रखना चाहता है। छठे, साम्यवादी अपने आपको शान्ति का देवता मानते हैं और पचशील के सिद्धान्ता की दुहाई देते हैं परन्तु तिब्बत को जिस तरह चीन ने हडप किया तथा भारत पर सन् 1962 मे आक्रमण किया वे साम्यवाद के शान्ति के पहलुओ का वणन नही करते बल्कि उसकी हिंसक और विस्तारवादी नीतियो को स्पष्ट करते हैं। सक्षेप मे, यह कहा जा सकता है कि "साम्यवाद विचारो और कार्यों मे झूठ का जाल है।[3] वह ऐसा साम्राज्यवादी जाल है जिसके चगुल मे एक दफा फँस जाने के बाद निकलना कठिन है।

साम्यवाद का मूल्याकन

साम्यवाद मे जो गम्भीर दोष हैं उनकी व्याख्या के बाद भी यह स्वीकार करना पडेगा कि बीसवी शताब्दी का यह एक महान एव शक्तिशाली आन्दोलन है। विश्व की आधी जनता इसकी अनुयायी बन चुकी है और अभी यह आन्दोलन अपने विकास के पथ पर है। साम्यवाद ने पूजीवादी व्यवस्था पर कठोर प्रहार करके उसकी त्रुटियो को नग्न कर डाला है। हैलोवेल के शब्दो म, "हम मार्क्सवाद की योजनाओ को अस्वीकार कर सकते हैं परन्तु इसने पूजीवाद के विरुद्ध जो आरोप लगाये है

---

1 रूस में राजनीतिक कोमिसारज (Political Commisars) की शक्ति इतनी अधिक है कि वे अपने आपको किसी के प्रति उत्तरदायी नहीं समझते।

2 रूस मे वेतनो की भिन्नताओं का अनुपात किन्ही स्थानो पर 1 100 और 1 300 तक है जबकि पूँजीवादी राष्ट्रो मे वेतनो की भिन्नता का अनुपात 1 3 या 1 4 है।

3 "Communism is a web of lies in idea and action"

उसकी उपेक्षा नहीं की जा सकती।"[1] जो नेता, रोशनी और साहस साम्यवाद ने श्रमजीवियों में उत्पन्न किया है उसका उदाहरण इतिहास में नहीं मिलता। आज श्रमजीवी अपने संगठनों के माध्यम से किस रूप से और किस सीमा तक अपने मालिकों से अपनी माँगें स्वीकार कराते हैं यह साम्यवादी आन्दोलन का ही प्रभाव है। इसमें कोई सन्देह नहीं कि पूँजीवादी राष्ट्रों ने निम्न वर्ग के उत्थान के लिए जो प्रयास किये हैं वे साम्यवाद के भय के कारण किये हैं। यदि साम्यवाद हिंसा और क्रान्ति के मार्ग को त्याग दे तो यह आन्दोलन विश्व का सर्वोत्तम आन्दोलन होगा।

साम्यवाद श्रमजीवियों के सन्ताप का हरण करने वाली आशा की किरण है। साम्यवाद का विश्वास है कि आर्थिक समस्याएँ हल हो जाने से अन्य समस्याओं का हल ढूँढा जा सकता है। यद्यपि इस आशा या वाक्यांश में अतिशयोक्ति हो सकता है परन्तु इस बात से भी इन्कार नहीं किया जा सकता कि पूँजीवाद बेरोजगारी, कम रोजगारी, गलत रोजगारी, शोषण, अन्याय तथा असमानताओं जैसी गम्भीर समस्याओं को हल करने में असफल हुआ है। यद्यपि यह कहना बहुत कठिन है कि साम्यवाद से इन सभी समस्याओं का हल हो गया है। इतना अवश्य है कि साम्यवाद इनका हल ढूँढने में कटिबद्ध है। इस बात से इन्कार नहीं किया जा सकता कि पूँजीवाद ने एक ओर आलस्य, विलास और ऐश्वर्य को जन्म दिया है और दूसरी ओर कठोर श्रम दुःख-दर्द और अभाव को जन्म दिया है। साम्यवाद इन्हीं विषमताओं का अन्त करना चाहता है। वह न्याय का वायदा करता है और यही आकर्षण श्रमजीवियों एवं समाज के निम्न वर्गों को उसकी ओर आकर्षित करता है। प्रो० जोड ने बहुत सुन्दर शब्दों में लिखा है कि 'यही है वह धारणा जिसमें निःस्वार्थ भावना से उत्पन्न हुई तीव्रता मिली होती है, जो ऊपर से कुछ शुष्क मालूम देने वाली और सैद्धान्तिक कार्यक्रम में कृत्रिम रूप में अन्तर्निहित आत्म त्याग और आत्म बलिदान की उत्पत्ति करती है।'[2]

समाजवाद और साम्यवाद में अन्तर
(Difference between Socialism and Communism)

समाजवाद और साम्यवाद को प्रायः एक समझा जाता है। परन्तु इन दोनों को एक समझना भ्रमात्मक है। यद्यपि उन्नीसवीं शताब्दी में इन दोनों को समानार्थक

1 "We may reject the programme of Marxism but we cannot ignore the indictment which it makes of Capitalism —Hallowell John H *Main Currents in Modern Political Thought*, p 4 6

2 It is this conviction embraced with the intensity born of a disinterested ideal which generates the power of self sacrifice and self devotion underlying a superficially somewhat arid and doctrinaire programme —Joad C E M *Introduction to Modern Political Theory* p 90

शब्दो के रूप मे प्रयोग मे लिया जाता था परन्तु बीसवी शताब्दी मे रूस की क्रान्ति के बाद लेनिन के अनुयायियो ने अपने आपको साम्यवादी कहना पसन्द किया और वे समाजवादियो से पृथक हो गये। यद्यपि सभी साम्यवादी समाजवादी हैं परन्तु सभी समाजवादी साम्यवादी नही। मार्क्स ने भी बडे स्पष्ट शब्दो मे लिखा है कि "समाजवाद साम्यवादी समाज की पहली सीढी है। यह उसकी मंजिल के आधे रास्ते पर है तथा साम्यवाद अपने उद्देश्यो म समाजवादी उद्देश्यो से कही अधिक उग्र और आगे है।'

स्पष्ट है कि समाजवाद और साम्यवाद दोनो एक प्रकार की सामाजिक अवस्थायें नही। दोना म उसी प्रकार मूल अन्तर है जिस प्रकार उदारवाद और सर्वसत्तावाद मे अन्तर होता है। दोनो की विचार धाराओ और जीवन शैली मे अन्तर है। इस अन्तर को निम्न बिन्दुओ द्वारा स्पष्ट किया जा सकता है —

1 **साम्यवाद क्रान्तिकारी एव हिंसक साधनो मे विश्वास करता है, समाजवाद विकासवादी एव संवैधानिक साधनो मे विश्वास करता है**

पूंजीवाद के पतन म साम्यवाद क्रान्ति, उपद्रव, षडयन्त्र, गृह युद्ध, हिंसा, हत्या आदि म विश्वास करता है। दूसरे शब्दो म, साम्यवाद क्रान्ति के एक झटके से पूंजीवाद को नष्ट करना चाहता है। वह इस बात म विश्वास नही करता कि पूंजीपतियो को समझा बुझाकर या उनका हृदय परिवर्तन कर या अन्य शान्तिमय साधनो से उन्हे उनकी अधिमान्य स्थिति से वंचित किया जा सकता है। साम्यवाद तो बन्दूक की नली दिखाकर अर्थात आतंक फैलाकर ही उन्हे पदच्युत करना चाहता है। साम्यवादी घोषणा पत्र म स्पष्ट लिखा है कि शासन करने वाले वर्गों को आने वाली साम्यवादी क्रान्ति से पूर्व ही कापना चाहिए।'[1]

दूसरी ओर, समाजवादी पूंजीवाद के पतन के लिए संवैधानिक या प्रजातान्त्रिक साधनो का प्रयोग करते हैं। समाजवादी विकासवादी हैं क्रान्तिकारी नही। ऐबनस्टीन के शब्दो मे समाजवादी "सत्ता को गोलियो के स्थान पर मत पत्रो द्वारा प्राप्त करने के इच्छुक हैं।'[2] समाजवादी साम्यवादियो की तरह यह विश्वास नही करते कि एक दफा सत्ता प्राप्त कर लेने के बाद वे हमेशा सत्तारूढ रहेंगे। उन्हे इस बात का ध्यान रहता है कि आगामी चुनावो म उन्हे अपदस्थ भी किया जा सकता है। स्पष्ट है कि समाजवादी श्रमिक और संवैधानिक साधनो द्वारा सत्ता प्राप्त करने के इच्छुक हैं।

---

1 Marx and Engels *Communist Manifesto*
2 Socialists 'seek power by ballots rather than bullets —Ebenstein, William *Today s Isms* p 206

2 साम्यवाद उत्पादन के साधनो मे उग्र परिवर्तन चाहता है, समाजवाद उग्र परि
वर्तन नहीं चाहता

साम्यवाद की धारणा है कि विचार धाराओ मे परिवर्तन लाना आवश्यक है। उनका विश्वास है कि पूँजीवादी अवस्था मे प्रचार के सभी साधन—शिक्षा, दनिकपत्र, छापाखाना आदि—पक्षपात पूर्ण रंग अपनाते हैं। ये सब यन्त्र पूर्व स्थिति (Status quo) को बनाये रखने म सहायक होते हैं। इसलिए इन सब पर राज्य का नियन्त्रण होना अनिवार्य है।

दूसरी ओर, समाजवाद का विश्वास है कि उत्पादन के साधना म उग्र परिवर्तन किये बिना भी विचारधाराओ मे परिवर्तन लाया जा सकता है। उदाहरणतया इगलैण्ड मे जब शान्तिमय साधना द्वारा सन् 1945 मे मजदूर दल (Labour Party) की ससदात्मक चुनावो म विजय हुई तो मार्क्स तथा अन्य साम्यवादियो के लिए यह एक अनहोनी घटना थी।

3 साम्यवाद वर्गीय विचारधारा है, समाजवाद वर्गीय विचारधारा नहीं

साम्यवाद स्पष्टत एव पूर्णतया एक वर्गीय विचारधारा है। यह केवल श्रम जीवियो को सगठित कर अपने उद्देश्यो को प्राप्त करना चाहता है। वह अपने प्रभाव को मजदूर सघो (labour unions) तक सीमित रखता है। परन्तु समाजवाद अपने उद्देश्यो को प्राप्त करने के लिए केवल मजदूरो को अपील नही करता बल्कि समाज के अन्य वर्गों जैसे मध्यम वर्ग वेतन प्राप्त कर्त्ता लोग तथा अन्य छोटे छोटे बुर्जुआ आदि को भी अपील करता है। उदाहरणतया इगलण्ड मे मजदूर दल अपने उद्देश्यो को प्राप्त करने के लिए केवल मजदूरो का ही अपील नही करता बल्कि समाज के अन्य समूहो को भी अपील करता है। इस तरह जहा साम्यवादी केवल वर्ग के दायरे में रह कर ही सोचते हैं वहा समाजवादी समाज के सभी वर्गो के दृष्टिकोण से सोचते हैं तथा ससदात्मक बहुमत प्राप्त कर ही सत्ता प्राप्त करना चाहते हैं जैसाकि इगलण्ड म मजदूर दल ने 1945 मे किया।

4 सार्वजनिक स्वामित्व के बारे मे साम्यवादियो और समाजवादियो की विचारधारा मे भिन्नता है

साम्यवादी उत्पादन के सभी साधनो पर सार्वजनिक स्वामित्व चाहते हैं। वे हरण की गयी सम्पत्ति के बारे मे कोई मुआवजे की बात नही करते क्योकि उनकी धारणा है कि पूँजीपति की सम्पत्ति चोरी की हुई सम्पत्ति है जिसका हरण सार्वजनिक लाभ के लिए अनिवार्य है। दूसरी ओर समाजवादी यह विश्वास नही करते कि व्यक्तिगत उत्पादन के साधनो को एकदम या पूर्णतया सार्वजनिक स्वामित्व मे बदला जा सकता है। वे ता किश्त योजना (Instalment Plan) मे विश्वास करते हैं। वे उत्पादन के साधनो पर सार्वजनिक स्वामित्व की स्थापना क्रमश एव सार्वजनिक हित

चीन से करते हैं। यदि एक उद्योग में सावजनिक व्यवस्था ठीक काम करती है तो फिर वे दूसरे उद्योग में सावजनिक व्यवस्था को स्थापित करते हैं। इस तरह समाजवादी अनुभव के आधार पर, सावजनिक हितों को देख कर, उद्योगों या सेवाओं में सावजनिक स्वामित्व स्थापित करते हैं। उदाहरणतया जब किसी उद्योग में राज्य के एकाधिकार की आवश्यकता है जैसे गैस, विद्युत टेलीफोन आदि में या जब कोई उद्योग निजी क्षेत्र में अकुशल (inefficient or sick) है जैसे ब्रिटेन में कोल उद्योग के राष्ट्रीयकरण से पूव या भारत में लाड उद्योग के बारे में कहा जाता है या जब उद्योग न तो अकुशल हो और न ही उसमें एकाधिकार की आवश्यकता हो परन्तु जो युद्ध या शान्ति में राष्ट्रीय महत्त्व का है जैसे लोहा और इस्पात तब समाजवादी इन उद्योगों का राष्ट्रीयकरण चाहते हैं। स्पष्ट है कि जहां साम्यवादी सभी उद्योगों का पूर्ण राष्ट्रीयकरण चाहते हैं वहां समाजवादी सावजनिक आवश्यकता के आधार पर उद्योगों का राष्ट्रीयकरण चाहते हैं। इसके अतिरिक्त जहां साम्यवादी न केवल उत्पादन के साधनों पर सावजनिक स्वामित्व चाहते हैं बल्कि सामान्य उपभोग पर भी सावजनिक स्वामित्व चाहते है वहां समाजवादी केवल उत्पादन के साधनों पर सावजनिक स्वामित्व चाहते हैं सामान्य उपभोग के बारे में समाजवादी शान्त हैं।

साम्यवादी समाज व्यवस्था में हरण की गयी सम्पत्ति के लिए मुआवजे की कोई व्यवस्था नहीं होती। साम्यवादी तो सम्पत्ति को सामाजिक सम्पत्ति मानते हैं निजी नहीं। दूसरी ओर समाजवादियों की मुआवजे के बारे में धारणा प्रजातान्त्रिक है। उचित विधि प्रक्रिया (due process of law) और मुआवजे (Compensation) के बिना समाजवादी किसी नागरिक को उसकी सम्पत्ति से वंचित करना नहीं चाहते। यद्यपि मूल उद्योगों पर समाजवादी सावजनिक स्वामित्व के इच्छुक हैं परन्तु उनके लिए सावजनिक स्वामित्व साध्य नहीं, यह तो साध्य के लिए साधन मात्र है और यह ऐसा साधन है जो सम्पत्ति के अधिकारों की उल्लंघना नहीं करना चाहता। दूसरी ओर, साम्यवादियों के लिए सावजनिक स्वामित्व सदैव निजी स्वामित्व से श्रेष्ठ (उत्तम) है।

5 साम्यवादी शिष्ट वर्ग के शासन में विश्वास करते हैं, समाजवादी शिष्ट वर्ग के शासन में विश्वास नहीं करते

लेनिन का 'व्यावसायिक क्रान्तिकारी' सिद्धान्त इस मान्यता पर आधारित है कि श्रमिक या सवसाधारण का बहुमत अपने लिए सोचने की योग्यता नहीं रखता केवल अल्पमत ही, साम्यवादी दल सवहारा का माग दर्शक हो सकता है और इस दल में भी केवल कुछ ही लोगों का समूह जो व्यावसायिक क्रान्तिकारी हैं, नीतियां को निर्धारित करने तथा नेतृत्व प्रदान करने की योग्यता रखता है। इस तरह साम्य-

वादी सिद्धान्त मे "अल्पमत मे भी एक लघु अल्पमत ही शासक वर्ग हो सकता है।"[1] दूसरी ओर, समाजवादी "शिष्ट अल्पमत के शासन" को स्वीकार नही करते। वे अपने दल मे प्रजातान्त्रिक प्रणाली को उसी प्रकार स्वीकार करते हैं जिस प्रकार वे राष्ट्रीय सस्थाओ मे प्रजातान्त्रिक प्रणाली और बहुमत के शासन को स्वीकार करते हैं। एटली ने स्पष्ट शब्दो मे इस बिन्दु की व्याख्या इस प्रकार की है कि उसके दल की शक्ति "व्यक्तियों की देदीप्य शक्ति पर निर्भर नही करती बल्कि साधारण सदस्यों की योग्यता पर निर्भर करती है।"[2]

6 साम्यवादियो के लिए राज्य एक वर्गीय सगठन है समाजवादियों के लिए राज्य एक कल्याणकारी सस्था है

साम्यवादी राज्य को वर्ग सघर्ष का परिणाम मानते है। उनकी धारणा है कि राज्य शोषण का यन्त्र है। जिस वर्ग का उत्पादन के साधनो पर आधिपत्य होता है राज्य उस वर्ग के हितो का सरक्षक होता है। सक्षेप मे, साम्यवादियो के लिए राज्य पूँजीपतियो के हितो का सरक्षक है। दूसरी ओर, समाजवादियो के लिए राज्य एक लोक कल्याणकारी सस्था है जिसका उद्देश्य व्यक्ति के व्यक्तित्व के विकास मे सहायता देना है। यह सर्वसाधारण का शत्रु नहीं मित्र है और समाज मे विषमताओ और असमानताओ को दूर करने का सर्वोत्तम साधन है। समाजवादी साम्यवादियो की तरह राज्य की भर्त्सना नही करते अपितु प्रशसा करते है।

7 साम्यवादियो के लिए राज्य अस्थायी सस्था है समाजवादियों के लिए राज्य स्थायी सस्था है

साम्यवादी राज्य को अस्थायी सस्था मानते हैं। वे केवल सक्रान्ति काल मे राज्य की शक्ति का प्रयोग बुर्जुआ प्रतिरोध का दमन करने के लिए करते हैं। उनकी धारणा है कि जब वर्ग विहीन समाज की स्थापना हो जायगी तो राज्य की आवश्यकता न रहेगी, उसका लोप हो जायगा। दूसरी ओर, समाजवादियो के लिए राज्य स्थायी सस्था है। वे राज्य के कार्य क्षेत्र को क्रमश बढाना चाहते हैं। समाजवादी राज्य का लोप नही चाहते।

8 साम्यवाद में वेतन आवश्यकतानुकूल निर्धारित होता है, समाजवाद मे योग्यतानुकूल

साम्यवाद की धारणा है कि जब वर्ग विहीन, राज्य विहीन समाज की स्थापना हो जायगी तो 'सबसे योग्यतानुकूल काय लिया जायगा और आवश्यकतानुकूल उन्हे वेतन प्राप्त होगा'। दूसरी ओर, समाजवाद इस सिद्धान्त मे विश्वास नहीं

---

1 'A small minority within a minority is to be the ruling elit —Ebenstein William *Ibid* p 210

2 His party s strength depends not on the brilliance of individuals but on the quality of the rank and file —Attlee Clement The Labour Party in Perspective Quoted by Ebenstein in his *Today's Isms*, p 210

करता। वह श्रम के आधार पर ही मजदूरी देने के पक्ष में है। दूसरे शब्दों में, समाजवादी व्यवस्था में मजदूरों के वेतन श्रम द्वारा ही निर्धारित होंगे यद्यपि वेतनों में गम्भीर विषमतायें नहीं होंगी।

9 साम्यवाद प्रजातन्त्र विरोधी है, समाजवाद प्रजातन्त्र विरोधी नहीं

साम्यवाद व्यक्तिगत स्वतन्त्रता को कोई महत्त्व नहीं देता। उसके लिए प्रजातन्त्र पर आधारित संस्थायें बुर्जुआ संस्थाएँ हैं जो निन्दनीय हैं। इस तरह साम्यवाद आर्थिक समानता की आड़ में व्यक्तिगत स्वतन्त्रताओं का बलिदान कर देता है। दूसरी ओर, समाजवाद उदारवाद है। यह प्रजातन्त्र पर आधारित संस्थाओं का सम्मान करता है। इस व्यवस्था में व्यक्ति की स्वतन्त्रताओं को महत्त्वपूर्ण स्थान प्राप्त है।

10 पूँजीवाद पर आधारित संस्थायें साम्यवाद के लिए बुर्जुआ संस्थायें हैं, समाजवाद सरकारों के स्वरूपों में अन्तर करता है

साम्यवाद के लिए प्रत्येक पूँजीवादी प्रणाली चाहे वह सर्वसत्तावादी हो, फासिस्टवादी हो या उदार प्रजातन्त्रवादी हो बुर्जुआ सर्वसत्तावाद है। वह इनमें भिन्नता नहीं करता। वह इन सबको बुर्जुआ के पाखण्ड कह कर पुकारता है और हिंसा द्वारा इनका पतन चाहता है। दूसरी ओर, समाजवाद इन प्रणालियों में भिन्नता करता है। उसके लिए जहाँ फासिस्ट निरकुंशता निन्दनीय है वहाँ उदार प्रजातन्त्र स्तुत्य है अर्थात् समाजवाद उदार प्रजातन्त्र को फासिस्ट निरकुंशता से पसन्द करता है। समाजवाद साम्यवाद के इस बिन्दु को स्वीकार नहीं करता कि प्रजातन्त्र में केवल एक ही विकल्प है—पूर्ण पूँजीवाद या पूर्ण समष्टिवाद।

11 साम्यवाद धर्म विरोधी है, समाजवाद धर्म विरोधी नहीं

साम्यवाद धर्म की निन्दा करता है तथा इसे "अफीम की गोली" कह कर इसकी भर्त्सना करता है। दूसरी ओर, समाजवाद धर्म की भर्त्सना नहीं करता। धर्म के प्रति समाजवादियों की विचारधारा सहनशीलता (toleration) की है।

12 साम्यवाद अन्तर्राष्ट्रीय विचारधारा है, समाजवाद राष्ट्रीय विचारधारा है

साम्यवाद एक अन्तर्राष्ट्रीय विचारधारा है और उसकी योजनाएँ इसी उद्देश्य को सामने रख कर बनाई जाती हैं। दूसरी ओर, समाजवादी पूर्णतया एक राष्ट्रीय विचारधारा है जिसके उद्देश्य राष्ट्रीय हितों को सामने रख कर निश्चित किये जाते हैं।

13 साम्यवाद के निश्चित घोषणा पत्र हैं, समाजवाद के कोई निश्चित घोषणा पत्र नहीं

मार्क्स और लेनिन की रचनाएं तथा वर्तमान में माओ की रचनाएँ साम्यवादियों के लिए "बाईबल" हैं। न उन्हीं के आधार पर आन्तरिक और बाह्य नीतियों का निर्धारण करते हैं। उनकी सामाजिक राजनीतिक, आर्थिक, सांस्कृतिक आदि व्यवस्थायें इन्हीं रचनाओं द्वारा निर्धारित होती हैं। दूसरी ओर, समाजवादियों के लिए

उदारवादियों की भाँति, किसी दार्शनिक की रचनाएँ उनके लिए 'बाईबल' नहीं। उदारवादियों की तरह वे किन्हीं सिद्धान्तों पर एक मत नहीं हो सके। वे 'बाईबल' लिखने या उस पर विश्वास करने के स्थान पर आलोचना में विश्वास करते हैं। यही कारण है कि जहाँ साम्यवाद निश्चयात्मक है तथा उसके विशिष्ट आधारभूत सिद्धान्त हैं वहाँ समाजवाद न तो निश्चयात्मक है और न ही उसके विशिष्ट सिद्धान्त हैं।

साम्यवाद और समाजवाद की उपर्युक्त भिन्नताओं को, संक्षेप में, इन शब्दों में व्यक्त किया जा सकता है। "जहाँ साम्यवादियों के लिए तीन निरपेक्ष सत्य हैं पूँजीवाद, क्रान्ति तथा साम्यवादी अधिनायकवाद वहाँ समाजवादियों के लिये तीन सापेक्ष सत्य हैं अधिकाधिक पूँजीवादी अर्थ व्यवस्था, क्रमिक परिवर्तन का लम्बा काल और अधिकाधिक समाजवादी अर्थ व्यवस्था।"

साम्यवाद और फासिस्टवाद में अन्तर
(Difference between Communism and Fascism)

साम्यवाद और फासिस्टवाद में अन्तर को "फासिज्म" के अध्याय में देखिए।

EXERCISES

1 साम्यवाद के दर्शन की आलोचनात्मक व्याख्या कीजिए।
2 साम्यवाद और समाजवाद के भेदों को स्पष्ट कीजिए।
3 साम्यवाद और समाजवाद की तुलना कीजिए।
4 साम्यवादियों के प्रजातन्त्र पर क्या विचार हैं? क्या हाल ही में उनके विचारों में कुछ परिवर्तन हुआ है?
5 'साम्यवाद लोकतन्त्र का विरोधी है।' व्याख्या कीजिए।

5 फेबियनवाद
(Fabianism)

समष्टिवाद के अंग्रेजी स्कूल को फेबियन समाजवाद कहते हैं। यह समाजवाद अंग्रेज विद्वानो के मस्तिष्क की उपज है जो ब्रिटेन मे अति-व्यक्तिवाद से उत्पन्न दोषो को समाप्त कर समाज मे सुधार लाना चाहते हैं। यह समाजवाद का ऐसा स्वरूप है जो मन्द गति, किस्त दर किस्त रूप मे, विकासवादी, प्रजातन्त्रवादी, तथा नम्य (flexible) साधनो द्वारा समाजवाद की स्थापना करना चाहते हैं। ये विद्वान मानव मस्तिष्क के परिवर्तन म विश्वास करते हैं, ये अनुनय (persuasion) म विश्वास करते हैं दमन या विनाश म नही। परिमितता (Moderation) इनके तकनीक का प्रधान राग (keynote) है।

फेबियन समाज का उदय इगलैण्ड म एक क्लब या गोष्ठी के रूप मे हुआ। इस क्लब के सदस्य फुरसत के समय एकत्रित होते तथा सामाजिक नीतिशास्त्र की वर्तमान समस्याओ पर विचार विमर्श, वाद विवाद करते थे। क्लब के सदस्यो पर हनरी जाज के सिद्धान्त, मार्क्स के सिद्धान्तो की विविध ब्रिटिश व्याख्याओ और जॉन स्टुअर्ट मिल के व्यक्तिवाद के सिद्धान्त के अन्तर्गत विकसित होने वाले समष्टिवाद का प्रभाव था। ई० एम० बर्न्स ने ठीक कहा है कि फेबियन समाजवाद सम्भवत "समकालीन समाजवाद की ऐसी महत्वपूर्ण किस्म है जो अपना पितृत्व मार्क्स मे नही ढूँढता।"[1]

फेबियन समाज की स्थापना जनवरी 4 1884 को इगलैण्ड मे हुई। इस समाज के लिए नाम की खोज फ्रॅंक पॉडमोर (Frank Podmore) ने की। इसका नाम रोम क एक जनरल क्विण्टस फेबियस मेक्सीमस कन्क्टटर (Quintus Fabius Maximus Cunctator), जिसे विलम्ब करने वाला भी कहा जाता है, के नाम पर

---

1 "Perhaps the most important variety of contemporary socialism which does not trace the paternity of its doctrine to Marx is Fabian Socialism"—Burns, E M *Ideas in Conflict* (1960) p 167

रहा गया। वकटेटर अपने विरोधी कारथेज के हैनीवाल के ऊपर आक्रमण करने के लिए धैय पूवक प्रतीक्षा तब तक करता रहा जब तक कि उचित अवसर न आ गया। फेबियन समाज का "उचित अवसर" का सिद्धान्त इसी रोमन जनरल के समर तन्त्र (tactic) पर आधारित है। एडवड आर० पीज ने अपनी रचना 'फेबियन समाज का इतिहास' में फेबियन समाज के इस सिद्धान्त को इस प्रकार व्यक्त किया है, "आपको उचित अवसर के लिए प्रतीक्षा करनी चाहिए जैसा कि फेबियस ने हैनीवाल से युद्ध करने मे बडी धैर्य से की थी यद्यपि बहुतो ने इस विलम्ब की तीव्र आलोचना की। परन्तु जब अवसर आ जाय तब आपको पूरी शक्ति के साथ प्रहार करना चाहिए जसा कि फेबियस ने किया था अन्यथा आपकी प्रतीक्षा करना व्यर्थ तथा निष्फल हो जायगी।"

फेबियन समाजवाद अध्ययन, अनुसन्धान और विचारो के प्रसार म विश्वास करता है। इसका उद्देश्य समाजवाद के विचारो का प्रसार करना है जसाकि फेबियन समाजवादी समझते हैं। वे ब्रिटेन मे राष्ट्रीय तथा स्थानीय सरकारो से समाजवादी सिद्धान्तो का क्रमिक रूप से व्यावहारिक रूप देने के लिए अनुनय करते हैं। अपने समाजवादी विचारो का प्रसार करने के लिए तथा राजनीति और अथशास्त्र पर वाद विवाद तथा विचार विमश करने के लिए एक फेबियन ग्रीष्म स्कूल की स्थापना सन् 1906 म की गई। सन् 1912 मे एक फेबियन अनुसन्धान विभाग भी खोला गया। बाद म इसे श्रम अनुसन्धान विभाग मे मिला लिया गया। कोकर के शब्दो मे, "सत्य यह है कि इगलैण्ड का श्रमिक दल फेबियन कायक्रम को पूरी तरह से अपनाने को तयार है। अत अब फेबियन समाज केवल सैद्धान्तिक वाद विवाद के सिवाय और कुछ नही करता क्योकि उसके कायक्रम को स्वय मजदूर दल पूण करने के लिए कटिबद्ध है।"

फेबियन समाजवाद के संस्थापक एव समथक अपूव बुद्धि के प्रतिभाशाली स्त्री पुरुष थ। इनमे से मुख्य के नाम ह जाज बनार्ड शा, ग्रहम वालास, हुबर्ट ब्लैण्ड एच० डब्लू० मशिघम, ऐनि बसेन्ट, सिडनी वेब सिडनी ऑलीवियर, विलियम क्लार्क आदि-आदि। इनके अतिरिक्त फेबियन समाज के अनेक अन्य सदस्य ऐसे थे जिनका प्रभाव अत्यधिक था। इनमे से मुख्य थे रेम्जे मैकडानाल्ड [जो प्रथम मजदूर सरकार (1929-31) के प्रधान मन्त्री थे] एच० जी० वेल्स, बिट्रीस वेब, कीअर हार्डी जी० डी० एच० कोल, पैथिक लारेन्स पियाजा मनी, स्टुअट हडलाम, जे० बम्फर्ड इमाईल डेविस, हैरल्ड लास्की, आर० एच० टानी, लियोनार्ड वुल्फ, हरमन फाइनर क्लेमेन्ट आर० एटली, ह्यू ज गेटस्किल (Hugh Gaitskell) इत्यादि। इस तरह फेबियन समाजवाद को इस बात का गव है कि उसकी पंजिका (roll) म विद्वानो, सन्तों कवियो, प्रशासको और राजनीतिज्ञो के नाम हैं। इस समाज की एक अन्य विशेषता, व

है कि जितने भी इसके प्रतिभाशाली व्यक्ति थे उनमें कोई भी निर्धन वर्ग से नहीं था। फिर भी उन्होंने समाजवाद का समर्थन किया।

फेबियनवाद के सारभूत तत्त्व या मूल विचार
(Essentials or Fundamental Ideas of Fabianism)
या
फेबियनवाद के उद्देश्य एवं नीतियाँ
(Aims and Policies of Fabianism)

ग्रे (Gray) के अनुसार 'फेबियनवाद मुख्य रूप से एक नीति है, एक युद्ध कला है, सिद्धान्त समूह नहीं।' फेबियन समाजवादियों का विश्वास है कि प्रतियोगिता की प्रणाली से जीवन की सुख सुविधाओं का केवल कुछ ही लाभ प्राप्त कर सकते हैं, अधिकांश जनता को इस प्रणाली से क्लेश या दुःख का ही सामना करना पड़ता है। इसलिए फेबियन समाजवादी समाज का पुनर्गठन इस प्रकार करना चाहते हैं कि समाज के समस्त व्यक्तियों के सुख एवं कल्याण की व्यवस्था की जा सके। उनका उद्देश्य समाज के सब व्यक्तियों को विकास के समान अवसर प्रदान करना है। वे आर्थिक विषमताओं का यदि अन्त नहीं तो उन्हें कम तो अवश्य करना चाहते हैं। फेबियन समाजवादियों के मूल विचार निम्न हैं —

1 मूल्य समाज की उत्पत्ति है

फेबियन समाजवादी मार्क्स के 'श्रम सिद्धान्त' तथा अतिरिक्त मूल्य के सिद्धान्त में विश्वास नहीं करते। वे मार्क्स के इस सिद्धान्त में भी विश्वास नहीं करते कि निरपेक्ष श्रम ही मूल्य का आधार है। उनके लिए 'मूल्य' समाज की उत्पत्ति है। सामाजिक उपयोगिता के आधार पर ही मूल्य निर्धारित होते हैं। उनकी धारणा है कि 'सीमान्त प्रयास' (marginal effort) और 'सीमान्त उपयोगिता' (marginal utility) के सम्पात (coincidance) द्वारा ही मूल्य निर्धारित होते हैं। जोड के शब्दों में, "जिसे समाज उत्पन्न करता है उस पर उसका नियन्त्रण होना चाहिए और उसी के द्वारा उसका उपभोग होना चाहिए।[1]

2 फेबियन समाजवादी पूँजीवाद का सुधार चाहते हैं अन्त नहीं

फेबियन समाजवादी मार्क्स के ऐतिहासिक भौतिकवाद, आर्थिक निर्धारणवाद, वर्ग संघर्ष आदि को स्वीकार नहीं करते। वे क्रान्ति और हिंसा में भी विश्वास नहीं करते। वे पूँजीवाद को शोषण और अन्याय का कारण तो मानते हैं परन्तु उसका क्रान्ति द्वारा उन्मूलन नहीं चाहते। उनका विश्वास है कि समाज में विद्यमान विषमताओं को कानून द्वारा तथा जनमत के आधार पर दूर किया जा सकता है। वे बड़ी

---

1 That what society creates it should control and enjoy — Joad, C E M *Introduction to Modern Political Theory*, p 49

सावधानी से श्रमिक सुधार द्वारा विचारों में परिवर्तन ला कर वर्तमान पूंजीवादी व्यवस्था को बदलना चाहते हैं।

3 फेबियन समाजवादी उद्योग और भूमि पर सामाजिक स्वामित्व चाहते हैं

फेबियन समाज के सभी सदस्य प्रजातांत्रिक समाजवादी हैं। वे भूमि और औद्योगिक पूंजी पर निजी स्वामित्व का समाप्त कर उन पर समाज का स्वामित्व स्थापित करना चाहते हैं। वे इनसे उत्पन्न होने वाले लाभ को सामान्य कल्याण के लिए प्रयोग में लाना चाहते हैं।

4 फेबियन समाजवादी निजी सम्पत्ति का उन्मूलन चाहते हैं

फेबियन समाजवादियों का विश्वास है कि सभी पूंजी समाज की है। इसलिए पूंजी पर समाज का अधिकार होना चाहिए। इस उद्देश्य को प्राप्त करने के लिए वे भाड़े और ब्याज पर समाज का अधिकार स्थापित करना चाहते हैं। भूमि से प्राप्त होने वाले लगान या भाड़े को वे व्यक्ति को हड़प करने की आज्ञा नहीं देते। भूमि पर निजी स्वामित्व समाप्त कर वे उस पर समाज का स्वामित्व चाहते हैं। फेबियन समाजवादियों के इस सिद्धान्त को 'राजस्व सिद्धान्त" (Theory of rent) कहते हैं जिसे उन्होंने रिकार्डो के भाड़े के सिद्धान्त" से प्राप्त किया।

5 फेबियन समाजवादी औद्योगिक पूंजी पर किसी एक व्यक्ति या व्यक्ति समूह का एकाधिकार नहीं चाहते

फेबियन समाजवादी व्यक्तिवाद के इस सिद्धान्त का स्वीकार नहीं करते कि शक्तिशाली को ही जीवित रहने का अधिकार है। वे व्यक्तिवादियों की स्वार्थ भावना की निन्दा करते हैं। वे औद्योगिक पूंजी पर समाज का नियन्त्रण चाहते हैं। उनकी धारणा है कि औद्योगिक पूंजी पर निजी स्वामियों का एकाधिकार होने से मजदूरों के साथ न्याय नहीं होता। जब जीविकोपार्जन के साधन कुछ एक हाथों में केन्द्रित होते हैं तो समाज में शोषण की सम्भावना अधिक बढ़ती है। इस कारण वे औद्योगिक पूंजी पर समाज का नियन्त्रण चाहते हैं। फेबियन समाजवादी पूंजीपतियों के साथ भी न्याय करना चाहते हैं। पूंजीपतियों से छीन गये विशेषाधिकारों के उपलक्ष्य में वे उन्हें उचित मुआवजा देने के पक्ष में हैं।

6 फेबियन समाजवादी मजदूरों को उनके श्रम का प्रतिफल देना चाहते हैं

फेबियन समाजवादियों की धारणा है कि मजदूरों को उनके श्रम का प्रतिफल मिलना चाहिए। आलसी वर्गों को जो दूसरों के खून पसीने की कमाई पर जीते हैं, समाप्त कर देना चाहिए। उनका विश्वास है कि यदि भाड़े और ब्याज पर नियन्त्रण कर लिया जाय तो उन्हें मजदूरों में पुरस्कार के रूप में बांटा जा सकता है।

7 फेबियन समाजवादी विचारो के प्रसार मे विश्वास करते हैं क्रान्ति या [illegible] मे नहीं

फेबियन समाजवादी हिंसा, क्रान्ति, पशुबल या संघर्ष मे विश्वास नहीं [illegible] । वे विचारो के प्रसार और प्रकाशन तथा व्याख्यान म विश्वास करते हैं । [illegible] है कि समाजवादी विचारो के प्रसार द्वारा बड़े-बड़े सामाजिक [illegible] लाये जा सकते है, व्यक्तियो के विचारो म परिवर्तन लाया जा [illegible] निक साधनो द्वारा जनमत के आधार पर अपेक्षित परिवर्तन [illegible] ।

8 फेबियन समाजवादी वास्तविक प्रजातन्त्र चाहते हैं

फेबियन समाजवादियो की धारणा है कि [illegible] आर्थिक स्वतन्त्रता होने पर ही वास्तविक प्रजातन्त्र की [illegible] और अन्याय तभी समाप्त हो सकते हैं जब आर्थिक [illegible] न केवल मताधिकार का विस्तार चाहते हैं बल्कि वे [illegible] उद्योगो का संगठन तथा संचालन एक जनतन्त्रीय [illegible] शासन जनता के प्रति उत्तरदायी हो ।

9 फेबियन समाजवादी राज्य का लोप नहीं [illegible]

जहा मार्क्सवादी-साम्यवादी राज्य [illegible] समाजवादी उसका लोप नही चाहते बल्कि [illegible] मुख्य अंग के रूप म उसे बनाये रखना [illegible] ।

फेबियनवाद [illegible]

फेबियन समाजवादी [illegible] उन्होंने अनेक आधारो पर [illegible] (1) ऐतिहासिक, (2) औद्योगिक [illegible]

1 ऐतिहासिक आधार (Histo[illegible]

फेबियन समाजवादी [illegible] के विकास मे प्रत्येक [illegible] शब्दो मे, फेबियन [illegible] विचार तथा संस्थाएँ— [illegible] अवस्थाओं द्वारा नि[illegible] संघर्ष की कहानी [illegible] है । इतिहास [illegible] विकास, है ।

फेबियन [illegible] का है । उनके [illegible]

प्राय निरन्तर प्रगति" को प्रकट करना है। उदाहरण देते हुए वेब लिखता है कि उन्नीसवीं शताब्दी में व्यक्तिवाद धीरे धीरे समाप्त होता रहा और समाजवाद की अनवरत प्रगति होती गई। वेब कहता है कि समाज स्थैतिक नहीं, गतिमान है।

वेब के अनुसार समाजवाद "पूर्ण प्रजातन्त्र के फलन का अनिवार्य परिणाम है।"[1] परन्तु वेब की यह 'अनिवार्यता' मार्क्सवादी 'अनिवार्यता' से बिल्कुल भिन्न है। जहाँ मार्क्स की अनिवार्यता का सिद्धान्त क्रान्तिकारी और भयंकर परिवर्तन पर आधारित है वहाँ वेब की अनिवार्यता का सिद्धान्त "क्रमिक", 'किस्त दर किस्त', "प्रजातान्त्रिक' और "शान्ति पूर्ण" साधनो पर आधारित है। वेब का विश्वास है कि समाज में परिवर्तन चार शर्तों के आधार पर ही लाये जा सकते हैं। ये शर्तें इस प्रकार हैं—

1 परिवर्तन अवश्य ही प्रजातान्त्रिक होने चाहिए अर्थात परिवर्तन तभी सम्भव है जब जनता का बहुमत उन्हें स्वीकार कर ले।
2 परिवर्तन अवश्य ही क्रमिक होने चाहिए ताकि किसी प्रकार की अव्यवस्था या विस्थापन न हो।
3 परिवर्तन जनता द्वारा अनैतिक नहीं समझे जाने चाहिए।
4 परिवर्तन अवश्य ही संवैधानिक और शान्तिपूर्ण होने चाहिए।

समाजवाद की निरन्तर प्रगति की व्याख्या करते हुए वेब लिखता है कि जैसे जैसे राजनीतिक मुक्ति में विकास (मताधिकार में विस्तार) होता गया वैसे वैसे निजी स्वामित्व के साधनों को या तो सीमित किया गया या उन पर समाज का नियन्त्रण स्थापित किया गया या उनका अतिक्रमण कर उन पर समाज का स्वामित्व स्थापित किया गया। राजनीतिक शक्ति की प्रत्येक वृद्धि का प्रयोग सर्वहारा ने अपनी आर्थिक और सामाजिक सुरक्षा को सुदृढ करने के लिए किया। वेब के शब्दों में, "शताब्दी का आर्थिक इतिहास समाजवाद की प्रगति का निरन्तर रिकार्ड है।' इस तरह वर्तमान सामाजिक दर्शन सामाजिक संगठन के सिद्धान्तों का चेतन और स्पष्ट कथन है।

वेब का विश्वास है कि प्रजातन्त्र के विकास का अनिवार्य परिणाम केवल राजनीतिक संगठन पर ही जनता का नियन्त्रण नहीं होगा बल्कि उसके द्वारा धन के उत्पादन के मुख्य यन्त्रों पर भी जनता (समाज) का नियन्त्रण होगा, प्रतिद्वन्द्विता के संघर्ष की अराजकता के स्थान पर संगठित सहयोग का क्रमिक स्थानापन्न होगा। 'प्रजातान्त्रिक आदर्श का आर्थिक भाग वास्तव में स्वयं समाजवाद है।'[2]

---

1 Socialism is an inevitable outcome of the full fruition of democracy —Webb Sidney
2 The economic side of the democratic ideal is, in fact socialism itself —Webb Sidney

व्यक्तिवाद के आत्यंतिक स्वरूप के विरुद्ध विद्रोह कॉलरिज, ओवेन, कारलाईल, मारिस, किंगजले, रस्किन, कॉम्टे, जे० एस० मिल, डार्विन, स्पेंसर, इत्यादि ने आरम्भ किया। कारखानो, सार्वजनिक स्वास्थ्य, खानो आदि को नियन्त्रित करने के लिए अनेक प्रकार के कानूनो का निर्माण किया गया तथा पूँजीपतियों की दमन और शोषण करने की शक्ति पर प्रतिबन्ध लगा दिये गये। वेब के शब्दो मे, "पूँजी के लाभो मे शनै शनै कटौती की गई भाडे और ब्याज की आय से भी एक एक टुकडा निकाल कर उसे कम किया गया। धीरे धीरे राजनीतिक शक्ति और राजनीतिक संगठन का प्रयोग औद्योगिक उद्देश्यो को प्राप्त करने के लिए किया गया है, आज स्थिति यह है कि श्रम का सर्वोत्तम मालिक क्राऊन का एक मन्त्री (पोस्ट मास्टर जनरल) है। प्रत्येक विचारणीय व्यापार या तो परिश (Parish—पादडी का प्रदेश), म्युनिसिपेलिटी या स्वय राष्ट्रीय सरकार द्वारा चलाया जाता है। इसमे किसी दलाल या पूँजीपति के हस्तक्षेप की आवश्यकता नही।"

वेब लिखता है कि अनेक क्षेत्रो मे राज्य का नियन्त्रण स्थापित हो चुका है और अब यह एक स्वाभाविक प्रवृत्ति बन गई है। मुख्य क्षेत्र जिन पर राज्य का नियन्त्रण स्थापित हो गया है वे हैं—अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्ध, सेना, न्यायालय, पोस्ट आफिस, टेलिग्राफ, मुद्रा प्रसारण, बाट, सडको तथा पुलो का निर्माण, जीवन बीमा, वार्षिक निधि, जहाजो का निर्माण, स्टाक ब्रोकर (stock brokering), बैंकिंग, खेतिहर, साहूकारी, गली मुहल्लों की सफाई तथा रोशनी का प्रबन्ध, शिक्षा, चिकित्सा, मनोरंजन तथा लाखो लोगो की परवरिश तथा उनकी कब्र का प्रबन्ध इत्यादि। वेब के शब्दो मे, "निजी उद्योगो पर क्रमिक रूप से सरकारी नियन्त्रण मे वृद्धि, म्यूनिसिपल प्रशासन मे विकास और ब्याज तथा भाडे पर प्रत्यक्ष करो का भार इत्यादि ये सब इस बात को स्पष्ट करते है कि राजनीतिज्ञो ने अज्ञात स्थिति मे ही व्यक्तिवाद के प्राचीन सिद्धान्त को त्याग दिया है और राज्य समाजवाद (समष्टिवाद) की ओर प्रगति अनिवार्य है।'

सिडनी वेब का निष्कर्ष यह था कि "इंगलैण्ड मे समाजवाद का विकास किसी क्रान्ति के फलस्वरूप नही हो रहा बल्कि राजनीतिक प्रजातन्त्र के विकास द्वारा, अर्थशास्त्रियो के दृष्टिकोण मे परिवर्तन द्वारा और उद्योगो और सामाजिक कार्यों पर म्यूनिसिपलिटीज, राज्य या राष्ट्र के क्रमिक नियन्त्रण द्वारा हो रहा है। समाजवाद की ओर विकास प्रजातान्त्रिक, क्रमिक, नैतिक और शान्तिपूर्ण प्रवृत्ति का था।'

2 औद्योगिक आधार (Industrial Basis)

विलियम क्लार्क ने फेबियन समाजवाद का औद्योगिक आधार पर सिद्ध करने का प्रयत्न किया। उसके अनुसार आरम्भ मे पूँजीपति अत्यधिक श्रम करते थे और वे अधीक्षक के रूप मे अपने वेतनो को प्राप्त करते थे यद्यपि ये वेतन बहुत ऊँची दरो के होते थे। परन्तु धीरे धीरे पूँजीपतियो ने यह कार्य भी उन लोगो के हाथो मे

दे दिया जो उनसे वेतन प्राप्त करते थे । इस तरह पूँजीपतियों ने अधीक्षक की स्थिति का भी परित्याग कर दिया । वे समाज के लाभकारी तत्त्व नहीं रहे बल्कि भाड़े और ब्याज को प्राप्त करने वाले परजीवी (parasite) बन गये । संयुक्त पूँजी कम्पनियों के माध्यम से पूँजीपति उन क्षेत्रों पर भी अपना नियन्त्रण जमा लेते हैं जिन्हें न तो उन्होंने देखा है और न ही उनका कभी मुआइना ही किया है । वे तो भाड़े के टट्टुओं (प्रबन्धकों, मैनेजरों) द्वारा लाभ की अत्यधिक राशि को प्राप्त करते हैं । प्रबन्धक अपने स्वामियों को प्रसन्न करने के लिए अधिक से अधिक लाभ प्राप्त करने की कोशिश करते हैं । मजदूरों और मालिकों के प्राचीन सम्बन्ध समाप्त हो गये हैं । अब तो सम्बन्ध केवल रोकड़ (cash nexus) का है ।

क्लार्क की धारणा है कि पूँजीवाद प्रजातन्त्र का हितैषी नहीं, विरोधी है। दोनों साथ साथ नहीं चल सकते । जब तक पूँजीवाद पर प्रतिबन्ध नहीं लगा दिया जाता तब तक प्रजातन्त्र वास्तविक नहीं हो सकता । क्लार्क का विश्वास है कि पूँजीवाद से उसी प्रकार छुटकारा पाया जा सकता है जिस प्रकार दास, डाइवर और सामन्तवादी बैरन से छुटकारा पाया गया । इसलिए क्लार्क समस्त कारखानों सम्मिलित पूँजी से बनी कम्पनियाँ, ट्रस्टों आदि को सार्वजनिक स्वामित्व के अधीन लाना चाहता है ।

3 आर्थिक आधार (Economic Basis)

जार्ज बर्नार्ड शा ने आर्थिक आधार पर समाजवाद को न्यायोचित सिद्ध करने का प्रयास किया है । शा विशेषकर भाड़े की आलोचना करता है । उसके लिए भाग "खेती की निकृष्टतम भूमि की उपज तथा उससे अच्छी भूमि की उपज के बीच का अन्तर अच्छी भूमि का भाड़ा (लगान) है ।"[1] उसकी धारणा है कि निजी सम्पत्ति के अधीन जो सबसे कम काम करता है उसे सबसे अधिक प्राप्त होता है और जो सबसे अधिक कार्य करता है उसे सबसे कम प्राप्त होता है । वर्तमान समय में बड़ी बड़ी सम्पत्तियों का निर्माण कठोर परिश्रम से नहीं हुआ बल्कि भूमि के मूल्य की वृद्धि और कारपोरेशन के स्टाक के कारण हुआ है । शा कहता है कि मूल्य में वृद्धि समाज की देन है, वह सम्पत्ति के मालिकों की देन नहीं । पूँजीपति (सम्पत्ति के स्वामी) वास्तविक रूप से हाथ पर हाथ धरे बैठे रहे या उन्होंने अपना जीवन लोमड़ी के शिकार या गोल्फ (Golf) के खेल में बिताया और मूल्य में वृद्धि साथ-साथ होती गई ।'

शा की धारणा है कि जिस मूल्य को समाज उत्पन्न करता है उस पर समाज का आधिपत्य होना चाहिए न कि किसी व्यक्ति विशेष का । इसलिए वह भूमि और उद्

1 Rent — The difference between the fertility of the land for which it is paid and that of the worst land —Shaw, G B

वे राष्ट्रीयकरण तथा करों की ऐसी प्रणाली अपनाने के पक्ष मे है जिससे 'परिश्रमहीन आय' पूंजीपतियो के हाथो मे जाने के स्थान पर समाज के हाथो मे आ जाय ताकि उस आय का प्रयोग समाज कल्याण के कार्यों मे व्यय किया जा सके।

निजी सम्पत्ति के दोषो पर भी शा ने प्रकाश डाला है। वह कहता है कि निजी सम्पत्ति से न केवल समाज के वर्गों मे भेद तथा ईर्षा उत्पन्न होती है बल्कि मजदूरो की आर्थिक स्थिति शोचनीय हो जाती है। धन मुट्ठी भर लोगो के हाथो मे सग्रहीत हो जाता है जिससे कुछ तो धन की अधिकता के कारण विलासिता का जीवन व्यतीत करते हैं और अधिकाश के पास जीविकोपार्जन के साधन भी उपलब्ध नही होते। इतना ही नही मजदूरो का अपने श्रम पर भी स्वामित्व नही रहता, वह तो पूंजीपति की इच्छा पर निर्भर हो जाते हैं। 'मजदूर खरगोशो की तरह उत्पन्न होते हैं। उनकी निर्धनता, मलिनता, कुरूपता, कुटिलता, बीमारी और कत्ल को जन्म देती है।" शा कहता है कि यह निर्धनता तथा असहाय अवस्था समाज मे उस स्थिति मे विद्यमान है जबकि समाज मे प्रचुर मात्रा मे साधन उपलब्ध हैं।

4 नैतिक आधार (Moral Basis)

सिडनी ऑलीवियर ने समाजवाद को नैतिक आधार पर सिद्ध करने का प्रयास किया है। उसका कहना है कि समाजवाद व्यक्तिवाद का शत्रु नही, उसका शिष्य है। "समाजवाद विवेकपूर्ण सगठित, अलकृत और अपने ठीक मस्तिष्क पर आधारित व्यक्तिवाद है।[1]

ऑलीवियर का विश्वास है कि निजी सम्पत्ति की वर्तमान प्रणाली अनैतिक है। उसका कोई नैतिक आधार नही। वर्तमान समय मे पूंजीपति भाडे ब्याज तथा लाभाश (dividend) द्वारा जो पेंशन प्राप्त करते हैं वे उनके श्रम का फल नही बल्कि मजदूरो के खून पसीने की कमाई मे कटौती है जिसे पूंजीपति बिना श्रम के हडप करते हैं। ऑलीवियर की धारणा है कि पूंजीवाद मानव चरित्र का भी पतन करता है। यह न केवल पूंजीपति का ही नैतिक पतन करता है बल्कि जन-साधारण का भी पतन करता है। यह जन साधारण की दुःख-दरिद्रता को बढाता है और दरिद्रता मे अनेक सामाजिक बुराइयाँ उत्पन्न होती हैं। इस तरह पूंजीवाद और प्रतिद्वन्द्विता [illegible] और कुटिल है। ऑलीवियर का विश्वास है कि जब समाज मे मानव की न्यूनतम आवश्यकतायें पूरी होने लगेंगी तब सामाजिक नैतिकता की [illegible] शिक्षा का विषय ही रह जायगा।'

5 प्रेरणा का आधार (Incentive Basis)

डा० ऐनि बसेंट ने समाजवाद को प्रेरणा के [illegible] सिद्ध

---

1 "Socialism is merely individualism [illegible], [illegible] clothed and in its right mind —Olivier, [illegible]

करने का प्रयत्न किया है। उनका विश्वास है कि समाज में विद्यमान सामाजिक अन्याय का अन्त कर ही कार्य की प्रेरणा को उत्पन्न किया जा सकता है। वह उस प्रणाली या सामाजिक अवस्था के विरुद्ध है जहाँ सबको जीविकोपार्जन के साधन सुलभ नहीं और कुछ के पास अत्यधिक साधन हैं।

ऐनि बेसेन्ट की धारणा है कि वर्तमान समाज मे धन सब कुछ प्राप्त करा सकता है। समाज मे धन ही विश्वास और सम्मान का प्रतीक है और निर्धनता अभाग्यता, अविश्वास और अपमान की प्रतीक है। धनी होने का अर्थ है जीवन की सुख सुविधाओं का उपभोग, भुखमरी से सुरक्षा, स्वादों की परितुष्टि, सभ्य समाज के साधनों का उपभोग, अनेक क्षेत्रों मे श्रेष्ठता का प्रलोभन, सम्मान, आराम, ज्ञान, स्वतन्त्रता आदि की सुविधायें इत्यादि। दूसरी ओर, निर्धन होने का अर्थ है दुःख, क्लेशमय तथा कष्टपूर्ण जीवन।

ऐनि बेसेन्ट का कहना है कि ऐसी सामाजिक और आर्थिक व्यवस्था को जिसमें केवल धनिकों को ही कार्य की प्रेरणा मिलती है बदल देना चाहिए। इसके स्थान पर ऐसी सामाजिक और आर्थिक व्यवस्था स्थापित करनी चाहिए जिससे साधारण व्यक्तियों को भी कार्य की प्रेरणा मिले। यह तभी सम्भव है जब सबके पास जीविकोपार्जन के साधन उपलब्ध हो, सबको अभाव से मुक्ति मिले तथा धन प्राप्त करने की चिन्ता न रहे। ऐनि बेसेन्ट के शब्दों मे, "श्रेष्ठ (आगे बढने) बनने की इच्छा, रचनात्मक कार्य मे प्रसन्नता, सुधार की अभिलाषा, सामाजिक अनुसमर्थन को प्राप्त करने की उत्कण्ठा, पर हितैषणा की वृत्ति ये सब पूर्ण जीवन में आरम्भ हो जायेंगे और ये एक दम श्रम के लिए प्रेरणा और श्रेष्ठता के पुरस्कार के रूप में कार्य करेंगे" जहाँ जीविकोपार्जन के साधन सुरक्षित हैं वहाँ इन प्रवृत्तियों को आसानी से देखा जा सकता है। उदाहरण देते हुए ऐनि बेसेन्ट लिखती हैं कि एक सिपाही के जीविकोपार्जन के साधन सुरक्षित होने से उसमें देश भक्ति की भावनायें, देश के झण्डे के सम्मान के लिए मर-मिटने की भावनायें और देश के सम्मान के लिए कुछ भी कर सकने की भावनायें पैदा होती हैं।

फेबियनवाद के साधन

अपने समाजवादी उद्देश्यो को प्राप्त करने के लिए फेबियनवादी निम्न साधनों को अपनाते हैं जो पूर्णतया संवैधानिक एवं प्रजातान्त्रिक हैं।

1 हिंसा विरोधी

फेबियन समाजवादी हिंसा, क्रान्ति, पशु शक्ति इत्यादि ऐसे ही साधनों के विरोधी हैं। इस तरह वे मार्क्सवाद विरोधी एवं साम्यवाद विरोधी हैं। फेबियनवादियों के साधन विकासवादी, प्रजातन्त्रवादी और नम्र हैं। वे संयमी और श्रेष्ठ साधनों का

सहारा लेते हैं। उनम पक्षपात, घृणा या कट्टरता नही। वे परिवतन चाहते हैं परन्तु क्रान्ति द्वारा नही। वे बडी मन्द गति से किस्त दर किस्त रूप म और जनमत के आधार पर समाज म परिवतन लाना चाहते हैं। वे वर्गों के सघर्ष म नही वर्गों के सहयोग मे विश्वास करत हैं।

2 राज्य के पक्ष मे

फेबियन समाजवादी राज्य विरोधी नही। वे समष्टिवादियो की तरह राज्य के औचित्य को स्वीकार करते हैं। वे राज्य को जनता का प्रतिनिधि एव सरक्षक, अभिभावक एव व्यावसायिक प्रबन्धकर्त्ता सचिव एव साहूकार मानत हैं। इस तरह उनके लिए राज्य व्यक्ति विरोधी नही। राज्य ऐसी सस्था है जिस पर विश्वास किया जा सकता है। उनकी धारणा है कि यदि प्रजातन्त्र के नागरिक जागरूक हैं तो भूमि तथा औद्योगिक पूँजी से प्राप्त होने वाले सभी आर्थिक लगान। को समाज के हाथो म सौप सकते हैं। वे राज्य को समाज कल्याण का मुख्य यन्त्र मानते है।

3 पूँजीवाद के मृदु आलोचक

जिस ढग से और जिन साधना से फेबियन समाजवादी पूँजीवाद पर प्रहार करते हैं वे साम्यवादियो से सवथा भिन्न हैं। जहा साम्यवादियो का पूँजीवाद पर प्रहार विनाशकारी है वहा फेबियन समाजवादियो का उस पर प्रहार मृदु (mild) एव सूक्ष्म (subtle) है।

4 सामाजिक सुधारों पर बल देते हैं

फेबियन समाजवादी समाजवादी होने के स्थान पर अधिक समाज सुधारक हैं। वे विकासवादी और नरमपथी हैं। फेबियनवादी कितने व्यवहार कुशल एव स्थानीय सुधारो से सम्बन्धित थे यह उनकी उन पत्रिकाओ के शीर्षको से स्पष्ट है जिनको उन्होंने प्रकाशित किया जसे 'म्युनिसिपल दूध और सावजनिक स्वास्थ्य" पर प्रकाशित पत्र, 'गृह तथा विदेश मे लाइसेंस' देने पर पत्र 'लाण्डरी मे जीवन', 'विद्युत शक्ति तथा उसके पारगमन पर सावजनिक नियन्त्रण', 'शिशु गृहो पर पत्र, 'लार्डसभा म सुधार', इत्यादि। सन 1920 मे जब लेनिन राज्यो और साम्राज्यो के पतन मे व्यस्त था उस समय क्लेमेन्ट आर० ऐटली ब्रिटिश परिषदो और नगरो के सुधारो के बारे मे रचनायें लिखने म व्यस्त था। ब्रिटेन म फेबियन समाजवादियो की अत्यधिक सफलता का कारण यही है कि उन्होंने सिद्धान्तो के प्रश्नो को तथ्यो के प्रश्नो मे बदल दिया।'[1] फेबियनवादियो के लिए अन्तत तथ्य ही महत्त्वपूर्ण सिद्ध होते हैं और वे ही लोगो के कार्यों और विचारो को निर्धारित करते हैं।

---

1 'The successes of Fabianism have probably stemmed chiefly from their concern with reducing questions of principle to questions of fact '—Ebenstein, William *Today s Isms*, p 218

5 जन आन्दोलन मे विश्वास नहीं करते

फेबियनवादी नरम पंथी हैं। "उन्होने कभी भी सख्त प्रहार नही किये।" वे अपने विचारो का प्रसार करने के लिए किसी जन आन्दोलन मे विश्वास नहीं करते वे अपने विचारो का प्रचार व्याख्यानो, भाषणो, ग्रन्थो (गुटको) और लेखों द्वारा करते हैं। इस तरह अपने विचारो के साहित्य का विस्तार कर वे अपने विचारों का प्रचार करते हैं। उनकी अपील जन के लिए नही बल्कि थोडे से शिक्षित, बुद्धिजीवी, प्रतिभाशाली, सयमी और विवेकपूर्ण विद्वानो तक सीमित होती है जिनका सार्वजनिक क्षेत्र अत्यधिक प्रभाव होता है। यही कारण है कि अपनी लोकप्रियता की चरम सीमा पर भी फेबियन समाज के सदस्यो की सख्या 3,600 से अधिक नही थी।

6 कोई ठोस दल या सिद्धान्त नहीं

फेबियन समाजवादियो का कोई अपना दल नही। उनका विश्वास है कि सब दलो या समूहो मे ऐसे लोग होते हैं जो उनके विचारों के प्रति सहानुभूति रख सकते हैं। फेबियन समाजवादियो के कोई ऐसे सिद्धान्त या नियम नही जिनका पालन करने के लिए उनके सदस्यो को शपथ दिलायी जाती है। उनकी धारणा है कि परिवर्तित परिस्थितियो तथा आवश्यकताओ मे समाजवाद के सिद्धान्तो मे भी निरन्तर परिवर्तन होना चाहिए। इसलिए वे तो ऐसी समस्याओ पर बल देते हैं जो वास्तविक हो। वे सिद्धान्तो के स्थान पर तथ्यो (facts) पर बल देते हैं।

फेबियनवाद की सफलताएँ

फेबियन समाज मे अत्यधिक प्रतिभाशाली व्यक्ति थे। इस समाज में ऐसे व्यक्ति भी थे जिनकी ख्याति विश्वव्यापी थी। इनके विचारो का प्रभाव ब्रिटिश समाज मे अत्यधिक हुआ, विशेषकर बुद्धिजीवी वर्ग, मध्यम वर्ग और यहाँ तक कि पूँजीपति वर्ग भी इसके क्रमिक, प्रजातान्त्रिक, विकासवादी साधनो से प्रभावित हुए बिना न रह सका। फेबियन समाजवादियो ने ब्रिटेन म उस समय समाजवाद की विचारधारा का प्रसार किया जिस समय ब्रिटेन मे उसे शका की दृष्टि से देखा जाता था। आज यदि ब्रिटेन में समाजवाद को विध्वसक नही माना जाता तो इसका श्रेय फेबियन समाजवादियो को है। हैलोवेल के शब्दो मे वे "लोकतन्त्रीय क्रमिक शान्तिपूर्ण और वैधानिक तरीको द्वारा समाजवादी समाज के उदय की कल्पना करते हैं' और यही उनकी सफलता का मुख्य कारण है। फेबियन समाजवादी विचारो की लोकप्रियता का प्रमाण सन् 1945 के ब्रिटिश चुनाव हैं जिनमे ब्रिटिश मजदूर दल के 394 निर्वाचित सदस्यो मे से 229 सदस्य फेबियन समाजवादी थे। ऐटली की सरकार (1945 51) के अधिकांश सदस्य फेबियन समाजवादी थे।

---

1 Wells, H G

फेबियन समाजवादियो की दूसरी सफलता यह है कि उन्होंने 'तथ्यो'' पर बल दिया 'सिद्धान्तो' या 'कट्टरता' पर नही । वे नीतियो के गुण-दोषो से अधिक सम्बन्धित थे । वे साधारण लोगो के कल्याण स अधिक सम्बन्धित थे । उन्होने मजदूरो की दशा सुधारने पर बल दिया । उन्होने सामाजिक कानूनो की रचना पर अत्यधिक बल दिया— काम के घण्टे निश्चित करना, बेकारी से सुरक्षा, वेतन की न्यूनतम दरें निर्धारित करना, सावजनिक उपयोगिता वाली सेवाओ को सावजनिक स्वामित्व के अधीन लाना, इत्यादि विषयो पर फेबियन समाजवादियो ने अत्यधिक बल दिया । कोकर ने बहुत सुन्दर शब्दो मे लिखा है कि 'फेबियन सोसाइटी ने सिद्धान्त क्षेत्र म उतना योगदान नही दिया जितना कि व्यावहारिक क्षेत्र म । जिस प्रतिभा और बुद्धिमत्ता के साथ उन्होने ग्रेट ब्रिटेन की आर्थिक एव सामाजिक अवस्थाओ के सम्बन्ध म तथ्य एकत्र करके उनकी व्याख्या की है उसी के कारण ब्रिटेन की राष्ट्रीय तथा स्थानीय सरकारें शन शन और सावधानी के साथ समाजवाद के एक नरम रूप को व्यावहारिक रूप दे सकी हैं ।''[1]

फेबियन समाजवाद मे दोष

यद्यपि फेबियन समाजवादियो ने ब्रिटेन म सुधार लाने के लिए अत्यधिक प्रयत्न किये फिर भी उन पर एक बहुत बडा दोष यह लगाया जाता है कि वे अवसरवादी है । स्कैल्टन ने उन्हे 'अवसरवादी समाजवादी' कहा है । बाकर ने उन पर यह आरोप लगाया है कि 'उनके कोई स्पष्ट विचार नही, वे अपनी भक्ति समयानुकूल बदलते रहते हैं वे सफलता के लिये केवल चालाकी पर निभर करते हैं । मलोक का विश्वास है कि फेबियनवादियो की विचारधारा तथा उनकी भाषा स्पष्ट नही है । समाजवाद की परिभाषा करते समय वे उनका कुछ अथ बतलाते हैं (जसे पूजीवाद, जमीदारी प्रथा, निजी उद्योगो और स्वतन्त्र प्रतियोगिता की समाप्ति) परन्तु उसके दाहरण खोजते समय वे अपने परिभाषित अथ को बदल देते हैं (जसे राज्य के यन्त्रण और म्यूनिसिपल उद्योग धन्धो म वृद्धि) ।' डा० एंजिल्स के शब्दो मे, ''फेबि वादी उदारवादियो से सघष करना चाहत हैं परन्तु खुले हुए शत्रुओ की तरह नही क उन्हे समाजवादी परिणामो की ओर आकर्षित करके तथा उनके मानसिक रो को समाजवादी विचारो से प्रभावित करके सघष करना चाहते हैं (वे) उन्हे घूँस देकर उनके विचारो को बदलना चाहत है । वस्तुत उनके समस्त सिद्धान्त ए हैं । फेबियन समाजवाद को ''ईसा मसीह समाजवाद'' (The Jesuits of So- n) भी कहा जाता है ।

फेबियन समाजवाद तथा मार्क्सवाद-साम्यवाद मे अन्तर

फेबियन समाजवाद और मार्क्सवाद-साम्यवाद म अनेक भेद पाये जाते हैं जिन्हे र से स्पष्ट किया जा सकता है —

; Francis W *Recent Political Thought* p 107

	फेबियन समाजवाद	मार्क्सवाद साम्यवा
1	फेबियन समाजवादियों के कोई निश्चित सिद्धान्त नहीं। उनके कोई बड़े बड़े रचित ग्रन्थ नहीं जिनमें उनके सिद्धान्तों की व्याख्या की गई हो। उनके विचारों को छोटी छोटी पत्रिकाओं, गुटकों, व्याख्यानों और भाषणों में ही ढूँढा जा सकता है।	मार्क्सवादी साम्यवादियों के निश्चि सिद्धान्त हैं। वे मार्क्स और लेनिन की र नाओं में—साम्यवादी घोषणा पत्र केपिटल, एमपिरिको क्रिटिसिज्म (Em irico Criticism) में—अपने सिद्धा को ढूँढते हैं।
2	वे जीवन के सूक्ष्म तत्त्वों से सम्बन्धित हैं। वे सिद्धान्तों की अपेक्षा तथ्यों पर अधिक बल देते हैं। वे भविष्य की कल्पना नहीं करते बल्कि वर्तमान समाज की वास्तविक समस्याओं का हल ढूँढते हैं।	वे दर्शन के मूल आधारों से अधिक स न्धित हैं, उनके लिए इतिहास की व्या अधिक महत्त्व रखती है। वे भविष्य समाज—वर्ग विहीन, राज्य विहीन की कल्पना करते हैं।
3	वे इतिहास की भौतिकवादी व्याख्या, वर्ग संघर्ष, अतिरिक्त मूल्य तथा सर्वहारा के अधिनायकत्ववाद में विश्वास नहीं करते। उनके लिए इतिहास लोकतन्त्र की अदम्य प्रगति और समाजवाद की प्रायः निरन्तर प्रगति है।	वे इतिहास की भौतिकवादी व्या वर्ग संघर्ष, अतिरिक्त मूल्य तथा सर्व के अधिनायकत्ववाद में विश्वास करते उनके लिए इतिहास वर्ग संघर्ष की कह है।
4	वे वर्गों में सहयोग में विश्वास करते हैं, वे समाज के सभी वर्गों से अपील करते हैं, वे किसी वर्ग का उन्मूलन या किसी का अधिनायकत्ववाद नहीं चाहते, वे मध्यम वर्ग और उच्च वर्ग को समाजवाद के औचित्य के बारे में बताते हैं तथा उनके विचारों को परिवर्तित करने का प्रयास करते हैं।	वे वर्ग संघर्ष में विश्वास करते हैं, वे सर्वहारा वर्ग को अपील करते हैं, वे म तथा उच्च वर्ग को समाजवादी विचार में परिवर्तन नहीं करना चाहते, वे इन समाप्त करना चाहते हैं।
5	वे पूँजीवाद की आलोचना तो करते हैं परन्तु उसका पूर्ण उन्मूलन नहीं चाहते। वे उसकी बुराइयों को क्रमिक रूप से दूर करना चाहते हैं। वे उनसे छीने गये विशेषाधिकारों (भूमि, सम्पत्ति पूँजी) के उपलक्ष में मुआवजे की व्यवस्था करते हैं।	वे पूँजीवाद का पूर्ण उन्मूलन चाह व हिंसा द्वारा तथा बिना मुआवजे पूँजीवाद का सफाया चाहते हैं।
6	वे मन्द गति में किस्त दर किस्त रूप में विकासगामी प्रजातन्त्रवादी तथा नम्र साधनों द्वारा समाजवाद की स्थापना चाहते हैं। वे अनुनय	वे एक झटके में परिवर्तन लाने के हैं, वे शान्ति, हिंसा, पशुबल और जैसे साधनों का प्रयोग करने में चार नहीं, वे समाजवाद का

	और सहमति म परिवतन चाहत हैं। वे सुधारवादी है। परिमितता (Moderation) उनक तकनीक का प्रधान राग (Keynote) है।	विकास नही चाहते वे उस थापना चाहत हैं।
	वे राज्यक औचित्य को स्वीकार करत है, सामाजिक और आर्थिक सुधार के लिए व राज्य को अनिवाय समझत हैं। उनके लिए राज्य सहकारी कॉमनवल्थ है।	व राज्य को वर्गीय सस्था मानत ह जिसका प्रयोग सत्तारूढ वग अपने हितो की सुरक्षा क लिए करता है। व कवल सक्रान्ति काल म राज्य को स्वीकार करत है वे अन्त ज्यात साम्यवादी व्यवस्था म राज्य का लाप चाहते हैं।
8	व निरपेक्ष श्रम को मूल्य का आधार नही मानत, उनके लिए मूल्य समाज की उत्पत्ति है। उनका विश्वास है कि सामाजिक उपयोगिता क आधार पर ही वस्तुओ का मूल्य निर्धारित होता है।	वे श्रम को ही मूल्य का आधार मानत ह। उनकी धारणा है कि उत्पादन क स्वामी (पूँजीपति) मजदूरो क श्रम का शोषण कर अतिरिक्त मूल्य का स्वय हडप कर लेत है।
	वे जहाँ समूह या समाज पर बल तो देत हैं वहाँ व व्यक्ति की उपेक्षा नही करत उनका समाजवाद तत्वत व्यक्तिवादी है। सिडनी आलीवियर के शब्दो म, 'समाजवाद विवेकपूर्ण, सगठित अलङ्कृत और अपन ठीक मस्तिष्क पर आधारित व्यक्तिवाद है'	वे समूह या समाज पर बल दत ह। इस व्यवस्था म व्यक्ति के व्यक्तिगत हितो जसी कोई चीज नही, व्यक्ति क निरपेक्ष अधिकारो जसी कोई चीज नही।
0	व केवल थोडे से शिक्षित विवेकपूर्ण एव सावजनिक क्षेत्र म प्रसिद्ध एव लोकप्रिय व्यक्तियो का समाजवादी विचारधारा स प्रभावित कर समाजवाद की ओर बढना चाहते है। अपनी लोक प्रियता की चरम सीमा मे भी उनकी सदस्य सख्या 3,600 स अधिक नही थी।	वे निधन अशिक्षित अनभिज्ञ व्यक्तियो के मनोभावो पर प्रभाव डालकर तथा उन्हे भविष्य क स्वप्न दिखाकर अपनी ओर आकर्षित करते है।

EXERCISES

फेबियन समाजवाद की मुख्य विशेषताओ की आलोचनात्मक व्याख्या कीजिये।

फेबियन समाजवाद के उद्देश्यो और साधनो पर एक निबन्ध लिखिये।

किन आधारो पर फेबियन समाजवादी अपने विकासवादी समाजवाद को तक सगत सिद्ध करते हैं?

4 उदाहरण सहित सिडनी वेब के इस कथन की व्याख्या कीजिए कि इतिहास "लोकतन्त्र की अदम्य प्रगति" और समाजवाद की प्राय निरन्तर प्रगति है।
5 "समाजवाद पूर्ण लोकतन्त्र के फलन का अनिवार्य परिणाम है।" (वेब) व्याख्या कीजिए।
6 "जब तक राजनीतिक प्रशासन में प्रजातन्त्र प्रबल सिद्धान्त है तो समाजवाद को उसका आर्थिक प्रतिवर्तित स्वरूप आसानी से कहा जा सकता है" व्याख्या कीजिये।
7 "एक लोकतान्त्रिक राज्य तब तक समाजवादी लोकतान्त्रिक राज्य नहीं हो सकता जब तक प्रत्येक जन समुदाय के केन्द्र में केन्द्रीय संसद की भाँति अपने संगठन में पूर्णतया लोकतान्त्रिक स्थानीय प्रशासनीय निकाय न हो।" (जी० बी० शा) इस कथन को ध्यान में रखते हुए फेबियन समाजवाद की मूल नीतियों की व्याख्या कीजिये।
8 मार्क्सवादी तथा फेबियन समाजवादी समाजवाद के अन्तर को स्पष्ट कीजिये।

6 समष्टिवाद या राज्य समाजवाद
(Collectivism or State Socialism)

परिचय

राजनीति शास्त्र के अनेक शब्दो की भाँति, समष्टिवाद या राज्य समाजवाद की परिभाषा देना भी बहुत कठिन है। इतना अवश्य है कि यह समाजवाद का ऐसा स्वरूप है जिसका उदय उन्नीसवी शताब्दी के अत्यन्तिक सीमा के व्यक्तिवाद (extreme form of individualism) की प्रतिक्रिया के रूप मे हुआ।

समष्टिवाद शब्द का प्रयोग सर्वप्रथम बाकुनिन (Bakunin) ने अपने सिद्धान्तो और कार्ल मार्क्स के सिद्धान्तो मे भिन्नता करने के लिए किया था। सब समष्टिवादी विचारो मे व्यक्ति तथा उसके अधिकारो के स्थान पर समाज तथा उसके अधिकारो पर बल दिया जाता है। वर्तमान स्वरूप म, समष्टिवाद का उद्देश्य पूँजीवाद, निजी उद्योग और स्वतन्त्र प्रतियोगिता का अन्त कर सामूहिक पूँजी द्वारा, समाज के नियन्त्रण के आधीन, उद्योगो का प्रबन्ध करना है ताकि उद्योगो से होने वाले लाभ से सार्वजनिक सामाजिक सेवाओ को कार्यान्वित किया जा सके, सार्वजनिक जीवन के स्तर को ऊँचा उठाया जा सके तथा वर्तमान समाज मे विद्यमान गम्भीर आर्थिक विषमताओ को दूर किया जा सके।

समष्टिवादी विचारो का उन्नीसवी शताब्दी मे रचित रचनाओ म ढूढा जा सकता है परन्तु मुख्य रूप से यह बीसवी शताब्दी का दर्शन है। इसका विकास भिन्न भिन्न देशो मे भिन्न भिन्न विचारको तथा दार्शनिको—उदारवादी, उदार प्रजातन्त्रवादी, उग्रवादी, पापुलरिस्ट (popularist), प्रगतिशील—ने किया। इगलण्ड मे, समष्टिवादी नीतियो या सिद्धान्तो का विकास फेबियन समाजवादी दार्शनिको ने विशेष कर बर्नार्ड शा (Bernard Shaw), एच० जी० वेल्स (H G Wells), सिडनी वेब (Sidney Webb), बिट्रीश वेब (Betrice Webb), ग्राहम वालास (Graham Wallas) तथा जी० डी० एच० कोल (G D H Cole) ने

किया। जमनी मे एडुअड बनस्टीन (Eduard Bernstein), राइ वग्स और फर्डीनार्ड लैसले ने किया, फ्रास मे जीन जारेस (Jean Jaures) न किया, स्वडन म काल ब्रान्टिग (Karl Branting) ने किया और बेल्जियम मे एडवड अन्सल (Edouard Anseele) ने समष्टिवादी विचारो का विस्तार किया। वतमान म्रग्रत म तथा विश्व के अधिकाश देशो मे (साम्यवादी देशो जैसे रूस तथा चीन को छो कर) जिन नीतियो का अनुसरण किया जा रहा है वे अधिकाशत समष्टिवाद के सिद्धान्तो पर आधारित ह।

समष्टिवादी लेखको की विशेषता यह है कि उनका कोई सुसगठित आन्दोलन नही। वे किसी सिद्धान्तकार को अपना आचाय नही मानते और न ही वे किसी सिद्धान्त से सवदा चिपके रहते ह। उनकी विचारधाराओ की पुष्टि करने के लिए कोई एक ग्रथ नही। जिन नीतियो या सिद्धान्तो का समष्टिवादी समयन करते हैं उन्ह सामाजिक न्याय, उदारवाद, आर्थिक प्रजातन्त्र, औद्योगिक प्रजातन्त्र इत्यादि विषयो पर रचित रचनाओ म ढूँढा जा सकता है। फिर भी इन सब रचनाओं में एक सामान्य विचार विद्यमान है जिसे समष्टिवाद कहा जा सकता है।

समष्टिवाद सवसाधारण की स्वतन्त्रता और कल्याण पर आधारित वाद है जो 'लाभो' को सामाजिक आधार प्रदान करना चाहता है, श्रमिको के राष्ट्रीय स्तर पर न्यूनतम वतन निर्धारित करना चाहता है, सामाजिक विषमताओ और असमनताओ को दूर करना चाहता है, सबको जीवन की अनिवाय सुविधायें प्रदान करना चाहता है, स्वतन्त्र प्रतियोगिता का समाप्त करना चाहता है, उद्योग, भूमि और खनिज पदार्थों पर राज्य का स्वामित्व स्थापित कर उत्पादन और वितरण की व्यवस्था स्थापित करना चाहता है। इसकी सबस बडी विशेषता यह है कि इन उद्देश्यो को वह शान्तिमय उपायो से बिना किसी रक्तपात के और श्रमिक रूप से जनमत के आधार पर प्राप्त करना चाहता है। सक्षेप म, यह ऐसा वधानिक आन्दोलन या प्रजातान्त्रिक समाजवाद है जो वग विहीन समाज की स्थापना सवमत मताधिकार के आधार पर स्थापित करना चाहता है।

समष्टिवाद न तो साम्यवादियो के सवहारा राज्य को स्वीकार करता है और न ही व्यक्तिवाद के राज्य को। वह तो समाज के समस्त सदस्यो को चाहे सवहारा वग—श्रमिक, कृषक—के हो या पूँजीपति वग—जमींदार, उद्योगपति—के हो या मध्यम वग—वेतन प्राप्त कर्त्ता लोग—के हो सबको आर्थिक दृष्टि से एक दूसर पर अन्योन्याश्रित मानता है तथा उनमे उचित सामजस्य स्थापित करना चाहता है। जहाँ वह मालिको की मितव्ययता तथा कुशलता को बढावा देना चाहता है वहाँ वह उन लोगो—हाथ या मस्तिष्क से काम करने वालो—के प्रयत्नो को पुरस्कृत करना चाहता है जिनके कारण उत्पादन होता है। साथ ही, समष्टि उपभोक्ताओ के हितो की भी सुरक्षा करना चाहता है जिनकी माँग पर उत्पा

निर्धारित होता है। इस तरह समष्टिवाद समाज के सभी लोगों के कल्याण पर आधारित वाद है।

समष्टिवाद की परिभाषा

यद्यपि समष्टिवाद की पूर्ण परिभाषा देना कठिन है फिर भी लेखकों ने निम्न परिभाषायें देने का प्रयास किया है जो उसकी नीतियों के अनुरूप प्रतीत होती हैं —

1 ब्रिटानिका विश्व कोश में जो समाजवाद की परिभाषा दी गई है वह समष्टिवाद पर भी लागू होती है। उसके अनुसार "यह वह नीति या सिद्धान्त है जो केन्द्रीय प्रजातान्त्रिक सत्ता द्वारा आजकल की अपेक्षा श्रेष्ठतम वितरण तथा उसके अधीन श्रेष्ठतम उत्पादन की व्यवस्था करना चाहता है।'[1]

2 प्रो० एली के शब्दों में एक समष्टिवादी व्यक्ति वह है "जो राज्य में संगठित समाज को इस रूप में देखता है कि वह मानवता के महत्त्व तथा आर्थिक वस्तुओं के उचित वितरण के सम्बन्ध में सहायता कर सके।'[2]

3 फ्रांसीसी लेखक मिलरैंड ने जो समाजवाद की परिभाषा दी है वह समष्टिवाद की विचारधारा को व्यक्त करती है। उसके अनुसार 'पूंजीवादी सम्पत्ति के स्थान पर सामाजिक सम्पत्ति को आवश्यक एवं प्रगतिशील ढंग से कायम करना समाजवाद है।"

4 एक लेखक के अनुसार प्रजातान्त्रिक समाजवाद "भूमि तथा उद्योग पर व्यक्तिगत स्वामित्व को नष्ट करके उन्हें राज्य के अधिकार में लाना चाहता है ताकि राज्य लोक कल्याण तथा प्रगति का प्रधान यन्त्र बन सके।'[3]

5 समाज शास्त्र के विश्व कोश के अनुसार "समष्टिवाद व्यक्तिवाद के

---

1 Collectivism is "that policy or theory which aims at securing by the action of the central democratic authority a better distribution, and in due subordination thereto a better production of wealth than now prevails'—Encyclopaedia Britannica Quoted in C E M Joad s *Introduction to Modern Political Theory*, (1953) p 54

2 A Collectivist is a person "who looks to society organized in the state for aid in bringing about a more perfect distribution of economic goods and an elevation of humanity'—Prof Ely Quoted in Garner, J W *Political Science and Government*, p 435

3 Democratic Socialism "seeks to take away ownership of land and industry from private hands and vest them in the state as the chief agency of social welfare progress"

विरोधी सिद्धान्तों का सामान्य नाम है। सामाजिक प्रगति की प्रगति, आर्थिक सुधार का कार्यक्रम, सार्वजनिक कल्याण के सिद्धान्त और एक आदर्श व्यवस्था के लिए समष्टिवाद एक सुझाव है। प्राविधिक तौर पर इस शब्द का प्रयोग समाजवाद, साम्यवाद, श्रम संघवाद और बोलशेविकवाद जैसे अधिकाधिक नियन्त्रण की व्यापक योजनाओं के लिए सामान्य लेबल है।"[1]

समष्टिवाद के उद्देश्य

समष्टिवाद की धारणा है कि स्वतन्त्र प्रतिद्वन्द्विता की प्रणाली से समाज के कुछ लोगों को तो लाभ हो सकता है अर्थात् उन्हें अपने दुःखों से मुक्ति मिल सकती है परन्तु समाज के साधारण सदस्यों को उससे कोई लाभ नहीं हो सकता, बल्कि सर्व साधारण के दुःखों में वृद्धि होती है। इसलिए समष्टिवादी समाज का इस तरह पुनः संगठित करना चाहते हैं कि सबके दुःख दूर हों तथा सब सुख का अनुभव करें या कम से कम जीवन की अनिवार्य आवश्यकतायें तो सब की पूरी हों। इस उद्देश्य की प्राप्ति हेतु समष्टिवादी कोई एक उपाय नहीं बताते और न ही वे वर्तमान आर्थिक व्यवस्था को क्रान्तिकारी उपायों द्वारा पुनर्गठित करना चाहते हैं। वे तो आवश्यकता के अनुसार क्रमिक परिवर्तन चाहते हैं। इसके लिए वे निम्न बातों पर बल देते हैं—

1. वे उत्पादन के साधनों पर व्यक्तिगत स्वामित्व को समाप्त करना चाहते हैं।

2. वे मुख्य उद्योगों और सामाजिक सेवाओं को सार्वजनिक स्वामित्व और नियन्त्रण में रखना चाहते हैं।

3. वे उत्पादन को 'लाभ' की दृष्टि से निर्धारित नहीं करना चाहते बल्कि सामान्य आवश्यकताओं के आधार पर निर्धारित करना चाहते हैं।

4. वे व्यक्तिगत लाभ के स्थान पर सामाजिक सेवा की भावनाओं पर बल देते हैं।

5. वे स्वतन्त्र प्रतियोगिता के पक्ष में नहीं, उनकी धारणा है कि निर्धन, निर्बल तथा असहाय मजदूर या कृषक सुदृढ़, शक्तिशाली एवं आर्थिक दृष्टि से सम्पन्न पूँजीपतियों से प्रतियोगिता नहीं कर सकते।

6. वे राजनीतिक प्रजातन्त्र के साथ आर्थिक प्रजातन्त्र में भी विश्वास करते हैं, उनकी धारणा है कि आर्थिक प्रजातन्त्र के अभाव में राजनीतिक प्रजातन्त्र केवल धोखा है।

7. वे राष्ट्रीय स्तर पर वेतनों या मजदूरों की न्यूनतम दरें निर्धारित करना चाहते हैं।

8. वे उत्पादन के मुख्य साधनों को केन्द्रीय प्रजातान्त्रिक सत्ता के नियन्त्रण

---

1 *Encyclopaedia of Social Sciences*, Vol III & IV (1957) p 1.'

मे रखना चाहते हैं, व न तो साम्यवादियो की तरह सर्वहारा के अधिनायकवाद मे विश्वास करते हैं और न ही व्यक्तिवादियो की तरह पूँजीपतियो की सत्ता मे, वे तो उत्पादन के साधनो का राष्ट्रीयकरण करके उन्हे प्रजातान्त्रिक नियन्त्रण मे रखना चाहते हैं।

9 उपर्युक्त उद्देश्यो को व शान्तिमय, रक्तहीन और क्रमिक उपायो द्वारा तथा जनमत के आधार पर प्राप्त करना चाहते हैं।

समष्टिवादियो की धारणा है कि समाज मे सभी मूल्यो को समाज के सभी सदस्य मिलकर उत्पन्न करते हैं, इसलिए उन पर सम्पूर्ण समाज का अधिकार होना चाहिए। इस उद्देश्य से वे उत्पादन के सभी साधनो का राष्ट्रीयकरण कर उससे उत्पन्न आय को समाज के कल्याण मे लगा देना चाहते हैं। व्यक्तिवादियो के विपरीत व उत्पादन के लाभ को पूजीपतियो के हाथो मे सग्रहीत होने देना नही चाहते। वे धन के श्रेष्ठ उत्पादन और श्रेष्ठ वितरण के पक्ष म हैं। वे उत्पादन के लाभ को सार्वजनिक सामाजिक सेवाओ म खर्च कर देना चाहते हैं।

समष्टिवादी उत्पादन और वितरण की व्यवस्था का समाज के किसी एक वर्ग के हाथो मे केन्द्रित नही करना चाहते जैसाकि साम्यवादी, श्रेणी समाजवादी या श्रम सघवादी करना चाहते हैं। वे उत्पादन और वितरण की व्यवस्था को राज्य के हाथो मे केन्द्रित करना चाहते है।

समष्टिवादी उद्योगो पर व्यक्तिगत स्वामित्व को समाप्त कर देना चाहते हैं और उन पर राज्य के स्वामित्व को स्थापित करना चाहते है। वे उत्पादन 'लाभ' के लिए नही 'आवश्यकता' के लिए करना चाहते है। व्यय की प्रतियोगिता का वे समाप्त करना चाहते हैं।

समष्टिवादियो का विश्वास है कि उद्योग धधो पर राज्य का स्वामित्व स्थापित होने से जन-साधारण को वे सुविधायें—शिक्षा, स्वच्छता, चिकित्सा सहायता, अजायब घरो, पुस्तकालयो, क्रीडागणो, कला भवनो सडको, पुलो आदि का निर्माण—भी प्राप्त हो सकेंगी जिन्हे पूँजीपति उपलब्ध नही करा सकते क्योकि पूजीपतियो का उनसे लाभ की आशा नही होती। इन सुविधाओ को केवल राज्य ही प्रदान कर सकता है।

यहाँ यह लिख देना उपयोगी होगा कि समष्टिवादियो की उद्योगो के राष्ट्रीयकरण के बारे मे नीति उपयोगिता (eclecticism) और 'अनुभव (experience) पर आधारित है। वे न तो पूर्णतया सार्वजनिक स्वामित्व (public ownership) के भक्त है और न ही व्यक्तिगत स्वामित्व (private ownership) के। वे तो प्रत्येक विषय पर निर्णय अनुभव के आधार पर और सामान्य कल्याण की दृष्टि से लेना चाहते हैं। जिन उद्योगो का समष्टिवादी राष्ट्रीयकरण चाहते हैं और जिनका अबाधित सचालन (uninterrupted operation) सामान्य कल्याण के लिए अनिवार्य है, वे साधारणतया निम्न श्रेणियो म आते हैं —

1 वे उद्योग जिनका सचालन बडे पैमाने पर होना चाहिए और जिनमे एकाधिकार युक्त नियन्त्रण की ओर स्वाभाविक प्रवृत्ति होती है।

2 वे उद्योग जिनके सचालन म अत्यधिक मात्रा मे बर्बादी होती है।

3 वे उद्योग जिनमे उत्पादन की प्रक्रिया का इतना अधिक विकास हो चुका है कि अब उसकी उन्नति मे परीक्षण तथा आविष्कार की आवश्यकता नही रही।

4 वे उद्योग—रेलवे, विद्युत शक्ति गैस, कोयला तथा पानी के उद्योग—जिनका अबाधित सचालन अन्य आवश्यक उद्योगो के सफल सचालन के लिए या जनता की सारभूत आवश्यकताओ की पूर्ति के लिए अनिवार्य है।

समष्टिवादी श्रमिको के लिए राष्ट्रीय स्तर पर निम्नतर मजदूरी निर्धारित करना चाहते है ताकि मजदूर तथा उसके परिवार को जीवन यापन के लिए पर्याप्त वेतन या मजदूरी मिल सके। वे मजदूरी के घण्टे निर्धारित कर देना चाहते हैं ताकि कोई किसी का शोषण न कर सके। मजदूरो के जीवन को अच्छा बनाने के लिए वे उन सब सुविधाओ की व्यवस्था करते हैं जैसे चिकित्सा सहायता, वार्षिक छुट्टी, अनिवार्य बीमा, इत्यादि। वर्तमान समय मे प्रत्येक सरकार श्रम कानूनो (labour legislation) द्वारा मजदूरो की दशा सुधारने के लिए कटिबद्ध है। इतना ही नही बेरोजगारी को समाप्त करने के लिए रोजगार पैदा किये जाते हैं अन्यथा 'बेरोजगार बीमा' या 'बेरोजगारी वेतन' की व्यवस्था की जाती है।

कीमतो मे उग्र उतार चढाव को कम करने के लिए समष्टिवादी राज्य द्वारा राष्ट्र की मुद्रा और साख की व्यवस्था पर नियन्त्रण लगाने के पक्ष म हैं। आज प्रत्येक सरकार—प्रजातन्त्रवादी, उदारवादी, पूजीवादी, समाजवादी—मूल्यो को निर्धारित करने के लिए बैंको की सुरक्षित निधि (Reserves) की दरें निश्चित करती है, मुद्रा प्रचलन म नोटो के प्रसार पर नियन्त्रण रखती है ब्याज की दरें, भाडे की दरें तथा वस्तुओ की कीमते निर्धारित करती है। आज की सरकार 'रेलवे के भाडे को उसी प्रकार निर्धारित करती है जिस प्रकार प्राचीन काल म वह गाडियो के भाडे निश्चित किया करती थी।"[1] राज्य के पास भूमि का अधिकार eminent domain) तथा राज्य मार्गों के लिए विशेषाधिकार भी है। सार्वजनिक उपयोगिता के लिए राज्य व्यक्तिगत सम्पत्ति को मुआवजे सहित या बिना मुआवजे के कानून द्वारा प्राप्त कर सकती है।

समष्टिवादी आमदनियो या वेतनो की गम्भीर विषमताओ को दूर करने के पक्ष म है। व आर्थिक भिन्नताओ को कम करने के लिए आय कर की अत्यन्त प्रगतिशील प्रणाली (highly progressive system of income tax) का अनुसरण चाहते हैं। व उपार्जित आय पर (earned income)—वेतन, मजदूरी, इत्यादि—आय कर की दरें कम रखने के पक्ष म हैं परन्तु अनुपार्जित आय (unearned income)

1 Coker, Francis W *Ibid* p 551

पर—ब्याज, भाड़ा, लाभ—आय कर की दरें ऊँची रखने के पक्ष में हैं। इसी प्रकार वे उस भूमि पर जिसमें सुधार हुआ है उस पर कर की दरें कम रखने के पक्ष में हैं तथा जिनमें सुधार नहीं हुआ उसमें कर की दरें ऊँची रखने के पक्ष में हैं। संक्षेप में, समष्टिवादी अत्यधिक आय पर (excessive income) भारी कर के पक्ष में हैं। उनकी यह धारणा है कि उत्तरोत्तर बढ़ते हुए आयकर की प्रणाली उत्पादन में प्रेरणा के तत्त्वों को नष्ट नहीं करती और साथ ही गम्भीर आर्थिक विषमतायें भी दूर हो जाती हैं।

भूमि के विषय में भी समष्टिवादी क्रमिक और आवश्यकतानुसार परिवर्तन चाहते हैं। उदाहरणतः जहां भूमि की कमी है या जहां भूमि मुट्ठी भर लोगों की है वहां समष्टिवादी राज्य के प्रत्यक्ष हस्तक्षेप का समर्थन करते हैं अर्थात वहां भूमि पर राज्य के स्वामित्व का समर्थन करते हैं ताकि ग्रामीण और नगर के किरायेदारों और काश्तकारों अथवा खेतों पर काम करने वालों या साधारण उपभोक्ताओं के हितों की सुरक्षा की जा सके। वर्तमान सरकारों ने अनेक नियमों द्वारा किराये की दरें निर्धारित की हैं, भूमि सम्बन्धी कानूनों का निर्माण किया है, ऐसे बोर्डों की स्थापना की है जो कृषक मजदूरों के न्यूनतम वेतन निर्धारित करता है, गृह निर्माण बोर्डों की स्थापना की गई है जो नगरों में मकानों का निर्माण करता है और काश्तकारों को उनकी उपज का पूरा लाभ देने के लिए उपज की कीमतों को निर्धारित किया है। विश्व के अनेक देशों के संविधानों[1] में यह व्यवस्था की गई है कि 'आर्थिक जीवन का संगठन सामाजिक न्याय के सिद्धान्तों के अनुकूल होना चाहिए।"

समष्टिवादी रचनात्मक नियोजन में विश्वास करते हैं। उनकी धारणा है कि यदि अति उत्पादन, मूल्यों की अस्थिरता, बेरोजगारी तथा इसी प्रकार आर्थिक समस्याओं का समाधान करना है तो रचनात्मक नियोजन अनिवार्य है। और यह नियोजन राज्य द्वारा ही सम्भव है। वर्तमान समय में सभी वर्ग—मजदूर संगठन, वेतन भोगी, वाणिज्य मण्डल, व्यावसायिक संस्थायें उद्योगपति एवं व्यापारी तथा कृषक—राज्य की ओर सहायता और मार्ग दर्शन के लिए ताकते रहते हैं।

संक्षेप में, समष्टिवादी व्यवस्था में सबको विकास के अवसर प्रदान किये जायेंगे, उचित साधनों को उपलब्ध किया जायगा ताकि समाज के योग्य एवं गुणवान व्यक्ति अपने आपको समाज के व्यय के घटक न समझें, उत्पादन और वितरण की व्यवस्था को श्रेष्ठतम बनाया जायगा, समाज और व्यक्ति दोनों को अभाव से सुरक्षित रखा जायगा, शिक्षा के विस्तार द्वारा, निधनों की सहायता द्वारा तथा अन्य सुविधाओं द्वारा समाज को उन्नतिशील बनाने का प्रयास किया जायगा।

---

1 See Constitution of Germany (1919) Arts 151 153 157 Constitution of Estonia Art 25 and of Finland Art 6 Constitution of Yugoslavia Arts 26 37 Preamble to Constitution of India and part IV of the Indian Constitution

समष्टिवादी व्यवस्था को स्थापित करने के कारण
या
समष्टिवादी व्यवस्था क्यों ?

समष्टिवादी अपने उपर्युक्त उद्देश्यों को न्यायोचित सिद्ध करने के लिए निम्न कारण प्रस्तुत करते हैं —

1 वर्तमान आर्थिक प्रणाली (पूँजीवादी या व्यक्तिवादी) समाज के सम्बन्धों मे आर्थिक विषमताओं को उत्पन्न करती है।

2 पूँजीवादी आर्थिक अवस्था से अति उत्पादन, कम उत्पादन, अनावश्यक उत्पादन की समस्यायें उत्पन्न होती हैं जिससे आर्थिक संकट की सम्भावनायें बनी रहती हैं।

3 पूँजीवादी आर्थिक अवस्था अन्यायपूर्ण है। इसमे मजदूरों को उचित मजदूरी नही दी जाती। पूँजीपति मजदूरों का शोषण कर अपने लाभों को बढ़ाना चाहते हैं।

4 वर्तमान राजनीतिक ढाँचे के दोषों को, जो पूँजीवादी अर्थ व्यवस्था पर आधारित है, समष्टिवादी व्यवस्था मे ही दूर किया जा सकता है। जब तक साधारण जनता को आर्थिक स्वतन्त्रता प्राप्त नही होगी तब तक राजनीतिक स्वतन्त्रता वास्तविक नही हो सकती। आर्थिक स्वतन्त्रता के अभाव मे राजनीतिक स्वतन्त्रता व्यर्थ है, एक धोखा है।

5 समष्टिवादी अवस्था ही ऐसी सामाजिक अवस्था है जिसमे सबके हितों की सुरक्षा की सम्भावना है। इसमे न तो केवल पूँजीपतियों के, न केवल मजदूरों के, न केवल उपभोक्ताओं के बल्कि सबके हितों की रक्षा की जाती है।

6 समाज मे विद्यमान दुःख, दरिद्रता, भूख, शोषण जैसी विषमतायें तभी दूर हो सकती है जब सम्पत्ति पर, विशेषकर उद्योगो पर, व्यक्तिगत स्वामित्व समाप्त कर दिया जाय और उस पर राज्य के स्वामित्व को स्थापित कर दिया जाय।

7 समष्टिवादियों के सार्वजनिक स्वामित्व से अभिप्राय साम्यवादियों के एक दलीय शासन से नही बल्कि उस प्रजातान्त्रिक सरकार से है जिसमे राष्ट्रीय महत्व के उद्योगो जैसे शस्त्र तथा गोला बारूद का निर्माण, रेलवे, नौवहन (Shipping), खनिज पदार्थ उद्योग, डाक तथा तार, संचार व्यवस्था, आदि तो केन्द्रीय प्रजातान्त्रिक सरकार के हाथों मे तथा स्थानीय महत्व के उद्योग जैसे विद्युत, पानी, गैस, मकान, चिकित्सा सहायता, स्थानीय परिवहन इत्यादि स्थानीय सरकारों के हाथों मे केन्द्रित होंगे।

8 समष्टिवादियों की धारणा है कि भूमि, खनिज पदार्थ तथा उत्पादन के ऐसे ही साधन जो प्रकृति की देन हैं तथा सीमित हैं किसी एक वर्ग या कुछ व्यक्तियों के हाथों मे केन्द्रित नही होने चाहिए। इन पर तो सम्पूर्ण समाज का अधिकार होना

चाहिए और सबके हित के लिए उनका उपयोग होना चाहिए ताकि उनका अपव्यय न हो, सदुपयोग हो।

समष्टिवाद के साधन

समष्टिवाद अपने उद्देश्यो को प्राप्त करने के लिए शान्तिमय विकासवादी साधनो का प्रयोग करता है। उसका विश्वास है कि प्रजातान्त्रिक साधनो द्वारा समाजवाद की स्थापना हो सकती है। जिन साधनो को समष्टिवादी सत्ता प्राप्त करने के लिए अपनाते हैं उनमे मुख्य निम्न हैं—

1 परिवतन के लिए सवधानिक साधनो का समथन करते हैं

समष्टिवादी वे समाजवादी हैं जो वर्तमान पूँजीवादी अथव्यवस्था को सामाजिक अथ व्यवस्था म परिवर्तित करने के लिए सवधानिक, शान्तिमय तथा क्रमिक विकास के साधनो का प्रयोग करते है। वे साम्यवादियो की भाति क्रान्ति, हिंसा, उपद्रव या पशुबल मे विश्वास नही करते। उनकी धारणा है कि समाज म परिवर्तन क्रमिक और शान्तिमय साधनो से ही सम्भव है। प्रो० जाड के शब्दो मे, "समष्टिवादी समाजवादी इस बात पर जोर देते हैं कि समाज मे क्रमिक परिवतन ही हो सकता है और हर परिवतन अपने से पहले वाले सामाजिक ढाँचे पर निभर करता है।"[1]

2 परिवतन के लिए राज्य का प्रयोग करते हैं

समष्टिवादी वे समाजवादी है जो राज्य विरोधी नही बल्कि प्रत्येक प्रस्तावित सामाजिक या आर्थिक परिवतन को राज्य के यन्त्र द्वारा लाना चाहते है। वे साम्यवादियो की तरह राज्य का अन्तत लोप नही चाहते, वे राज्य को व्यक्तिवादियो की तरह केवल पुलिस काय ही नही सौपना चाहते, वे अराजकतावादियो की तरह राज्य को अनावश्यक बुराई भी नही मानते। बल्कि प्रत्यक क्षेत्र मे परिवतन के [लिए—शिक्षा, सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक नतिक, धार्मिक, इत्यादि—समष्टिवादी राज्य को सर्वोत्तम साधना मानते हैं। वे राज्य को अपदस्थ नही करना चाहते और न ही उसके कार्यों को सीमित करना चाहते है बल्कि उसके काय क्षेत्र का विस्तार करना चाहते हैं। वे राज्य को सामान्य कल्याण का मुख्य यन्त्र मानते है।

3 परिवतन के लिए समष्टिवादी विचारो के प्रसार मे विश्वास करते हैं

समष्टिवादी वे समाजवादी हैं जो वतमान युग को लोक कल्याण का युग मानते हैं। वे राज्य को नकारात्मक सस्था नही मानते बल्कि धनात्मक सस्था मानते हैं। जो प्रवृत्तियाँ समाज मे पहले से विद्यमान है तथा जो वतमान अवस्थाओ और सामाजिक आवश्यकताओ से असगत है तथा जिनमे परिवतन समय की माँग है उन्हे

1 Collectivist Socialists have insisted that society is capable of only gradual change, and that each change must be conditioned by the nature of the social structure that preceded it —Joad, *Ibid*, p 55

वे जागरूक एवं विवेकपूर्ण प्रजातान्त्रिक प्रयत्नों द्वारा बदलना चाहते हैं। इसके लिए वे शिक्षा और प्रचार द्वारा समष्टिवादी विचारों का विकास करना चाहते हैं। वे जनमत को समष्टिवादी विचारधारा के अनुकूल बनाना चाहते हैं। वे समष्टिवादी अवस्था में जो सबके कल्याण की भावनायें विद्यमान हैं उन पर बल देते हैं, वे इन विचारों का प्रचार कर जनमत का निर्माण करते हैं। उत्पादन और वितरण पर राज्य के नियन्त्रण से क्या लाभ है उन्हें वे जन साधारण के समक्ष प्रस्तुत करते हैं और जनमत तैयार करके ही इन पर सार्वजनिक स्वामित्व स्थापित करना चाहते हैं।

4 दल संगठित करना चाहते हैं

समष्टिवादी वे समाजवादी हैं जो ऐसे विचारों में आस्था रखने वालों का एक दल संगठित करना चाहते हैं। दल के माध्यम से वे समष्टिवादी विचारों का विस्तार करते हैं, संसदात्मक चुनावों में समष्टिवादी नीतियों के आधार पर चुनाव लड़ते हैं, संसद में बहुमत प्राप्त कर सरकार का निर्माण करते हैं तथा अपनी नीतियों को कार्यान्वित करते हैं। सन् 1945 के चुनावों में ब्रिटिश मजदूर दल ने संवैधानिक साधनों द्वारा पहली बार संसद में पूर्ण बहुमत (640 सीटों में 394 सीटें मजदूर दल को प्राप्त हुई) प्राप्त किया।

उपर्युक्त वर्णन से स्पष्ट है कि समष्टिवादी शुद्ध संसदात्मक साधनों का प्रयोग करते हुए, जनमत के बल पर क्रमिक विकास द्वारा उत्पादन और वितरण पर राज्य का नियन्त्रण स्थापित करना चाहते हैं।

राज्य के प्रति समष्टिवादियों का दृष्टिकोण

समष्टिवादी राज्य विरोधी नहीं। वे केवल राज्य के वर्तमान पूँजीवादी स्वरूप को बदलना चाहते हैं। वे कुछ लोगों के हितों के स्थान पर सामान्य हितों की सुरक्षा करना चाहते हैं। मार्क्सवादियों की तरह वे राज्य को एक वर्ग संस्था नहीं समझते बल्कि सामान्य हित के लिए वे उसे आवश्यक संस्था मानते हैं। व्यक्तिवादियों की भाँति वे राज्य को आवश्यक बुराई नहीं मानते, उनका यह विश्वास नहीं कि राज्य के कानून व्यक्ति की स्वतन्त्रता का हनन करते हैं। साम्यवादियों की तरह वे राज्य का लोप नहीं चाहते। अराजकतावादियों की तरह वे राज्य को अनावश्यक बुराई नहीं मानते। वे राज्य को धनात्मक अच्छाई (positive good) मानते हैं। वे अरस्तू के इस कथन से सहमत हैं कि 'राज्य का उदय जीवन की आवश्यकताओं के लिए हुआ और उसका अस्तित्व अच्छे जीवन के लिए विद्यमान है।' इस बात से समष्टिवादी राज्य को स्थायी रखना चाहते हैं।

समष्टिवादियों की जो प्रस्तावित परिवर्तन की योजनायें हैं उन्हें वे राज्य के माध्यम से ही क्रमिक रूप में कार्यान्वित करना चाहते हैं। राज्य के माध्यम से ही वे पूँजीवाद, व्यक्तिगत सम्पत्ति और स्वतन्त्र प्रतियोगिता से उत्पन्न होने वाले

का निराकरण चाहते हैं । राज्य ही शोषण, अधपना और बेरोजगारी को समाप्त कर सकता है । ९ राज्य के कार्यों का विस्तार चाहते हैं । व्यक्तिवादियो के इस कथन से वे सहमत नहीं कि वह सरकार अच्छी है जो कम से कम शासन करती है या प्रत्येक कानून का निर्माण व्यक्ति की स्वतन्त्रता का हनन करता है । समष्टिवादियो का विश्वास है कि राज्य द्वारा ही लोगो के आर्थिक, बौद्धिक और नैतिक हितो की सुरक्षा हो सकती है । राज्य के माध्यम से ही न्याय, आराम, निष्पक्षता और निष्कपटता की भावनाए पैदा की जा सकती हैं । लिडसे के शब्दो म, "तटस्थ सत्ता के रूप म राज्य की नितान्त आवश्यकता है ।'

व्यक्तिवादी राज्य की तुलना एक पुलिस राज्य या सत्तावादी राज्य से की जा सकती है जिसका कार्य क्षेत्र आन्तरिक व्यवस्था और बाह्य सुरक्षा तक सीमित होता है । समष्टिवादी राज्य की तुलना एक कल्याणकारी राज्य से की जा सकती है जो सामान्य लाभ या सामान्य विकास के लिए किसी भी क्षेत्र म हस्तक्षेप करने के लिए अपने आपको स्वतन्त्र समझता है । इस तरह समष्टिवादी प्रो राज्यवादी (pro state) है ।

समष्टिवाद के गुण

समष्टिवादी अवस्था मे कई महत्त्वपूर्ण गुण पाये जाते हैं जिनम से मुख्य निम्न है —

1 यह सम्पूर्ण समाज के कल्याण पर आधारित अवस्था है । इसम किसी वर्ग विशेष को कोई विशेष महत्त्व नही दिया जाता सभी को राज्य की दृष्टि म समान समझा जाता है ।

2 इस अवस्था म राज्य का मुख्य उद्देश्य सार्वजनिक सेवा है, लाभ नहीं । उद्योगो म उत्पादन आवश्यकता के लिए होता है लाभ के लिए नही ।

3 इस अवस्था म स्वतन्त्र प्रतियोगिता स उत्पन्न होने वाले दोष समाप्त हो जाते हैं क्योकि उत्पादन और वितरण पर राज्य का स्वामित्व होता है ।

4 इस अवस्था मे प्राकृतिक साधनो का प्रयोग सार्वजनिक कल्याण के लिए होता है शोषण या अन्याय के लिए नही ।

5 इस अवस्था म समाज के भिन्न भिन्न वर्गों म सहयोग और सामन्जस्य की भावना पैदा होती है जिसस समाज म एकता की भावना उत्पन्न होती है और समाज सुदृढ बनता है । मार्क्सवादी साम्यवाद के विपरीत समष्टिवाद सामान्य चेतना और परमार्थ की भावनाए पैदा करता है ।

6 इस अवस्था म उद्योगो का राष्ट्रीयकरण किया जाता है । इनसे उत्पन्न होने वाले लाभ का जन हित के कार्यों म व्यय किया जाता है ।

7 इस अवस्था मे लोक कल्याणकारी राज्य की स्थापना की सम्भावना है,

इस अवस्था में ही लोगो का जीवन स्तर ऊँचा उठ सकता है तथा उनकी अनिवार आवश्यकतायें पूरी हो सकती हैं व अन्य मानवीय सुविधायें उपलब्ध हो सकती हैं।

8 इस अवस्था मे ही "समाजवादी व्यवस्था और प्रजातन्त्र दोनो का समावेश है।"[1]

9 इस अवस्था मे केन्द्रीयकरण के साथ विकेन्द्रीयकरण पर भी बल दिया जाता है। जहा राष्ट्रीय महत्त्व के उद्योगो को केन्द्रीय प्रजातान्त्रिक प्रणाली के अधीन रखा जाता है वहा स्थानीय महत्त्व के विषयो को स्थानीय प्रजातान्त्रिक संस्थाओं के अधीन रखा जाता है।

10 इस अवस्था मे सामाजिक परिवतन क्रमिक होता है और परिवतन के लिए शान्तिमय, विकासवादी साधना का सहारा लिया जाता है।

समष्टिवादी अवस्था मे उपर्युक्त गुणो के कारण ही इसने प्रत्येक राज्य प्रणाली पर प्रभाव डाला है। सभी देशो तथा सामाजिक अवस्थाओ मे सामान्य कल्याण के लिए राज्य आर्थिक और औद्योगिक क्षेत्र मे हस्तक्षेप करने के लिए अपने आपको स्वतन्त्र समझता है। भारत मे भी जिन नीतियो का समथन किया जा रहा है तथा आर्थिक औद्योगिक क्षेत्र मे जिन नीतियो को लागू किया गया है वे समष्टिवादी सिद्धान्तों के अनुकूल हैं। जीवन बीमा तथा अन्य प्रकार की बीमा व्यवस्थाओ का राष्ट्रीयकरण, बैंको का राष्ट्रीयकरण, बडे बडे तथा राष्ट्रीय महत्त्व के उद्योगो पर राज्य का स्वामित्व अथवा नियन्त्रण, प्रगतिशील आय कर की दरें, इत्यादि ये व्यवस्थायें समष्टिवादी सिद्धान्तो के अनुकूल ही हैं।

समष्टिवाद के दोष

समष्टिवादी अवस्था मे जहाँ गुण हैं वहाँ दोष भी इसमे पाये जाते हैं। कि दाशनिको ने समष्टिवाद के दोषो की ओर ध्यान आकर्षित किया है उनमे मुख्य साम्यवादी व्यक्तिवादी तथा अन्य दाशनिक हैं। इस अवस्था के मुख्य दोष निम्न हैं —

1 शान्तिपूण या सवैधानिक साधनो से गम्भीर (उग्र) परिवतन सम्भव नहीं

समष्टिवाद पर यह आलोचना साम्यवादियो द्वारा की गई है। साम्यवादी कहते हैं कि शान्तिमय साधनो से तथा क्रमिक विकास से छोटे-छोटे परिवतन सम्भव हैं परन्तु गम्भीर या उग्र परिवतन सम्भव नही। सवधानिक तरीकों से व्यक्तिगत सम्पत्ति का पूण उन्मूलन करना कठिन है। क्योकि ससद मे पूजीपतियों का प्रभाव बना रहता है इसलिए ससद उग्र कानूनो का निर्माण नही कर सकती। समष्टिवादी समाजवाद के केवल वायदे किए जाते हैं। साम्यवादियो की धारणा है कि पूंजीवाद का पूण उन्मूलन क्रान्ति, हिंसा और दमन द्वारा ही सम्भव है।

---

1 Morris W *Challenge of Socialism*, p 269 70

2 समष्टिवाद सत्तावादी नौकरशाही राज्य की स्थापना करता है

उत्पादन और वितरण के सभी साधनो पर राज्य का स्वामित्व, प्रबन्ध और नियन्त्रण होने से उसका उन पर एकाधिकार स्थापित हो जाता है। एकाधिकार व्यवस्था के कई दुष्परिणाम निकलते हैं। एबनस्टीन ने बहुत सुन्दर लिखा है कि "जब राज्य स्वय ही एकाधिकारी है तो राज्य से नागरिको की रक्षा कौन करेगा ?"[1]

राज्य एकाधिकार से राज्य कर्मचारियो की सख्या मे अत्यधिक वृद्धि होती है। भ्रष्टता घूसखोरी छल, कपट, व्यक्तिगत ईर्षा द्वेष की भावनाओ का विकास होता है, कुनबापरस्ती (nepotism), लाल फीताशाही, पक्षपात का बोल-बाला रहता है। अनुभव यह सिद्ध करता है कि जिन उद्योगो या अन्य क्षेत्रो मे राज्य का स्वामित्व, प्रबन्ध या नियन्त्रण है वहा ये प्रवृत्तियाँ अत्यधिक रूप से विद्यमान है। यह कहा जा सकता है कि जहाँ समष्टिवादी अवस्था ने पूजीवादी दोषो—शोषण, लाभ, अन्याय—का अन्त कर दिया है वहाँ उसने नये दोषो को—भ्रष्टाचार कुनबापरस्ती, लाल फीता शाही इत्यादि—उत्पन्न कर दिया है।

3 समष्टिवाद काय की प्रेरणा के स्रोतो को नष्ट करता है

आलोचको का यह कहना है कि समष्टिवाद काय की प्रेरणा और उत्साह के स्रोतो को नष्ट कर देता है। काय की प्रेरणा का मुख्य स्रोत व्यक्तिगत लाभ होता है, मौलिकता और दक्षता अपनी श्रेष्ठता का पुरस्कार चाहती है। परन्तु जब व्यक्ति को सावजनिक स्वामित्व के अधीन अपनी श्रेष्ठता का पूरा लाभ प्राप्त नही होता, क्योकि सावजनिक स्वामित्व समता पर बल देता है तो वह अकुशल और उदासीन हो जाता है, उसम मौलिक शक्तियो का ह्रास होता है। दूसरी ओर, जब व्यक्ति व्यक्तिगत स्वामित्व के अधीन काय करता है तो उसे न केवल अपनी श्रेष्ठता का आर्थिक लाभ ही प्राप्त होता है बल्कि वह उसमे गौरव का अनुभव भी करता है। सावजनिक उद्योगो मे श्रेष्ठता गौरव और कुशलता का पूर्ण विकास होना कठिन है। इसके अतिरिक्त व्यक्तिगत स्वामित्व म जोखिम व्यक्ति का होने से व्यक्ति स्वाभाविक रूप से अपने काय म रुचि लेता है परन्तु सावजनिक स्वामित्व मे जोखिम राज्य का होने से व्यक्ति अपने कत्तव्य के प्रति उदासीन हो जाता है। यही कारण है कि जहाँ निजी उद्योगो म लाभ, विकास, कुशलता की सम्भावना अधिक रहती है वहाँ सावजनिक उद्योगो म घाटे, अकुशलता और पतन की सम्भावना अधिक रहती है। यह ठीक है कि राष्ट्रीयकरण म सामान्य हित को ध्यान म रखा जाता है परन्तु इससे जो सावजनिक पूँजी का अपव्यय होता है तथा इससे जो अकुशलता और उदासीनता की भावनाओ का विकास होता है उससे समाज की आर्थिक और मनोवैज्ञानिक दृष्टि से अत्यधिक हानि होती है।

---

1 "When the monopolist is the state itself, who will protect the citizen against the state" —Ebenstein, William *Today's Isms*, p 229

4 पूर्ण राष्ट्रीयकरण राज्य के कार्यों को जटिल बना देगा

राष्ट्रीयकरण के दोषों पर प्रकाश डालते हुए नामन थामस अपनी रचना "प्रजातान्त्रिक समाजवाद एक नवीन मूल्यांकन" में लिखता है कि "यदि राज्य पूर्ण आर्थिक क्षेत्र पर प्रत्यक्ष रूप से नियन्त्रण करने की कोशिश करेगा तो प्रजातान्त्रिक सिद्धान्त और व्यवहार में राज्य बहुत बड़ा तथा जटिल बन जायगा ।"[1] पूर्ण राष्ट्रीयकरण में 'राज्यवाद के दोष' आ जायेंगे। इसलिए वह राष्ट्रीयकरण के स्थान पर सामाजीकरण (Socialization) पर बल देता है।

5 समष्टिवाद व्यक्तिगत स्वतन्त्रता का हनन करता है

समष्टिवाद के अन्तर्गत सारी शक्ति राज्य के हाथों में केन्द्रित हो जाती है। राज्य सामान्य कल्याण के नाम पर व्यक्तिगत क्षेत्र में उचित-अनुचित हस्तक्षेप करने लगता है। विशेषकर व्यक्तिगत सम्पत्ति के क्षेत्र में राज्य का हस्तक्षेप बढ़ जाता है। व्यक्तिगत स्वतन्त्रता न केवल खतरे में पड़ जाती है बल्कि उसका लोप होना शुरू हो जाता है। स्वतन्त्रता राज्य की दया पर निर्भर बनकर रह जाती है। जब राज्य ही व्यक्ति के लिए सोचता है, विचार करता है, उसके कार्य को निर्धारित करता है तो व्यक्ति राज्य रूपी यन्त्र में एक पुर्जा मात्र बनकर रह जाता है जिसकी कोई स्वतन्त्र इच्छा नहीं रहती। समष्टिवाद एकरूपता और समता पर अत्यधिक बल देता है इससे व्यक्ति केवल जड़ मात्र बनकर रह जाता है, उसमें चेतना का विकास नहीं होता।

6 समष्टिवाद एकाधिकारवाद प्रवृत्ति को जन्म देता है

उत्पादन और वितरण पर राज्य का स्वामित्व स्थापित होने से एकाधिकार की प्रवृत्तियाँ जन्म लेने लग जाती हैं। यद्यपि समष्टिवादी सत्ता को प्राप्त करने के लिए शान्तिमय तथा विकासवादी साधनों का प्रयोग करते हैं परन्तु यह कहना बहुत कठिन है कि एक बार सत्ता में आने पर वे सत्ता का दुरुपयोग नहीं करेंगे विशेषकर उस परिस्थिति में जब राज्य का स्वामित्व उद्योगों पर पूर्ण होगा। जहाँ जनता अशिक्षित है, निर्धन है, जहाँ व्यक्तित्व की पूजा की भावनायें अधिक हैं वहाँ ये प्रवृत्तियाँ तो अत्यधिक रूप में विद्यमान रहेंगी।

7 समष्टिवाद समाज को स्थैतिक (Static) बनाता है

आलोचकों का कहना है कि समष्टिवाद एकरूपता पर बल देता है। इससे समाज के सांस्कृतिक और कलात्मक विकास में बाधा पड़ती है। कला संस्कृति और विज्ञान का विकास तो स्वतन्त्र वातावरण में ही सम्भव है अर्थात् जहाँ विचारों में

---

1 The state under the most democratic theory and practice w[ill] become too huge too cumbersome if it seeks to control direc[tly] all economic activity —Thomas Norman *Democratic Soci[alism]: A New Appraisal* (1953)

भिन्नता हो वहीं विकास सम्भव है जहां विचारों की एकरूपता पर बल दिया जाता है वहां समाज स्थैतिक बनता है गतिशील नहीं । यह भी हो सकता है कि एकरूपता पर अत्यधिक बल देने के उद्देश्य से मजदूरों के हितों की उपेक्षा की जाय ।

8 समष्टिवाद पूँजीवाद का नवीन स्वरूप है

आलोचकों का विचार है कि समष्टिवाद पूजीवाद का नवीन रूप है। इसमे वास्तविक सत्ता पूँजीपतियों के हाथों मे ही रहती है। पूजीपति ही चुनाव के अत्यधिक खर्च को सहन कर सकते है वे ही चुन जाने पर व्यवस्थापिकाओ के सदस्य बनते हैं, वे ही शासन सत्ता को प्राप्त कर नीतियो का निर्माण करते है। ऐसे पूजीवादी-समष्टिवादियो से आशा रखना कि वे सार्वजनिक हित के कार्यों को अपनी पूँजी की कीमत पर करेंगे केवल स्वप्नलोकीय विचार हो सकता है व्यावहारिक या वास्तविक नहीं ।

9 समष्टिवादी अवस्था मे ससद विरोधी खेमो (Camps) मे बँट जाती है

समष्टिवाद मे सत्ता के लिए सघर्ष अधिक तीव्र हो जाता है। जो दल सत्तारूढ हो जाता है वह अपनी मनमानी करने लग जाता है तथा अपने आपको लोगो का सेवक समझने के स्थान पर अपने आपको उनका स्वामी समझने लग जाता है। विरोधी दलो की आवाज का कोई महत्व नहीं रहता। इतना ही नहीं सत्तारूढ दल शासन शक्ति का प्रयोग अपने दल को सुदृढ बनाने के लिए करता है।

10 समष्टिवाद मे दल के अन्दर ही गुट और बॉसवाद (Bossism) पनपने लगता है

समष्टिवाद म दल के अन्दर ही गुटो और बासो (Bosses) का जन्म होना है। गुट दल से अपने स्वार्थ हितो की सिद्धि के लिए बल देते रहते हैं। यदि इन स्वार्थों की पूर्ति नहीं होती तो दल के सगठन के तितर बितर होने का भय विद्यमान रहता है। इसका परिणाम यह होता है कि दल को "समझौते" की नीति अपनानी पडती है। आलोचको ने समष्टिवादी दलो को ठीक ही 'अद्ध रास्ते वाला मकान' कहा है (half way house)। समष्टिवाद का उद्देश्य उपशमन देने (शान्ति या सात्वना देने) वाले साधनो का प्रयोग कर श्रमिको को शान्त करने तथा उनकी एकता को तोडने का प्रयास करना है।

11 समष्टिवाद अति-केन्द्रीयकरण को जन्म दे सकता है

समष्टिवाद म राष्ट्रीयकरण और केन्द्रीयकरण की प्रवृत्ति अति केन्द्रीयकरण को जन्म दे सकता है। यह प्रवृत्ति व्यक्ति और समाज दोनो के लिए हानिकारक हो सकती है।

समष्टिवाद का मूल्यांकन

उपर्युक्त आलोचनाओ के बावजूद भी यह स्वीकार करना पडेगा कि समष्टिवाद वर्तमान युग का वरदान है और बाकी सब अवस्थाओ से यह सामाजिक अवस्था

अच्छी है। यही कारण है कि साम्यवादी देशो को छोडकर बाकी लगभग सब देशों मे न्यूनाधिक मात्रा मे समष्टिवादी प्रणाली या नीतियो या सिद्धान्तो को अपनाया गया है। यही एक ऐसी सामाजिक अवस्था है जिसमे सबके कल्याण, सुख सुविधा का ध्यान रखा जाता है, यही अवस्था शोषण, अन्याय और सामाजिक तथा आर्थिक विषमताओ को दूर करने के लिए कटिबद्ध है, यही अवस्था समाज के निम्न वर्गों का उत्थान करना चाहती है, इसी के द्वारा क्रमिक तथा शान्तिमय उपायों द्वारा वर्ग विहीन समाज की स्थापना की सम्भावना है, यही एक ऐसी अवस्था है जो साम्यवाद के ज्वार भाटे (tide) को थाम सकती है। एबनस्टीन ने बहुत सुन्दर लिखा है कि "प्रजातान्त्रिक समाजवाद साम्यवाद की कब्र के लिए उच्च सडक है।"[1]

EXERCISES

1. समष्टिवाद की आलोचनात्मक व्याख्या कीजिये।
2. समष्टिवाद के उद्देश्यो और नीतियो का वर्णन कीजिये।
3. समष्टिवाद के पक्ष और विपक्ष मे तर्कों की समीक्षा कीजिये।
4. राज्य के कार्य सम्बन्धी व्यक्तिवादी और समाजवादी विचारो का तुलना कीजिये। वर्तमान परिस्थितियो मे किस विचार को आप सामान्य कल्याण के लिए ठीक समझते हैं और क्यो ?
5. यह विचार कहाँ तक ठीक है कि "राज्य समाजवाद आर्थिक क्षेत्र मे प्रजातान्त्रिक सिद्धान्त का प्रयोग है।"
6. राज्य के कार्यों के विस्तार के बारे मे समष्टिवादी क्या तर्क प्रस्तुत करते है ?

---

1 Democratic Socialism (is) the high road to the grave of communism —*Ebenstein, William*

7 प्रजातान्त्रिक समाजवाद
(Democratic Socialism)

परिचय
(Introduction)

मार्क्स के अनुयायियों को तीन भागों में बांटा जा सकता है। एक वे हैं जो मार्क्स की क्रान्तिकारी विचारधारा के समर्थक हैं। इनका नेतृत्व रोजा लक्जमबर्ग (Rosa Luxemburg) और विलहम लिबनेक्ट (Wilhelm Liebknecht) ने किया। ये बाद में क्रान्तिकारी साम्यवादी दलों का केन्द्र बन गये। इन्हें वाम पन्थी (Leftist) की संज्ञा दी गई। दूसरे वे हैं जिन्होंने मार्क्स के मौलिक सिद्धान्तों के प्रति अपनी निष्ठा बनाये रखी। इनका नेतृत्व अगस्त बेबल (August Bebel) और कार्ल काटस्की (Karl Kautsky) ने किया। इनकी केन्द्रीय स्थिति (Centralists) थी तीसरे वे लोग हैं जो अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर होने वाले अज्ञात परिवर्तनों के फलस्वरूप मार्क्स के सिद्धान्तों में परिवर्तन चाहते हैं। इनका नेतृत्व एडुवर्ड बर्नस्टीन (Eduard Bernstein), जीन जारेस (Jean Jaures) और ईमाइल वेन्डरवेल्डे (Emile Van dervelde) ने किया। इन्हें दक्षिण पन्थियों (Rightist) की संज्ञा दी गई है।

दक्षिण पन्थियों का विश्वास है कि नवीन पूँजीवाद या प्रजातान्त्रिक पूँजीवाद (Neo Capitalism or Democratic Capitalism) के विकास से हिंसक क्रान्ति की आवश्यकता नहीं रही। इसलिये इन्होंने मार्क्स के क्रान्तिकारी सिद्धान्त को त्याग दिया है और समाजवाद के विकास के लिये "क्रमिक शान्तिमय, उचित, रचनात्मक और कुशल"[1] कार्यों तथा साधनों पर बल दिया है। इनका विश्वास है कि जिन देशों में प्रजातन्त्र की जड़ें गहरी हैं उनमें मताधिकार के विकास द्वारा, राजनीतिक दलों का विकास करके और संसद में बहुमत प्राप्त करके पूँजीवादी व्यवस्था में

---

1 Coker F W *Recent Political Thought* (1957) p 131

वांछित सुधार लाये जा सकते हैं और समाजवाद के 'साम्य के उद्देश्य' (egalitarian aim) को प्राप्त किया जा सकता है। इनका कहना है कि मार्क्स इस बात की कल्पना ही नहीं कर सका कि पूँजीवाद में अपने आपको सुधारने की असीम क्षमता है। इसके अतिरिक्त मार्क्स की भविष्यवाणियाँ भी गलत सिद्ध हुई हैं। न तो श्रमिक वर्ग की दशा असहाय हुई है और न ही उसकी संख्या में वृद्धि हुई है। इसके विपरीत औद्योगिक विकास से श्रमिकों का जीवन स्तर ऊँचा उठा है, उन्हें जीवन की सुविधाएँ भी उपलब्ध हुई हैं और उनकी संख्या में कमी हुई है। मध्यम वर्ग भी समाप्त नहीं हुआ बल्कि उसकी संख्या में वृद्धि हुई है। इसलिए उनका विश्वास है कि सामाजिक न्याय और समानता के उद्देश्यों को प्राप्त करने के लिए न तो क्रान्ति की आवश्यकता है और न ही सर्वहारा वर्ग के अधिनायकवाद की।

प्रजातान्त्रिक समाजवादियों का दृष्टिकोण मार्क्स के शिक्षण तथा विचारों की तरह ही है। ये पूर्णतया प्रजातान्त्रिक साधनों में विश्वास करते हैं। ये संवैधानिक एवं शान्तिमय साधनों से ही सम्पत्ति की गम्भीर विषमताओं और असमानताओं को दूर करना चाहते हैं। ये निर्धनता, अज्ञानता और शोषण आदि की समस्याओं का निवारण अनुनय और जन जागृति द्वारा करना चाहते हैं। ये निजी सम्पत्ति का उन्मूलन नहीं चाहते परन्तु निजी सम्पत्ति के उन तत्वों को अवश्य ही दूर कर देना चाहते हैं जो समाज में शोषण, अन्याय और अत्याचार को जन्म देते हैं। ये उन उद्योगों को सार्वजनिक स्वामित्व में लाना चाहते हैं जो अर्थ व्यवस्था को चलाये रखने के लिए आवश्यक है। संक्षेप में, प्रजातान्त्रिक समाजवादी सामाजिक न्याय, आर्थिक स्वतन्त्रता और विश्व शान्ति की माँग करते हैं। लाइमन टावर सारजेंट (Lyman Tower Sargeant) के अनुसार प्रजातान्त्रिक समाजवाद को इस प्रकार व्यक्त किया जा सकता है "अधिकांश सम्पत्ति पर बड़े उद्योगों, उपयोगिताओं और परिवहन सहित प्रजातान्त्रिक ढंग से निर्वाचित सरकार द्वारा, सार्वजनिक स्वामित्व, निजी सम्पत्ति के संचयन पर सीमायें और सारी अर्थ व्यवस्था पर सरकारी नियमन।"[1]

प्रजातान्त्रिक समाजवाद के विकास के कारण
(Causes for the Development of Democratic Socialism)

प्रजातान्त्रिक समाजवाद के विकास के निम्न कारण बताये जा सकते हैं —

1 प्रजातान्त्रिक पूँजीवाद का विकास।

2 मार्क्स के सिद्धान्तों का अवमूल्यन अर्थात् संशोधनवादियों द्वारा मार्क्स के

---

1 Democratic socialism can be loosely characterized as follows, 'Much property held by the public through democratically elected government, including all the major industries and transport, a limit on the accumulation of property, and governmental regulation of the economy as a whole' —Sargeant, Lyman T *Contemporary Political Ideologies* (1970), p, 98

सिद्धान्तो म परिवतन की माँग । सशोधनवादियो का कहना था कि मार्क्स की भविष्यवाणिया गलत सिद्ध हुई हैं । मार्क्स इस बात की कल्पना ही नहीं कर सका कि पूँजीवाद मे अपने आप म गम्भीर सुधारो को समा लेने की क्षमता है और औद्योगिक विकास स श्रमिका की दशा सुधरेगी, बिगडेगी नही ।

3 लोक कल्याणकारी राज्य के विकास के कारण विश्व मे योजनाबद्ध विकास की माग ।

4 विश्व मे उस जीवन स्तर को प्राप्त करने की माग जिसमे कम से कम स्वास्थ्य, चिकित्सा, शिक्षा आदि आवश्यकताओ की पूर्ति हो ।

5 सामाजिक सोपान (Social hierarchy) म श्रमिका का बढता हुआ जीवन स्तर ।

6 मध्यम वग की मात्रा म वृद्धि अर्थात औद्योगिक विकास के साथ साथ प्रबन्धका, तकनीशियना वकीलो, अध्यापको, इन्जीनियरो की मात्रा म वृद्धि ।

7 राष्ट्रवाद का विकास ।

8 साम्राज्यवाद के विरुद्ध विद्रोह तथा नव स्वतन्त्र राष्ट्रा की अपनी स्वतन्त्रता को साम्राज्यवाद के किसी भी रूप से बचाने की आकाक्षा । यह तत्त्व विशेष रूप मे यूरोपीय साम्राज्यवाद के चगुल स स्वतन्त्र हुए भारत जैसे एशिया के और यू० ए० आर० जैसे अफ्रीका के राष्ट्रा मे विद्यमान है ।

9 साम्यवादी और फासिस्टवादी विचारधाराओ के प्रति घृणा की भावना । साम्यवाद की 'नवीन साम्राज्यवाद" कह कर भर्त्सना की गइ है ।

10 धम का पतन । साम्यवाद म धम की जो उपेक्षा की जाती है उसके विरुद्ध प्रतिक्रिया हुइ है । नतिकता आध्यात्मिकता आदि तत्त्वा की उपेक्षा करके साम्यवाद ने मानव जीवन को निरथक, शुष्क, भौतिक और नीरस बना दिया है । समाजवाद जहाँ मानव के लिए आर्थिक सुरक्षा की व्यवस्था करता है वहाँ उसकी नतिक, धार्मिक और आध्यात्मिक आकाक्षाओ का अभिव्यक्त करने की पूण स्वतन्त्रता भी देता है ।

इगलण्ड प्रजातान्त्रिक समाजवाद का घर है
(England is the Home of Democratic Socialism)

इगलैण्ड प्रजातान्त्रिक समाजवाद का घर है । इसका मुख्य कारण यह है कि ब्रिटिश लोग स्वभाव से ही मध्यम मार्गीय हैं । वे उग्र सुधारो या क्रान्तिकारी परिवतनो मे विश्वास नही करते । व अपनी प्राचीन सस्थाओ को तोडना नही चाहते । वे उन सस्थाओ मे आवश्यकतानुकूल परिवतन कर उन्हे समयानुकूल बनाना चाहते हैं । "सहमति से सरकार' (government by consent) और "सम्मति से परिवर्तन (change by consent) उनके जीवन के पवित्र नियम हैं । यही कारण है

कि इगलैण्ड म साम्यवादी और फासिस्टवादी विचारधाराओ के पनपने के लिए स्थान नही। समाजवाद का स्वरूप भी वहा प्रजातान्त्रिक ही हो सकता है।

सन 1884 मे ब्रिटिश दल के नेता सर विलियम हरकोट (Sir William Harcourt) ने कहा था कि "अब हम सब समाजवादी हैं।"[1] उस समय से अब तक विश्व की प्रवृत्ति सामूहिक कार्यो की ओर है। एक पीढी पूर्व जिन क्षेत्रों में—सामाजिक सुरक्षा, शिक्षा, स्वास्थ्य आदि मे—सरकारी हस्तक्षेप असहनीय समझा जाता था उन क्षेत्रो म सरकारी हस्तक्षेप को आज न केवल स्वीकार किया जाता है बल्कि आवश्यक और न्यायिक भी समझा जाता है।

इगलैण्ड मे प्रजातान्त्रिक समाजवाद के विकास का एक अन्य कारण यह है कि वहा एक सुदृढ एव विस्तृत मध्यम वर्ग हमेशा विद्यमान रहा है। इसके अतिरिक्त औद्योगिक क्रान्ति भी सर्वप्रथम इगलैण्ड मे ही हुई। इसने इगलैण्ड म बहुत श्रमिक वर्गों को उत्पन्न कर दिया।

इगलैण्ड समय के साथ-साथ अपने आपको परिवर्तित करता आया है। इसने प्रजातन्त्र और समाजवाद के साथ समझौता किया है अर्थात इगलैण्ड ने प्रजातन्त्र के विकास के साथ साथ समाजवाद का विकास भी किया है। इसने जैसे जैसे मताधिकार मे विस्तार किया और शासको को शासितो के प्रति उत्तरदायी बनाया वैसे-वैसे इसने श्रमिक कानूनो द्वारा श्रमिको की दशा म सुधार किया है, अर्थ-व्यवस्था का सुचारु रूप से चलाये रखने के लिए महत्त्वपूर्ण उद्योगो पर सार्वजनिक स्वामित्व भी स्थापित किया है, अर्थ व्यवस्था का नियमन किया है, सार्वजनिक कल्याण के कार्यो विशेषतः स्वास्थ्य, चिकित्सा, शिक्षा को सम्पन्न किया है, निजी सम्पत्ति का उन्मूलन किये बिना ही सम्पत्ति और आय की गम्भीर भिन्नताओ को उत्तराधिकारी करो द्वारा, प्रगतिशील उत्तरोत्तर करो द्वारा और मृत्यु करो द्वारा दूर करने का प्रयास किया है और इन सब परिवर्तनो की विशेषता यह है कि ये प्रजातान्त्रिक ढग से, ससद के द्वारा, द्वारा लाये गये हैं। इन परिवर्तनो के लाने मे ब्रिटिश पूजीपतियो का सहयोग भी रहा है जिन्होंने समय के अनुसार अपने दृष्टिकोणो म परिवर्तन किया है। इगलैण्ड का पूँजीपति वर्ग अपनी परम्परागत यथेच्छाचारिता की नीति से चिपका नही रहा। एबनस्टीन ने ठीक ही कहा है कि "सत्रहवी शताब्दी म ससद की सम्प्रभुता के सिद्धान्त को स्थापित कर ब्रिटिश लोग प्रगतिशील राजनीति के नेता बन गये और बीसवी शताब्दी मे राजनीतिक स्वतन्त्रता और आर्थिक सुरक्षा के सिद्धान्तो का निर्माण कर वे प्रजातान्त्रिक समाजवाद के प्रतीक भी बन गये हैं।"[2]

---

1 'We are all socialists now'—Sir William Harcourt Quoted by William Ebenstein in his *Modern Political Thought the great issues* (1960) p 581

2 Ebenstein, William *Ibid* p 581

प्रजातान्त्रिक समाजवाद का कोई एक उच्च ग्रन्थ या विचारक नहीं

प्रजातान्त्रिक समाजवाद के साहित्य के लिए कोई एक उच्च ग्रन्थ या विचारक नहीं जिसे उसके सिद्धान्तों की बाईबल के रूप में प्रस्तुत किया जा सके। जैसाकि एबनस्टीन ने लिखा है कि "इंगलैण्ड में समाजवादी साहित्य के लिए कोई मार्क्स या लेनिन नहीं जो सभी समयों के लिए कानून बनाता है। इंगलैण्ड में अधिकांश प्रभावशाली समाजवादी विचारक वे रहे हैं जिनकी दल या सरकार में कोई सरकारी स्थिति (official position) नहीं थी। उनका प्रभाव तो मुख्यतः उनकी नैतिक शक्ति और उनके लिखने का सुखवादी साहित्यिक ढंग था।"[1] साम्यवाद मार्क्स, ऐंजिल्स, लेनिन, स्तालिन या माओ के विचारों का पुजारी है और उन्हीं को वह अपना देवता मानता है, परन्तु प्रजातान्त्रिक समाजवाद में न तो कोई एक ऐसा विचारक है जिसे इसके पिता या देवता का श्रेय मिल सके और न ही इसके ऐसे ठोस सिद्धान्त हैं, जैसे कि साम्यवाद के हैं, जिन्हें प्रजातान्त्रिक समाजवादी सिद्धान्तों के नामों से पुकारा जाय।

जिन लेखकों ने प्रजातान्त्रिक समाजवाद के सिद्धान्तों की ढीले ढाले ढंग से व्याख्या की है वे हैं, ब्रिटेन में, राबर्ट ओवेन (Robert Owen), सिडनी और बिट्राइस वेब (Sydney and Beatrice Webb), आर० एच० टानी (R H Tawney), रैमजे मैकडानाल्ड (Ramsay MacDonald), एच० एन० ब्रेल्सफोर्ड (H N Brailsford), एच० जे० लास्की (H J Laski), जी० डी० एच० कोल (G D H Cole), क्लेमण्ट एटली (Clement Attlee), जे० बी० ग्लेसियर (J B Glassier), आस्ट्रिया में आटो बाऊर (Otto Bourer) और कार्ल काटस्की (Karl Kautsky), जर्मनी में वार्नर सामबार्ट (Warner Sombart) और हनरिक स्ट्राबल (Heinrich Stroebel), बेल्जियम में हेण्डरिक डी मॉन (Hendrik de Man), अमरीका में नार्मन थामस और भारत में जवाहरलाल नेहरू।

प्रजातान्त्रिक समाजवादी लेखकों की विचारधारायें

1 आर० एच० टानी (R H Tawney)

आर० एच० टॉनी ने सन् 1921 में अपनी पुस्तक 'परिग्रहणशील समाज" (The Acquisitive Society) की रचना की। इस पुस्तक को ब्रिटिश समाजवादी विचारधारा की ग्रेट क्लासिक (Great Classic) कहा जाता है। इस पुस्तक में टॉनी ने क्रियाहीन सम्पत्ति (Functionless property) के दोषों पर प्रकाश डाला है।

टानी उस सम्पत्ति को क्रियाहीन सम्पत्ति कहता है जो बिना किसी 'क्रिया' या सेवा' के 'आय', 'लाभ' और सत्ता उत्पन्न करती है।[2] टानी इस सम्पत्ति को

---

1 Ebenstein William *Ibid* p 582

2 Functionless property is property which yields income and power without rendering any service —Tawney, R H Quoted by Ebenstein, *Ibid*, p 582

'सीमित सम्प्रभुता' (limited sovereignty) की संज्ञा भी देता है क्योंकि वह केवल अधिकार उत्पन्न करती है कर्तव्य नहीं। यह किसी के प्रति उत्तरदायी नहीं होती इसलिए यह आसानी से अत्याचारी और निरंकुश बन जाती है। टानी क्रियाहीन सम्पत्ति को वैध सम्प्रभुता का सबसे बड़ा शत्रु मानता है। उसका विश्वास है कि क्रियाहीन सम्पत्ति का संग्रह पूँजीवादी व्यवस्था के कारण होता है और जिनके हाथ मे यह सत्ता नही होती उन पर यह अप्रत्यक्ष रूप से सत्ता का प्रयोग करता है जो अन्तत अत्याचार और शोषण का रूप ले लेती है।

टानी सम्पत्ति का विरोधी नहीं और न ही वह निजी सम्पत्ति का विरोधी है। परन्तु वह इस क्रियाहीन सम्पत्ति के निरंकुशतावाद का अवश्य विरोधी है। वह कहता है कि सम्पत्ति जब थोड़ी मात्रा म होती है तो यह निर्दोष और लाभकारी होती है परन्तु जब यह अधिक मात्रा मे होती है तो यह हानिकारक और अनुत्तरदायी बन जाती है। न्यायाधीश ब्रांडीस (Brandeis) के शब्दों म, "एक बड़े निगम के विरुद्ध सबसे बड़ी आपत्ति यह है कि यह औद्योगिक निरंकुशतावाद को सम्भव और अनेक परिस्थितियों मे आवश्यक बना देता है।"[1]

टॉनी का कहना है कि क्रियाहीन सम्पत्ति का प्रभाव केवल असमानता पैदा करने तक ही सीमित नही बल्कि बौद्धिक और कुशलता के क्षेत्र म भी इसका प्रभाव पड़ता है। यह उद्योग मे आलस्य को बढ़ावा देती है जो औद्योगिक कुशलता के लिए हानिकारक है। यह उत्पादकों (श्रमिकों) और प्रबन्धकों (मैनेजर, तकनीशियन वैज्ञानिक आदि) की कुशलता पर भी कुप्रभाव डालती है। टानी लिखता है कि "औद्योगिक कुशलता मे सबसे बड़ी बाधा इस बात की जानकारी है कि आलस्य के भी अधिकार भी वही हैं जो परिश्रम के और उद्योग के हैं।" टॉनी इसलिए क्रियाहीन सम्पत्ति को 'परजीवी (parasite) की संज्ञा देता है जो उस अंग को भी समाप्त कर देती है जिसने उसे उत्पन्न किया होता है।

टानी का विश्वास है कि यदि उपार्जित सम्पत्ति के आधे भाग को हटा दिया जाय अर्थात् सार्वजनिक कल्याण के कार्यों म उपयोग किया जाय, जो वर्तमान मे क्रियाहीन साझेदारों (shareholders) को लाभांश (dividend) के रूप म दिया जाता है, तो अच्छी शिक्षा का प्रबन्ध किया जा सकता है, उद्योगों म कुशल श्रमिकों के लिए नवीन यन्त्रों को खरीदा जा सकता है और उद्योग से उत्पन्न होने वाली अनेक बीमारियों का इलाज किया जा सकता है, श्रमिकों की दशा सुधारी जा सकती है और स्वास्थ्य तथा चिकित्सा सेवाओं को प्रदान किया जा सकता है।

---

1 The main objection to a large corporation is that it makes possible and in many cases makes inevitable the exercise of industrial absolutism — Justice Brandeis of U S Supreme Court. Quoted by Ebenstein, *Ibid*, p 591

क्रियाहीन सम्पत्ति के दोषों को दूर करने के लिए टॉनी निम्न सुझाव देता है—

(1) उद्योग का उद्देश्य किसी सामाजिक सेवा (service) का प्रदान करना होना चाहिए न कि लाभ प्राप्ति।

(2) उद्योग के हितों को सामाजिक हितों के अधीन होना चाहिए।

(3) उद्योग को समाज के प्रति उत्तरदायी होना चाहिए। लोगों को उस सत्ता द्वारा शासित नहीं होना चाहिए जिसे वे नियन्त्रित नहीं कर सकते अर्थात उद्योगों के स्वामियों का उनके प्रति उत्तरदायी होना चाहिये जिन्हें वे नियन्त्रित करते हैं।

(4) जो 'सेवा' प्रदान करते हैं उन्हें अच्छे वेतन प्राप्त होने चाहिये।

2 क्लेमेंट एटली (Clement Attlee)

क्लेमेंट एटली ने अपनी रचना 'श्रमिक दल—एक दृश्य रूप' में (The Labour Party in Perspective—1937) इंगलैण्ड में, समाजवादी विचारों के विकास में धर्म के प्रभाव को अंकित किया है। उसका विश्वास है कि इंगलण्ड बाईबल के पाठकों का राष्ट्र है और बाईबल ऐसे क्रान्तिकारी विचारों से भरपूर है कि वह किसी भी व्यक्ति को अमानवीय दशाओं के विरुद्ध चाहे वे पूंजीवाद के कारण उत्पन्न हुई हों या धार्मिक कट्टरता के कारण विद्रोह करने के लिए उत्तेजित कर सकती है। एटली ने स्पष्ट लिखा है कि समाजवादी आन्दोलन के निर्माण में सबसे प्रथम् स्थान धर्म के प्रभाव का है।'[1] उसकी धारणा है कि समाजवादी मंच से बाईबल के अनेक पाठयों का प्रचार किया जाता है।

एटली की धारणा है कि इंगलण्ड फासिस्टवादी और साम्यवादी विकल्पों को अस्वीकार कर सकता है और अपने आपको नवीन परिस्थितियों के अनुकूल ढाल सकता है। ब्रिटिश प्रणाली का गुण है कि वह स्वतन्त्रता और सहनशीलता पर बल देती है और समयानुकूल सामाजिक और आर्थिक ढांचे में परिवर्तन भी ला सकती है। उसका विश्वास है कि इंगलण्ड विश्व के सामने ऐसा उदाहरण प्रस्तुत कर सकता है कि बने नवीन परिस्थितियों में समाज निरन्तरता में दरारें उत्पन्न किये बिना और हिंसा तथा असहिष्णुता का सहारा लिये बिना अपना आपको नवीन सिद्धान्तों पर आधारित कर सकता है। ब्रिटिश प्रणाली की यह विशेषता है कि वह पूंजीवाद के अनैतिक और अनुचित तत्त्वों को शान्तिमय साधना से दूर कर सकता है।

3 ऐवान एफ० एम० डर्बिन (Evan F. M. Durbin)

ऐवन एफ० एम० डर्बिन की रचना "प्रजातान्त्रिक समाजवाद की राजनीति" (The Politics of Democratic Socialism—1940) को ब्रिटिश समाजवादी

---

1 The first place in the influence that built up the Socialist movement must be given to religion' — Clement Attlee; Quoted by Ebenstein, *Ibid*, p 583

साहित्य मे 'भूमि चिह्न' (Landmark) की संज्ञा दी गई है। इस पुस्तक में डर्बिन ने समाजवाद के सिद्धान्तो का विश्लेषणात्मक अध्ययन किया है। इसमे उसने मार्क्सवाद के समग्रवादी सिद्धान्त को अस्वीकार किया है।

डर्बिन ने प्रजातान्त्रिक प्रणाली पर बल दिया है। हर स्थिति में डर्बिन मतदाताओ के निर्वाचन के अधिकार को बनाये रखना चाहता है, सरकार को उत्तरदायी बनाये रखना चाहता है और विरोधियो के प्रति सहनशीलता की नीति पर बल देता है। उसका यह पूर्ण विश्वास है कि ब्रिटेन अपनी आर्थिक समस्याओ को प्रजातान्त्रिक ढग से सुलझाने की क्षमता रखता है। उसकी यह भी धारणा है कि ब्रिटेन परम्परा से सम्बन्ध विच्छेद किये बिना ऐसे नवीन समाज को जन्म देगा जो राजनीतिक स्वतन्त्रता और आर्थिक समानता पर आधारित होगा।

4 फ्रासिस विलियम (Francis William)

यद्यपि समाजवाद की व्याख्या अधिकाशत भौतिक आन्दोलन के रूप में की गई है फिर भी फ्रासिस विलियम ने अपनी रचना 'समाजवाद के नैतिक आधार' (The Moral Case for Socialism—1949) मे समाजवाद का समर्थन नैतिक आधार पर किया है। वह कहता है कि समाजवाद इस विश्वास से उत्पन्न होता है कि व्यक्ति एक भौतिक प्राणी नही बल्कि एक नैतिक प्राणी है। उसका कहना है कि व्यक्ति केवल भौतिक विचारो से जिस पर पूजीवाद और साम्यवाद दोनो आधारित हैं नियाशील नही होता। वह आदर्शो और आशाओ से भी प्रभावित होता है। विलियम का कहना है कि पूँजीवाद व्यक्ति की प्रकृति का निराशावादी दृष्टिकोण अपनाता है क्योकि पूजीवाद इस गलत धारणा पर आधारित है कि व्यक्ति केवल 'लाभ' या 'डण्डे' द्वारा ही नियाशील होता है। साम्यवाद भी निराशावादी दृष्टिकोण अपनाता है क्योकि वह हिंसा, भय और आतक जैसे अमानवीय तत्वो का सहारा लेता है। विलियम का विश्वास है कि समाजवाद ही व्यक्ति की प्रकृति का आशावादी दृष्टिकोण अपनाता है क्योकि यह 'सहयोग' और 'भ्रातृत्व' के मूल्यो पर आधारित है।

5 आर० एच० एस० क्रासमन (R H S Crossman)

अपनी रचना "समाजवाद और नवीन अधिनायकवाद" (Socialism and the New Despotism—1956) मे क्रासमैन ने यद्यपि सार्वजनिक स्वामित्व के दोषो, जैसे नौकरशाही का अनुत्तरदायित्व या अर्द्ध उत्तरदायित्व की स्थिति और सत्ता के राज्य के हाथो मे केन्द्रित होने से स्वतन्त्रता के लिए खतरे की सम्भावना, पर प्रकाश डाला है फिर भी उसने मुख्य उद्योगो पर सार्वजनिक स्वामित्व का ही समर्थन किया है। क्रॉसमैन के शब्दो मे, क्योकि अल्पाधिकार के दुरुपयोग को स्वतन्त्र प्रतियोगिता द्वारा रोका नही जा सकता इसलिए स्वतन्त्रता की वृद्धि और पूर्ण प्रजातन्त्र को प्राप्त करने के लिए केवल एक ही उपाय है और वह यह है कि अर्थव्यवस्था के

सार्वजनिक नियन्त्रण में रख दिया जाय।"[1] उसका कहना है कि पूर्ण प्रजातन्त्र लाने का यही एक तरीका है शर्त यह है कि सार्वजनिक स्वामित्व के अधीन उद्योग संसद और जनमत के निरन्तर और प्रभावकारी नियन्त्रण में रहें।

7 डेनिस हीले (Denis Healey)

डेनिस हीले का विश्वास है कि ब्रिटिश मतदाताओं को राष्ट्रीयकरण अब अपील नहीं करता क्योंकि औद्योगिक सत्ता अब एक ऐसे प्रबन्धक वर्ग के हाथों में है जो किसी के प्रति उत्तरदायी नहीं। उसकी धारणा है कि 'स्वामित्व का स्वरूप अब असङ्गत है"[2] क्योंकि उद्योगों पर नियन्त्रण, जो सार्वजनिक क्षेत्र में हैं, उतना ही कठिन है जितना कि निजी उद्योगों पर साझेदारों का नियन्त्रण कठिन है। यही कारण है कि ब्रिटिश श्रमिक दल अब राष्ट्रीयकरण पर उतना अधिक बल नहीं देता जितना कि सामाजीकरण पर बल देता है। इस परिवर्तन के दो कारण बताये जा सकते हैं—(1) श्रमिक वर्ग का सामान्य स्तर पहले की तुलना में अत्यधिक बढ़ा है और वेतनों की गम्भीर असमानताओं को कम कर दिया गया है। (2) उन्नीसवीं शताब्दी के व्यक्तिवादी पूँजीवाद ने भी अपने आपको बीसवीं शताब्दी की आवश्यकताओं के अनुकूल ढालने का प्रयास किया है।

अमरीका में प्रजातान्त्रिक समाजवाद
(Democratic Socialism in America)

अभी तक अमरीका में कोई ऐसा राष्ट्रीय दल नहीं जिसने समाजवाद को अपनाया है और न ही वहाँ समाजवाद के अपनाये जाने के तत्त्व विद्यमान हैं। इसका मुख्य कारण यह है कि अमरीका ने अपने श्रमिकों को जीवन का वह स्तर प्रदान कर रखा है जिसे भारत जैसे अल्पविकसित देश पंचवर्षीय योजनाओं के बाद भी अपने मध्यम वर्ग को प्रदान करने में असमर्थ है। यही कारण है कि अमरीका में श्रमिकों के लिये हिंसक क्रान्ति का कोई कारण नहीं। इसके अतिरिक्त अमरीका के लोग समाजवाद शब्द से ही घृणा करते हैं।

अप्रत्यक्ष रूप से अमरीका पर समाजवाद का प्रभाव नजर आता है। इस अप्रत्यक्ष प्रभाव को सामूहिक कार्यों (collective works) में देखा जा सकता है। इसके मुख्य उदाहरण हैं राष्ट्रपति वुडरो विल्सन की "नवीन स्वतन्त्रता" (New

---

1 Since the abuses of oligopoly cannot be checked by free competition the only way to enlarge freedom and achieve a full democracy is to subject the economy to public control"—Crossman in R H S Quoted by Ebenstein *Ibid* p 587

2 The form of ownership is irrelevant"—Healey, Denis Quoted by Ebenstein *Ibid* p 587

Freedom) और राष्ट्रपति फ्रेन्कलिन डी रूजवेल्ट की "न्यू डील" (New Deal)। जिस चीज को अमरीका मे एक पीढी पूर्व—श्रम, सामाजिक सुरक्षा, शिक्षा आदि क्षेत्रों मे—असहनीय हस्तक्षेप समझा जाता था उसी हस्तक्षेप को आज न्यायिक और अनिवार्य समझा जाने लगा है। जैसा कि गार्नर ने लिखा है कि "संयुक्त राज्य में, समय से सरकार के व्यक्तिवादी दर्शन का बोलबाला रहा है, वहाँ कुछ समय से क्रमिक परन्तु बढते हुए राज्य के नियन्त्रण का विकास हुआ है। वहाँ राष्ट्रीय और स्थानीय दोनो सरकारें राजकीय सहायता भी प्रदान करती हैं।"[1] इतना कि यदि अमरीका म समाजवाद के किसी स्वरूप को स्वीकार किया जाता है तो वह ब्रिटेन की भांति प्रजातान्त्रिक होगा रूस या चीन की भांति साम्यवादी नहीं। अधिकांशत इसका स्वरूप सिडनी और बिट्रस वेब, टॉनी और एटली की विचारधाराओं जैसा होगा।

नार्मन थॉमस (Norman Thomas)

अपनी रचना "प्रजातान्त्रिक समाजवाद एक नवीन व्याख्या" में (Democratic Socialism A new Appraisal—1953) नार्मन थॉमस पर ही बल देता है। वह कहता है कि समाजवाद की प्रक्रिया और उद्देश्य प्रजातन्त्र की प्राप्ति हैं। वह राज्यवाद' (statism) के दोषो से भी परिचित है। उसका कहना है कि समाजवादी अब राष्ट्रीयकरण नही बल्कि सामाजीकरण चाहते हैं ताकि राज्य के स्थान पर श्रमिक और उपभोक्ता सार्वजनिक उद्योगो के स्वामित्व और प्रबन्ध में प्रत्यक्ष भाग ले सकें। थॉमस तो समाजवादी व्यवस्था में प्रतिद्वन्द्विता की प्रणाली भी स्वीकार करता है यदि वह उचित सीमाओ मे कार्य करती है। वह समाजवाद के "समान वेतनो के सिद्धान्त, को स्वीकार नही करता। वह कहता है कि यदि ऐसा किया जाय अर्थात समान वतनो के सिद्धान्त को लागू किया जाय तो नौकरियों के लिये अनिवार्य भर्ती करनी पडेगी जो कोई समाजवादी, जिसे स्वतन्त्रता से प्रेम है, ऐसा करने के लिए तैयार नही होगा। थॉमस राष्ट्रीय आय का समान वितरण तो चाहता है परन्तु इस सापेक्ष समानता (relative equality) को धीरे धीरे और प्रजातान्त्रिक साधनो द्वारा लाने के पक्ष मे है। उसका कहना है कि समाजवाद वहीं सफल हुआ है जहा प्रजातान्त्रिक सरकारो की जडें काफी गहरी हैं। इसलिये समाजवाद को उन संस्थाओ का निर्माण करना चाहिए जो प्रजातन्त्र को सफल बनायें।

---

1 In the United States where for a long time the individualistic philosophy of Government was dominant there has in later been a steady and increasing extension of state regulation and of state aid by both the national and state governments'—Garner J W *Political Science and Government* (1955), p 440

भारत में प्रजातान्त्रिक समाजवाद
(Democratic Socialism in India)

अपने सरकार के स्वरूप मे और जीवन की पद्धति के रूप मे भारत स्वतन्त्रता के बाद प्रजातन्त्र और समाजवाद के लिए कटिबद्ध है। स्वतन्त्रता प्राप्ति से पूर्व भी भारत प्रजातन्त्र और समाजवाद मे आस्था रखता था। भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस ने, उस समय जो भारतीयो की विचारधाराओ का प्रतिनिधित्व करती थी, प्रजातन्त्र और समाजवाद के उद्देश्य को 1929 म ही स्वीकार कर लिया था। लाहौर मे अपने अध्यक्षीय भाषण मे बोलते हुए प० जवाहरलाल नेहरू ने कहा था कि "मुझे इस बात को स्पष्टत स्वीकार कर लेना चाहिए कि मैं समाजवादी और गणतन्त्रवादी हूँ। हमे इस बात को समझ लेना चाहिए कि समाजवाद ने विश्व के सारे सामाजिक ढाचे को ही धीरे धीरे प्रभावित किया है और जिन बातो मे भेद हैं वे केवल इसकी सिद्धि की गति और विकास के साधनो मे हैं। यदि भारत को अपनी निर्धनता और असमानता को दूर करना है तो भारत को यह रास्ता (समाजवाद तथा प्रजातन्त्र का रास्ता) अपनाना होगा यद्यपि इसके लिए यह अपने तरीके निकाल सकता है और इस आदश को अपनी जाति की प्रतिमा के अनुकूल ढाल सकता है।"[1]

स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद भारत मे पाच सावजनिक निर्वाचन सम्पन्न हो चुके हैं। ये इस बात का प्रमाण हैं कि भारतीय जनता म प्रजातान्त्रिक सिद्धान्तो के प्रति पूण निष्ठा है। भारत की पञ्चवर्षीय योजनाओ का उद्देश्य शान्तिमय साधनो से भारत के आर्थिक और सामाजिक ढाचे मे परिवतन लाना है, जीवन स्तर को ऊँचा उठाना है, उत्पादन की कुशलता को बढाना है तथा भारत को आत्म निर्भर बनाना है।

भारतीय राष्ट्रीय काग्रेस, जो स्वतन्त्रता क बाद केन्द्र म अब तक सत्तारूढ रही है, की आर्थिक नीतियो का उद्देश्य समाजवाद ही रहा है। पहले इस नीति के कणधार प० जवाहरलाल नहरू थे और अब उनकी बेटी इन्दिरा गाधी हैं। काग्रेसी नेताओ ने अपनी प्रजातान्त्रिक समाजवादी नीति को अनेक बार दोहराया है। काग्रेस ने अपने अवादी अधिवेशन मे, 1955 मे, "समाज के समाजवादी आदश" (Socialistic Pattern of Society) को अपनाया, 1964 मे इसने लोककल्याणकारी

---

1 'I must frankly confess that I am a socialist and republican We must realise that the philosophy of socialism has gradually permeated the entire structure of society the world over and almost the only points in dispute are the pace and the methods of advance to its full realisation India will have to go that way too, if she seeks to end her poverty and inequality though she may evolve her own methods and may adapt the ideal to the genius of her race —Nehru J L Quoted by Gokhale, B K in his *Political Science* (1970) p 389

राज्य को स्थापित करने के लिए प्रजातान्त्रिक समाजवाद के मार्ग को स्वीकार किया। सन 1969 मे 10 सूत्री समाजवादी प्रोग्राम की रूप रेखा तैयार की गई। इस तरह भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के कर्णधार भारत मे प्रजातन्त्र और स्वतन्त्रता के सन्दर्भ म ही समाजवाद की कल्पना करते आये हैं। कामराज, जो पहले संयुक्त कांग्रेस के अध्यक्ष थे, के शब्दो मे, "हम यह आशा करते हैं कि वर्ग सघर्ष के बिना हम समाजवादी समाज की स्थापना कर सकेंगे और इस लोक विश्वास को दूर कर सकेंगे कि समाजवादी राज्य मे व्यक्ति अपनी स्वाभाविक स्वतन्त्रता खो बैठता है।"[1]

प० जवाहर लाल नेहरू मार्क्स के प्रशंसक थे। वह सोवियत यूनियन द्वारा प्राप्त उपलब्धियो के भी प्रशसक थे, विशेषकर रूस मे जो बच्चा और साधारण व्यक्तियो की स्थिति को सुधारने के लिए शिक्षा, स्वास्थ्य, चिकित्सा आदि सेवाओ को उपलब्ध कराया जाता है उससे अत्यधिक प्रभावित थे। परन्तु नेहरूजी को साम्यवाद से कोई लगाव नही था। नेहरूजी साम्यवाद को गलत धारणा पर आधारित मानते थे अपनी रचना 'प्रजातन्त्र, साम्यवाद, समाजवाद और पूँजीवाद' (Democracy, Communism Socialism and Capitalism—1958) मे नेहरूजी लिखते हैं कि साम्यवाद की सबसे बडी त्रुटि यह है कि "यह जीवन के नैतिक और आध्यात्मिक मूल्यो से घृणा करता है। इस तरह यह न केवल जीवन के आधार भूत तत्वों की उपेक्षा करता है बल्कि मानव व्यवहार को उसके मापदण्डो और मूल्या से भी वंचित करता है।"[2]

नेहरू जी हिंसा के तरीके को पूर्णतया अवनानिक, अनुचित एव असभ्य तरीका मानते थे। उनका कहना था कियहतरीका सहन शीलता का तरीका नही। हिंसा समस्याओ का समाधान नही करती बल्कि अनेक समस्याओ को जन्म देती है। 'गलत साधन अच्छे परिणामो की ओर नही ले जा सकते।"[3] नेहरू जी का विश्वास था कि साम्यवाद हिंसा पर आधारित है। उनके शब्दो म, 'यद्यपि कभी-कभी साम्यवाद पशु शक्ति का प्रयोग नही करता परन्तु यह निश्चित रूप से हिंसा से सम्बद्ध है। इसकी भाषा

---

1 'We hope we shall be able to establish a socialist society without class conflict and dispel the popular belief that in a socialist state men lose their natural freedom —Kamaraj Quoted by Gokhale B K *Ibid* p 390

2 The gravest defect in Communism however is that "its contempt for what might be called the moral and spiritual side of life not only ignores something that is basic in man but also deprives human behaviour of standards and values —*Nehru J L.* Quoted by Ebenstein in his *Ibid*, p 585

3 Nehru, J L Quoted by Ebenstein in his *Ibid*, p 585

हिंसा की है। इसके विचार हिंसक हैं। यह अनुनय या शान्तिमय प्रजातान्त्रिक प्रभावों से परिवर्तन नहीं लाता बल्कि दमन और विनाश द्वारा परिवर्तन लाता है।"

नेहरू जी की धारणा थी कि किसी सिद्धान्त की अच्छाई इस बात में निहित नहीं कि वह शक्ति या हिंसा पर आधारित है बल्कि इस बात में है कि वह कहाँ तक व्यक्ति को अपने तुच्छ स्वार्थ से ऊँचा उठा कर उसे सबकी अच्छाई के बारे में सोचना सिखाता है। नेहरू जी का विश्वास था कि समाजवाद नैतिक नियमों की उपेक्षा किये बिना, व्यक्ति की स्वतन्त्रता को बनाये रखते हुए उसे आर्थिक सुरक्षा प्रदान कर सकता है। इस तरह समाजवाद साम्यवाद और पूँजीवाद दोनों के दोषों को दूर करने की दिशा दिखाता है। जहाँ, एक ओर, समाजवाद साम्यवाद की हिंसा और दमन को टालता है वहाँ, दूसरी ओर, वह पूँजीवाद की असमानता, अकुशलता और शोषण की प्रवृत्ति को भी टालता (avoid) है। यद्यपि समाजवाद कोई ऐसा जादू नहीं जिससे अल्प विकसित देशों की निर्धनता आँख की पलक के झपकने से ही दूर हो जायगी, फिर भी यह एक ऐसा वैज्ञानिक तरीका है जो सामाजिक और आर्थिक समस्याओं को दूर करने का रास्ता बताता है।

नेहरू जी का यह विश्वास भी था कि भविष्य प्रजातान्त्रिक समाजवाद का है। पूँजीवाद और समाजवाद के प्राचीन भेद समाप्त होते जा रहे हैं। जहाँ पूँजीवाद समाजवाद के कुछ विचारों को अपनी विचारधारा में सम्मिलित कर रहा है वहाँ समाजवाद भी निजी आरम्भन (individual initiative) के क्षेत्र को क्रमिक रूप से बढ़ा रहा है।

नवम्बर 1969 में कांग्रेस के विभाजन के बाद भी नई कांग्रेस (इन्द्रा गांधी के नेतृत्व वाली कांग्रेस) की नीतियों का उद्देश्य प्रजातान्त्रिक समाजवाद की सिद्धि हो रही है यद्यपि इस दल के "यंग तुर्कस" (young turks) का दृष्टिकोण वाम पन्थ (left) की ओर अधिक झुका हुआ नजर आता है। जिस गति से 14 बड़े-बड़े बैंकों का राष्ट्रीयकरण किया गया और सर्वोच्च न्यायालय द्वारा राष्ट्रीयकरण को अवैध घोषित करने के बाद जिस गति से संविधान में संशोधन किया गया, राजाओं के प्रिवी पर्सों और विशेषाधिकारों को समाप्त किया गया तथा मूल अधिकारों में जो परिवर्तन किये गये हैं तथा पाँचवें विधान सभाओं के चुनाव में साम्यवादियों के साथ जो समझौते किये गये हैं वे सब इस तथ्य को स्पष्ट करते हैं कि नई कांग्रेस का झुकाव देश की आर्थिक व्यवस्था में थोड़ा उग्र परिवर्तन लाने की ओर है।

समाजवादी अन्तर्राष्ट्रीय और एशियन समाजवादी सम्मेलन
(The Socialist International and Asian Socialist Conference)

द्वितीय महायुद्ध के बाद, पश्चिम में, समाजवादी आन्दोलन के लिए उपयुक्त वातावरण दिखाई देता था। इस वातावरण से लाभ उठाते हुए पश्चिम के पुराने

और नये समाजवादी दलों ने, विशेष कर ब्रिटेन, जर्मनी, आस्ट्रेलिया, फ्रांस, स्विट्जरलैंड के समाजवादी दलों ने, स्वतन्त्र समाजवादियों ने तथा श्रम और समाजवादी अन्तर्राष्ट्रीय (Labour and Socialist International—LSI) के समाजवादी सदस्यों ने मिल कर समाजवादी अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलन के लिए भूमिका तैयार की। इसके लिए नवम्बर 1947 में एक समिति का गठन किया गया जिसे "कामिस्को" (COMISCO—Committee of the International Socialist Conference) की संज्ञा दी गई। इस समिति के प्रयत्नों के फलस्वरूप जुलाई 1961 में समाजवादी अन्तर्राष्ट्रीय (the Socialist International) का जन्म हुआ। यद्यपि एशिया के समाजवादी दल इस समाजवादी अन्तर्राष्ट्रीय से ढीले रूप से सम्बन्धित हैं परन्तु उन्होंने अपना पृथक संगठन बनाना ही अच्छा समझा। इसका कारण यह है कि समाजवादी अन्तर्राष्ट्रीय में कुछ ऐसे पश्चिमी समाजवादी दल हैं जो साम्राज्यवादी नीतियों का समर्थन करते हैं और एशिया के समाजवादी दल साम्राज्यवाद और उपनिवेशवाद को अपने राष्ट्रों की स्वतन्त्रता के लिए खतरा समझते हैं। एशिया के देशों के समाजवादी दलों को साम्राज्यवाद के दुष्परिणामों का अनुभव है इसलिए वे इसे किसी भी स्थिति में बर्दाश्त नहीं कर सकते।

समाजवादी अन्तर्राष्ट्रीय का प्रथम सम्मेलन जुलाई 1951 में जर्मनी के फ्रेंकफोर्ट नामक स्थान पर हुआ। इस सम्मेलन ने प्रजातान्त्रिक समाजवाद के उद्देश्यों और कार्यों (Aims and Tasks of Democratic Socialism) पर एक घोषणा प्रकाशित की। इस घोषणा में प्रजातन्त्र, स्वतन्त्रता और समाजवाद का समन्वय है। इसमें प्रजातान्त्रिक समाजवाद के जिन उद्देश्यों और कार्यों पर बल दिया गया उन्हें निम्न प्रकार से व्यक्त किया जा सकता है —

(1) प्रजातान्त्रिक समाजवाद और सर्वाधिकारवाद (totalitarianism) में कोई संगति नहीं।

(2) साम्यवाद नवीन साम्राज्यवाद का यन्त्र है।

(3) स्वतन्त्रता के अभाव में समाजवाद सम्भव नहीं अर्थात् प्रजातन्त्र के माध्यम से ही समाजवाद की प्राप्ति हो सकती है।

(4) संगठित मजदूरों में बन्धुत्व जैसे सम्बन्ध होने चाहिए।

(5) मिश्रित अर्थ-व्यवस्था अर्थात् सार्वजनिक स्वामित्व के साथ-साथ निजी स्वामित्व के अस्तित्व को बनाये रखना चाहिए। अर्थ व्यवस्था का नियमन होना चाहिए।

(6) आर्थिक सत्ता का विकेन्द्रीकरण अर्थात् सम्पत्ति और आय का ... वितरण होना चाहिए।

(7) लोक कल्याणकारी कार्यों में विस्तार अर्थात् पूर्ण रोजगार की स्थिति को बनाये रखना, उच्चतर उत्पादन, उद्योगों के समाज के प्रति उत्त...

दायित्व को बनाये रखना, बढता हुआ जीवन स्तर, सामाजिक सुरक्षा, स्वास्थ्य, चिकित्सा, शिक्षा आदि सेवाओ का विकास आदि।

(8) मानवतावाद का विकास।

एशियन समाजवादी सम्मेलन का प्रथम् अधिवेशन जनवरी 1953 म रगून (Rangoon) मे हुआ। इस सम्मेलनमे 177 प्रतिनिधियो और प्रेक्षको ने भाग लिया जिनमे 77 भारत के, 15 बर्मा के, 27 इण्डोनेशिया के और 30 जापान के थे।[1] यद्यपि यूराप के समाजवादी दलो और ब्रिटिश श्रमिक दल को पृथक् रूप से निमन्त्रण नही दिया गया था फिर भी क्लेमन्ट एटली ने समाजवादी अन्तर्राष्ट्रीय के प्रतिनिधि मण्डल की अगवानी की। इस सम्मेलन म यह घोषणा की गई कि "समाजवादी राज्य और समाजवादी दलो का कतव्य है कि वे प्रजातन्त्र की रक्षा करें।" एशियन समाजवादी सम्मलन का दूसरा अधिवशन बम्बई म 1956 मे हुआ। एस० रोज (S Rose) लिखता है कि एशिया म समाजवाद को रूढिवादी, पूजीवादी, साम्यवादी और सम्प्रदायवादी शक्तियो स प्रतिद्वन्द्विता करनी है। यूरोपकी तुलना म, एशिया के राष्ट्र अधिक वामपन्थी हैं। उनमे व्यक्तिवाद का प्रभाव कम है और थोडे समय मे अधिक काय करने की चिन्ता म व सामूहिक तरीको को अपनाने के लिए भी तयार हैं।"[2]

प्रजातान्त्रिक समाजवाद के मूल सिद्धान्त
अथवा
प्रजातान्त्रिक समाजवाद की मुख्य विशेषतायें
(Basic Principles of Democratic Socialism
or
Main Features of Democratic Socialism)

यद्यपि कोई एसे ठोस सिद्धान्त नही जिन पर प्रजातान्त्रिक समाजवाद निर्धारित किया गया है फिर भी इसकी मूल विचारधारा को निम्न विशेषताओ म व्यक्त किया जा सकता है—

1 यह समग्रवादी राज्य का विरोधी है (It is against totalitarian State)

प्रजातान्त्रिक समाजवाद समग्रवादी, निरकुशतावादी अथवा एक दलीय राज्य का विरोधी है। इस तरह यह साम्यवादी, फासिस्टवादी और अन्य इसी प्रकार के अधिनायकवादी राज्य का विरोधी है। यह साम्यवाद को अपना शत्रु नम्बर एक समझता है और उसकी 'नवीन साम्राज्यवाद का यन्त्र' कह कर भत्सना करता है। यद्यपि समस्याओ के प्रति प्रजातान्त्रिक समाजवादियो का दृष्टिकोण राष्ट्रीय है परन्तु "रूसी साम्यवाद के विरोध" मे व एक मत है।

1 2 Quoted by H K Gokhale in his *Political Science* (1970) p 389

2 यह प्रजातान्त्रिक सिद्धान्तों में अटूट विश्वास रखता है (It has unshakable faith on democratic principles)

प्रजातान्त्रिक समाजवाद का प्रजातान्त्रिक सिद्धान्तों में अटूट विश्वास है। यह निर्वाचन, ससद और बहुमत दलीय सरकार में विश्वास करता है। इसमें मतदाताओं के निर्वाचन के अधिकार को निरन्तर बनाये रखा जाता है। इसमें सरकार उस समय तक काय करती है जब तक उसे ससद में बहुमत का विश्वास प्राप्त होता है। इसमें विरोधी दलों का गला नहीं घोटा जाता, बल्कि दलों में यह मौन समझौता होता है कि वे सवैधानिक या शान्तिमय साधनों द्वारा ही परिवर्तन लायेंगे। इस तरह प्रजातान्त्रिक समाजवादी सरकार आलोचनात्मक और उत्तरदायी सरकार होती है। जैसाकि ऐवन एफ० एम० डर्बिन ने लिखा है कि "प्रजातान्त्रिक प्रणाली समाजवाद का अन्तर्निहित अग है और इसे उससे पृथक् नहीं किया जा सकता।"[1]

3 यह व्यक्ति की स्वतन्त्रता की गारण्टी देता है (It guarantees individual freedom)

प्रजातान्त्रिक समाजवाद व्यक्ति की स्वतन्त्रता का पुजारी है लेवियाथान राज्य का नहीं। इसमें व्यक्ति अपनी स्वतन्त्रताओं का उपयोग स्वतन्त्र रूप से करता है। इस प्रणाली में साम्यवाद की भाँति किसी प्रकार का सैनिकवाद, अधिनायकवाद व सेंसरवाद नहीं होता। इसमें व्यक्ति स्वतन्त्रतापूर्वक अपना जीवन व्यतीत कर सकता है, किन्हीं विचारों को रख सकता है तथा उनका प्रचार कर सकता है। अन्तर्राष्ट्रीय समाजवाद के फ्रैंकफोर्ट के सम्मेलन की घोषणा में कहा गया है कि "स्वतन्त्रता के बिना कोई समाजवाद नहीं हो सकता। प्रजातन्त्र के माध्यम से ही समाजवाद की प्राप्ति हो सकती है।"[2]

4 यह समानता का पोषक है (It fosters equality)

प्रजातान्त्रिक समाजवाद समानता के सिद्धान्त का पोषक है। परन्तु इसका यह अभिप्राय नहीं कि वह समाज में पूर्ण या निरपेक्ष समानता लाना चाहता है। यह न तो सम्भव है और न ही कुशलता और उत्पादन के लिए अनिवार्य ही है। हाँ, यह अवश्य है कि यह सम्पत्ति की गम्भीर विषमताओं को समाप्त कर देना चाहता है ताकि कोई इन विषमताओं के कारण किसी का शोषण न कर सके। यह सामाजिक

---

1 'The democratic method is an inherent part of socialism and cannot be separated from it'—Durbin, Evan F M The Politics of Democratic Socialism p 235

2 Without freedom there can be no socialism Socialism can be achieved only through democracy —Quoted by Joseph S R... in his *Contemporary Political Ideologies* (1961), p 116

पर बल देता है। जहाँ प्रजातान्त्रिक समाजवाद सफल हुआ है, जैसे ब्रिटेन, न्यूजीलैण्ड, आस्ट्रेलिया आदि देशों मे, वहाँ आय की गम्भीर विषमताओ को दूर कर दिया गया है।

5 यह अर्थ व्यवस्था पर प्रजातान्त्रिक नियन्त्रण चाहता है (It wants democratic control over economy)

प्रजातान्त्रिक समाजवाद की मूल विचारधारा यह है कि यदि साधारण व्यक्ति "राजनीतिक निर्णयों" मे भाग लेने की योग्यता रखता है (और प्रजातान्त्रिक सिद्धान्त इसी मान्यता पर आधारित है) तो वह आर्थिक निर्णयों मे भी भाग लेने की योग्यता रखता है। परन्तु वर्तमान प्रजातान्त्रिक पूजीवादी प्रणाली मे यह भाग साधारण व्यक्ति को प्राप्त नही होता। यह अधिकार तो केवल थोडे से पूँजीपतियो को ही प्राप्त होता है जिसे साधारण व्यक्ति चुनाव के समय नियन्त्रित नही कर सकता। इसलिए प्रजातान्त्रिक समाजवाद मतदाता (साधारण व्यक्ति) के पास यह अधिकार देना चाहता है कि वह उस सरकार द्वारा, जिसे वह निर्वाचित करता है, अपने आर्थिक भविष्य पर नियन्त्रण रख सके। ससद को ही आर्थिक निर्णयो को नियन्त्रित करने की शक्ति होनी चाहिए न कि थोडे से पूँजीपतियो को। ससद को ही इस बात का निर्णय करना चाहिए कि कौन से उद्योग सार्वजनिक स्वामित्व मे रहेंगे, कौन से सार्वजनिक नियन्त्रण और नियमन मे रहेंगे और कौन से निजी स्वामित्व के अधीन रहगे। सक्षेप मे, प्रजातान्त्रिक समाजवाद अर्थ व्यवस्था को प्रजा के निर्वाचित प्रतिनिधियो द्वारा निर्धारित कराना चाहता है। यह अधिकाश अर्थ व्यवस्था पर सरकारी स्वामित्व रखना चाहता है और शेष पर सरकारी नियमन। यह विस्तृत लोक कल्याणकारी योजनाओ की व्यवस्था चाहता है।

6 यह आर्थिक सुरक्षा की गारन्टी देता है (It guarantees economic security)

समाजवाद प्रजातन्त्र का विकल्प नही बल्कि उसका पूरक है। जैसाकि नार्मन थामस ने कहा है कि "समाजवाद प्रजातन्त्र की ही पूर्ण सिद्धि है।"[1] इसका विश्वास है कि आर्थिक सुरक्षा के अभाव मे राजनीतिक स्वतन्त्रता निरर्थक बन कर रह जाती है। लास्की के शब्दो मे 'आर्थिक सुरक्षा के बिना स्वतन्त्रता किसी काम की नही', 'जिस समाज मे आर्थिक क्रियाओ के फल असमान रूप से वितरित होते हैं वहाँ स्वतन्त्रता की उपेक्षा की जाती है।"[2] इसलिए प्रजातान्त्रिक समाजवाद मे लोक-कल्याण

1 "Socialism itself is the fulfilment of democracy '—*Norman Thomas*

2 ' Without economic security liberty is not worth having any society in which the fruits of economic operations are unequally distributed will be compelled to deny freedom as the law of its being '—Laski, H J Quoted by E M Burns in his *Ideas in Conflict*, p 189

सारी योजनाओं का उद्देश्य लोगों को आर्थिक सुरक्षा प्रदान करना होता है। इसके लिए पूर्ण रोजगार और उच्चतर उत्पादन की व्यवस्था की जाती है, अच्छे वेतन, बढ़ता हुआ जीवन स्तर, सामाजिक सुरक्षा, आय और सम्पत्ति का उचित वितरण, गृह निर्माण, वृद्धावस्था पेन्शन, जीवन बीमा आदि की व्यवस्था की जाती है। स्वास्थ्य, चिकित्सा, शिक्षा आदि सेवाओं को विस्तृत मात्रा में उपलब्ध किया जाता है।

7 यह आर्थिक सत्ता का विकेन्द्रीकरण चाहता है (It wants decentralization of economic power)

प्रजातान्त्रिक समाजवाद आर्थिक सत्ता के केन्द्रीयकरण के विरुद्ध है। परन्तु इसका यह अभिप्राय नहीं कि यह उत्पादन के सभी साधनों पर सार्वजनिक स्वामित्व चाहता है। प्रजातान्त्रिक समाजवाद स्वयं में साध्य नहीं होता, यह तो साध्य की प्राप्ति के लिए साधन मात्र है। इसमें केवल मुख्य-मुख्य उद्योगों जैसे इस्पात, कोयला, लोहा, सीमेन्ट, विद्युत, पानी, गैस, यातायात, संचार, परिवहन आदि को या उन उद्योगों को जिनमें एकाधिकार की प्रवृत्ति है सार्वजनिक क्षेत्र में रखा जाता है और आवश्यकता हो तो अन्य उद्योगों का नियमन किया जा सकता है। यह भी हो सकता है कि एक क्षेत्र में एक या अनेक उद्योगों पर सार्वजनिक स्वामित्व स्थापित किया जाय और बाकी उद्योगों को स्वतन्त्र छोड़ दिया जाय। जैसे ब्रिटेन में इस्पात के क्षेत्र में सभी उद्योगों पर सार्वजनिक स्वामित्व नहीं। उद्योगों पर सार्वजनिक स्वामित्व की मात्रा देश के आर्थिक ढाँचे और सामाजिक व्यवस्था पर निर्भर करती है।

8 यह राष्ट्रीयकरण नहीं सामाजीकरण चाहता है (It wants Socialization not nationalisation)

प्रजातान्त्रिक समाजवाद सामाजीकरण चाहता है राष्ट्रीयकरण नहीं। राष्ट्रीयकरण के अनुभव से प्रजातान्त्रिक समाजवादियों की धारणा बन गई है कि राष्ट्रीयकरण न तो श्रमिकों के दृष्टिकोण में परिवर्तन लाता है और न कुशलता और उत्तरदायित्व की समस्याओं को हल करता है बल्कि इसने 'राज्यवाद' (statism) और नौकरशाहीवाद (bureaucratization) की समस्याओं को गम्भीर बना दिया है। जैसे जैसे श्रमिकों का जीवन स्तर ऊँचा उठता जाता है और वे मध्यम वर्ग में शामिल होते जाते हैं वैसे वैसे राष्ट्रीयकरण के प्रति मतदाताओं की निष्ठा कम होती जाती है। यह स्थिति विशेषकर ब्रिटिश मतदाता के साथ है। श्रमिक दल जिसने अपने प्रथम बहुमत शासन काल में (1945 1950) अनेक उद्योगों का राष्ट्रीयकरण किया वह भी अब अधिक राष्ट्रीयकरण की माँग नहीं करता। अब प्रजातान्त्रिक समाजवादी उद्योगों पर प्रत्यक्ष सार्वजनिक स्वामित्व के लिए इतना अधिक बल नहीं देता जितना कि उन पर सामाजिक नियन्त्रण और नियमन पर बल देता है। आज वह "योजना के लिए आवश्यक केन्द्रीयकरण और स्वतन्त्रता के लिए आवश्यक विकेन्द्रीकरण में सन्तुलन प्राप्त करने पर बल देता है।"

9 यह उद्योग को एक सेवा मानता है (It considers Industry a service)

प्रजातान्त्रिक समाजवाद की धारणा है कि उद्योग समाज की किसी 'सेवा की' पूर्ति के लिए है न कि 'लाभ' प्राप्ति के लिए। टॉनी ने तो उद्योग की परिभाषा ही 'सेवा' के रूप में की है। उसके शब्दों में, "उद्योग इससे अधिक कुछ रहस्यापासना नही कि वह भिन्न स्तरों पर प्रतिद्वन्द्विता और सहयोग के लिए एकत्रित हुए ऐसे व्यक्तियो का समूह है जो समाज को कुछ सेवा प्रदान कर जिसकी समाज को आवश्यकता है, अपने जीविकोपार्जन के साधनों को प्राप्त करते हैं।"[1]

10 यह उद्योग मे प्रजातन्त्र लाना चाहता है (It wants democracy in Industry)

प्रजातान्त्रिक समाजवाद उद्योग म प्रजातन्त्र लाना चाहता है। इसकी धारणा कि जब तक उत्पादन और वितरण मे प्रजातान्त्रिक सिद्धान्तों को अपनाया नही जाता तब तक प्रजातन्त्र पूर्ण नही। यह उद्योगो के प्रबन्ध म मालिको, श्रमिको और सरकार तीनो का प्रतिनिधित्व चाहता है। टॉनी का तो यह भी मत है कि श्रमिको से इन बातो पर भी परामर्श लेना चाहिए कि क्या घाटे के उद्योगों को बन्द कर दिया जाय, नई मशीनों और प्रविधियों (techniques) का प्रयोग किया जाय। कर्मचारियों से सम्बन्धित अनुशासनात्मक कार्यों पर भी उनसे परामर्श लेना चाहिए। टॉनी इस तर्क को स्वीकार नही करता कि श्रमिको मे तकनीकी ज्ञान की कमी होती है और वे उद्योग के प्रबन्ध म हिस्सा लेने की योग्यता नही रखते। इस तर्क के उत्तर म टॉनी कहता है कि उद्योगो के निदेशक बोर्डों (Board of Directors) के 9/10 सदस्य साधारण व्यक्ति होते ह। यदि वे उद्योग के प्रबन्धक बन सकते हैं तो श्रमिक भी प्रबन्ध मे हिस्सा ले सकते है।

11 यह निजी सम्पत्ति का विरोधी नहीं (It is not against individual property)

प्रजातान्त्रिक समाजवाद सम्पत्ति का नियन्त्रण और नियमन चाहता है परन्तु इसका यह अभिप्राय नही कि यह निजी सम्पत्ति की आज्ञा नही देता। इसमे निजी सम्पत्ति का स्थान है परन्तु निजी सम्पत्ति केवल ऐसी चीजों म विद्यमान है जैसे निजी चीजें, घर, छोटे छोटे उद्योग (कृषि, हस्तशिल्प, परचून व्यापार, और मध्यम श्रेणी के उद्योग)। किन्ही हालातो म, अपनी-अपनी राष्ट्रीय परिस्थितियो के अनुसार, बडे बड़े उद्योग भी निजी क्षेत्र में रखे जाते हैं।

प्रजातान्त्रिक समाजवाद का उद्देश्य निजी सम्पत्ति को समाप्त करना नही बल्कि बड़ी-बडी आमदनियों (big incomes) को समाप्त करना है। यह क्रियाहीन सम्पत्ति की सम्प्रभुता (sovereignty of functionless property) को समाप्त

1 Tawney R H The Acquisitive Society Quoted by Ebenstein his, *Ibid*, p 592

करना चाहता है। यह क्रियाहीन सम्पत्ति के उस तत्व या शक्ति को समाप्त करना चाहता है जो समाज में शोषण, अन्याय और अत्याचार को जन्म देता है। संक्षेप में, यह सम्पत्ति के असामाजिक कार्यों का दमन करना चाहता है।

12 **यह लोक-कल्याणकारी राज्य की स्थापना चाहता है (It wants to establish a welfare state)**

प्रजातान्त्रिक समाजवाद के कार्य सार्वजनिक कल्याण की भावना से प्रेरित होते हैं। यह समाज के किसी वर्ग या किसी व्यक्ति के कल्याण से सम्बन्धित नहीं होता। यह तो व्यक्तिवाद और यथेच्छाकारिता के सिद्धान्त का विरोधी है। यही कारण है कि यह फालतू निजी सम्पत्ति या आय को सार्वजनिक सम्पत्ति में परिवर्तित कर लोगों को वे सेवायें प्रदान करना चाहता है जो निजी उद्योग प्रदान नहीं कर सकते और न ही "उच्च वेतन" और "अधिक काय" से वे प्राप्त किये जा सकते हैं। टानी का विश्वास है कि हैजे और काला ज्वर जैसी बीमारियों से छुटकारा सार्वजनिक अनुष्ठान द्वारा ही सम्भव है। समाज की सामूहिक शक्ति ही स्वास्थ्य, चिकित्सा, शिक्षा, मनोरंजन, सुरक्षा तथा अच्छे जीवन की सुविधायें जुटा सकती है। अस्पतालों, स्कूलों, पुस्तकालयों, शोध केन्द्रों, पार्कों, सर्वसामान्य मार्गों की माँग कोई निजी उद्योग पूरा नहीं कर सकता। यह उत्तरोत्तर आय करों द्वारा तथा मृत्यु करों द्वारा फालतू निजी सम्पत्ति को सार्वजनिक सम्पत्ति में परिवर्तित कर इन सेवाओं को उपलब्ध करता है। इतना ही नहीं, इस व्यवस्था में श्रमिक संघों और सहकारी संस्थाओं को भी सहायता दी जाती है। पश्चिम के देशों में, विशेषकर स्केण्डेनेवियन देशों में, न्यूजीलैण्ड, आस्ट्रेलिया, ब्रिटेन में, समाजवाद व्यावहारिक बन चुका है। जैसाकि रेमाण्ड ऐरन ने कहा है कि "पश्चिम में समाजवाद अब कोई मिथ नहीं। यह तो वास्तविकता का एक अंग बन गया है।"[1]

13 **यह सहमति से क्रान्ति लाना चाहता है (It wants to bring revolution by consent)**

प्रजातान्त्रिक समाजवाद 'सहमति' से क्रान्ति लाना चाहता है। यह हिंसा, दमन या आतंक द्वारा क्रान्ति नहीं चाहता। यह परिवर्तन के लिए संवैधानिक और शान्तिमय साधनों का सहारा लेता है। यह अनुनय और प्रबोध में विश्वास करता है। यह वास्तविक समस्याओं के प्रति सामाजिक चेतना उत्पन्न कर परिवर्तन लाना चाहता है। इसमें 'जनमत' परिवर्तन का आधार है, अनुनय इसका साधन है और संसद इसका मंच है। यह राजनीतिक दलों का निर्माण कर, संसद में बहुमत प्राप्त कर अपनी समाजवादी नीतियों को कार्यान्वित करता है।

---

1 Socialism has ceased in the west to be a myth because it has become part of reality —A Raymond Quoted by C A R Crosland in his *Socialist Parties of the Future*

14 यह प्रतिद्वंद्विता के स्थान पर सहयोग पर बल देता है (It fosters Cooperation than Competition)

प्रजातान्त्रिक समाजवाद का विश्वास है कि प्रजातान्त्रिक पूंजीवाद प्रतिद्वन्द्विता की प्रणाली पर आधारित है जो समाज मे निर्धनता, शोषण, अन्याय और अत्याचार को जन्म देती है। इसलिए प्रजातान्त्रिक समाजवाद प्रतिद्वंद्विता के स्थान पर सहयोग पर बल देता है। राबर्ट ओवेन का विश्वास था कि सहयोग से स्वामियो और श्रमिको म विरोध की भावना समाप्त हो जायगी और उत्पादन म वृद्धि होगी।

15 इसमे पारिश्रमिक का आधार काय है (The basis of reward is work)

प्रजातान्त्रिक समाजवाद मे पारिश्रमिक का आधार काय है। यह सम्पत्ति के आधार पर किसी को आमदनी, लाभ या उपलब्धि नही कराना चाहता। इसम सेवा या काय ही आमदनी का आधार है। यही कारण है कि टॉनी क्रियाहीन सम्पत्ति को वैध सम्पत्ति का सबसे बडा शत्रु मानता है। परन्तु टानी सम्पत्ति को जब्त (Confiscate) करना नही चाहता। वह इसका केवल नियमन चाहता है और काय के आधार पर मुआवजा देना चाहता है। टॉनी के शब्दो म, 'किसी व्यक्ति को तब तक कोई मुआवजा नही मिलेगा जब तक वह समाज की सेवा नही करता।'[1]

16 यह मानवतावाद है (It is humanism)

प्रजातान्त्रिक समाजवाद मानवतावाद है। यह एक ऐसा वाद है जो व्यक्ति के महत्त्व और कल्याण पर आधारित है। इसकी नीतिया और योजनाओ का केन्द्र बिन्दु व्यक्ति का कल्याण तथा उसकी सुरक्षा है। यह व्यक्ति को आर्थिक और सामाजिक सुरक्षा के साथ राजनीतिक और सांस्कृतिक स्वतन्त्रता भी प्रदान करता है। यह एक ऐसा अन्तर्राष्ट्रीय आन्दोलन है जो माग की एकरूपता की माँग नही करता यह तो सामाजिक न्याय, अच्छे जीवन, स्वतन्त्रता और विश्व शान्ति की माँग करता है।'[2]

प्रजातान्त्रिक पूंजीवाद पर सबसे बडा आरोप यह है कि इसम क्षमता होते हुए भी यह निर्धनता, बीमारी आदि विषमताओ को दूर करने मे असफल हुआ है क्योकि उसकी आर्थिक नीतियाँ प्रतिद्वन्द्विता और यथेच्छाकारिता पर आधारित हैं। प्रजातान्त्रिक समाजवाद इन विषमताओ को दूर करने के लिए कोई अल्लादीन का चिराग नही परन्तु यह कम स कम ऐसा वैज्ञानिक तरीका है जो इन विषमताओ को दूर करने की दिशा बताता है। यह सामाजिक समस्याओ का विश्लेषण भी करता है और नैतिक नियमो की उपेक्षा भी नही करता।

---

1 'No one would receive compensation except for service rendered to society' —Tawney, R H *The Acquisitive Society*

2 'Socialism is an international movement which does not demand a rigid uniformity of approach it strives for a system of social justice better living, freedom and world peace' —Quoted by Joseph S Roucek in his *Contemporary Political Ideologies*, p 117

प्रजातान्त्रिक समाजवाद का मूल्यांकन
(Evaluation of Democratic Socialism)

प्रजातान्त्रिक समाजवाद में गुण दोषों का सम्मिश्रण है। जिन आधारों पर इसकी प्रशंसा की जाती है तथा जिन आधारों पर इसकी आलोचना की जाती है वे निम्न प्रकार से है—

गुण (Merits)

1 यह समाज के सभी वर्गों के कल्याण पर आधारित वाद है। यह सारे समाज का कल्याण चाहता है किसी एक व्यक्ति या वर्ग का नहीं।

2 इसमें न तो पूँजीवाद के दोष हैं और न ही साम्यवाद के। यह व्यक्ति को पूँजीवाद के शोषण, अत्याचार और असमानता से मुक्ति दिलाता है और साम्यवाद के निरंकुशतावाद एकतन्त्रवाद और सेन्सरवाद से भी मुक्ति दिलाता है

3 यह व्यक्ति के व्यक्तित्व पर महत्त्व देता है और उसकी स्वतन्त्रताओं को सुरक्षित रखता है। आर्थिक सुरक्षा के साथ यह व्यक्ति को सामाजिक, राजनीतिक धार्मिक और सांस्कृतिक स्वतन्त्रता भी प्रदान करता है।

4 यह व्यक्ति के हितों और समाज के हितों में सन्तुलन बनाये रखता है। यह न तो व्यक्ति की रक्षा के लिए समाज की उपेक्षा करता है और न ही समाज के लिए व्यक्ति की बलि देता है।

5 यह उद्योगों को लाभ का साधन नहीं मानता बल्कि 'सामाजिक सेवा की पूर्ति का साधन मानता है।

6 यह आर्थिक सत्ता का विकेन्द्रीकरण चाहता है। यह निजी सम्पत्ति का उन्मूलन नहीं चाहता उसका नियमन चाहता है।

7 इसने साम्यवादी आन्दोलन को शिथिल बना दिया है।

8 यह राष्ट्रीयकरण के दोषों से भी परिचित है तथा उन्हें दूर करने के लिए प्रयत्नशील भी है। नौकरशाही के दोषों को दूर करने के लिए ऑम्बड्समैन (Ombudsman) जैसी संस्थाओं का विकास किया गया है। भारत में लोकपाल (Lok Pal) और लोकायुक्त (Lok Ayukt) जैसी संस्थाओं का विकास हुआ है।

दोष (Demerits)

1 यह विरोधाभास है (It is a contradiction in terms)

ई० एम० बर्नस का विश्वास है कि प्रजातान्त्रिक समाजवाद स्वयं में एक विरोधाभास है। उनका कहना है कि प्रजातन्त्र और समाजवाद को पृथक्-पृथक् रूप से तो प्राप्त किया जा सकता है परन्तु दोनों को मिश्रित रूप में प्राप्त नहीं किया जा सकता। उनका कहना है कि जहाँ प्रजातन्त्र स्वतन्त्र संस्थाओं को चलाना चाहता है वहाँ समाजवाद कितनी परिस्थितियों में निरंकुश तरीकों की माँग करता है। इसके अतिरिक्त प्रजातान्त्रिक समाजवादी अपने समाजों में साम्यवादियों और फासि-

वादियो को पूर्ण स्वतन्त्रता देने से घबराते हैं जैसाकि ऐवन एफ० एम० डर्बिन ने कहा है "कि प्रजातन्त्र के शत्रुओ को प्रजातान्त्रिक सुविधाओ (अधिकारो) को प्राप्त करने का कोई अधिकार नही'।[1] परन्तु डर्बिन की यह विचारधारा उसके स्वय के इस कथन के विपरीत है कि प्रजातन्त्र मे विरोधियो के प्रति सहनशील होना चाहिए और उन्हें स्वतन्त्र भाषण और सगठन का अधिकार होना चाहिए।

2 यह किन्हीं ठोस सिद्धान्तो पर आधारित नहीं है (It is not based on rigid principles)

प्रजातान्त्रिक समाजवाद न तो पूर्णतया प्रजातान्त्रिक सिद्धान्तो पर आधारित है और न ही पूर्णतया समाजवादी सिद्धान्तो पर। इन दोनो सिद्धान्तो के सम्मिश्रण का परिणाम यह हुआ है कि यह व्यवहारवादी, उपयोगितावादी और अवसरवादी बन गया है। यद्यपि इस दृष्टिकोण का इसे लाभ भी हुआ है कि इसमे नये वर्गों को शामिल किया जा सकता है। परन्तु इससे य० आन्दोलन अपनी शक्ति खो बैठा है जसाकि पॉल रेमेडियर ने कहा है कि 'सिद्धान्त के बिना समाजवाद तनूकृत (पतला) हो जाता है और वह अपनी शक्ति को बैठता है।'[2]

3 राज्यवाद' का खतरा (Danger of Statism)

प्रजातान्त्रिक समाजवाद मे सबसे बडा दोष यह है कि इसमे लोक कल्याण के नाम पर राज्य के हाथों म अत्यधिक सत्ता का केन्द्रीयकरण हो जाता है। इससे राज्य वाद के दोष उत्पन्न हो जाते हैं। जिन स्वतन्त्रताओ का बचाव के लिए प्रजातान्त्रिक समाजवाद प्रयत्नशील है वे ही राज्य की दया पर निर्भर हो जाती हैं। यह ठीक कहा गया है कि जब राज्य ही सर्वसत्तावादी या एकाधिकारवादी हो तो उससे नागरिकों की रक्षा कौन करेगा। जिस तरीके से भारत म नागरिको के मूल अधिकारो पर विशेषकर सम्पत्ति के अधिकार पर कुठाराघात किया गया है वह इस बात का द्योतक है कि किस सीमा तक राज्यवाद से नागरिकों की स्वतन्त्रताओ का खतरा उत्पन्न हो सकता है। डर्बिन के शब्दो म, 'योजना कार्यक्रमों का मुख्य उद्देश्य प्रतिबन्ध है और इसका मुख्य परिणाम प्रतिद्वन्द्विता के स्थान पर एकाधिकार की स्थापना है।"[3]

---

1 The enemies of democracy have no moral right to the principles of democracy and that a time may come when to defend our selves it will be necessary to suppress their political organizations —Durbin E F M Quoted by E M Burns *Ibid*, p 185

2 "Socialism without doctrine becomes diluted and loses its vigour" —Paul Ramadier Quoted by Joseph S Roucek, *Ibid*, p 133

3 Main purpose (of planning programme) is restriction, and whose chief fruit is the substitution of monopoly for competition" —Durbin, E F M Quoted by E M Burns, *Ibid*, p 183

4 नौकरशाही की शक्ति में विस्तार और चरित्र का पतन (Extension of powers of Bureaucracy and degeneration of character)

प्रजातान्त्रिक समाजवाद में जैसे-जैसे राज्य की शक्ति में विस्तार होता जाता है वैसे-वैसे नौकरशाही की शक्ति का विस्तार होता जाता है। नौकरशाही की शक्ति में विस्तार से कर्मचारियों में भ्रष्टता, घूसखोरी, छल, कपट, व्यक्तिगत द्वेष की भावनाओं आदि का विकास होता है। कुनबापरस्ती और लाल फीताशाही का बढ़ने वाला होता है। क्योंकि कर्मचारी वर्ग किसी के प्रति उत्तरदायी नहीं होता इसलिए उसकी उद्दण्डता (arrogance) और भी बढ़ जाती है जैसाकि आर० एच० एस० क्रॉसमैन ने लिखा है कि "राष्ट्रीयकरण उत्तरदायित्व की समस्या का हल नहीं है।" इन सबका परिणाम यह हुआ है कि व्यक्ति के चरित्र का ह्रास हो गया है।

5 इस व्यवस्था में प्रेरणा के स्रोत नष्ट हो जाते हैं (It destroys sources of incentive and thus results in inefficiency)

प्रजातान्त्रिक समाजवाद में मौलिकता और दक्षता के लिए कोई प्रेरणा के तत्त्व विद्यमान नहीं होते क्योंकि समाजवाद में अधिक बल समानता पर दिया जाता है। इसमें आलसी और परिश्रमी, कुशल और अकुशल को एक ही तराजू में तौला जाता है जिससे कुशल और परिश्रमी व्यक्ति हतोत्साहित होते हैं। इससे न केवल उत्पादन में कमी होती है बल्कि वस्तुओं के गुणों में भी कमी आती है और अकुशलता बढ़ती है। इसके अतिरिक्त, कर्मचारियों की अकर्मण्यता, अकुशलता, उदासीनता और अनभिज्ञता समाज के लिए हानिकारक सिद्ध होती है।

6 उपभोक्ताओं को कठिनाइयों का सामना करना पड़ सकता है (The consumers can face hardships)

प्रजातान्त्रिक समाजवाद में मुख्य मुख्य उद्योग सार्वजनिक स्वामित्व के अधीन होते हैं। नौकरशाही की उदासीनता और भ्रष्टता के कारण उत्पादन में कमी आ जाती है जिससे उपभोक्ताओं को अनेक प्रकार की कठिनाइयों का सामना करना पड़ सकता है। इतना ही नहीं उपभोक्ताओं को अपनी आवश्यकतायें उत्पादन के अनुकूल समन्वित करनी पड़ती हैं और अनेक परिस्थितियों में तो उन्हें अपनी अनिवार्य आवश्यकताओं की बलि भी देनी पड़ सकती है।

7 निर्वाह व्यय बढ़ सकता है (It can increase cost of living)

प्रजातान्त्रिक समाजवाद में वेतनों की वृद्धि से निर्वाह व्यय बढ़ जाता है जिससे न केवल स्वामी ही प्रभावित होते हैं बल्कि श्रमिक भी प्रभावित होते हैं। स्थिर वेतन प्राप्त करने वाले लोगों की दशा दयनीय हो जाती है। उत्पादन मूल्य में भी वृद्धि हो जाती है जिससे स्फीती तत्त्वों (inflationary factors) को बढ़ावा मिलता है जो अन्तत माँग और पूर्ति पर प्रभाव डालते हैं।

8 समाजवाद साम्यवाद की प्रथम सीढ़ी है (Socialism is the first stage of communism)

समाजवाद पर एक आरोप यह लगाया जाता है कि यह साम्यवाद की प्रथम् सीढ़ी है और "साम्यवादी जल्दी मे समाजवादी है।"[1]

प्रजातान्त्रिक समाजवाद और प्रजातान्त्रिक पूँजीवाद
(Democratic Socialism and Democratic Capitalism)

प्रजातान्त्रिक समाजवाद और प्रजातान्त्रिक पूँजीवाद के उद्देश्य समान प्रतीत होते हैं। दोनो लोक कल्याणकारी राज्य की स्थापना चाहते हैं और समाज मे विद्यमान विषमताओ और शोषण की प्रणालियो को समाप्त करना चाहते है। परन्तु दोनो के क्षेत्रो और साधनो म अन्तर है। इनके भेदो को निम्न प्रकार से व्यक्त किया जा सकता है —

	प्रजातान्त्रिक पूँजीवाद	प्रजातान्त्रिक समाजवाद
1	इस व्यवस्था म अधिकाश पूँजी निजी स्वामित्व के अधीन रखी जाती है।	इस व्यवस्था मे अधिकाश पूँजी सार्वजनिक स्वामित्व के अधीन रखी जाती है।
2	इस व्यवस्था मे सम्पत्ति के सचयन पर बहुत कम या कोई वास्तविक सीमा नही होती।	इस व्यवस्था मे सम्पत्ति के सचयन की मात्रा पर कुछ सीमायें अवश्य होती हैं।
3	इस व्यवस्था मे बढती हुई कल्याण कारी योजनायें अपनाई जाती हैं।	इस व्यवस्था म व्यापक कल्याणकारी योजनायें विद्यमान होती हैं।
4	इस व्यवस्था मे औद्योगिक कुशलता के लिए प्रतियोगिता पर बल दिया जाता है।	इस व्यवस्था मे औद्योगिक विकास के लिए सहयोग पर बल दिया जाता है।
5	इस व्यवस्था मे व्यक्तिगत स्वतन्त्रता पर अधिक बल दिया जाता है। इसका विश्वास है कि स्वतन्त्रता तभी सम्भव है जब सम्पत्ति निजी स्वामित्व के अधीन हो।	इस व्यवस्था म व्यक्तिगत स्वतन्त्रता के साथ आर्थिक सुरक्षा पर भी बल दिया जाता है। इसका विश्वास है कि आर्थिक सुरक्षा के अभाव मे राजनीतिक स्वतन्त्रता मिथ्या है।
6	इस व्यवस्था म अर्थ व्यवस्था पर सरकारी नियमन होता है।	इस व्यवस्था मे भी अर्थ व्यवस्था पर सरकारी नियमन होता है।
7	इस व्यवस्था मे निगमनात्मक प्रणाली अपनाई जाती है।	इस व्यवस्था मे भी निगमनात्मक प्रणाली अपनाई जाती है।

उपर्युक्त तालिका से स्पष्ट है कि प्रजातान्त्रिक पूँजीवाद और प्रजातान्त्रिक

1 A Communist is 'a socialist in a hurry —Quoted by Ebenstein in his, *Ibid*, p 590

समाजवाद म मुख्य भेद इस सम्बन्ध मे है कि सम्पत्ति का किस तरह से रखा जाए है। अन्य भेद जो दोनो व्यवस्थाओ मे पाये जाते हैं यद्यपि वे महत्वपूर्ण हैं परन्तु मात्रात्मक हैं गुणात्मक नही।

प्रजातान्त्रिक समाजवाद और लोक कल्याणकारी राज्य (Democratic Socialism and Welfare State)

प्रजातान्त्रिक समाजवाद स्वय म साध्य नहीं बल्कि साध्य को प्राप्त करने के लिए साधन है। इसका उद्देश्य सवदा सार्वजनिक कल्याण है। लोक कल्याणकारी राज्य का उद्देश्य भी सार्वजनिक कल्याण है। परन्तु उद्देश्यो की समानता के बावजूद दोनो मे मूल भेद है। लोक कल्याणकारी राज्य के समथक मूलत पूँजीवादी ही रहते हैं और जब वे सम्पत्ति पर सरकारी स्वामित्व का समथन करते भी हैं तो वे पूँजीवाद का विनाश नही करते बल्कि उसमे सुधार चाहते हैं अर्थात वे पूँजीवाद मे सुधार ला कर ही अधिक से अधिक लोगो को लाभ पहुँचाना चाहते हैं। सुधारों के सम्बन्ध मे उनकी माँगें प्रजातान्त्रिक समाजवादियो के समान या उनसे उग्र भी हो सकती हैं परन्तु वे वतमान प्रणाली (पूँजीवादी प्रणाली) को बुरा नही मानते और न ही उसका लोप (हटाना) करना चाहते हैं। वे उपयोगिता के आधार पर वतमान पूँजीवादी प्रणाली को सुधारना चाहते हैं। दूसरी ओर, प्रजातान्त्रिक समाजवादी वतमान पूँजीवादी प्रणाली को 'दोषी' या 'बुराई' मानते हैं। यद्यपि वे इसे हिंसा द्वारा नष्ट करना नही चाहते जैसा कि साम्यवादी चाहते हैं परन्तु वे इसका लोप करके इसके स्थान पर किसी अच्छी प्रणाली का स्थापित करना चाहते हैं। वे सुधारो के महत्व को समझते हैं परन्तु इनकी धारणा है कि उत्पादन के साधनो मे प्रारम्भिक सामाजीकरण के इन उपायो के बिना सुधार लाभ के स्थान पर हानि पहुँचा सकते हैं। हो सकता है कि सामाजीकरण के बिना सुधार एकाधिकारवादी प्रवृत्तियो और बनावटी खुशहाली को प्रोत्साहन दे और समाज की कीमत पर समाज के कुछ वर्गों को ही लाभ हो। इस तरह प्रजातान्त्रिक समाजवादी सामाजीकरण के साथ ही सुधारो की उपयोगिता पर बल देते हैं।[1]

EXERCISES

1 प्रजातान्त्रिक समाजवाद की क्या विशेषतायें हैं ? इसके गुण दोषो पर प्रकाश डालिये।
2 प्रजातान्त्रिक समाजवाद के विकास के क्या कारण हैं ?
3 'प्रजातान्त्रिक समाजवाद मे प्रजातन्त्र और समाजवाद दोनो के गुणो का समावेश है।" व्याख्या कीजिये।

1 See E M Burns *Ideas in Conflict* p 201

4 "प्रजातान्त्रिक समाजवाद उग्र पूँजीवाद और उग्र समाजवाद (साम्यवाद) को स्वीकार नहीं करता।" क्या आप इस कथन से सहमत हैं ? कारण लिखिए।

5 "प्रजातान्त्रिक समाजवाद की प्रमुख समस्यायें नौकरशाहीवाद के दोषों को दूर करना है, उद्योगों को उत्तरदायी बनाना है तथा उच्च उत्पादन प्राप्त करना है।" व्याख्या कीजिए।

6 प्रजातान्त्रिक समाजवाद और प्रजातान्त्रिक पूँजीवाद में क्या भेद है ? क्या प्रजातान्त्रिक समाजवाद और लोक कल्याणकारी राज्य एक ही चीज है ?

8 श्रम स

(Syndicalism)

श्रम सघवाद का अर्थ

श्रम सघवाद शब्द की उत्पत्ति फ्रेन्च शब्द सिण्डिकट (Syndicat) से हु है जिसका अर्थ श्रम सघ (trade union) है। फ्रास मे इसका प्रयोग ट्रेड यूनियन लिए ही किया जाता है। यह एक ऐसा सिद्धात एव आदोलन है जो समष्टि के विरुद्ध एक विद्रोह एव प्रतिक्रिया है। श्रम सघवाद का विश्वास है कि या ससदात्मक साधनों से समाजवाद की स्थापना नही हो सकती। यह सीधी कार्यवाही—हड़ताल, तोडफोड बहिष्कार, लेबल—के साधनो मे विश्वास कर है। यह पूर्णतया श्रमिक आदोलन है। यह पूजीवादी व्यवस्था का नष्ट कर पर श्रमिकों का शासन चाहता है।

श्रम सघवाद मार्क्सवाद और अराजकतावाद से प्रभावित है। परन्तु यह का जोड मात्र नहीं। अपनी उत्पत्ति मे यह एक स्वाभाविक (spontaneous) आ लन है। इसने मार्क्सवाद के वर्ग सघर्ष के सिद्धात को अपनाया और अराजकता के राज्य के प्रति विरोध को अपनाया। इस दृष्टि मे इसे मार्क्सवाद अराजकता का शिशु कहते हैं। परन्तु श्रम सघवाद अपने विचारो की प्रेरणा के लिए मार्क्स की तुलना मे प्रोधा (Proudhon) के प्रति अधिक आभारी है। यही कारण है कि श्रम सघवाद को अराजकतावादी श्रम सघवाद (anarcho syndicalism) या स अराजकता (organized anarchy) कहा जाता है। इसका जन्म फ्रास म उस हुआ था जब वहां के प्रजातन्त्र म भ्रष्टाचार, अन्याय, शोषण और उत्पीड़न चरम सीमा पर थे। इसलिए श्रम सघवाद को पतित प्रजातन्त्र का प्रतिशोध न्याय (a nemesis of corrupt democracy) भी कहते हैं। यह क्रान्ति का यूनियनवाद से भी मिलाता है। इसलिए इसे क्रान्तिकारी ट्रेड यूनियनवाद (rev

tionary trade unionism) भी कहते है । हैलोवेल ने ठीक लिखा है कि "श्रम सघवाद अराजकतावाद, मार्क्सवाद और ट्रेड यूनियनवाद का वर्ण सकर है ।"[1]

श्रम सघवाद की परिभाषा

श्रम सघवाद की मुख्य परिभाषाएँ निम्न हैं—

1 कोकर के शब्दो म, 'श्रम सघवाद वह सिद्धान्त है जिसके अनुसार केवल श्रमिको को उन परिस्थितियो का नियन्त्रण करना चाहिए जिनमे वे काम करते है तथा जीवन बिताते है । जिन सामाजिक परिवर्तनो की उन्हे आवश्यकता होती है उनको वे केवल अपने प्रयत्नो से अपने सघो की प्रत्यक्ष कार्यवाही के द्वारा तथा उन साधनो से जो उनकी विशिष्ट आवश्यकताओ के अनुरूप होते है, प्राप्त कर सकते हैं ।'[2]

2 जोड के शब्दो म 'श्रम सघवाद सामाजिक सिद्धान्त का वह रूप है जो श्रम सघो को नये समाज का आधार तथा उस समाज को प्राप्त करने का साधन मानता है ।[3]

3 हूवर के शब्दो मे, श्रम सघवाद स अभिप्राय उन क्रान्तिवादियो के सिद्धान्तो और कार्यक्रमो से है जो पूजीवाद को नष्ट करने तथा समाजवादी समाज की स्थापना करने के लिए औद्योगिक सघो की आर्थिक शक्ति का प्रयोग करना चाहते हैं ।[4]

4 अलेक्जेण्डर ग्रे के शब्दो मे, श्रम सघवाद सक्षेप म, समाजवाद का वह रूप है जो क्रान्ति को वर्ग सघर्ष का परिणाम मानता है और जो श्रमिक सघ का यान्त्रिक रूप म प्रयोग करके निश्चित ही राज्य रूपी यन्त्र का अन्त कर देगा ।'

श्रम सघवाद का विकास

श्रम सघवाद की उत्पत्ति फ्रास मे उन्नीसवी शताब्दी के उत्तरार्द्ध (second half) म तब हुई जब फ्रासीसी सरकार ने कानून द्वारा श्रमिको के सघो तथा सगठनो पर प्रतिबन्ध हटा लिए । सन 1864 1868 और 1884 के नियमो ने जब श्रमिको के समुदाय या सघ बनाने के अधिकार को स्वीकार किया तो जो श्रमिक अभी तक बिखरे हुए थे उन्होने अपने आपको सगठित करने का प्रयास किया । सन 1887 म

---

1 Syndicalism is a kind of hybrid of anarchism Marxism and trade unionism' —Hallowell *Main Currents in Modern Political Thought* p 458
2 Coker Francis W *Recent Political Thought* p 229
3 Joad C E M *Introduction to Modern Political Theory* p 63
4 Hoover, G V *Twentieth Century Political Thought*

पेरिस मे फौजी ढग के सघ का निर्माण हुआ जिसे बोसस (Bourses)[1] कहते हैं। इस उदाहरण को देखकर अन्य नगरो मे भी इसी प्रकार के बोसस की स्थापना हुई। दो वर्ष के अन्दर ही अर्थात् सन् 1893 मे बोसस के एक राष्ट्रीय सघ (National Federation of Bourses) की स्थापना पेरिस मे हुई। शीघ्र ही यह बोसस का राष्ट्रीय सघ श्रमिक आन्दोलन का केन्द्र बन गया। दो वर्ष बाद अर्थात सन 1895 में केन्द्रीय श्रम (Central Federation of Labour–Confederation Generale de Travail) की स्थापना हुई जो श्रमिको का मुख्य राष्ट्रीय सघ बन गया। सन् 191[illegible] मे यह आन्दोलन दो गुटो मे विभक्त हो गया और उसके साथ ही इस आन्दोलन की शक्ति समाप्त हो गयी और इसका पतन हो गया।

श्रम सघवाद की विशेषताएँ
अथवा
श्रम सघवाद का दर्शन
(Features of Syndicalism
or
Philosophy of Syndicalism)

श्रम सघवाद की मुख्य विशेषताएँ निम्न हैं—

(1) राज्य विरोधी, (2) देश प्रेम विरोधी, (3) सैन्यवाद (युद्ध) विरोधी, (4) राजनीतिक दल विरोधी (5) ससद विरोधी (6) प्रजातन्त्र विरोधी, (7) [illegible] वर्ग विरोधी, (8) सोवियत व्यवस्था विरोधी, (9) शुद्ध श्रमिक आन्दोलन [illegible] सीधी कार्यवाही के समर्थक।

1 राज्य विरोधी

मार्क्सवादियों की तरह श्रम सघवादी राज्य विरोधी हैं। उनके [illegible] राज्य एक बुर्जुआ और मध्यमवर्गीय संस्था है जो [illegible] (पूँजीपतियों) के हितों की रक्षा करता है [illegible] रखता है तथा वर्गीय भेद को कायम रखता है। [illegible] श्रमिकों के हितों के विरुद्ध [illegible] है। [illegible] राज्य केवल [illegible] का प्रतिनिधित्व करता है [illegible] (श्रमिकों) का नहीं। श्रम सघवादी [illegible] राज्य का [illegible] और [illegible]

---

1 [illegible]

मानते हैं। यह अन्याय और अत्याचार पर आधारित है। श्रम संघवादियों की धारणा है कि जिस प्रकार चीता अपने धब्बों में परिवर्तन नहीं कर सकता उसी प्रकार राज्य अपने बुर्जुआ स्वरूप में परिवर्तन नहीं कर सकता।'[1]

श्रम संघवादी कहते हैं कि राज्य का शासन नौकरशाही के सहारे चलता है जो जन साधारण की आवश्यकताओं और आकांक्षाओं को नहीं समझती। जनता की माँगों के प्रति उसका दृष्टिकोण सदा उदासीन होता है। उनके प्रति उसकी सहानुभूति नहीं होती।

श्रम संघवादियों की धारणा है कि राज्य की प्रकृति एकत्ववादी, केन्द्रीयकरण और सत्तावादी होती है। इसमें प्राणहीन एकरूपता और यान्त्रिकता की मात्रा अधिक होती है। उनके मतानुसार 'एक केन्द्रीय संगठन की प्रवृत्ति एकरूपता, नित्य श्रम, कल्पना के अभाव, स्थानीय विकास और साहसिक व्यवसाय में अविश्वास की होती है। सर्वश्रेष्ठ (परोपकारी) राज्य भी प्रगति का विरोधी होगा।'[2]

श्रम संघवादी राज्य को सैद्धान्तिक रूप से गलत मानते हैं। यह सामाजिक एकता के असम्भव आदर्श पर आधारित है जबकि समाज का स्वरूप मूलतः बहुलवादी है। कोई भी राजनीतिक दर्शन समाज के इस बहुलवादी स्वरूप को नहीं बदल सकता। राज्य के सामाजिक एकता के उद्देश्य को प्राप्त करना कठिन है। समाज एक इकाई नहीं हो सकता क्योंकि समाज में विद्यमान भिन्न भिन्न समूहों के पृथक् तथा परस्पर विरोधी हितों में सामन्जस्य स्थापित करना कठिन है। प्रत्येक वर्ग की अपनी विशिष्ट सामाजिक विशेषताएँ होती हैं, अपनी पृथक संस्कृति होती है, अपने पृथक् नैतिक नियम होते हैं, उचित अनुचित के अपने पृथक मापदण्ड होते हैं अपने पृथक काम के ढंग होते हैं तथा पृथक आर्थिक भिन्नतायें होती हैं। इतना ही नहीं प्रत्येक वर्ग अपनी प्रणाली को दूसरों पर लादने की कोशिश भी करता है। इन सबमें सामन्जस्य उत्पन्न करना कठिन है।

श्रम संघवादी मार्क्स के वर्ग संघर्ष में विश्वास करते हैं। उनकी धारणा है कि समाज दो मुख्य वर्गों—पूंजीपति वर्ग तथा श्रमिक वर्ग—में विभक्त है। इन दोनों वर्गों के हित भिन्न भिन्न होने से इनमें संघर्ष अनिवार्य है। दोनों के हितों में सामन्जस्य की सम्भावना नहीं। इस तरह मार्क्सवादियों की भाँति परन्तु गांधीवादियों, सर्वोदयवादियों और नैतिकतावादियों के विपरीत श्रम संघवादी पूंजीवादियों या पूंजी-

1 Just as a Leopard cannot change his spots so the state cannot change its bourgeois character

2 A central organization tends to uniformity, to routine, to lack of imagination and initiative and distrust of local development and enterprise. Even a benevolent state would be inimical to progress

पतियों म सुधार की माग नही करते बल्कि उनका सफाया चाहते हैं। उनका विश्वास है कि सघष मे पूँजीपति वग का विनाश होगा। राज्य, जो धनिकों क हाथो म शोषण का यन्त्र है का भी अन्त हो जायगा। यही कारण ह कि सोरेल ने इस स्थिति को स्वीकार किया कि "मार्क्सवाद श्रम सघवाद के बिना समझा नही जा सकता और श्रम सघवाद मार्क्सवाद के बिना अथहीन है।"[1] श्रम सघवादी अराजकतावादियों की भाति राज्य के विरोधी तो हैं परतु वे उसके उन्मूलन मे उस मात्रा तक नही जाते जिस मात्रा तक अराजकतावदी जाते हैं।

श्रम सघवादी राज्य का अन्त क्रान्ति द्वारा करना चाहते हैं। राज्य का अन्त कर वे नवीन समाज की रचना करना चाहते हैं जिसमे राज्य का अस्तित्व नही होगा। श्रम सघवादी अपने नवीन समाज की स्पष्ट रूप रेखा को प्रस्तुत नहीं करते। सोरेल ने कहा है कि भविष्य की तस्वीर खीचना श्रमिकों के हितो के लिए हानिकारक है फिर भी उनके समाज की रूप रेखा म सम्पूर्ण आर्थिक और राजनीतिक जीवन सिन्डिकेटो के हाथो मे होगा। उद्योग का सगठन उस उद्योग के श्रमिको के अधीन होना चाहिए न कि किसी केन्द्रीय सस्था के हाथो म। उनका आदश "स्वतन्त्र समाज मे स्वतन्त्र काय है।"[2]

अराजकतावादियो की भाति श्रम सघवादी राज्य को अनावश्यक मानते हैं वे न तो पूँजीपतियो से सघष करने के लिए और न ही नवीन समाज की रचना हेतु राज्य की आवश्यकता को अनुभव करते हैं। वे राज्य क स्थान पर श्रमिकों के सघ पर बल देते हैं। उनके लिए श्रम सघवाद एक पूणतया श्रमिक आन्दोलन है। श्रमिक अपनी मुक्ति के लिए (पूँजीपतियो के शोषण तथा राज्य के दमन से) अपने प्रयासों पर निमर करते हैं। वे तो श्रमिको द्वारा बनाये गये सगठनो (Syndicates) पर ही निर्भर करते हैं। इस दृष्टि से श्रम सघवादी मार्क्स से भी दो कदम आगे बढ जाते हैं। जहाँ मार्क्स सक्रान्ति काल मे राज्य को बनाये रखता है और केवल साम्यवादी व्यवस्था में राज्य की आवश्यकता का अनुभव नही करता वहाँ श्रम सघवादी किसी भी स्थिति, अवस्था या उद्देश्य की प्राप्ति के लिए राज्य की आवश्यकता अनुभव नहीं करते।

श्रम सघवादी अराजकतावादियो की भाँति स्वतन्त्र सगठित एवं ... म विश्वास करते हैं। यही कारण है कि श्रम सघवाद को सगठित अराजकता (organized anarchy) या अनारको सिण्डिकेलिज्म (Anarcho Syndicalism) कहा ...

---

1 Sorel took up the position that Marxism could not be understood without Syndicalism and Syndicalism was meaningless without a clear apprehension of Marxism —Gupta Ram Chandra *The Great Political Thinkers (East and West)* p 296

2 Their ideal is 'free work in a free society

है । श्रम सघवादी समष्टिवादियो की इस विचारधारा को स्वीकार नही करते कि उत्पादन के साधनो पर राज्य का स्वामित्व हो । हैलावेल के शब्दो मे, "उत्पादन के साधनो पर सावजनिक स्वामित्व का श्रम सघवादी उसी प्रकार विरोध करते हैं जिस प्रकार उन पर व निजी स्वामित्व का विरोध करते हैं । स्वतन्त्र राजनीतिक इकाई के रूप मे वे उत्पादक सहकारिताओ की स्थापना चाहते हैं ।"[1]

उपयुक्त वणन से स्पष्ट है कि श्रम सघवादी राज्य के कट्टर विरोधी है और उसका अन्त चाहते हैं ।

2 देश प्रेम विरोधी

श्रम सघवादी केवल राज्य विरोधी ही नही । वे तो 'देश प्रेम', राष्ट्र प्रेम', विरोधी भी है । उनके लिए 'हमारा देश', हमारा राष्ट्र', जसी कोई चीज नही । उनके लिए तो "सामान्य बौद्धिक एव नतिक विरासत की परम्परा के बन्धन जैसी भी कोई चीज विद्यमान नही ।"[2] उनकी धारणा है कि ये भावनाएँ पूँजीपतियो के लिए हित कारी होती हैं । धनिक वग ही अपने स्वार्थों की पूर्ति के लिए इनका प्रयोग करता है । 'राष्ट्रीयता' को श्रम सघवादी 'बहकावा', 'माया जाल', 'कृत्रिम' और स्वाथ पूर्ण विचार कहते हैं ।

श्रम सघवादियो का विश्वास है कि 'श्रमिको की कोई मातृभूमि नही ।" 'सवहारा का कोई देश नही ।' उनके लिए वह ही स्थान उनका घर है जहाँ व जीविकापाजन के साधन प्राप्त करते हैं । वे श्रमिको के हितो मे कोई विरोध नही समझते । उनके हित समान हैं । आर्थिक बन्धन ही श्रमिको के लिए वास्तविक बन्धन है । ये बन्धन ही उन्ह सगठित करते हैं तथा श्रमिको को पूँजीपतियो से पृथक करते हैं ।

3 सन्यवाद (युद्ध) विरोधी

श्रम सघवादी युद्धो के विरोधी हैं । उनका विश्वास है कि युद्ध सवदा पूँजी पतियो के हितो को सुरक्षित रखने के लिए लडे जाते है । श्रमिको के हितो को सुरक्षित रखने के लिए युद्ध नही लडे जाते । कोकर के शब्दो मे, "युद्ध म सेना अन्त राष्ट्रीय साहूकारो के साम्राज्यवादी हितो की पूर्ति करती है और शान्तिकाल म हडतालो का दमन करती है । उनका विश्वास है कि सेना का प्रयोग श्रमिको के हितो मे कभी नही किया गया ।'[3] इसलिए श्रम सघवादी कहते हैं कि श्रमिको को युद्धो के

---

1 'They oppose collective ownership of the means of prod... much as they oppose private ownership of the mean... tion and contemplate the establishment of producer... operating as independent political units —Hallow..., ... 410

2 Ties of tradition of a common intellectual and ... heritage do not exist for them —Quoted by Laidler, ... Social Economic Movements p 297

3 Coker Francis W *Recent Political Thought*, 241

दूर रहना चाहिए और उनमे अपना खून व्यथ मे अपव्यय नही करना चाहिए। श्रमिकों को अपनी शक्ति का प्रयोग अपने उत्थान के लिए करना चाहिए।

श्रम सघवादी शान्ति के समथक हैं। उनकी धारणा है कि हडताल करना हुई खुशहाली के काल मे ही अधिक सफल हो सकती है। इस काल मे ही कृषक और शिल्पी सुनहरे भविष्य के लिए श्रमिको के साथ सगठित हो सकते हैं।

4 प्रजातन्त्र विरोधी

श्रम सघवादी प्रजातन्त्र विरोधी हैं। उनकी धारणा है कि प्रजातन्त्र हा वर्गों मे सामजस्य स्थापित करता है जबकि वर्गों के पृथक पृथक हित होने से उनमे सामन्जस्य की सम्भावना नही। उनका विश्वास है कि प्रजातन्त्र श्रमिको को अपने ध्येय से दूर हटाता है। वे कहते है "सार्वलौकिक मताधिकार भद्दी एव पद्धति है।"[1]

5 ससद विरोधी

श्रम सघवादी ससद विरोधी है। उनके लिए ससद पूँजीपतियो का गढ है। उनकी धारणा है कि पूँजीपति धन की शक्ति के आधार पर स्वय या अपने पिट्ठू लगुआ को ससद मे चुनवा लेते है और बहुमत के नाम पर श्रमिको का गला घोटते है। उनको धारणा है कि राजनीतिक बहुमत उन्नति को रोक देता है, प्रगतिशील चुस्त एव अधिक विकसित अल्पमता का दमन करता है। उनके लिए बहुमत पद्धति जिस पर ससद आधारित है छल, कपट, स भरी हुई है। उनके लिए ससद का अर्थ है समझौते एव समन्वय द्वारा नियम निमाण एव राज्य का सचालन करना। अच्छी से अच्छी स्थिति मे भी ससद श्रमिको के उत्साह को कम करती है और स्वार्थी अनैतिक एव व्यभिचारी मन्त्रिया को चाहे वे श्रमिक वग के ही क्यो न हो, जन्म देती है।

6 राजनीतिक दल विरोधी

श्रम सघवादी राजनीतिक दल विरोधी हैं। उन्हें राजनीतिक दलो म विश्वास नही। वे आर्थिक कायक्रम मे विश्वास करते है राजनीतिक कायक्रम मे नही। उनके लिए राजनीतिक दल कृत्रिम समूह है जबकि वग इतिहास की उत्पत्ति है। राजनीतिक दलों के सदस्य भिन्न भिन्न वर्गों से सम्बन्धित होने के कारण अवसरवादी होते हैं। दल झूठ दम्भ, अनाचार के आधार हैं। ये श्रमिको के हितो पर ध्यान नहीं देते। 'राजनीतिक दल एक गरीब क्रान्तिकारी शस्त्र है। यह बिखरा हुआ होता है। धर्मी कभी मिलता है तथा इसका स्वरूप इतना बडा होता है कि इसमे सामन्

---

1 "Universal suffrage is a clumsy, mechanical device"

इच्छा की प्रत्यक्ष अभिव्यक्ति के लिए अवसर ही नहीं मिल पाता।"[1] श्रमिकों को, अपनी वग चेतना की भावना का स्थायी रखने के उद्देश्य से, कभी दलो म भाग नही लेना चाहिए।

7 मध्यमवर्गीय नेतृत्व और मध्यम वर्गीय समाजवाद के विरोधी हैं

श्रम सघवादी विवक, बुद्धि एव मध्यम वग विरोधी ह। उनका विश्वास है कि मध्यम वग सदव पूँजीवाद का समथक रहता है। उसम क्रांति की भावना का अभाव रहता है। श्रम सघवाद पूणतया श्रमिकों अथात साधारण व्यक्तियो (rank and file) का आदोलन है। वे श्रमिकों के हाथो म पूण सत्ता सौंपने के पक्ष म हैं और पूँजीपतियो से, छोटे बडे सभी से, छुटकारा पाना चाहते हैं। वे पूँजीवाद का पूणतया उन्मूलन चाहते हैं। व मध्यम वग के नेतृत्व म भी विश्वास नही करते। उनका विश्वास है कि मध्यम वग सदैव श्रमिको के प्रति उदासीन रहता है। इसलिए उस पर विश्वास नही किया जा सकता। वे तो मार्क्स की भी इस आधार पर आलोचना करते ह कि वह मध्यम वग स था। श्रम सघवादी काय म विश्वास करते हैं वाद विवाद म नही।

8 सोवियत व्यवस्था विरोधी

श्रम सघवादी सोवियत व्यवस्था के भी आलोचक है। उनकी धारणा है कि सोवियत व्यवस्था म साम्यवादी दल की शक्ति है श्रमिको की नही। इसके अतिरिक्त वह व्यवस्था राज्य शक्ति द्वारा सचालित है। राज्य और नौकरशाही का बोल बाला होने के कारण वहा नागरिको की स्वतन्त्रतायें शुद्ध नही। श्रम सघवादी न तो मार्क्स के सवहारा वग के अधिनायकवाद मे और न राजकीय समाजवाद (समष्टिवाद) मे विश्वास करते हैं। उनकी धारणा है कि इस प्रकार की व्यवस्थाओ से एक दल और अन्त मे एक नेता का अधिनायकवाद स्थापित हो जाता है।

9 निजी सम्पत्ति तथा पूँजीवाद विरोधी

श्रम सघवादी पूँजीवाद विरोधी एव निजी सम्पत्ति विरोधी हैं। उनका विश्वास है कि पूँजीवादी व्यवस्था म अर्थात जब उत्पादन के साधनो पर पूँजीपतियो का स्वामित्व होता है तो श्रमिको की सृजनात्मक शक्तियो (creative faculties) का विकास नही हो सकता क्योकि काय की परिस्थितियो और अवस्थाओ पर पूँजीपति का नियन्त्रण होता है। इसी प्रकार समष्टिवादी व्यवस्था मे भी श्रमिक की सृजनात्मक शक्तियो का विकास नही हो पाता क्योकि इस व्यवस्था म नौकरशाही का नियन्त्रण होता है। इसलिए श्रम सघवादी ऐसी अवस्थाएँ उत्पन्न करना

---

1 A political party is a poor revolutionary weapon it is dispersed it meets rarely and it is apt to be too large to afford a direct expression of the common will

चाहते हैं जिसमें न केवल उत्पादन के साधनों पर उत्पादकों (श्रमिकों) का स्वामित्व हो बल्कि उन पर नियन्त्रण भी उन्हीं का हो ताकि श्रमिकों के व्यक्तित्व, उनकी कल्पना शक्ति और दृष्टिकोणों का विकास हो।

10 'विरोध' का सिद्धान्त (Syndicalism is a Creed of Opposition)

उपर्युक्त वर्णन से स्पष्ट है कि श्रम संघवाद मुख्यतः विरोध का सिद्धान्त है। यह पूँजीवादी अर्थ व्यवस्था और राजनीतिक सरकार की संस्थाओं के विरुद्ध आक्रमणकारी कार्य का सिद्धान्त है। यह निजी स्वामित्व और समष्टिवाद का विरोधी है। यह अपने उद्देश्यों को प्राप्त करने के लिए सीधी कार्यवाही का समर्थन करता है। यह एक नकारात्मक सिद्धान्त है। एक लेखक ने ठीक लिखा है कि "यह हमें प्रधानतः क्रान्ति की रीति देता है, प्रशासन की नहीं।"

श्रम संघवाद के साधन

श्रम संघवादी समष्टिवादियों के संवैधानिक तथा राजनीतिक साधनों में विश्वास नहीं करते। वे न तो संसदात्मक बहुमत और न मत पत्रों की शक्ति में विश्वास करते हैं। उनकी धारणा है कि ये साधन श्रमिकों की वर्ग चेतना और क्रान्तिकारी भावना का ह्रास करते हैं। इसलिए श्रम संघवादी सीधी कार्यवाही—हड़ताल, तोड़फोड़, बहिष्कार, लेबल, आदि—का समर्थन करते हैं। सीधी कार्यवाही से उनका अभिप्राय "मालिकों से दृढ़ और निरन्तर संघर्ष है।"[1]

श्रम संघवादियों का विश्वास है कि हिंसा का सहारा लेकर ही श्रमिक राजनीतिज्ञों को पराजित (browbeat) कर सकते हैं और अपने पूँजीपति स्वामियों से रियायतें प्राप्त कर सकते हैं। उनका यह भी विश्वास है कि हिंसा पूँजीपतियों और श्रमिकों को इस बात की याद सदा दिलाती रहेगी कि उनके हित परस्पर विरोधी हैं जिनमें कभी समझौता नहीं हो सकता। हिंसा के प्रयोग से श्रमिकों में युद्ध सम्बन्धी (war like) योग्यताओं का विकास होगा जिससे बड़ी क्रान्ति के होने की सम्भावना बढ़ेगी। इसी से नवीन समाज की रचना होगी।

श्रम संघवादी हिंसा के प्रयोग को नीचा (base) या अपमान जनक कार्य नहीं मानते बल्कि प्रशंसनीय और साहसी कार्य मानते हैं। उनके लिए हिंसा न केवल अपने उद्देश्यों के लिए ही उत्कृष्ट है बल्कि यह श्रमिकों में साहस, शक्ति और विश्वास, आत्म सम्मान तथा अन्य ऐसी शक्तियों का विकास करने के कारण भी उत्कृष्ट है। इस तरह श्रम संघवादी हिंसा को आवश्यक मानते हैं। इस दृष्टि से श्रम संघवादी फासिस्टवादियों के पूर्वगामी (fore runners) थे। हैलोवेल के शब्दों में, 'श्रम संघ

1 Hallowell, *Ibid* p 459

वाद और फासिज्म में गहरा सम्बन्ध है और यह आकस्मिक घटना नहीं कि मुसोलिनी सोरेल की रचनाओं का उत्सुक पाठक था।'[1]

श्रम संघवादी मुख्यतः निम्न साधनों का प्रयोग करते हैं —

(i) हड़ताल (Strike), (ii) तोड़फोड़ (Sabotage), (iii) बहिष्कार (Boycott) (iv) लेबल (Label)।

हड़ताल (Strike)

हड़ताल श्रम संघवादियों की कार्यवाही का हृदय है। यह उनका मुख्य अस्त्र है। उनका विश्वास है कि जितनी शीघ्रता से हड़तालें होंगी उतनी ही वे श्रमिकों के लिए लाभकारी होंगी। उनकी धारणा है कि हड़तालें न केवल श्रमिकों को संगठित करती हैं उनमें अनुशासन और आत्म विश्वास की भावना पैदा करती हैं बल्कि वर्ग संघर्ष को भी सुदृढ़ करती हैं। हड़तालें राष्ट्र को दो वर्गों—श्रमिक वर्ग तथा पूँजीपति वर्ग में बाँट देती हैं।

श्रम संघवादियों के लिए हड़तालें दो प्रकार की होती हैं। एक विशिष्ट हड़ताल (particular strike) जिसे छोटी या स्थानीय हड़ताल की संज्ञा दी गयी है। दूसरी सामान्य या देश व्यापी हड़ताल। छोटी हड़ताल किसी विशेष उद्योग, दूकान या कारखाने में किसी विशेष माँग की पूर्ति के लिए की जाती है। इसका उद्देश्य तथा क्षेत्र सीमित होता है। श्रम संघवादियों का कहना है कि ऊँचे वेतनों, मजदूरी और कार्य के अल्प घण्टा, बोनस बढ़ाने, उद्योगों पर अपना नियन्त्रण स्थापित करने के लिए श्रमिक संघों को समय समय पर हड़ताल करनी चाहिए। दूसरी हड़ताल सामान्य या देश व्यापी हड़ताल है। इसका उद्देश्य विस्तृत है। यह सामाजिक और आर्थिक ढाँचे में परिवर्तन लाना चाहती है। यह पूँजीवादी अर्थ व्यवस्था को अस्त व्यस्त कर अर्थात् उसका उन्मूलन कर श्रमिकों के हाथों में सभी प्रकार की सत्ता सौंपना चाहती है।

श्रम संघवादियों की हड़ताल सहानुभूतिपूर्ण हड़ताल नहीं और न ही यह राजनीतिक हड़ताल है। श्रम संघवादियों के लिए राजनीतिक हड़ताल व्यर्थ (futile) और भ्रामक (delusive) हैं। इनकी हड़ताल का विशिष्ट उद्देश्य होता है जो क्रान्तिकारी लक्ष्य में प्रकट होता है। उनके लिए प्रत्येक हड़ताल श्रमिकों के लिए शिक्षण, अनुशासन और वर्गीय भावना का साधन है। अलेक्जण्डर ग्रे के शब्दों में, "हड़तालें शिक्षाप्रद, अनुशासनप्रद तथा प्रतीकात्मक होती हैं—छोटी से छोटी हड़ताल यदि बार-बार की जाय तो श्रमिकों में समाजवादी भावनाओं को प्रबल करने, उनमें

---

1 'The kinship between Syndicalism and Fascism is a close one and it is no accident that Mussolini was an avid reader of the works of Sorel' —Hallowell *Ibid*, p 463

वीरता, त्याग व एकता की भावना को भरने तथा क्रान्ति की आशा को चिरस्थायी बनाये रखने में वह असफल नहीं हो सकती।"

श्रम संघवादी हड़तालों की सफलता या असफलता पर उनका मूल्यांकन नहीं करते। उनके लिए तो प्रत्येक हड़ताल फलदायी है क्योंकि प्रत्येक हड़ताल श्रमिक को प्रशिक्षण देती है, उनमें अनुशासन और आज्ञाकारिता की भावना पैदा करती है, सामान्य हड़ताल के लिए भूमिका तैयार करती है, उनमें वर्ग चेतना का जागरण करती है तथा उनकी एकता को सुदृढ़ करती है और पूँजीपतियों तथा राज्य के प्रति घृणा को उत्पन्न करती हैं। लेडलर के शब्दों में, "आज की असफलता कल की होने वाली सफलता की तैयारी है।"[1]

सोरेल ने अपनी रचना 'Reflections on Violence' में सामान्य हड़ताल के कल्पना सम्बन्धी मूल्य (myth value) पर बल दिया। उसकी धारणा है कि प्रत्येक प्रभावकारी सामाजिक आन्दोलन की अपनी कल्पना (myth) होती है। वांछित कार्यों या वांछित उद्देश्यों को प्राप्त करने के लिए जनता को किसी कल्पना द्वारा ही उत्तेजित किया जा सकता है। उसे किसी व्यावहारिक या वैज्ञानिक प्रस्ताव द्वारा उत्तेजित नहीं किया जा सकता है। सोरेल के लिए हड़ताल "एक प्रेरणात्मक कल्पना है।"[2] यद्यपि "सामाजिक कल्पना के रूप में सोरेल के हड़ताल के विचारों में अधिकांश श्रम संघवादियों ने कोई मूल्य नहीं देखा फिर भी वे सोरेल के इस विचार से सहमत थे कि हड़ताल पूँजीपतियों तथा राज्य के विरुद्ध उपयुक्त भावनाओं को भड़काने का शक्तिशाली यन्त्र है।

तोड़फोड़ (Sabotage)

सेबोटाज का अर्थ उद्योग की सुव्यवस्थित प्रक्रिया में बाधा प्रस्तुत करना है। व्यावहारिक रूप में इसका अर्थ है "काम की जानबूझ कर उपेक्षा करना" (wilful neglect of work) या "काम के समय पर व्यर्थ समय नष्ट करना" (loafing on the job)।

श्रम संघवादियों ने सेबोटाज के विचार को इंगलैण्ड के एक औद्योगिक संघ द्वारा प्रचलित तथा कार्यान्वित के-केनी (Ca canny—go slow) अर्थात् धीरे धीरे काम करने की नीति से ग्रहण किया। उनका विचार है कि जब तक सामान्य हड़ताल द्वारा पूँजीवाद तथा राज्य को नष्ट नहीं कर दिया जाता तब तक श्रमिकों को ऐसे कार्य करने चाहिए जिससे पूँजीपतियों की सम्पत्ति को हानि पहुँचे। जो उद्देश्य सैनिक युद्ध में छापामार लड़ाई (guerilla warfare) का है वही उद्देश्य उद्योगों में सेबोटाज

1 Laidler H W *History of Socialist Thought*, p 297
2 A myth is a body of images capable of evoking sentiment instinctively — *Sorel*

का है। कोकर के शब्दों में सेबोटाज का अर्थ है "उद्योगपति की सम्पत्ति या व्यवसाय का आलस्य पूर्ण कार्यों, प्रमाद तथा विनाशकारी कार्यों द्वारा विनाश करना। यह उस समय किया जाता है जब श्रमिक या तो कारखाने में काम कर रहा हो या हड़ताल हो रही हो।"[1]

सेबोटाज दो प्रकार का होता है। एक अहिंसात्मक और दूसरा हिंसात्मक। सेबोटाज का अहिंसात्मक रूप वह है जब श्रमिक अधिक समय तक धीरे धीरे काम करते हैं, कम वेतन पर खराब काम करते हैं, उद्योगपतियों के आदेशों का ऐसी बारीकी से पालन करते हैं कि उत्पादन की लागत में वृद्धि हो तथा ग्राहकों को सच्ची बातें कह देते हैं जिससे माल की बिक्री में हानि पहुँचती है। सेबोटाज का हिंसात्मक रूप वह है जब वे (श्रमिक) सामग्री को नष्ट करते हैं, मशीनों और औजारों की तोड़-फोड़ करते हैं।

बहिष्कार तथा लेबल (Boycott and Label)

बहिष्कार और लेबल दोनों ही सीधी कार्यवाही के प्रासंगिक रूप हैं। ये इतने उग्र या क्रान्तिकारी नहीं जितने कि हड़ताल और तोड़फोड़ हैं। फिर भी ये अपने रूप में प्रभावकारी अवश्य हैं।

बहिष्कार का अर्थ है कि जिस पूँजीपति या कारखाने का बहिष्कार किया गया है उसके अधीन श्रमिक कार्य करने या उसके द्वारा बनाये गये माल का बहिष्कार करते हैं। अर्थात न तो श्रमिक उस पूँजीपति के कारखाने में कार्य करते हैं और न ही उसके माल को खरीदते हैं। बहिष्कार के अनेक रूप हो सकते हैं जैसे वस्तुओं की बुराई करना, मिथ्या अफवाह फैलाना, व्यापार के भेद खोलना। इन सबका उद्देश्य न केवल अमुक वस्तु के उत्पादन और खपत पर प्रहार करना है बल्कि अप्रत्यक्ष रूप से उसके स्वामियों (पूँजीपतियों) को हानि पहुँचाना तथा उन्हें दण्डित करना है।

लेबल का अर्थ यह है कि अमुक माल श्रम संघों द्वारा अनुमोदित व्यवस्थाओं में उत्पन्न हुआ है। इसका उद्देश्य जनता को यह अपील करना है कि वे केवल उन वस्तुओं को खरीदें जिन्हें श्रम संघों द्वारा उत्पन्न किया गया है अर्थात् वे केवल उस माल को खरीदें जिस पर श्रमिक संघ का लेबल लगा हुआ है और उस माल को न खरीदें जिसे पूँजीपतियों के कारखानों में तैयार किया गया है।

---

1 Sabotage indicates a policy of injuring an employer's property or business through sluggish, bungling, wasteful or positively damaging acts—done either while the worker remains on the job or in connection with strikes —Coker, *Recent Political Thought*, p 240

सीधी कार्यवाही के इन रूपों (वहिष्कार और लेवल) का प्रयोग श्रमिक यह बताने के लिए करते हैं कि श्रम के एकाधिकारी (monopolists of labour) तथा उपभोग के निकट एकाधिकारी (near monopolists of consumption) होने के कारण वे इन साधनों का प्रयोग शेष जन समुदाय के विरुद्ध युद्ध करने में कर सकते हैं।

श्रम संघवादी समाज का स्वरूप (Nature of Syndicalist Society)

"श्रम संघवादी 'क्रान्ति' की रीति जानते हैं प्रशासन की नहीं।" वे भावी सामाजिक संगठन की रूप रेखा तयार करना व्यर्थ और असामयिक समझते हैं। जैसा कि सोरेल ने कहा है कि "भावी व्यवस्था के विवरणों को प्रकाशित करने की किसी प्रकार की चेष्टा उन स्वप्नदर्शी संस्थाओं को नष्ट कर देगी जिनमें श्रम संघवाद की मुख्य शक्ति निहित है।"

फिर भी कुछ ऐसे श्रम संघवादी लेखक हैं जिनकी रचनाओं में भावी समाज की मोटी रूप रेखा मिल जाती है। इस भावी समाज का विवरण पातोद (Patuad) और पूगे (Pouget) की रचना "हम क्रान्ति किस प्रकार लायेंगे' (How We Shall Bring About the Revolution ?) में मिलता है। इसके अनुसार क्रान्ति के उपरान्त श्रम संघवाद का स्थायी एवं रचनात्मक कार्य आरम्भ होगा। इसके लिए वर्तमान श्रम संघवादी सभायें (Syndicalist associations) ही पर्याप्त होंगी। इसका स्वरूप निम्न प्रकार का होगा

1 **औद्योगिक संघ** (Industrial union)—उद्योगों में साधारण कार्यों का प्रबन्ध इन औद्योगिक संघों के पास होगा। उनके हाथों में विभिन्न कारखानों की इमारतें, मशीनें आदि होंगी। वे उत्पादन का संचालन करेंगे और विशिष्ट मामलों के लिए सामान्य नियमों को कार्यान्वित करेंगे।

2 **राष्ट्रीय संघ**—यद्यपि श्रम संघवादी स्थानीय संघों पर ही बल देते हैं फिर भी राष्ट्र-व्यापी सेवाओं को—डाक, तार, रेल, राज मार्गों, यन्त्र कला, विशिष्ट ज्ञान, आदि को—राष्ट्रीय संघों के हाथों में रखना चाहते हैं।

3 **सर्वांगपूर्ण राष्ट्रीय संस्था**—इसका स्वरूप वर्तमान राष्ट्रीय मजदूर संगठन (C G T —Confederation general du Travail) जैसा होगा जो समस्त उद्योगों में, जहाँ एकरूपता की आवश्यकता है एकरूपता की व्यवस्था करेगी। उदाहरणतया बालकों, रोगियों तथा वृद्धों की देख रेख कार्य करने के लिए श्रम से कम और अधिक से अधिक आय का निर्णय, दैनिक काम के घण्टे, मजदूरी की दरें निर्धारित करना, आदि।

4 **दण्ड का रूप नैतिक होगा**—श्रम संघवादी कहते हैं कि जो व्यक्ति 'समाज विरोधी कार्य करते हैं उन्हें नैतिक दण्ड दिया जायगा। उदाहरणतया सुनार खोटे

का बहिष्कार किया जायगा, आलसी तथा नवीन व्यवस्था के विरोधियो को निवासित (banish) कर दिया जायगा।

5 जेल और न्यायालय नहीं होंगे—श्रम संघवादी कहते हैं कि नवीन सामाजिक व्यवस्था मे जेल और न्यायालयो को तोड दिया जायगा। इनकी आवश्यकता ही नही रहेगी क्योंकि जिन मनोवैज्ञानिक दोषो और मानसिक रोगो के कारण अपराध होते हैं वे इस नवीन व्यवस्था मे विद्यमान नही होगे। दरिद्रता, असमानता, निरक्षरता और अपराध पूजीवाद के दुष्कर्मों से उत्पन्न होते हैं। इन सबका श्रम संघवादी व्यवस्था मे अभाव होगा।

6 पेशेवर सेना का अभाव होगा—श्रम संघवादी प्रतिरक्षा के लिए नागरिक सेनाओ पर बल देते हैं स्थायी सेनाओ पर नही। इस सामाजिक व्यवस्था मे कोई पेशेवर सेना नही होगी, कोई सैनिक विद्यालय नही होंगे, कोई सैनिक आवास गृह (military barracks) नही होंगे, कोई आक्रमणकारी शस्त्र नही होंगे। परन्तु प्रत्येक संघ मे प्रतिक्रियावादियो के उपद्रवो से रक्षा करने के लिए एक रक्षात्मक सैनिक दल होगा। इस तरह वे टालस्टाय की "त्याग एवं अप्रतिरोध की नीति मे विश्वास नही करते।"[1] पातोद और पूगे का यह विश्वास है कि श्रमिको के पास इतनी बुद्धि अवश्य होगी कि वे अपनी विजित स्वतन्त्रता की रक्षा के लिए स्वयं शस्त्र धारण करें।

7 प्रभुत्व श्रमिको की राष्ट्रीय सभाओ मे होगा

श्रम संघवादी समाज मे प्रभुत्व न राजा मे होगा, न कुलीन वर्गों मे, न जनता मे। यह श्रमिको की राष्ट्रीय सभा में निहित होगा। श्रम संघवादी सत्ता की श्रेष्ठता इस बात मे है कि यह सावयव (organic) है यान्त्रिक नही। श्रम संघवादी सत्ता कुछ विशेष मामलो मे समाज के उग्र सदस्यो (abnormal members) के विरुद्ध बल प्रयोग तो अवश्य करेगी परन्तु साधारणतया यह अपनी सभा के जिसमे प्रभुत्व सत्ता निहित होगी सदस्यो के विचारो एवं हितो की एकरूपता की स्वाभाविक अनुकूलता पर निर्भर रहेगी। समाज प्रतियोगी दलो में नही वरन् संगठित मजदूरो की सहकारी संस्थाओ मे विभाजित होगा।

श्रम संघवाद का मूल्यांकन (Evaluation of Syndicalism)

अन्य राजनीतिक विचारधाराओ की भांति श्रम संघवाद में भी गुण तथा दोष दोनो का समावेश है। इनकी व्याख्या निम्न प्रकार से की जा सकती है—

गुण (Merits)

1 श्रम संघवाद ने विश्व के श्रमिको की अपार सेवा की है। इसने न केवल

---

1 Syndicalists did not believe in Tolstoy's policy of resignation and non resistance

श्रमिकों को अपनी स्थिति से अवगत किया है बल्कि उन्हें कार्य के लिए शक्ति भी प्रदान की है। इसने ही श्रमिक आन्दोलन को पुनर्जीवित किया, श्रमिकों के लिए स्वतन्त्रता और उद्योग में स्वशासन की माँग की तथा पूर्णतया नवीन समाज की आवश्यकता पर बल दिया।

2 श्रम संघवादी व्यक्ति को उपभोक्ता के रूप में नहीं अपितु उत्पादक के रूप में देखते हैं। अतः उनकी रुचि भौतिक सुख की उपलब्धि कराने के स्थान पर कार्य में स्वतन्त्रता प्राप्त करने में अधिक है।

3 श्रम संघवाद ने संसदीय पद्धति की दुर्बलताओं तथा अनियन्त्रित राज्य समाजवाद के अनौचित्य (inadequacies) पर प्रकाश डाला। इसने प्रजातन्त्र, संघवाद और राज्य समाजवाद का ध्यान सामाजिक विचारों की ओर आकर्षित किया। बर्ट्रेण्ड रसल के शब्दों में, "श्रम संघवादियों ने मानव को याद दिलाया कि समाज में जिस चीज की आवश्यकता है वह जहाँ तहाँ सुधार करने की नहीं बल्कि एक आमूल पुनर्निर्माण की है।"

4 श्रम संघवाद से एक नवीन सामाजिक विचारधारा को प्रेरणा मिली जिसे श्रेणी समाजवाद कहते हैं।

दोष (Demerits)

यद्यपि बर्ट्रेण्ड रसल ने अपनी रचना ('Roads to Freedom') में श्रम संघवाद के दोषों को नगण्य बताया है परन्तु उसमें ऐसे गम्भीर दोष विद्यमान हैं कि इन दोषों के कारण ही इसका विस्तार फ्रांस और इटली से अधिक नहीं हो सका और वहाँ भी इसकी मृत्यु अल्पकाल में ही हो गयी। यह इसके खोखलेपन का प्रतीक है। प्रो० रावसन ने ठीक कहा है कि "श्रम संघवाद का शीघ्र अन्त इसलिए हो गया कि उसका दार्शनिक आधार अरक्षित था, उसके प्रतिपादकों का बौद्धिक स्तर साधारण था और उसका कोई रचनात्मक कार्यक्रम न था।" श्रम संघवाद उन जातियों में लोकप्रिय नहीं हो सका जो व्यावहारिक राजनीति में स्वाभाविक समझौता (natural compromise) पर विश्वास करते हैं। क्योंकि श्रम संघवाद, जोड के शब्दों में, "अत्यधिक सिद्धान्तवादी, अत्यधिक उग्रवादी और अत्यधिक तर्कवादी है"[1] इसलिए वह लोकप्रिय नहीं बन सका।

श्रम संघवाद में निम्न दोष पाये जाते हैं —

1 यह विनाशकारी सिद्धान्त है

श्रम संघवादी सीधी कार्यवाही में विश्वास करते हैं। जिन उपायों का—हड़ताल, तोड़ फोड़ (सेबोटाज), बहिष्कार लेबल—वे इसमें प्रयोग करते हैं उनसे न

---

1 Syndicalism is too doctrinaire, too extreme, and too logical
Joad, C E M *Introduction to Modern Political Theory*, p 73

केवल निजी बल्कि सामाजिक बुराइयाँ भी उत्पन्न होती हैं। सर्व प्रथम् इससे समाज में अशान्ति फैलती है, उत्पादन में कमी होती है और तोड़ फोड़ से जो यन्त्रों की हानि होती है उन पर पुनः समाज को खर्च करना पड़ता है। दूसरे, असफल हड़तालों से न केवल श्रमिकों का नैतिक पतन होगा बल्कि उनके वर्ग संघर्ष की भावना भी शिथिल होगी, उनमें उत्तरदायित्व की भावना क्षीण होगी तथा जान-माल की भी हानि होगी। तीसरे, हड़तालें प्रगति में बाधा प्रस्तुत करती हैं। चौथे बेरोजगारी की अवस्था में संगठित, व्यापक और सफल हड़ताल की बात करना कोरा अन्धविश्वास है। चाहे हड़ताल कितनी ही व्यापक हो और चाहे वह श्रमिकों के दृढ़ निश्चय पर कितनी ही आधारित क्यों न हो वह राज्य की सैनिक शक्ति के सामने टिक नहीं सकती। निराशा, असफलता और आर्थिक संकट श्रमिकों को राज्य के आगे आत्म समर्पण करने के लिए बाध्य कर देगा। पाँचवें, हड़तालों से उत्पादन में कमी होगी वस्तुओं की कीमतें अनावश्यक रूप से बढ़ेगी और श्रमिकों को जो अधिकांशतः उपभोक्ता हैं, अधिक कठिनाइयों का सामना करना पड़ेगा। छठे श्रम संघवादियों के कार्य निषेधात्मक हैं सकारात्मक नहीं और निषेधात्मक कार्यों से सामाजिक परिवर्तन लाना कठिन है। सामाजिक परिवर्तन तो संवैधानिक शान्तिमय साधनों द्वारा ही लाये जा सकते हैं चाहे वे कितने ही शिथिल क्यों न हों। वे सीधी कार्यवाही या हिंसक साधनों से अधिक स्थायी और अच्छे होते हैं।

2 यह राज्य विरोधी सिद्धान्त है

श्रम संघवादी राज्य के घोर विरोधी है। परन्तु राज्य विहीन समाज की कल्पना कोरा आदर्श है, व्यावहारिक नहीं। यह न केवल अव्यावहारिक आदर्श है बल्कि खतरनाक भी है। राज्य के अभाव में समाज में अराजकता असुरक्षा, अव्यवस्था सर्वत्र विद्यमान रहेगी। शक्तिशाली का बोलबाला होगा। इसी कारण कट्टर मार्क्सवादी श्रम संघवाद को "नग्न अराजकतावाद" (naked anarchism) कहते हैं। राज्य की आवश्यकता केवल सामाजिक व्यवस्था के लिए ही अनिवार्य नहीं बल्कि बाह्य आक्रमणों तथा उपद्रवों से रक्षा के लिए भी उसकी आवश्यकता है। इसके अतिरिक्त उन छोटे-छोटे संघों में जिनका निर्माण श्रम संघवादी करना चाहते हैं, सामन्जस्य स्थापित करने तथा उनके विवादों का निपटारा करने के लिए भी राज्य की आवश्यकता है। आज का राज्य लोक कल्याणकारी है निरंकुश नहीं।

3 यह संसद तथा जनतन्त्र विरोधी है

श्रम संघवादी वर्तमान युग में प्रचलित संसदात्मक प्रणाली और प्रजातन्त्र के विरुद्ध है। प्रजातन्त्र प्रणाली में चाहे कितने ही दोष क्यों न हों सामान्य हित, जिनमें श्रमिकों के हित सम्मिलित हैं, की रक्षा के लिए यही एक प्रणाली अच्छी है। श्रमिक संगठित होकर संसद में बहुमत प्राप्त कर सकते हैं जैसाकि सन् 1945 में इंगलैण्ड में मजदूर दल ने किया था। जब संगठित रूप से श्रमिकों के हितों की सुरक्षा संसदात्मक प्रणाली

द्वारा सम्भव है तो सामान्य हड़ताल अनावश्यक है। एक लेखक ने ठीक लिखा है कि "सामान्य हड़ताल अनावश्यक है क्योंकि सामान्य चुनाव कभी भी दूर नहीं होता।"[1]

4 वर्ग संघर्ष से उत्पादन पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है

वर्ग संघर्ष से, जिस पर श्रम संघवादी मार्क्स की भाँति बल देते हैं, उत्पादन पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है, सामाजिक एकता शिथिल होती है और राष्ट्र की हानि होती है। बर्ट्रेण्ड रसल ने ठीक लिखा है कि जब वर्ग संघर्ष अधिक तीव्र और कठोर हो जाता है तो "वह निर्दय और क्रूर हो जाता है, जब यह संघर्ष सामान्य और मध्यम अवस्था का रहता है तो यह श्रमिकों को सुस्त, आलसी और निकम्मा बनाता है। यहाँ तक कि श्रमिक अपने काम में भी कम रुचि लेने लगते हैं। यह भी सम्भव है कि क्रान्ति के बाद जिस नये समाज की स्थापना होगी उसमें भी वे श्रमिक सुस्त, निकम्मे और निष्क्रिय बने रहें। इस प्रकार श्रम संघवादी जिस नये युग की कल्पना करते हैं वह स्वयं ही कहीं दूषित न हो जाय।"[2]

5 श्रम संघवादी समाज का स्वरूप स्पष्ट नहीं

श्रम संघवादी अपने भावी समाज की स्पष्ट रूप रेखा देने से इन्कार करते हैं। एक ओर तो वे पूँजीवादी व्यवस्था को नष्ट करना चाहते हैं और दूसरी ओर वे अपने भावी समाज की स्पष्ट रूप-रेखा नहीं देते। यह अनिश्चितता श्रमिकों को अपने किसी लक्ष्य या उद्देश्य तक नहीं पहुँचा सकती। श्रमिक अन्धकार में होने से क्रान्ति के लिए कभी उत्प्रेरित नहीं हो सकते तथा उनमें त्याग की भावना का विकास नहीं हो सकता। निश्चित भविष्य ही कार्य की प्रेरणा और त्याग की भावना पैदा कर सकता है।

6 यह संकीर्ण विचारधारा है

श्रम संघवाद केवल उत्पादकों के हितों का ध्यान रखता है उपभोक्ताओं के हितों का नहीं। परन्तु समाज में तो उत्पादकों और उपभोक्ताओं दोनों के हितों की सुरक्षा होनी चाहिए। केवल उत्पादकों पर बल देकर यह संकीर्ण एवं एक पक्षीय सिद्धान्त बन कर रह जाता है।

7 यह देशद्रोही सिद्धान्त है

श्रम संघवादियों के लिए 'राष्ट्र प्रेम', 'राष्ट्र भक्ति', 'हमारा राष्ट्र', आदि तत्वों का कोई महत्त्व नहीं। परन्तु राष्ट्र के आपत्ति काल में यदि राष्ट्र के नागरिक

---

1 'A general strike is unnecessary because a general election is never far off'

2 Russell, Bertrand *Roads to Freedom*, p 79

—क्या पूँजीपति, क्या मध्यम वर्गीय, क्या श्रमिक—उसकी रक्षा न करें तो राष्ट्र परतन्त्र हो जायगा।

श्रम संघवादी विचारक

श्रम संघवाद के दार्शनिकों में केवल दो दार्शनिकों के नाम ही उल्लेखनीय हैं। एक है फरनेन्ड पेलोटियर (Fernand Pelloutier) और दूसरा है जार्ज सोरेल (George Sorel)। पेलोटियर बोर्सेस के राष्ट्रीय संघ (National Federation of Bourses) का सन 1894 से सन 1901 तक महासचिव भी रहा। पेलोटियर ने श्रमिकों को राजनीति से अलग रहने सहकारी प्रयत्नों द्वारा अपनी दशा सुधारने तथा श्रम विनिमय संघों द्वारा अपने कार्यों को करने की शिक्षा दी। दूसरे शब्दों में, पेलोटियर ने श्रमिकों को "अपनी मुक्ति के लिए अपने प्रयासों पर निर्भर रहने" की शिक्षा दी।

सोरेल का दर्शन (Philosophy of Sorel)

बीसवीं शताब्दी के बहुत थोड़े ऐसे दार्शनिक हुए हैं जिनके दर्शन के बारे में इतनी अधिक अपनिर्वचनाएँ (misinterpretations) विद्यमान हैं जितनी कि सोरेल के राजनीतिक दर्शन के बारे में। इसका कारण यह है कि सोरेल की रचनाओं में 'राजनीति और दर्शन का अद्भुत मेल है—सामाजिक समस्याओं में लौकिक आध्यात्मिक सिद्धान्त का अद्भुत प्रयोग है। वास्तव में, सोरेल ने बर्गसन के अन्तर्ज्ञान के सिद्धान्त पर कार्य के उस भाग को सिद्ध किया है जिसे बर्गसन अस्वीकार करने वालों में प्रथम होता।''[1] इसके अतिरिक्त सोरेल राज्य के सोवियत सिद्धान्त के बारे में उतना ही दावेदार माना जाता है जितना कि वह फासिस्ट राजनीतिक दर्शन के लिए माना जाता है।

सोरेल का जन्म फ्रांस में शेरबोर्ग (Cherbourg) में सन् 1847 में हुआ। दसवीं की परीक्षा पास कर लेने के बाद उसने पेरिस के इकोल पॉलिटेक्निक (Ecole-Polytechnique) में प्रवेश लिया और वह इन्जीनियर बन गया। 25 वर्ष तक वह सरकारी इन्जीनियर रहा और पुलों तथा सड़कें बनाने में व्यस्त रहा। 45 वर्ष की आयु में उसने सरकारी नौकरी से निवृत्ति (retirement) प्राप्त की। सन् 1922 में जब सोरेल 75 वर्ष की आयु में मरा तो वह 17 पुस्तकें लिख चुका था, 8 पुस्तकों की विस्तृत प्रस्तावनाएं लिख चुका था और 41 समीक्षाओं में लेख तथा निबन्ध लिख चुका था।[2]

---

1 Joad C. E. M. *Introduction to Modern Political Theory*, p. 71

2 See Ram Chandra Gupta *Great Political Thinkers (East and West)*, p. 295

सन् 1899 मे सोरेल ने समाजवाद के सिद्धान्त को छोड दिया और श्रम सघवाद के सिद्धान्त को अपना लिया। उसने श्रम सघवाद पर अनेक लेख लिखे और उन्हें सकलित (Compile) कर सन 1906 में एक पुस्तक के रूप मे—'Reflections on Violence'—प्रकाशित किया। इस रचना के प्रकाशित होते ही सोरेल क्रान्तिकारी श्रम सघवाद का बुद्धिजीवी नेता बन गया।

सोरेल के राजनीतिक दर्शन की झलक उसकी रचना 'Reflections on Violence' मे मिल जाती है। इसमे सोरेल ने मार्क्सवाद के अन्तर्निहित सिद्धान्तों—वर्ग सघर्ष तथा सर्वहारा वर्ग के हिंसा के सिद्धान्तों—को स्वीकार किया। परन्तु मार्क्सवादी दर्शन की प्रचलित इस व्याख्या से वह सहमत नही था कि उद्योगों की एकाग्रता, पूँजी का केन्द्रीयकरण, मध्यम वर्ग मे कमी तथा सर्वहारा वर्ग में वृद्धि अर्थात् बढती हुई दरिद्रता और शोषण स्वय ही पूँजीवाद को नष्ट कर देंगे।

सोरेल का श्रम सघवादी सिद्धान्त निश्चित रूप से राजनीतिक विरोधी (anti-political) है। उसके लिए राज्य एक बुर्जुआ, मध्यम वर्गीय, नौकरशाही सस्था है जिसे श्रमिकों से कभी सहानुभूति नही होती। सोरेल राज्य को उस अवस्था में भी स्वीकार नही करता चाहे उस पर सर्वहारा का पूर्ण नियन्त्रण ही क्यों न हो। सोरेल तो राज्य को केवल बुर्जुआ शासन के लिए ही लाभकारी मानता है। सर्वहारा शासन के लिए राज्य पूर्णतया अनुपयुक्त है। उसकी धारणा है कि "एक केन्द्रीय सगठन की प्रवृत्ति, एकरूपता नियन्त्रण, कल्पना के अभाव स्थानीय विकास और साहसिक व्यवसाय मे अविश्वास की होती है। सर्वश्रेष्ठ राज्य भी प्रगति का विरोधी होगा।

सोरेल का विश्वास है कि सामाजिक वर्ग आर्थिक भिन्नताओं से उसी प्रकार एक दूसरे वर्ग से पृथक हैं जिस प्रकार कि वे सास्कृतिक भिन्नताओं से एक दूसरे से पृथक हैं। उसकी धारणा है कि प्रत्येक वर्ग की अपनी विशिष्ट सामाजिक विचारधारा होती हैं, अपनी पृथक सस्कृति होती है अपने पृथक नैतिक नियम होते हैं, उचित अनुचित के अपने पृथक मापदण्ड होते हैं तथा अपने पृथक कार्य के ढग होते हैं। प्रत्येक वर्ग अपनी प्रणाली को दूसरो पर लादने की कोशिश करता है। पूँजीपति वर्ग सोरेल राज्य का प्रयोग करता है। सैनिक शक्ति द्वारा या निर्वाचन की चालों (election manipulations) द्वारा वह राज्य पर नियन्त्रण कर लेता है और श्रमिक वर्ग पर अपना आधिपत्य जमा लेता है।

सोरेल की क्रान्ति का उद्देश्य उद्योगो पर श्रमिक सगठनों का स्वशासन स्थापित करना है। इन श्रमिक सगठनों का राज्य से कोई सरोकार नहीं होगा। वे किसी प्रकार से राजनीतिक कार्यों मे भाग नही लेंगे तथा उसके साथ किसी प्रकार का सहयोग नही करेंगे। ये सगठन सामान्य हडताल द्वारा राज्य को नष्ट करेंगे तथा नयी सामाजिक व्यवस्था स्थापित करेंगे जो स्वायत्त आर्थिक वर्गों पर आधारित है"।

दूसरे शब्दों में, 'आर्थिक कार्यों के आधार पर समाज को संगठित' किया जायगा। इस व्यवस्था में प्रत्येक आर्थिक उद्योग के श्रमिकों को स्वशासित सिण्डिकेट्स या संघों के साथ सम्बद्ध कर दिया जायगा। ये सिण्डीकेटस केवल अधिक मजदूरी, काम के कम घण्टे या काम की अच्छी व्यवस्था के लिए ही संघर्ष नहीं करेंगे वल्कि वे उद्योगों का संचालन (प्रबन्ध या प्रशासन) स्वयं करेंगे। इस तरह सोरेल का कहना है कि स्वायत्त औद्योगिक व्यवस्था से केन्द्रीय राजनीतिक संगठन अर्थात राज्य समाप्त हो जायगा जिसके द्वारा बुर्जुआ श्रमिकों पर अत्याचार ढाता है। उद्योगों पर श्रमिकों का स्वतन्त्र नियन्त्रण होने से उनकी रचनात्मक एवं उत्पादक शक्तियों का विकास होगा तथा औद्योगिक कुशलता बढ़ेगी।

सोरेल की शिक्षाओं का केन्द्रीय सिद्धान्त सामान्य हड़ताल की मिथ (कल्पना Myth) है। उसकी धारणा है कि प्रत्येक प्रभावकारी सामाजिक आन्दोलन की अपनी मिथ होती है। वीरोचित कार्यों या वांछित उद्देश्यों को प्राप्त करने के लिए जनता को किसी मिथ द्वारा ही उत्तेजित किया जा सकता है। उसे किसी व्यावहारिक या वर्णानिक प्रदर्शन द्वारा उत्तेजित नहीं किया जा सकता।

मिथ से सोरल का अभिप्राय "कल्पनाओं के ऐसे पिण्ड से है जिसमें मनोभावों तथा अन्त: प्रवृत्तियों को प्रेरित करने की योग्यता होती है।"[1] मिथ न तो सत्य होती है और न ही असत्य क्योंकि वह वस्तुओं का वर्णन नहीं करती बल्कि कार्य के दृढ़ निश्चय को अभिव्यक्त करती है।"

सोरल की धारणा है कि व्यक्ति मिथ्या कल्पनाओं के वशीभूत हो कर ही आश्चर्यजनक कार्य, अद्वितीय त्याग और भयंकर से भयंकर कष्ट सहन करता है। उदाहरण देते हुए सोरेल कहता है कि ईसाइयों की यह मिथ है कि ईश्वर (ईसामसीह) पुनः प्रगट होंगे। उदारवादियों की यह मिथ है कि ऐसे समाज की स्थापना हो सकती है जो "स्वतन्त्रता, भ्रातृत्व और समानता" पर आधारित होगा। इसी प्रकार श्रमिकों को एक ऐसे मिथ की आवश्यकता है। श्रमिकों के लिए सामान्य हड़ताल ही मिथ है। इसमें पूंजीवाद के पतन और श्रमिकों के नियन्त्रण तथा कल्याण की कल्पना है। जोड के शब्दों में, 'वास्तविक हड़ताल से परे किसी चीज के बारे में सोचने की आवश्यकता नहीं।'[2] सामान्य हड़ताल की मिथ में महत्त्वपूर्ण बात यह नहीं कि क्या वास्तविक रूप से ऐसा होता है (अर्थात् पूंजीवाद का पतन और उद्योगों पर श्रमिकों का नियन्त्रण) बल्कि यह 'विश्वास' कि ऐसा होगा। यह विश्वास ही श्रमिकों

1 A myth is a body of images capable of evoking sentiment instinctively — Sorel *Reflections on Violence*

2 'Beyond the general strike nothing is thought out and nothing need be thought out —Joad *Ibid* p 73

मे उत्सुकता भर देगा। यह उनके लिए 'आकर्षक नारा', 'उत्प्रेरण का स्रोत' है जो उन्हे किसी भी बलिदान के लिए प्रेरित कर देगा। हड़ताल श्रमिको म पूंजीपति तथा राज्य के विरुद्ध उपयुक्त भावनाओ को भड़काने का शक्तिशाली यन्त्र है।

सोरेल की धारणा है कि श्रमिको के पास केवल एक अस्त्र है और वह है हिंसा। इसके द्वारा ही वे वर्ग संघर्ष जारी रख सकते हैं, पूँजीपतियो और राजनीतिज्ञ के हृदय मे भय उत्पन्न कर सकते हैं, उनसे रियायतें प्राप्त कर सकते हैं और उद्योगो पर अपना नियन्त्रण स्थापित कर सकते हैं। इसलिए जो हिंसा के प्रयोग से कतराते है वे बुजदिल है।

सोरेल हिंसा को नीच या अपमान जनक नही मानता। उसके लिए हिंसा साहसी एव प्रशसनीय कार्य है। हिंसा न केवल अपने उद्देश्यो के लिए उत्कृष्ट है बल्कि यह श्रमिको म साहस, शक्ति, विश्वास, आत्म सम्मान तथा अन्य ऐसी शक्तियों के विकास करने के कारण भी उत्कृष्ट है।

सोरेल का राजनीतिक दर्शन "कार्य का सिद्धान्त" है। उसका कर्मवाद (activism) उसके नाम के सिद्धान्त म प्रकट होता है जिस पर बर्गसन का प्रभाव दिखाई देता है। यद्यपि सोरेल श्रमिको के हाथो मे सारी सत्ता सौपना चाहता है परन्तु उसने श्रम संघवादी समाज की स्पष्ट रूप रेखा देने से इन्कार किया है। उसकी धारणा है कि श्रमिको को ही भावी समाज की रूप रेखा तैयार करने का अधिकार होना चाहिए।

सोरेल अपने समय का कटु आलोचक था। इस दृष्टि म वह जकोब बर्कहार्ट (Jacob Burckhardt) और नित्शे (Nitzsche) का सच्चा समकालीन था। उसने प्रजातन्त्र की कड़े शब्दो मे आलोचना की। उसका दृढ विश्वास था कि प्रजातन्त्र जनता मे तुच्छ आनन्द बाटता है। वह गुणात्मक भेदो और नैतिक मूल्यो की आवश्यकता को स्वीकार नही करता। उसकी यह भी धारणा थी कि प्रजातन्त्र म केवल एक ही स्वामी सर्वत्र शासन करता है और वह है धन।

सोरेल ने विवाह प्रथा की भी आलोचना की है। वह विवाह को 'हिंसक समझौता' कहता है। वह पूंजीवादी राष्ट्रो म तलाक की बढती हुई सख्या का ... रण देता है। वह नवीन मेल्थ्यूसियनवाद (Neo Malthusianism) का विरोधी ... वह कहा करता था कि हम 'अनिवार्य सामान्यता (inescapable mediocrity)' के युग म रह रहे हैं।

सोरेल का सिद्धान्त एक तरफा है जो केवल सर्वहारा की ओर मुड़ा हुआ है। मेयर के शब्दो मे, 'औद्योगिक श्रमिको म जो सामाजिक विभिन्नतायें है उनको उसने ... मूल्य आंका है। उसने उस नौकरशाही का विश्लेषण नही किया जो पूंजीवादी

श्रमिकों के मध्य मे उत्पन्न हुआ है और जिसने आधुनिक समाज के ढांचे और सन्तुलन में परिवतन ला दिया है।"[1]

इसमे सन्देह नही कि सोरेल मार्क्स के प्रति अपनी कृतज्ञता प्रकट करता है परन्तु उसके सामाजिक और राजनीतिक दशन ने निश्चित रूप से मार्क्स की प्रणाली के कठोर धमपरायणता को समाप्त करने का प्रयास किया। मार्क्स के दशन को उसके कठोर धमपरायणता से मुक्त करने के लिये सोरेल ने उसे नित्शे और बगसन के दशन से मिलाने का प्रयास किया। जसाकि ऊपर कहा गया है कि सोरेल, मार्क्स के विपरीत, इतिहास म नैतिक शक्तियो के प्रभाव के प्रति जागरूक था और सामाजिक इतिहास मे राजनीतिक और वैध सस्थाओ के महत्त्व को समझता था। शिष्ट जन का सिद्धान्त भी सोरेल के दशन मे महत्त्वपूण स्थान रखता है। यद्यपि फासिस्टवादियो ने इस सिद्धान्त का अत्यन्त विकृत रूप प्रस्तुत किया परन्तु यह भी सत्य है कि सोरेल अपने कायवाद (activism) और बुद्धि विरोधीवाद (anti intellectualism) के कारण फासिज्म के निकट आ जाता है। यह भी सत्य है कि उसका नैतिक मूल्यो मे विश्वास तथा उसके दशन मे अन्तर्ज्ञान (intuition) उसे श्रमिक वर्गों के आन्दोलन का आध्यात्मिक गुरू (पिता) बना देता है। इस दृष्टि म सोरेल उसी आध्यात्मिक परिवार से सम्बन्धित है जिससे टॉकविल, मानटालम्बट (Montalembert), रेनान और पगू सम्बन्धित है।

नवीन श्रम सघवाद (New Syndicalism)

प्रथम् महायुद्ध की परिस्थितियो ने श्रम सघवादियो के विचारो मे परिवतन ला दिय। सी० जी० टी० (C G T) के अधिकाश सदस्यो न युद्ध विरोधी और सरकार विरोधी नीति को त्याग दिया। युद्ध प्रयासो को सुदृढ करने के लिए उन्होने समाजवादियो और सरकार से समझौता कर लिया। इतना ही नही उन्होने अनेक आर्थिक व्यवस्थाओ से सहयोग भी दिया। जो श्रम सघवादी नरम पथी (moderates) थे उन्होने हिंसा को पूणतया त्याग दिया। परन्तु फिर भी कुछ ऐस श्रम सघवादी थे जो अपन प्राचीन क्रान्तिकारी, हिंसक एव सीधी कायवाही के साधनो को छोडना नहीं चाहते थे। परन्तु ये लोग अब अल्पमत मे थे।

श्रम सघवादियो मे आपसी भेद उत्पन्न होने से व दो गुटो मे बँट गये। एक

1 He clearly under rated "the social differentiation amongst the industrial workers themselves he has also hardly analysed the rising new strata between the bourgeoisie and the workers which have entirely altered the structure and balance of modern society —Mayer J P *Political Thought in France* p 120

उग्र श्रम सघवादी और दूसरे नरम श्रम सघवादी। इन्हे क्रमश क्रान्तिकारी श्रम सघवादी (Revolutionary Syndicalists) और सुधारवादी श्रम सघवादी (Reformist Syndicalists) कहते हैं। युद्ध के बाद इन दोनों के भेद उग्र होते गये और सन् 1922 मे नरम पथियो ने अपने आपको उग्र पथियो से पृथक कर लिया। उग्र श्रम सघवादियो ने सयुक्त मजदूरो का सामान्य सघ (General Confederation of United Labour) नामक सस्था का निर्माण किया। इन्होने साम्यवादी अन्तर्राष्ट्रीय (Communist International) सिद्धान्तो एव उद्देश्यो को स्वीकार कर लिया। इन दोनो गुटो की दरारो (rifts) ने श्रम सघवाद के सिद्धान्तो का नाश कर दिया। नवीन श्रम सघवाद के उदय से श्रम सघवाद की मृत्यु हो गयी।

नवीन श्रम सघवाद के सिद्धान्तो की व्याख्या जूहो (Jouhaux), परो (Perrot) और मेक्सिम लरॉय (Maxime Leroy) ने की है। इन श्रम सघवादियो का साम्यवाद से कोई सम्बन्ध नही। ये न तो वर्ग सघर्ष मे विश्वास करते है और न ही हिंसा का समर्थन करते हैं। इनके लिए हिंसा और अधिनायकतन्त्र निन्दनीय हैं। ये प्राचीन श्रम सघवाद के निषेधात्मक, विनाशात्मक नीतियो के स्थान पर रचनात्मक और व्यापक नीतियो की स्थापना चाहते है। ये षडयन्त्र' (Conspiracy) की प्राचीन नीति के स्थान पर 'सस्थाओं' (institutions) की नवीन नीति को अपनाते हैं।

नवीन श्रम सघवादी उत्पादन और उपभोग मे सहयोग और समन्वय पर विश्वास करते हैं। उनकी धारणा है कि उत्पादन केवल श्रम का ही परिणाम नही बल्कि उसमे समूची प्रक्रिया के प्रबन्ध, अनुसन्धान, अन्वेषण, शिल्प, कला, वितरण यहाँ तक कि प्रयोग तथा उपभोग का भी स्थान है। इसलिये वे सहयोग और समन्वय पर बल देते हैं।

नवीन श्रम सघवादी राज्य के पर्यवेक्षी (Supervisory) कार्यों को भी स्वीकार करते है। उनकी धारणा है कि राज्य को कम से कम दमन शक्ति (coercive power) का प्रयोग करना चाहिए परन्तु साथ मे भिन्न भिन्न इकाइयो मे समन्वय का कार्य भी करना चाहिए। राज्य को सैनिक सुरक्षा तथा वैदेशिक सम्बन्धो की व्यवस्था भी करनी चाहिए। सामाजिक हितो के लिए ये राजनीतिक सत्ता को महत्त्वपूर्ण स्थान देते हैं। उनकी धारणा है कि राज्य को प्रबोधन (enlightenment) का साधन होना चाहिए तथा आरम्भन (initiative) और अन्वेषण (invention) का प्रेरक भी होना चाहिए। नवीन श्रम सघवाद के इस बिन्दु की व्याख्या मक्सिम लेरॉय ने अपनी रचना 'Techniques Nouvelles du Syndicalisme' मे इस प्रकार की है "राज्य अपने समस्त कानूनो एव सेवाओ द्वारा नवीन कार्य आरम्भ करने, अन्वेषण करने तथा आर्थिक क्षेत्रो मे परम्परा के विरुद्ध कार्य करने मे प्रोत्साहन

देगा और इसमे वह उसी उत्साह स काय करेगा जिस उत्साह स परम्परागत राज्य स्वतन्त्रता तथा नवीनता के दमन के लिए काय करता है। वह प्रतिबन्ध लगाने के स्थान पर माग दशन करेगा और उसका व्यवस्थापन आदेश दन के स्थान पर प्रबोधन का साधन बन जायगा।'[1]

EXERCISES

1 श्रम सघवाद के दशन की आलोचनात्मक व्याख्या कीजिये।

2 "सीधी कायवाही के सिण्डिकेलिस्ट कायक्रम मे राजनीतिक काय का निषेध है" (कोकर) राजनीतिक कायक्रम के प्रति इस अविश्वास की समीक्षा कीजिय तथा श्रम सघवादियो की सीधी कार्यवाही की पद्धति की परीक्षा कीजिये।

3 सोरेल के दशन की आलोचनात्मक टिप्पणी कीजिय।

4 श्रम सघवाद से आप क्या समझते हैं ? इसकी मुख्य विशेषताओ का वणन कीजिय।

5 श्रम सघवादी विचारो की व्याख्या कीजिय। क्या उनकी सिद्धि हो सकती है ?

6 "यद्यपि श्रम सघवाद ने मार्क्सवाद एव अराजकता स प्रेरणा ली परन्तु वह दोनो से भिन्न है।' विवचना कीजिय।

7 'श्रम सघवाद दशन न होकर एक श्रमिक आन्दोलन था इस कथन की आलोचनात्मक परीक्षा कीजिय।

8 "श्रम सघवाद राज्य विरोधी, प्रजातन्त्र विरोधी, तक विरोधी एव बुद्धि विरोधी है।' व्याख्या कीजिय।

9 "श्रम सघवाद अराजकतावाद, मार्क्सवाद और ट्रेड यूनियनवाद का वणसकर है" (हैलोवल) व्याख्या कीजिये।

10 "श्रम सघवाद और फासिजम का सम्बन्ध बहुत निकट का है और यह कोई आकस्मिक बात नही है क्योकि मुसोलिनी सोरेल की रचनाओ को श्रद्धा से पढता था।" (हैलोवल) व्याख्या कीजिय।

---

1 State will become through all its laws and in all its services an impulse to initiative invention and economic heresy with the same zeal with which the traditional state restrains spontaneity and innovation It will endeavour to guide rather than restrain its legislation will become more and more a means of enlightenment rather than dictation —Leroy, Maxime *Techniques Nouvelles du Syndicalisme* p 125 Quoted by Coker in his *Ibid*, p 256

11 "श्रम सघवाद मुख्यत विरोध का सिद्धात है (कोकर) व्याख्या कीजिये।

12 "श्रम सघवाद अराजकता और मार्क्सवाद का शिशु है।' क्या आप इस कथन से सहमत हैं ? कारण लिखिये।

13 "श्रम सघवाद सगठित अराजकता है" व्याख्या कीजिये।

14 "श्रम सघवाद तक हीनता का सर्वाधिक तर्कयुक्त बचाव है।" इस कथन के आधार पर श्रम सघवाद के मुख्य सिद्धान्तो की व्याख्या कीजिये।

15 "श्रम सघवाद ट्रेड यूनियन है जो मार्क्सवादी आर्थिक सिद्धान्त और वर्ग सघर्ष का अध्ययन है। (हेलावल) व्याख्या कीजिये।

9 श्रेणी समाजवाद
(Guild Socialism)

श्रेणी समाजवाद की उत्पत्ति तथा विकास
(Origin and Growth of Guild Socialism)

श्रेणी समाजवाद विशुद्ध रूप से एक अँग्रेजी विचारधारा है जिसका उदय एवं विकास अँग्रेज बुद्धिजीवियों ने किया। इस विचारधारा के प्रमुख समर्थक थे आर्थर जोसफ पेन्टी (Arthur Joseph Penty), ए० आर० औरेज (A R Orage), एस० जी० हॉब्सन (S G Hobson) जी० डी० एच० कोल (G D H Cole) बर्ट्रेण्ड रसल (Bertrand Russell) आर० एच० टानी (R H Tawney), आर० डी० मेजत् (R D Maeztu), विलियम मलोर (William Mellor), एम० बी० रेकिट (M B Reckitt), डॅलेस फोड, जाज लेन्सबरी आदि। इस तरह श्रेणी समाजवाद के समर्थक ब्रिटिश समाज के प्रतिष्ठित एवं ख्याति प्राप्त विचारक थे।

श्रेणी समाजवाद के मूल विचारों को आर्थर जोसफ पेन्टी ने सन् 1906 में अपनी रचना 'The Restoration of the Guild System' में व्यक्त किया। उसका यह विचार था कि वर्तमान प्रणाली में मजदूर उत्पादन तो करता है परन्तु उद्योगों पर उसका नियन्त्रण न होने से उसकी दशा शोचनीय होती है। इसलिए पेन्टी ने अपनी रचना में मध्य युग की गिल्ड व्यवस्था को फिर से स्थापित करने के तर्क प्रस्तुत किये। दूसरे शब्दों में, पेन्टी "उद्योग में स्वशासन के सिद्धान्त को, जिसके अधीन शिल्पी अपने काम के औजारों का स्वामी और स्वायत्तगण का सदस्य था और अपने उत्पादन के स्वरूप और सीमा को निश्चित करता था" फिर से स्थापित करना चाहता था। परन्तु पेन्टी के विचार वर्तमान औद्योगिक युग के लिए न तो व्यावहारिक थे और न ही वांछनीय। उसके विचार नैतिकता पर आधारित थे। उसके विचारों को भावुकतापूर्ण एवं कल्पनावादी भी कहा गया है। उनमें आदर्शात्मकता का भाव

अधिक था इसलिए वे लोकप्रिय नही बन सके। जोड ने ठीक लिखा है कि "जिस प्रकार विलियम मोरिस के विचार समाजवाद के स्वप्नदर्शी पक्ष का प्रतिनिधित्व करते हैं उसी प्रकार पेन्टी के विचार श्रेणी समाजवादी प्रचार के स्वप्नदर्शी पक्ष का प्रतिनिधित्व करता है।"

श्रेणी समाजवादी विचारा का प्रचार बीसवी शताब्दी की द्वितीय दशाब्दी म अत्यधिक हुआ। हाब्सन और औरेज ने पेन्टी के विचारो का गहरा अध्ययन किया। उन्होने ही उसके विचारा को आधुनिक परिस्थितिया के अनुकूल बनाने के लिए उनमे परिवतन किये। औरेज ने अपने विचारो का 'न्यू एज (New Age) नामक साप्ताहिक पत्र मे, जिसका वह स्वय सम्पादन करता था, प्रकाशित करना आरम्भ कर दिया। इन्ही विचारा को बाद मे एक पुस्तक क रूप म—National Guilds, an Enquiry into the Wage System and the Way Out—प्रकाशित किया गया। औरेज और हाब्सन के विचार इसी पुस्तक मे पर्याप्त मात्रा मे सकलित है। इसमे उन्होने आधुनिक पूजीवाद और समष्टिवाद (राजकीय समाजवाद) के केन्द्रीयकरण की आलोचना की। उन्होन यह विचार भी प्रस्तुत किया कि उद्योगा और व्यवसाया म मजदूरो का स्वशासन होना चाहिए अथात् उद्योगो पर नियन्त्रण तथा उनका सचालन श्रमिक सघो के हाथ म हो। जी० डी० एच० कोल के शब्दा म, "उनका तक था कि उद्योग मे सम्बन्धित श्रमिका द्वारा उद्योग म स्वशासन हो, जिन्हे औद्योगिक श्रेणिया की प्रणाली से परस्पर सगठित किया जाय, वतमान श्रमिक सघो का केन्द्रीय रूप हो।"[1]

श्रेणी समाजवादी विचारधारा का अत्यधिक प्रभावशाली दाशनिक जी० डी० एच० कोल था। कोल फेबियनवादी था। परन्तु जब उसके विचारा और फेबियन सोसाइटी के विचारा म भेद बढते गय तो सन 1913 म वह इससे अलग हो गया। कोल ने श्रेणी समाजवाद के प्रति अपनी आस्था की घोषणा कर दी। ग्रे का विचार है कि जनता की दृष्टि मे श्रेणी समाजवाद और कोल एक रूप समझे जाने लगे और यह ठीक ही है।" कोल ने ही श्रेणी समाजवाद के मूलभूत सिद्धान्तो की विशुद्ध व्याख्या की। उसने ही श्रेणी समाजवाद के विचारो को एक दजन से अधिक पुस्तका तथा पत्रिकाओ म प्रकाशित किया। उसकी मुख्य रचनाय निम्न थी —

1 श्रम का ससार (The World of Labour, 1913)
2 उद्योगो म स्वशासन (Self government in Industries, 1917)
3 सामाजिक सिद्धान्त (The Social Theory, 1920)
4 श्रेणी समाजवाद पुनर्व्याख्या (Guild Socialism Restated 1920)
5 ब्रिटिश व्यापार तथा उद्योग (British Trade and Industry, 1931)

1 Cole G D H *Self Government in Industry* p 5

6 युगो के लिए आर्थिक ग्रन्थ (Economic Tracts for the Times, 1932)

इन तथा अन्य रचनाओं मे कोल ने राज्य को एक समुदाय का दर्जा प्रदान किया और इस तरह बहुलवादियो के विचारो का समर्थन किया। कोल राज्य को सार्वभौम मानने से इन्कार करता है। वह राज्य को विशिष्ट कार्यों के लिए विशिष्ट समुदाय मानता है उससे अधिक नही। कोल ने व्यावसायिक प्रतिनिधित्व (functional representation) का समर्थन किया है।

श्रेणी समाजवादी विचारधारा के अन्य समर्थको ने भी, जैसे टॉनी रसल और मेजर्स ने, सम्पत्त्यधिकार के व्यवसायात्मक आधार (functional basis) का प्रतिपादन किया तथा सम्पत्ति के औचित्य को सामाजिक सेवा से सम्बर्धित किया। हॉब्सन और कोल ने इन्ही के सिद्धान्तो को अपने सिद्धान्तो के आधार के रूप में स्वीकार किया।

श्रेणी समाजवादियो की संख्या अत्यधिक नही थी। अपनी चरमोत्कर्ष स्थिति मे भी राष्ट्रीय गिल्ड संघ (National Guilds League) की सदस्य संख्या, जिसकी स्थापना सन 1915 में ब्रिटेन में की गयी थी 500 से अधिक नही थी। इस संघ ने गिल्डसमैन (Guildsman) नामक एक मासिक पत्र भी निकाला जिसका बाद मे नाम गिल्ड समाजवादी (Guild Socialist) रख दिया गया। सन् 1920 मे एक राष्ट्रीय भवन निर्माण संघ (National Building League) की स्थापना की गयी परन्तु यह संघ मजदूरो के वेतनो मे कमी, आर्थिक मन्दी, बेरोजगारी और सरकारी सहायता बन्द होने से ठप्प हो गया। सन् 1925 मे राष्ट्रीय गिल्ड संघ को भी समाप्त कर दिया गया। इसके साथ ही ब्रिटेन में श्रेणी समाजवादी आन्दोलन का पृथक अस्तित्व समाप्त हो गया और इसके सदस्यो ने समाजवाद के अन्य स्वरूपो मे भाग लेना शुरू कर दिया।

श्रेणी समाजवाद के विकास के कारण (Factors responsible for the growth of Guild Socialism)

श्रेणी समाजवाद के विकास मे अनेक शक्तियो ने योगदान दिया जिनमे से मुख्य निम्न हैं

(1) **लेखकों की रचनाएँ**—थामस कार्लाइल जान रस्किन विलियम मोरिस तथा अन्य लेखको की रचनाओं ने श्रेणी समाजवादी विचारधारा को बढ़ावा दिया। इन लेखकों ने अपनी रचनाओ मे मध्य युगीन गिल्डो के लाभो की प्रशंसा की। इन लेखको ने औद्योगिक पूँजीवाद की बुराइयो का भी उल्लेख किया।

जी० के० चेस्टरटन तथा हिलेरी बलक ने ब्रिटिश सरकार की उस नीति की आलोचना की जो दासोचित राज्य (servile state) की स्थापना कर रही थी।

इन लेखकों ने विनिमयकारी राज्य (distributive state) की स्थापना का समर्थन किया जिससे श्रेणी समाजवादियों के विचारों को समर्थन मिला।

(2) मजदूरी प्रथा की आलोचना—उन्नीसवीं शताब्दी में समाजवादियों ने 'मजदूरी प्रथा' तथा पूंजीपतियों की मुनाफाखोरी की कटु आलोचना की। वे उत्पादन की उस पद्धति का समर्थन करते थे जिसका आधार लाभ न हो।

(3) व्यक्तिवाद की बुराइयां—व्यक्तिवाद से उत्पन्न होने वाली बुराइयों की निन्दा लगभग सभी स्कूलों के समर्थकों ने की।

(4) राज्य सम्प्रभुता का खण्डन—डा० फिगिस और प्रो० मेटलैण्ड ने राज्य की निरपेक्ष सम्प्रभुता पर प्रहार किया तथा समुदायों के महत्व पर प्रकाश डाला। इन लेखकों का विश्वास है कि समुदायों का अपना अस्तित्व होता है, अपना कार्य क्षेत्र होता है, अपना व्यक्तित्व होता है तथा अपनी इच्छा होती है। इस लिए राज्य को उनके कार्यों में हस्तक्षेप नहीं करना चाहिए। इन लेखकों के लिए सम्प्रभुता कोई आदरणीय अंधविश्वास (venerable superstition) नहीं। मेटलैण्ड के लिए तो "राज्य एक समुदाय है एक अधिपति नहीं।"

(5) श्रम संघवाद का प्रभाव—फ्रांसीसी श्रम संघवाद के इस विचार का कि "सारी सत्ता उत्पादकों के हाथों में" (All power to the producer), 'उद्योग कार्य करने वालों के हाथों में होना चाहिए" का प्रभाव श्रेणी समाजवादियों पर अत्यधिक पड़ा।

(6) व्यावसायिक प्रतिनिधित्व की प्रणाली का विकास—श्रेणी समाजवादी सेनर रमीरो डी मेजतू (Senor Ramiro de Maeztu) के व्यावसायिक सिद्धान्त से अत्यधिक प्रभावित हुए। इस सिद्धान्त के अनुसार कोई प्राकृतिक अधिकार नहीं, केवल वस्तुनिष्ठ (objective) अधिकार हैं। जो इन अधिकारों की मांग करता है उसे कुछ उपयोगी कार्य करना होता है। आर० एच० टॉनी (R H Tawney) का भी यही विचार है कि पूंजी को क्रियात्मक (functional) होना चाहिए और औद्योगिक नियन्त्रण क्रियाहीन स्वामियों (functionless owners) के हाथों से निकल कर श्रमिकों के हाथों में आना चाहिए जो समाज की वास्तविक सेवा करते हैं। जे० एम० पैटन (J M Paton) ने अपने अतिक्रमणकारी नियन्त्रण (encroaching control) के सिद्धान्त द्वारा स्वामियों को धीरे-धीरे उद्योग से आक्रमणकारी श्रमिक संघ की कार्यवाही द्वारा बहिष्कृत करने पर बल दिया।

श्रेणी समाजवाद का अर्थ
(Meaning of Guild Socialism)

श्रेणी समाजवाद एक ऐसी प्रणाली और आन्दोलन है जिसका उद्देश्य गिल्डों (श्रेणियों) के निर्माण द्वारा उद्योग में स्वायत्तता लाना है। कोकर के शब्दों में,

"श्रेणी समाजवाद पूर्ववर्ती फ्रेंच श्रम संघवाद की भाँति ही उन सभी सिद्धान्तों का विरोधी है जो औद्योगिक उत्पादन की प्रक्रिया को राजनीतिक सत्ता के अधीन रखते हैं। यह मजदूरों की न केवल पूंजीपतियों के शोषण से ही रक्षा करना चाहता है बल्कि नौकरशाही के दमन से भी शिल्पकर्ता की रक्षा करना चाहता है। उसका उद्देश्य कार्य को अधिक रोचक तथा समाज की आर्थिक व्यवस्था को अधिक प्रजातान्त्रिक बना देना है।"[1] राष्ट्रीय गिल्ड संघ में श्रेणी समाजवाद के अर्थ को इस प्रकार स्पष्ट किया गया है 'यह मजदूरी प्रथा (wage system) का उन्मूलन चाहता है और राष्ट्रीय गिल्डों की प्रजातान्त्रिक प्रणाली द्वारा उद्योग में श्रमिकों के स्वशासन को स्थापित करना चाहता है जो समाज के अन्य प्रजातान्त्रिक व्यावसायिक संगठनों के साथ मिल कर कार्य करेगा।"[2] ई० एम० बर्न्स के शब्दों में, "श्रेणी समाजवाद उत्पादन के साधनों के स्वामित्व का राज्य के हाथों में सौंपना चाहता है और कारखानों, खानों, रेल मार्गों आदि के प्रबन्ध और कार्यवाही को श्रमिकों के गिल्डों के हाथों में सौंपना चाहता है।"[3] ओरेज के शब्दों में, "गिल्ड परस्पर निर्भर व्यक्तियों का एक ऐसा स्वशासित समुदाय है जो समाज में किसी कार्य विशेष को उत्तरदायित्वपूर्ण ढंग से सम्पन्न करने के लिए संगठित हुआ है।"[4] कोल के शब्दों में 'औद्योगिक नियन्त्रण में उत्पादकों तथा राज्य के मध्य स्थापित की गयी साझेदारी की भावना को श्रेणी समाजवाद कहते हैं।"[5]

संक्षेप में, श्रेणी समाजवाद ने अति समष्टिवाद और अति श्रम संघवाद के मध्य का मार्ग (golden mean) अपनाया है। वे राज्य की सम्प्रभुता को कम कर उद्योगों में प्रजातन्त्र अर्थात् स्वायत्तता लाना चाहते हैं।

श्रेणी समाजवाद के मूल सिद्धान्त
(Fundamental Principles of Guild Socialism)

अन्य समाजवादियों की भाँति श्रेणी समाजवादी भी वर्तमान पूंजीवादी सामाजिक तथा आर्थिक व्यवस्था की बुराइयों की आलोचना करते हैं। उनका विश्वास है कि यह प्रणाली दरिद्रता, असमानता, असुरक्षा, शोषण तथा लाभ वृत्तियों को जन्म

---

1 Coker Francis W *Recent Political Thought* p 274
2 National Guild League Quoted in *What is Property?* Tr by B R Tucker, p 261-262
3 Burns E M *Ideas in Conflict* p 176
4 Orage, A R
5 'Guild Socialism is based on the idea of partnership between the producers and the State in the control of Industry —*Cole, G D H*

देती है। उनकी धारणा है कि इन बुराइयों के मुख्यत दो कारण हैं— (1) वर्तमान मजदूरी प्रथा और (2) प्रतिनिधित्व की राजनीतिक या क्षेत्रीय प्रणाली। इन्हें दूर करने के लिए श्रेणी समाजवादी निम्न सिद्धान्तों का प्रतिपादन करते है—

1 मजदूरी प्रथा का उन्मूलन

श्रेणी समाजवादी पूँजीवाद की मजदूरी प्रथा (wage system) के कटु आलोचक हैं। वे मजदूरी प्रथा को नैतिक मनोवैज्ञानिक, आर्थिक और कलात्मक दृष्टि से हानिकारक मानते हैं। यह प्रणाली मजदूर वर्ग के सभी रोगों की जड़ है। उनका विश्वास है कि यह प्रणाली श्रमिक को अमानुषी बनाती है, उसकी शिल्प कला की भावना को नष्ट करती है, उसमे अपने काम मे गौरव की भावना का अन्त करती है, उसे नीरस और कष्टप्रद बनाती है। संक्षेप म, मजदूरी प्रथा मजदूर को दास बनाती है।

नैतिक दृष्टि स पूँजीवादी व्यवस्था अनैतिक एव अनुचित है क्योंकि इस व्यवस्था मे पूँजी के स्वामियों को बिना किसी श्रम के अत्यधिक लाभ होता है और श्रमिकों को श्रम करने के बाद भी पूरा वेतन नहीं मिलता। इस तरह इस व्यवस्था मे कर्त्तव्य की अपेक्षा धन प्राप्ति पर अत्यधिक बल दिया जाता है।

मनोवैज्ञानिक दृष्टि से भी पूँजीवादी व्यवस्था गलत है। इस व्यवस्था मे मजदूर की न केवल कला कौशल का ह्रास होता है बल्कि वह यन्त्र मे एक पुर्जा मात्र बन कर रह जाता है। मजदूर अपने काम मे किसी प्रकार के गौरव का अनुभव नहीं करता।

पूँजीवादी व्यवस्था मे मजदूरों मे दास वृत्ति का विकास होता है तथा उसकी रचनात्मक प्रवृत्तियों का पतन होता है। कोल स्वयं लिखता है कि 'पूँजीवाद का अभिशाप लोगों की दरिद्रता नहीं, दासता है।'[1]

श्रेणी समाजवादी लाभ और शोषण पर आधारित पूँजीवाद की मजदूरी प्रथा का उन्मूलन चाहते हैं। वे वेतनों को श्रम के आधार पर नहीं बल्कि मनुष्यत्व (मानवता) के आधार पर निश्चित करना चाहते हैं ताकि बीमारी, बेकारी दुर्घटना, वृद्धावस्था या अन्य ऐसी ही अवस्थाओं म मजदूरों को वेतन प्राप्त होता रहे। वे मजदूरी के स्थान पर प्रतिफल (payments) देना चाहते हैं। व मजदूर को व्यक्तियों मे व्यक्ति" बनाना चाहते हैं।

श्रेणी समाजवादियों मे इस बात पर मतैक्य नहीं कि प्रतिफल (payments) किस आधार पर—समानता के आधार पर या योग्यता के आधार पर या कार्य क्षमता

1 Not poverty of the masses but slavery is the curse of Capitalism —Cole G D H *Social Theory*

के आधार पर या अन्य किसी आधार पर—दिया जाय ? काल की धारणा थी कि प्रतिफल की समानता एक असम्भव आदर्श है जिसकी सिद्धि कम से कम आन्दोलन के प्रारम्भिक काल म तो सम्भव नही ।

2 राज्य और श्रमिको मे साझेदारी

श्रेणी समाजवादी उत्पादन के साधनो पर सामाजिक स्वामित्व चाहते है । वे उत्पादन के क्षेत्र मे उत्पादको और राज्य के बीच साझेदारी के पक्ष मे हैं । इसका अभिप्राय यह है कि वे श्रमिको के हाथो म सत्ता देना चाहते हैं । उनकी धारणा है कि जब तक उद्योगो पर श्रमिको का—मजदूरो और बुद्धिजीवियो का—नियन्त्रण स्थापित नहीं हो जाता तब तक आर्थिक स्वतन्त्रता नही हो सकती ।

3 औद्योगिक शक्ति का विकेन्द्रीकरण

श्रेणी समाजवादी केन्द्रीयकरण के कटु आलोचक हैं । व कठोर नियन्त्रण और अति केन्द्रीयकरण के विरुद्ध है । वे औद्योगिक शक्ति का अनेक गिल्डो मे विकेन्द्रीकरण करके समाज मे वास्तविक परिवतन लाना चाहते हैं ।

4 स्वशासित गिल्ड

श्रेणी समाजवादियो का मुख्य सिद्धान्त यह है कि वे गिल्डो (श्रेणिया) की स्थापना चाहत है जिन्हे वे अपन कार्यो मे स्वायत्तता देना चाहते हैं । ये गिल्ड (श्रेणियां) सहकारिता के आधार पर काय करेंगे । इन श्रेणियो मे प्रतिनिधियो का निवाचन श्रमिको द्वारा होगा ।

5 व्यावसायिक प्रजातन्त्र या क्रियाशील प्रतिनिधित्व

व्यावसायिक प्रजातन्त्र श्रेणी समाजवादियों का मूल मन्त्र या सिद्धान्त है । उनकी धारणा है कि क्षेत्रीय, प्रादेशिक या राजनीतिक प्रतिनिधित्व की विचारधारा मिथ्या है, धोखा है । वास्तविक या सच्चा प्रतिनिधित्व व्यावसायिक या विशिष्ट ही हो सकता है । उनका विश्वास है कि कोई व्यक्ति किसी दूसरे व्यक्ति का प्रतिनिधित्व नही कर सकता । वह केवल व्यवसाय या व्यवसाय के हित का प्रतिनिधित्व कर सकता है । उदाहरणतया एक अध्यापक अध्यापक के हितो का प्रतिनिधित्व कर सकता है, एक कृषक कृषक के हितो का प्रतिनिधित्व कर सकता है, एक जूता बनाने वाला जूते बनाने वाले साथियो के हित का प्रतिनिधित्व कर सकता है । इन सब उदाहरणो मे व्यक्ति ' हितो के एक समुदाय मे सगठित हित का प्रतिनिधित्व करता है । परन्तु एक वकील या इन्जीनियर एक अध्यापक, कृषक या जूते बनाने वाले के हितो का प्रतिनिधित्व नही कर सकता । जब एक प्रतिनिधि अनेक हितो का प्रतिनिधित्व करता है तो वह प्रतिनिधित्व की प्रणाली का दुरुपयोग है । सच्चे अर्थों मे वह किसी हित का पूर्ण प्रतिनिधित्व नही करता । श्रेणी समाजवादियो के लिए सच्चा प्रतिनिधित्व तो व्यावसायिक हो सकता है, प्रादेशिक नही ।

स्पष्ट है कि व्यावसायिक प्रतिनिधित्व की प्रणाली के अनुसार प्रत्येक व्यक्ति के पास प्रत्येक व्यावसायिक समुदाय के लिए एक मत होगा। "एक आदमी, एक मत" का स्थान 'एक आदमी उतने ही मत जितने कि हित'[1] ले लेगा। परन्तु प्रत्येक हित के सम्बन्ध में एक मत होगा।

इस तरह श्रेणी समाजवादी आर्थिक हितों के आधार पर उद्योगों में प्रजातन्त्र लाने के पक्ष में हैं। और उद्योग में प्रजातन्त्र व्यावसायिक प्रतिनिधित्व की प्रणाली द्वारा ही सम्भव है। श्रेणी समाजवादी इस प्रणाली का समर्थन इस आधार पर करते हैं कि इससे समाज के सभी वर्गों—उपभोक्ताओं, उत्पादकों, नागरिकों तथा अन्य जीविकोपार्जन के साधनों में लगे हुए व्यक्तियों—के हित सुरक्षित रहेंगे। इसके साथ शिल्प की प्रेरणा को पुनः स्थापित किया जा सकेगा जिससे मजदूरों के आत्म सम्मान में वृद्धि होगी, उनमें गुणों का विकास होगा तथा उनके वेतनों में वृद्धि होगी। जैसा कि जोड ने लिखा है "व्यावसायिक प्रजातन्त्र केन्द्रीभूत और सर्वमुखी राज्य के विचार के विरुद्ध प्रबल प्रतिक्रिया है। वह विभिन्न समितियों को कार्य तथा शक्तियाँ देने का समर्थन करता है। उनसे यह आशा की जा सकती है कि वे, आधुनिक समाज की जटिलता में, मनुष्य के सब भिन्न हितों को अभिव्यक्त करेंगी।"[2]

उपर्युक्त वर्णन से यह नहीं समझ लेना चाहिए कि श्रेणी समाजवादी केवल व्यावसायिक प्रजातन्त्र ही चाहते हैं राजनीतिक प्रजातन्त्र नहीं चाहते। वास्तव में वे आर्थिक और राजनीतिक दोनों ही प्रजातन्त्रों को चाहते हैं। आर्थिक स्वतन्त्रता के लिए वे व्यावसायिक प्रजातन्त्र के समर्थक हैं और राजनीतिक स्वतन्त्रता के लिए क्षेत्रीय या प्रादेशिक प्रजातन्त्र के समर्थक हैं। व्यावसायिक प्रजातन्त्र द्वारा वे उद्योगों में आर्थिक प्रजातन्त्र स्थापित करना चाहते हैं। वे उद्योगों पर मजदूरों का नियन्त्रण ही नहीं चाहते बल्कि उनका संचालन भी मजदूरों के संघों द्वारा करना चाहते हैं। राजनीतिक प्रजातन्त्र के द्वारा वे राष्ट्रीय हितों—सुरक्षा, शान्ति, बाह्य आक्रमण से रक्षा, आन्तरिक व्यवस्था, शिक्षा, विवाह, मुद्रा आदि—की सुरक्षा चाहते हैं। जहाँ आर्थिक कार्यों के लिए वे 'गिल्ड काँग्रेस'' का निर्माण चाहते हैं वहाँ राष्ट्रीय एवं सामान्य कार्यों के लिए संसद का निर्माण चाहते हैं। उनकी धारणा है कि दोनों प्रतिनिधित्व की प्रणालियों में कोई एक अपने आप में पूर्ण नहीं क्योंकि आर्थिक स्वतन्त्रता के अभाव में राजनीतिक स्वतन्त्रता केवल धोखा है। इस तरह ये दोनों प्रतिनिधित्व की प्रणालियाँ एक दूसरे की पूरक हैं विरोधी नहीं। उनका कहना है कि प्रतिनिधित्व

---

1 'Instead of one vote one man we must say one man as many votes as interests but only one vote in relation to each interest — Cole *Social Theory* p 106

2 Joad, C E M *Introduction to Modern Political Theory*, p 78

का सच्चा स्वरूप व्यावसायिक या नियात्मक और भौगोलिक या प्रादेशिक प्रतिनिधित्व की प्रणालियो का योग है ।

गिल्डो का समाज
(A Society of Guilds)

गिल्ड समाज की रचना और उसके कार्यो के बारे मे श्रेणी समाजवादियो मे मतैक्य नही । जहाँ कुछ श्रेणी समाजवादी जैसे पेन्टी और टेलर गिल्डो को स्थानीय आधार (local basis) पर सगठित करना चाहते हैं वहा अधिकाश राष्ट्रीय आधार पर (national basis) गिल्डो की रचना करना चाहते हैं । जो श्रेणी समाजवादी स्थानीय आधार पर गिल्डो की रचना करना चाहते है उनका विश्वास है कि राष्ट्रीय आधार पर गिल्डो की स्थापना से केन्द्रीयकरण और नौकरशाही की वृत्तियो को बढावा मिलेगा और ये ऐसी बुराइया हैं जिनका वे विरोध कर रहे हैं । इन श्रेणी समाजवादियो की धारणा है कि श्रमिको की मुक्ति स्थानीय औद्योगिक समुदायो की स्थापना से ही हो सकती है । दूसरी ओर, जो राष्ट्रीय आधार पर गिल्डो की स्थापना करना चाहते है, उनका विश्वास है कि बिना किसी प्रकार के समन्वय (Coordination) के भिन्न भिन्न गिल्डो के कार्यों को सुचारु रूप से चलाया नही जा सकता । इन श्रेणी समाजवादियो की धारणा थी कि जहा स्थानीय स्वतन्त्रता की आवश्यकता है वहा राष्ट्रीय सगठन की भी आवश्यकता है तभी वर्तमान श्रमिक सघ के आन्दोलन से लाभ उठाया जा सकता है और गिल्ड के ढाँचे को बडे पैमाने पर होने वाले उत्पादन की अवस्थाओ के अनुकूल बनाया जा सकता है ।

गिल्ड व्यवस्था की रूपरेखा इस प्रकार से होगी कि प्रत्येक गिल्ड मे वे सब सदस्य होगे जो किसी उद्योग, व्यापार या व्यवसाय के सदस्य हैं चाहे वे बुद्धिजीवी हैं या श्रमिक, प्रबन्धक हैं या तकनीशियन (Technician) । प्रत्येक गिल्ड के प्रबन्धको का निर्वाचन गिल्ड के सदस्य करेंगे । परन्तु जिन पदो के लिए तकनीकी ज्ञान और कुशलता की आवश्यकता है उन पदो के लिए केवल वे लोग ही निर्वाचन के लिए योग्य होंगे जिनके पास निर्धारित योग्यताएँ हैं । कोल के शब्दो मे "प्रत्येक अवस्था मे जहाँ व्यक्तियो के समुदाय को किसी एक नेता या अफसर के अधीन काम करना पडता है उसे उस अफसर को पसन्द करने का अधिकार होना चाहिए । प्रत्येक समिति उन व्यक्तियो द्वारा प्रत्यक्ष रीति से चुनी जानी चाहिए जिनके काम पर उसका निरीक्षण होगा ।"

कोल का कहना है कि जितने कार्यों के विभिन्न और आधारभूत समूह हैं उतने ही गिल्ड होने चाहिए । प्रत्येक उद्योग तथा प्रत्येक तकनीकी और सास्कृतिक सेवा सचालन एक गिल्ड द्वारा होगी । काम के स्वरूप के अनुसार गिल्डो को तीन श्रेणियो मे रखा जायगा । ये श्रेणियाँ है औद्योगिक, नागरिक और वितरणात्मक । खान, लोहा इस्पात, कपडा, चीनी, भवन निर्माण, कृषि आदि को मोटे तौर पर औद्योगिक गिल्डो

म समझा जा सकता है, अध्यापन, कानून, डाक्टरी, नाटक तथा इन्जीनियरिंग आदि नागरिक गिल्डो मे समझे जा सकते हैं और छोटे व्यापारो को वितरणात्मक गिल्डो मे समझा जा सकता है। परन्तु इस व्यवस्था मे यह स्पष्ट नहीं किया गया कि जल, प्रकाश, आदि सेवाओ को किन गिल्डो के अधीन रखा जायगा। इतना अवश्य है कि ऐसे गिल्डो का आधार व्यावसायिक न होकर क्षेत्रीय या प्रादेशिक होगा।

प्रत्येक गिल्ड का अपने विशेष क्षेत्र म एकाधिकार होगा। प्रत्येक गिल्ड का उद्देश्य उद्योग को चलाना, उसमे काय करने वाला की सृजनात्मक भावना का विकास करना तथा उद्योगो मे स्वशासन लाना है। प्रत्येक गिल्ड ही इस बात का निर्धारण करेगा कि वस्तुओ का मूल्य क्या हो, उत्पादन की मात्रा कितनी हो। वह उत्पादन सम्बन्धी सभी प्रश्नो का निर्धारण करेगा। वह ही श्रमिको से सम्बन्धित प्रश्नो जसे काय करने के घण्ट, वेतनो की दरें, काय की अवस्थायें तथा अन्य सामाजिक सुविधाओ — स्वास्थ्य, चिकित्सा, गृह निमाण आदि—का निणय करेगा। जिन प्रश्नो का सम्बन्ध जसे उत्पादन की मात्रा और वस्तुओ का मूल्य उपभोक्ता गिल्डो से है तो वह उनसे परामश करेगा।

श्रेणी समाजवादियो की धारणा है कि केवल औद्योगिक गिल्ड ही नही होंगे बल्कि उपभोक्ता गिल्ड नागरिक गिल्ड भिन्न भिन्न कलाओ और व्यवस्थाओ के गिल्ड भी होंगे। इन सबको स्थानीय प्रदेशीय और राष्ट्रीय गिल्डो मे सगठित किया जायगा। उपभोक्ता गिल्डो की व्यवस्था उत्पादन गिल्डो मे एकाधिकार की प्रवृत्ति को रोकने के लिए की गयी थी ताकि उत्पादक गिल्ड कही निरकुश न हो जायें और विशेष प्रकार की वस्तुओ का ही उत्पादन न करने लगें या वस्तुओ का मूल्य मन चाहे ढग से निश्चित न करें।

उत्पादको और उपभोक्ताओ दोनो के हितो को सुरक्षित रखने के लिए श्रेणी समाजवादियो ने सयुक्त परामश (Joint Consultation) की व्यवस्था की। इसके लिए 'प्रतिनिधित्व के विनिमय" (exchange of representation) वतमान 'मिश्रित सचालक समितियो' (interlocking directorates) के समान किसी समिति गिल्ड दूतो के विनिमय अथवा विशेष सयुक्त समितियो और अन्त म समस्त राष्ट्रीय गिल्डो का प्रतिनिधित्व करने वाली राष्ट्रीय औद्योगिक गिल्ड काग्रेस की स्थापना की व्यवस्था होगी। इसमे सभी राष्ट्रीय गिल्डो के प्रतिनिधि होंगे। यह सस्था गिल्ड प्रणाली की उसके औद्योगिक पक्ष म अन्तिम प्रतिनिधि होगी जो उद्योग सम्बन्धी सभी प्रश्नो का निणय करेगी तथा औद्योगिक विवादो म अन्तिम अपील का न्यायालय होगी।

कोल के अनुसार राष्ट्रीय औद्योगिक गिल्ड काग्रेस के निम्न अधिकार होंगे —

1 यह गिल्ड व्यवस्थापिका के रूप मे काय करेगी।
2 यह अन्तिम अपील के न्यायालय के रूप काय करेगी।
3 यह गिल्डो के लिए सामान्य नियमो को तैयार करेगी।

4 यह गिल्ड नियमो की व्याख्या करेगी तथा झगडो का निपटारा करेगी ।

5 यह गिल्डो पर कर लगा कर अपनी निधि (fund) एकत्रित करेगी ।

6 यह उपभोक्ताओ के प्रतिनिधियो से व्यवहार करते समय उत्पादको के हितो का प्रतिनिधित्व करेगी ।

7 यह सब गिल्डो के सामान्य प्रतिनिधित्व के रूप मे कार्य करेगी और उसके बाह्य सम्बन्धो का ध्यान रखेगी ।

श्रेणी समाजवाद के साधन
(Methods of Guild Socialism)

श्रेणी समाजवादी अपने उद्देश्यो को प्राप्त करने के लिए न तो पूर्णतया सवैधानिक और न ही पूर्णतया हिंसात्मक साधनो का प्रयोग करना चाहते हैं । वे तो मध्यम मार्ग (Golden Mean) अपनाते हैं अर्थात अपने उद्देश्यो को प्राप्त करने के लिए वे सवैधानिक साधनो के साथ श्रमिको के सगठनो (trade unions) का प्रयोग भी करना चाहते हैं । वे ससदीय कार्यों म अधिक विश्वास नही करते क्योकि, जैसाकि कोल ने लिखा है "सवैधानिक एव राजनीतिक साधनो द्वारा क्रान्ति हो नही सकती ।"

श्रेणी समाजवादी अपने उद्देश्यो को प्राप्त करने के लिए श्रम सघवादियो के साधनो का प्रयोग नही करते । जहा श्रम सघवादी अपने उद्देश्यो को प्राप्त करने के लिए हिंसा, तोड फोड, हडताल या सीधी कार्यवाही के प्रयोग स नही हिचकिचाते वहा श्रेणी समाजवादी समष्टिवादियो की भांति शान्तिपूर्ण एव सवैधानिक साधनो का सहारा लेते है । वे अराजकतावादियो की भांति राज्य का पूर्णतया उन्मूलन नही चाहत और न ही ससदीय साधनो का पूर्णतया बहिष्कार करते है । श्रमिको की दशा सुधारने के लिए श्रेणी समाजवादी राज्य और ससद का प्रयोग करना चाहते है । वे उन कानूनो के निर्माण के लिए जिनका उद्देश्य श्रमिको की दशा सुधारना है राज्य रूपी यन्त्र का प्रयोग करना चाहते हैं ।

परन्तु श्रेणी समाजवादी पूर्णतया सवैधानिक साधनो पर ही निर्भर नही करते । वे परिवर्तन के लिए श्रमिको तथा श्रम सगठनो या सघो का अत्यधिक प्रयोग करना चाहते हैं । उनके लिए आज के श्रमिक सघ कल के गिल्डस या श्रेणियाँ हैं । आर्थिक साधनो द्वारा वे मूल परिवर्तन लाने के पक्ष म हैं । वे श्रमिको को शिक्षित करना चाहते हैं । वे श्रमिक सगठनो का विस्तार कर राज्य शक्ति को कम करना चाहते हैं ।

श्रेणी समाजवादी पूँजीवादी भवन को भी एक दम गिराना (नष्ट करना) नही चाहते । वे इसे क्रमिक रूप से गिराना चाहते हैं । शनै शनै धनिको से आर्थिक सत्ता छीन कर श्रमिको के प्रतिनिधियो के हाथो म देना चाहते हैं । यह प्रक्रिया क्रमिक परन्तु नियोजित एव नियमित रूप से शीघ्र विकसित होगी । कोल के शब्दो म "जिस लक्ष्य (ध्येय) को हमे प्राप्त करना है वह शीघ्र ही क्रान्ति करना नही वरन्

समस्त शक्तियों को विकासवादी ढंग पर इस दृष्टि से संगठित करना है जिससे क्रांति, जो एक अर्थ में अवश्य होगी, गृह युद्ध का रूप कम से कम धारण कर सके और पहले से ही काम करने वाली प्रवृत्तियों की परिणति तथा सिद्ध कार्य की पुष्टि का रूप ही अधिक से अधिक धारण करे।"[1]

जिन साधनों या प्रयोग श्रेणी समाजवादी पूँजीवाद को क्रमिक रूप से अपदस्थ करने के लिए प्रयोग में लाते हैं वे निम्न हैं —

1 क्रमशः अधिकार जमाने की नीति (Policy of Encroaching Control)

2 सामूहिक ठेका (Collective Control)

3 औद्योगिक प्रतिस्पर्धा (Industrial Competition)

1 क्रमशः अधिकार जमाने की नीति (Policy of Encroaching Control)

क्रमशः अधिकार जमाने की नीति का अभिप्राय यह है कि श्रमिकों को अपने संगठनों को शक्तिशाली बना कर "शनैः शनैः स्वामी वर्गों से उस आर्थिक सत्ता को, जो आज उनके पास है, उनके मनोनीत व्यक्तियों के हाथों में कार्यों और अधिकारों को छीन कर श्रमिकों के प्रतिनिधियों के हाथों में देना है।' यह संयुक्त नियन्त्रण (Joint Control) की प्रणाली नहीं जिसके अन्तर्गत स्वामी तथा सेवक मिलकर कार्य करते हैं बल्कि यह तो एक वर्ग से (स्वामियों से) आर्थिक सत्ता छीन कर दूसरे वर्ग को (सेवकों को) आर्थिक सत्ता प्रदान करना है। इसमें लाभ में भाग बटाने जैसी कोई बात नहीं। इसका तो केवल यह अभिप्राय है कि श्रमिकों को अपनी वर्कशाप में फोरमैन के चुनाव का अधिकार प्राप्त हो, उसमें नियमन का अधिकार हो तथा श्रमिकों को काम पर लगाने तथा बरखास्त कर देने का भी अधिकार हो।

2 सामूहिक ठेका (Collective Contract)

सामूहिक ठेके का अभिप्राय यह है कि स्वामी किसी वर्कशाप के नियत मात्रा में तैयार माल के लिए एक मुश्त रकम (Lump Sum) देने को तैयार हो जाता है। श्रमिक शीघ्रता से अल्प समय में कार्य समाप्त कर स्वामी से वह मुश्त रकम प्राप्त कर लेते हैं तथा श्रमिकों की सभा अपने नियमों के अनुसार उस मुश्त रकम को श्रमिकों में बाँट देती है। इस पद्धति का लाभ यह है कि श्रमिक काम का प्रबन्ध स्वयं करेंगे और स्वामियों के अनुचित हस्तक्षेप से छुटकारा पा सकेंगे।

3 औद्योगिक प्रतिस्पर्द्धा (Industrial Competition)

औद्योगिक प्रतियोगिता का अभिप्राय यह है कि श्रमिक सामूहिक सहयोग द्वारा

---

1 Cole, G D H *Guild Socialism Restated*, Quoted by Coker in his, *Ibid*, p 274

पूँजीपतियों की प्रतियोगिता में स्वयं उद्योगों की स्थापना करें तथा उनका प्रबन्ध और संचालन भी स्वयं करें। इससे श्रमिक न केवल उद्योगपतियों को अपने समक्ष झुका सकेंगे बल्कि उनमें संगठन और स्वावलम्बन की भावना भी जाग्रत होगी।

श्रेणी समाजवाद के अन्तर्गत राज्य की स्थिति या श्रेणी समाजवादियों का राजनीतिक सिद्धान्त
(Position of the State in Guild Socialism or Political Theory of Guild Socialism)

श्रेणी समाजवादी राज्य विरोधी नहीं। वे केवल उद्योग पर राज्य के नियन्त्रण के विरोधी हैं। औद्योगिक क्षेत्र में राज्य के हस्तक्षेप को वे शरारतपूर्ण (mischievous) मानते हैं। परन्तु उद्योग को राज्य से स्वतन्त्र रख कर भी वे राज्य को अपरिहार्य संस्था मानते हैं। उनकी धारणा है कि सार्वजनिक हित के कुछ कार्य ऐसे हैं जिन्हें गिल्डों द्वारा सिद्ध नहीं किया जा सकता। केवल राज्य जैसी संस्था ही उन्हें सिद्ध कर सकती है। ये कार्य हैं बाह्य आक्रमण से सुरक्षा, आन्तरिक सुरक्षा, न्याय व्यवस्था, करारोपण, नागरिकों के हितों की रक्षा, अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्ध, तथा अन्य राजनीतिक कार्य, यातायात, मुद्रा चलन, शिक्षा, विवाह, तलाक आदि। श्रेणी समाजवादी उत्पादन कर्त्ताओं के विशिष्ट हितों के श्रम संघवादी विचार और सार्वजनिक हितों के राजनीतिक विचार में सामंजस्य स्थापित करने की कोशिश करते हैं। वे न तो व्यावसायिक समुदायों को और न ही प्रादेशिक समुदायों को पूर्ण मानते हैं। उनकी धारणा है कि 'कुछ सामान्य आवश्यकतायें पहली से और कुछ दूसरी से पूरी होती हैं। इस प्रकार राज्य समाज की आवश्यक संस्था बनी रहती है यद्यपि सार्वजनिक कार्य के ऐसे अनेक रूप भी हैं जिनमें राज्य का कोई भाग नहीं होता।"[1]

श्रेणी समाजवादी राज्य के कार्यों को मुख्यतः निम्न तीन क्षेत्रों तक सीमित करते हैं —

1. वे कार्य जो आर्थिक नहीं जैसे आन्तरिक और बाह्य नीति।
2. वे कार्य जिनका उद्देश्य उपभोक्ताओं के हितों की रक्षा करना हो।
3. वे कार्य जिनमें उत्पादक संघों के अनियन्त्रित कार्यों को नियन्त्रित करने की आवश्यकता हो।

परन्तु राज्य के अन्तिम उद्देश्य, उसके स्वरूप तथा निश्चित कर्त्तव्यों के सम्बन्ध में श्रेणी समाजवादियों में मतैक्य नहीं। उनमें इस बात पर भी मतैक्य नहीं कि राज्य का उत्पादक संघों के साथ क्या सम्बन्ध हो। इस बारे में श्रेणी समाज-

1 Coker, Francis W *Ibid*, p 274

वादियों में दो प्रकार की विचारधाराएँ विद्यमान हैं। एक का प्रतिनिधित्व हॉब्सन के विचारों से तथा दूसरी का कोल के विचारों से स्पष्ट होता है।

हॉब्सन के राजनीतिक विचार—हॉब्सन राज्य को सारे 'समाज का प्रतिनिधि' मानता है। इसलिए वह राज्य को अन्तिम सत्ता के रूप में सर्वोच्च शक्ति प्रदान करने के पक्ष में है। उसकी धारणा है कि राज्य "सत्ता का आदि स्रोत, अन्तिम न्याय कर्त्ता और उत्पादन कर्त्ता या उपभोक्ता की हैसियत से, नागरिक की हैसियत में, व्यक्ति का प्रतिनिधि रहेगा।" इस अर्थ में हॉब्सन का कथन है कि "हम समाजवादी बने हुए हैं।"

परन्तु हॉब्सन की यह भी विचारधारा है कि राज्य सारी शक्तियाँ अपने हाथ में केन्द्रित नहीं करेगा बल्कि गिल्डों जैसे समुदायों को वह अपनी शक्ति सौंप देगा ताकि प्रत्येक गिल्ड साधारणतया अपने आर्थिक क्षेत्र में स्वायत्त रहे। गिल्ड ही इस बात का निर्णय करें कि कौन सा माल उत्पन्न किया जाय और उसका विक्रय मूल्य क्या हो। वह ही वेतन निर्धारित करेगा। उसके निजी बैंक होंगे। वही अपनी ऋण व्यवस्था करेगा और यन्त्रों पर राज्य के न्यास (trustee) के रूप में कार्य करेगा। उद्योगों और यन्त्रों पर स्वामित्व तो राज्य का रहेगा परन्तु वह उन्हें गिल्डों को पट्टे (Lease) पर दे देगा। सार्वजनिक सेवा में लगे गिल्डों जैसे शिक्षा, स्वास्थ्य आदि को राज्य आर्थिक सहायता देगा।

राज्य की शक्तियों को कम करके भी हॉब्सन राज्य की सर्वोच्च शक्ति को बनाये रखता है। गिल्डों के आपसी झगड़े का निपटारा करने के लिए वह राज्य को अन्तिम अपील के न्यायालय (a court of final appeal) के रूप में स्वीकार करता है। उसकी धारणा है कि जब गिल्ड कांग्रेस गिल्डों के आपसी झगड़ों का निपटारा करने में असफल रहे तो राज्य को निर्णय करने का अधिकार होगा। राज्य गिल्डों के कार्यों के सामान्य नियमों का भी निर्णय करेगा।

उपर्युक्त कार्यों के अतिरिक्त हॉब्सन राज्य को ये काम भी सौंपता है शान्ति और व्यवस्था, विदेशी सम्बन्ध, पुलिस, सेना, दीवानी और फौजदारी कानूनों का निर्माण तथा उन्हें कार्यान्वित करना। हॉब्सन इतना काल्पनिक नहीं था कि वह यह सोचने लगता कि गिल्ड व्यवस्था में समस्त अपराधों का नाश हो जायगा और व्यक्तिगत अधिकारों की रक्षा के लिए किसी प्रकार की दण्ड या न्याय व्यवस्था की आवश्यकता नहीं रहेगी।

संक्षेप में, हॉब्सन राज्य की सर्वोच्च स्थिति को बनाये रखता है परन्तु उसकी शक्ति का विकेन्द्रीकरण कर देता है। साथ ही वह झगड़ों के निपटारे तथा नियन्त्रण के लिए राज्य को सर्वोच्च शक्ति प्रदान करता है परन्तु गिल्डों को अपने आर्थिक क्षेत्र में स्वतन्त्रता भी देता है।

कोल के राजनीतिक विचार—कोल के राजनीतिक विचार अधिक बहुलवादी है। वह राज्य की सर्वोच्च सत्ता को स्वीकार नहीं करता। वह राज्य को न तो अन्तिम मध्यस्थ के रूप में, न अंतिम निर्णायक (सम्प्रभु) के रूप में और न ही सामाजिक और राजनीतिक एकता के केन्द्र के रूप में स्वीकार करता है। उसके लिए राज्य अन्य समुदायों की भाँति एक समुदाय है "जिसका कार्य क्षेत्र उसके द्वारा सम्पन्न किये जाने वाले वक्तव्यों के अनुपात में है।"

कोल राज्य और गिल्डों (श्रेणियों) को समान स्तर पर रखता है। वह दोनों में से किसी एक को सर्वोच्च नहीं मानता। उसका कहना है कि "उत्पादन के साधनों पर राज्य का स्वामित्व होना चाहिए, उत्पादन के कार्यों पर गिल्ड का नियन्त्रण होना चाहिए।"[1] एक अन्य स्थान पर कोल लिखता है कि "न तो संसद ही और न गिल्ड कांग्रेस ही अंतिम सम्प्रभु होने का दावा कर सकती है। एक सर्वोच्च क्षेत्रीय समुदाय है तो दूसरा सर्वोच्च व्यावसायिक समुदाय।"[2] कोल की धारणा है कि यदि दोनों में मूल्यों और गुणों में भेद या विवाद उत्पन्न हो जाता है तो इस विवाद का निर्णय एक संयुक्त प्रतिनिध्यात्मक निकाय (representative body) द्वारा होगा जिसे उसने व्यावसायिक न्याय की प्रजातन्त्रीय सर्वोच्च न्याय संस्था (Democratic Supreme Court of Functional Equity) का नाम दिया। इस न्यायालय में सब संगठित उपभोक्ताओं और सब संगठित उत्पादकों के प्रतिनिधि होंगे। "यह न्यायालय सब समुदायों के सामान्य विषयों पर विचार करेगी। उसे बल प्रयोग के सर्वोच्च अधिकार होंगे और उसका पुलिस तथा कानून से सम्बन्ध रखने वाली समस्त व्यवस्था पर अंतिम नियन्त्रण रहेगा। सामाजिक संगठन की ऐसी योजना में प्रभुत्व सम्पन्न राज्य की आवश्यकता नहीं रहेगी। फिर भी इसमें राज्य तथा प्रभुत्व दोनों ही विद्यमान रहेंगे। परन्तु प्रभुत्व राज्य से भी ऊँची संस्था में निहित होगा।"[3] कोल ने सर्वोच्च न्यायालय के अधिकारों की व्याख्या तो की परन्तु उसने इस बात की व्याख्या नहीं की कि इस संयुक्त निकाय या न्यायालय में गतिरोध उत्पन्न होने पर विवाद का निपटारा कैसे होगा।

कोल ने राज्य के कार्यों की भी पूर्ण व्याख्या नहीं की। अपनी आरम्भिक कल्पना में कोल ने राज्य के कार्य क्षेत्र को सुरक्षा, प्रशासन, न्याय, शिक्षा विवाह, तलाक, असहाय एवं पंगुओं के कल्याण से सम्बन्धित कार्य आदि विषयों तक सीमित रखा। उसकी यह भी धारणा थी कि राज्य को उपभोक्ताओं के हितों की सुरक्षा

---

1 Cole G D H *Self Government in Industry* (I edn) p 109
2 Cole, G D H *Self Government in Industry* (3rd edn), p 135
3 Cole, G D H *Social Theory*, Ch VIII, Quoted by Coker in his, *Ibid*, p 278

करनी चाहिए, मूल्यों को नियन्त्रित करना चाहिए तथा व्यक्तियों की आय पर भी नियन्त्रण रखना चाहिए। उत्पादन के क्षेत्र में कोल राज्य के हस्तक्षेप को स्वीकार नहीं करता। उत्पादन के क्षेत्र में वह गिल्डों को पूर्ण स्वायत्तता देना चाहता है। संक्षेप में, कोल की धारणा है कि "राज्य का 'व्यक्तियों की भिन्नताओं' से सम्बन्धित नहीं होना चाहिए बल्कि उनके 'सामान्य हितों' से सम्बन्धित होना चाहिए।

अपनी बाद वाली रचनाओं में कोल हाब्सन के इस विचार का खण्डन करता है कि राज्य का सर्वोच्च कार्य समाज की आत्मा की अभिव्यक्ति करना और समाज के विभिन्न प्रकार के समुदायों के कार्यों का निर्देशन करना तथा उनमें सम्बन्ध स्थापित करना है। कोल ने तो इस धारणा को भी अस्वीकार कर दिया कि राज्य उपभोक्ताओं का प्रतिनिधित्व करता है। उसने आर्थिक और नागरिक सेवाओं के नियन्त्रण में भी राज्य को कोई स्थान नहीं दिया। इन रचनाओं में कोल साम्यवादियों और अराजकतावादियों की भाँति राज्य के लोप और उन्मूलन की बात करता है। उसका विश्वास है कि अन्त में "सीधे आक्रमण द्वारा या आवश्यक कार्यों से वंचित हो जाने पर उसका स्वयं लोप हो जायगा।"[1]

कोल की कम्यून प्रणाली—कोल की विचारधारा में कम्यून (Commune) का विशेष स्थान है। उसकी धारणा है कि केवल इतना ही पर्याप्त नहीं कि उत्पादन और वाणिज्य के लिए गिल्ड प्रणाली की नागरिक गिल्डों की और उपभोक्ताओं की आवश्यकताओं के लिए उपभोक्ता संघों की सामूहिक उपयोगिता की सेवाओं तथा स्वास्थ्य एवं सांस्कृतिक समितियों आदि की व्यवस्था हो। इन सबका संगठन एक ऐसी अकेली प्रणाली में होना चाहिए जो सामाजिक आत्मा (communal spirit) की अभिव्यक्ति करे। इस सामाजिक आत्मा की अभिव्यक्ति के लिए कोल ने कम्यून (Commune) नामक संस्था को जन्म दिया।

कम्यून राज्य का विस्तार मात्र नहीं। यह उसका (राज्य का) उत्तराधिकारी (successor) भी नहीं। यह वर्तमान राजनीतिक मशीनरी से सर्वथा पृथक् है। यह तो समाज का एकीकरण करने वाली संस्था है। यह अनेक संस्थाओं का प्रतिनिधित्व करता है जो स्वयं उपभोक्ताओं एवं उत्पादन कर्ताओं की अनेक व्यावसायिक संस्थाओं का प्रतिनिधि है यद्यपि इस व्यावसायिक प्रतिनिधित्व के साथ कुछ मात्रा में प्रादेशिक आधार पर प्रतिनिधित्व भी शामिल किया जा सकता है। संक्षेप में, विविध गिल्डों के स्थानीय तथा प्रादेशिक संघ होने चाहिए और एक राष्ट्रीय सामाजिक संस्था भी होनी चाहिए जो राष्ट्रीय गिल्डों तथा प्रादेशिक कम्यूनों दोनों की प्रतिनिधि हो।

कम्यून के कार्यों को, स्थानीय, प्रादेशिक तथा राष्ट्रीय संगठनों के सम्बन्ध में, पाँच भागों में विभक्त किया जा सकता है जो निम्न प्रकार से हैं—

---

1 Cole, G D H *Guild Socialism Restated*, p 123

(1) राजस्व सम्बन्धी काय ।
(2) समुदायो के मतभेदो का निपटारा करने सम्बन्धी काय ।
(3) समुदायो के काय क्षेत्र का निर्धारित करन सम्बन्धी काय ।
(4) सामाजिक विपया की व्यवस्था सम्बन्धी काय ।
(5) बाध्यकारी शक्ति के प्रयोग सम्बन्धी कार्य ।

उपयुक्त वणन से स्पष्ट है कि कोल की कम्यून व्यवस्था हॉब्सन के सगठन से बहुत भिन्न नही यद्यपि वह उसे राज्य की सज्ञा नही देता। यद्यपि कोल इस धारणा का खण्डन करता है कि राज्य समस्त अधिकारा का अन्तिम स्रोत है परन्तु कम्यून का दिये गये अधिकारो से स्पष्ट है कि उसके पास हाब्सन के राज्य जैसी शक्तियाँ हैं। उत्पादन और वितरण के विभिन्न साधना पर हाब्सन और कोल दोनो ही सावजनिक अर्थात राज्य का या समाज का स्वामित्व स्थापित कर देना चाहते हैं। परन्तु उनके प्रबन्ध का काम व निजी उद्योगो की भाति ही विविध गिल्डो के कायकत्ताओ के हाथा म ही रखने के पक्षपाती ह।

अन्त म यह कहा जा सकता है कि "काल का कम्यून और हाब्सन का राज्य परम्परागत राज्य से कुछ कम प्रभुत्व सम्पन्न नही लगता। परन्तु दोना को यह आशा थी कि श्रेणी समाजवादी समाज म स्वच्छाचारी, अत्याचारी एव दमनपूण राजनीतिक सत्ता के प्रयोग की प्रवृत्ति अत्यन्त दुबल होगी।"

श्रेणी समाजवाद की आलोचना

श्रणी सामाजवाद की अनक आधारा पर आलोचना की गयी है जिनम मुख्य निम्न ह —

1 अव्यावहारिक तथा अवास्तविक

श्रेणी समाजवादियो के विचारा की यह कह कर आलोचना की गयी है कि वे अव्यावहारिक एव अवास्तविक हैं। कोल ने स्वय स्वीकार किया है कि "अच्छी से अच्छी स्थिति मे इसक व्यवहार म असफल होने की सम्भावना है। इसने राज्य के सविधान को अनेक जटिल समितिया म बाट दिया है जो सिद्धान्त मे तो ठीक है परन्तु व्यवहार म कठिन है। गिल्डा को राज्य के समान दर्जा द कर उन्होंने समाज में उपद्रव और अराजकता क रास्ते को खोल दिया है। दो ससदो का (एक क्षेत्रीय हितो के आधार पर सगठित और दूसरी व्यावसायिक या आर्थिक हिता के आधार पर सगठित) एक ही समय पर सह अस्तित्व मे विद्यमान रहना सम्भव नही। यद्यपि श्रेणी समाजवादिया न इनम विवादा का निपटारा करने के लिए 'सयुक्त समिति' की व्यवस्था की परन्तु यह कहना बहुत कठिन है कि 'सयुक्त समिति म विवादा का निपटारा हो ही जायगा, विशेषकर उस स्थिति म जब दोना के प्रतिनिधि सयुक्त समिति मे विशेष हितो की रक्षा के लिए आयेंग। यहाँ विचार विमश या सहयोग

या आदान प्रदान (give and take) के स्थान पर गतिरोध उत्पन्न होने की सम्भावना अधिक है।

2 आर्थिक और राजनीतिक कार्यों को पूर्णतया पृथक करना कठिन है

सैद्धान्तिक रूप में विचारने के लिए आर्थिक और राजनीतिक कार्यों का पृथक करना सरल है परन्तु व्यवहार में उन विभाजित कार्यों को कार्यान्वित करना कठिन है। सत्य तो यह है कि आर्थिक और राजनीतिक कार्यों को पूर्णतया पृथक् करना कठिन है। दोनों एक दूसरे पर अन्योन्याश्रित हैं। समस्याएँ जो देखने में तो राजनीतिक नजर आती हैं परन्तु वास्तव में उनके मूल में आर्थिक कारण होते हैं। यह कहना भी बहुत कठिन है कि कौन सा कार्य पूर्णतया आर्थिक है और कौन सा पूर्णतया राजनीतिक।

3 मध्य युगी गिल्डों को पुनर्जीवित करना समाज की प्रगति को कुण्ठित करना है अथवा श्रेणी समाजवाद तर्कहीन (Illogical) है

आधुनिक आर्थिक समस्याओं का सम्बन्ध अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार और अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों से होता है। इस तरह जटिल आर्थिक प्रश्नों को गिल्डों के हाथों में सौंप कर श्रेणी समाजवादी बड़ी भारी भूल करते हैं। यह समझ नहीं आता कि जो मध्ययुगी गिल्ड संस्थायें आपसी गुटों के कारण नष्ट हो गयी उन्हें पुनर्जीवित कर वर्तमान जटिल आर्थिक समस्याओं का निवारण कैसे हो सकता है? उन्हें पुनर्जीवित करना तो उन मृतक संस्थाओं को पुनर्जीवित करने के समान है जो असफल हो चुकी हैं। मध्ययुगी गिल्डों को स्थापित करना तो दूर उनका विचार भी अमूलक (काल्पनिक—chimerical) है।

4 व्यावसायिक प्रतिनिधित्व की योजना उचित नहीं

व्यावसायिक प्रतिनिधित्व की प्रणाली उचित नहीं। इसका एक कारण यह है कि आज व्यवसायों की संख्या इतनी अधिक हो गयी है कि सबको प्रतिनिधित्व देना स्वयं मे एक कठिन समस्या है। दूसरे, जहाँ कहीं भी इस प्रणाली का, जैसे रूस में सन् 1917 की क्रान्ति के बाद, प्रयोग किया गया है वहाँ यह सफल नहीं हुई और अन्त मे इस प्रणाली को त्याग दिया गया। तीसरे इस व्यवस्था में संकीर्ण भावनाओं का विकास होता है जो समाज की एकता पर प्रतिकूल प्रभाव डाल सकती है। संसद भी विभिन्न विरोधी हितों के प्रतिनिधियों की एक अजातीय (heterogeneous) सभा मात्र बनकर रह जायगी। चौथे आर्थिक संसद अधिक से अधिक राजनीतिक संसद की परामर्शदात्री समिति के रूप में तो कार्य कर सकती है परन्तु उसका स्थान नहीं ले सकती और न ही उसकी प्रतिद्वन्द्वी बन सकती है।

प्रतिनिधित्व का सबसे अच्छा तत्त्व, जिसके आधार पर राज्य को सगठित किया जा सकता है नागरिकता का सामान्य तत्त्व है। उस तत्त्व पर क्षेत्रीय प्रणाली आधारित

है। वतमान भौगोलिक या क्षेत्रीय प्रणाली म चाहे कितनी ही त्रुटियाँ क्यो न हो सामान्य हित का प्रतिनिधित्व करने की सबसे अच्छी प्रणाली यही है। इसके अतिरिक्त विशेष उद्योगो को राज्य के नियन्त्रण मे रख कर तथा उनका अधिक से अधिक विकेन्द्रीकरण करके ही श्रमिको को अधिक से अधिक भाग लेने के लिए प्रोत्साहित किया जा सकता है।

5 श्रेणी समाजवादी एक राज्य मे दो राज्यो का निर्माण करना चाहते हैं जो असम्भव है

श्रेणी समाजवादी गिल्डो को विस्तृत शक्तिया देने के पक्ष में हैं जो न केवल राज्य के समान है बल्कि उसकी प्रतिद्वन्द्वी भी बन सकती हैं। गिल्डो की पूण स्वायत्तता की बात कह कर श्रेणी समाजवादी एक ही क्षेत्र मे दो राज्यो का निर्माण करना चाहते हैं। एक राजनीतिक दृष्टि स राज्य और दूसरा आर्थिक दृष्टि से राष्ट्रीय गिल्ड सघ (*National Guild League*)। *एक क्षेत्र म एक ही समय पर दो राज्यो* की उपस्थिति हास्यास्पद (ridiculous) नही तो और क्या है?

6 सम्प्रभुता को समाप्त करना कठिन है

श्रेणी समाजवादियो का उपागम (approach) सैद्धान्तिक और काल्पनिक है। वे राज्य की सम्प्रभुता से छुटकारा पाना चाहते है। परन्तु यह विचार कोरी कल्पना है। राज्य की सम्प्रभुता को नष्ट करना असम्भव है और यदि सम्भव हो भी जाय जसाकि कोल की विचारधारा है तो उसके स्थान पर किसी अन्य सस्था को शक्ति देनी पडेगी जो अन्तिम निणय दे सके और जिसके पास अन्तिम निणय देने की शक्ति होगी वही सम्प्रभुता की शक्ति का प्रयोग करेगा चाहे हम उसे राज्य कह या राष्ट्रीय गिल्ड कहें या कम्यून कहें या अन्य किसी नाम से पुकारें।

7 श्रेणी समाजवाद सामान्य हित को उचित महत्त्व नहीं देता

श्रेणी समाजवादी राज्य की सम्प्रभुता को नष्ट कर गिल्डो की सम्प्रभुता को स्थापित करना चाहते हैं। परन्तु इससे सामान्य हितो की उपेक्षा होने का भय है। मेकाइवर ने ठीक कहा है कि "श्रेणी समाजवाद म खतरा यह नहीं है कि विशेष हित केन्द्रीभूत होंगे अथवा उनकी पुष्टि होगी, इसम खतरा इस बात का है कि सामान्य हितो को उचित महत्त्व नही मिलेगा। इस खतरे के विरुद्ध राज्य सामान्य आड़ है क्योंकि उसका सगठन किसी सीमा तक सामान्य इच्छा का प्रतिनिधित्व करता है।"

8 गिल्ड समाजवादी व्यवस्था मे कठिनाइया

गिल्ड समाजवादी व्यवस्था म अनक व्यावहारिक कठिनाइयाँ हैं जिनका उत्तर श्रेणी समाजवादियो न देने का प्रयास नही किया। प्रथम समस्या मजदूरो की बेकारी और उनके स्थानान्तरण की है। दूसरी, पूजी की कमी के कारण गिल्ड बडे-

बडे यन्त्रो का कैसे खरीदेंगे तथा उद्योगों को कैसे चलायेंगे । तीसरे, गिल्डा के पास योग्यता का अभाव होता है । चौथे, पूजी और योग्यता के अभाव म उत्पादन मे कमी अव्यवस्था मे वृद्धि और घाटे की सम्भावना अधिक रहेगी । पाँचवें, अनेक व्यावसायिक सस्थाओ के निर्माण से समाज मे अनावश्यक प्रतियोगिता का विकास होगा । इस व्यवस्था मे राष्ट्रीय हित व्यावसायिक सघो के अधीन हो जायेंगे ।

9 राज्य के कार्य को सीमित करना वतमान लोक कल्याणकारी राज्य की विचार धारा के विपरीत है

श्रेणी समाजवादी राज्य के काय क्षेत्र को अत्यन्त सीमित कर देना चाहते हैं अर्थात वे केवल राजनीतिक कार्यों तक –सुरक्षा, आन्तरिक व्यवस्था, न्याय, विवाह आदि—राज्य के क्षेत्र को स्वीकार करत हैं । आर्थिक क्षेत्र में वे राज्य के हस्तक्षेप को स्वीकार नही करत । इस क्षेत्र को वे गिल्ड व्यवस्था के अन्तगत रखना चाहते हैं । परन्तु यह विचारधारा आज के लोक कल्याणकारी राज्य की विचाराधारा से भिन्न है । लोक कल्याणकारी राज्य का क्षेत्र पुलिस कार्यों तक सीमित नही अपितु विकास, समन्वय, नियन्त्रण, प्रत्यक्ष प्रबन्ध व प्रेरणा भी है । आज के लोक कल्याण कारी राज्य से जीवन का कोई क्षेत्र अछूता नही । आर्थिक क्षेत्र मे अनेक ऐसे काय हैं जिन्हें गिल्ड व्यवस्था द्वारा कार्यान्वित करना तो दूर उनकी वे योजना भी नही बना सकत ।

10 व्यवसायवाद समाज को छोटे छोटे टुकड़ों मे बाँट देगा

व्यवसायवाद पर आधारित व्यवस्था का सबसे भयकर परिणाम यह निकलेगा कि यह समाज को विभक्त कर देगी । प्रत्येक व्यावसायिक इकाई के सदस्यो की भक्ति अपने व्यवसाय के प्रति अधिक होगी और समाज के प्रति कम । इससे समाज के विघटन होने, उसकी एकता भग होने तथा अराजकता फैलने का भय विद्यमान रहेगा । कारपेन्टर ने ठीक कहा है कि 'सस्थाओ की सख्या में जितनी वृद्धि होगी समस्याएँ उतनी ही अधिक बढ़ जायेंगी झगडे बढ़ जायेंगे प्रतिद्वन्द्विता और (आपसी) शत्रुता की भावना बढ़ जायेगी ।"

11 प्रेरणा के तत्त्व का अभाव

गिल्ड व्यवस्था में परिश्रम के लिए कोई विशेष पारितोषिक नहीं । जब काम के लिए कोई प्रेरणा नही तो उत्पादन में कमी की सम्भावना अधिक रहेगी । आलोचको की धारणा है कि "श्रेणी समाजवाद कडे तथा रचनात्मक परिश्रम की सब भावनाओ को निरुत्साहित करता है तथा उन्हें कुचलता है ।"[1]

---

1 Guild Socialism ' discourages and damps down all the instincts of hard and created toil and its genius is purely predatory "

12 एकाधिकार की प्रवृत्ति

श्रेणी समाजवादी उत्पादको के हितो पर अत्यधिक बल देते है। क्योकि स्वार्थ मानव स्वभाव की वृत्ति का एक अग है इसलिए हो सकता है कि उत्पादक अपने उद्योग मे एकाधिकार स्थापित कर लें और अपने हितो की सुरक्षा के लिए जनता का शोषण करें। यदि मानव म समाज सेवा का भाव विद्यमान है तो स्वार्थ भी उसके चरित्र का एक अभिन्न अग है। केवल समाज सेवा ही कार्य की प्रेरणा नही हो सकती। इतना ही नही, अनुशासन हीनता, भ्रष्टता और अन्य दुगुण भी जन्म ले सकते है। गिल्डो मे आपसी स्पर्धा, घृणा तथा शत्रुता की भावनाएँ पनप सकती है।

13 औद्योगिक या आर्थिक क्षेत्र में परिवर्तन लाने के लिए सवैधानिक उपाय पर्याप्त नहीं

आलोचको का कहना है कि कोई भी पूजीपति अपने विशेषाधिकारो को स्वेच्छा से छोडने के लिए तयार नही होता और सवैधानिक उपाय इतने उग्र नही होते कि वे आर्थिक क्षेत्र पर अर्थात उद्योगो पर मजदूरो के स्वामित्व या स्वशासन को स्थापित कर दें। उद्योगो पर और आर्थिक क्षेत्र पर सघर्ष के द्वारा ही श्रमिको के उद्देश्यो को प्राप्त किया जा सकता है।

14 श्रेणी समाजवाद की असफलता

श्रेणी समाजवादियो के पास नवीन समाज की कोई ठोस योजना नही थी। नवीन समाज के सगठन के बारे म उनमे मतैक्य नही था। जहा कोल राज्य को एक विशिष्ट समुदाय से अधिक नही मानता था तथा राज्य के लोप के पक्ष मे भी था वहाँ हाब्सन राज्य की सम्प्रभुता बनाये रखने के पक्ष म था। इस तरह श्रेणी समाजवादियो म मतैक्यता के अभाव म उनका उद्देश्य अनिश्चित बन गया और अनिश्चित मार्ग पर चलना न केवल अनुचित है बल्कि हानिकारक भी है।

श्रेणी समाजवादियो का कोई स्थायी सगठन नही बन पाया। सन 1925 मे राष्ट्रीय गिल्ड सघ मे पतन के बाद श्रेणी समाजवाद का भी पतन हो गया। इसका महत्व तो अब केवल ऐतिहासिक रह गया है। कोल के शब्दो मे "श्रेणी समाजवाद का पतन हो चुका है औद्योगिक ह्रास के कारण (यह आन्दोलन) शिथिल हो चुका है राजनीतिक परिवर्तनो को (आर्थिक प्रश्नो की सत्ता की तुलना म) अधिक महत्व दिया जा रहा है सभी देशो मे राजनीतिक सत्ता को हथियाने के कार्यक्रम को प्राथमिकता दी जा रही है।"[1]

---

1 Cole, G D H *A Guide to Modern Politics*, p 404-405

श्रेणी समाजवाद के गुण तथा महत्व

उपर्युक्त त्रुटियो के बाद भी श्रेणी समाजवाद का प्रभाव ब्रिटेन और अमरीका के सामाजिक और औद्योगिक जीवन पर अत्यधिक पडा। श्रेणी समाजवादियो ने मजदूरी प्रथा (wage system) की बुराइयो पर प्रकाश डाला तथा उत्पादन मे लाभ के स्थान पर सामाजिक उपयोगिता पर बल दिया। उन्होंने उद्योगो पर स्वामियो और सेवको के संयुक्त प्रबन्ध का सुझाव दिया, तथा उद्योग और राजनीति मे सहयोग की भावना का भी विकास किया। राजनीतिक संस्थाओ मे औद्योगिक प्रतिनिधित्व की व्यवस्था का विकास श्रेणी समाजवादियो ने किया। उद्योगो मे स्वायत्तता का नारा भी उन्होने ही लगाया।

श्रेणी समाजवादियो ने राज्य के केन्द्रीयकरण और निरपेक्ष प्रभुता पर प्रहार करके बहुलवादियो की विचारधारा का समर्थन किया। जहाँ उन्होने केन्द्रीयकरण और नौकरशाही की बुराइयो पर प्रकाश डाला वहा उन्होने सामाजिक और आर्थिक जीवन मे गिल्डो या समुदायो के महत्त्व को भी स्पष्ट किया। उन्होने इस बात पर बल दिया कि "स्वतन्त्रता और समानता की प्राप्ति समष्टिवादी प्रजातान्त्रिक व्यवस्था की स्थापना से नही बल्कि मजदूरो को स्वायत्तशासी समुदायो म जो समाज सेवा के लिए विशिष्ट आर्थिक या सास्कृतिक कार्य के लिए सगठित हो, सत्ता का विकेन्द्रीकरण करने से ही होगी।"[1]

ब्रिटेन म श्रेणी समाजवादियो ने गृह निर्माण के प्रश्न पर ध्यान आकर्षित किया और भवनो के निर्माण के कार्यों का बीडा उठाया। अनेक गिल्डो को राष्ट्रीय भवन निर्माण लीग मे सकलित (integrate) किया गया। परन्तु गृह निर्माण की यह सराहनीय योजना अनेक कारणो से (मजदूरो के वेतनो मे कमी, आर्थिक मन्दी, बेरोजगारी, सरकारी सहायता का बन्द होना आदि) ठप्प हो गयी।

श्रेणी समाजवाद का दर्शन 'श्रम सघवाद, और समष्टिवाद (समूहवाद) का विश्राम शिविर है"

(The Philosophy of Guild Socialism is a half way house between Syndicalism and Collectivism)

फेबियनवाद पूँजीवाद की बुराइयो का उन्मूलन करने मे अत्यन्त निर्बल सिद्ध हुआ। उसने पूँजीवादी नियन्त्रण का उन्मूलन तो किया परन्तु नौकरशाही के नियन्त्रण को स्थापित कर दिया। वह उद्योगो मे मजदूरो के स्वशासन को स्थापित करने म भी असफल रहा। समष्टिवाद ऐसी स्थिति उत्पन्न नही करता जिसस श्रमिक अपने काम करने की दशा स्वय निर्धारित करें। दूसरी ओर श्रम सघवाद श्रमिको का आन्दोलन ता

---

1 Cole, G D H *Social Theory* Ch VIII

अवश्य है परन्तु वह इतना क्रान्तिकारी और अराजकतापूर्ण है कि वह ब्रिटिश प्रजातान्त्रिक स्वभाव के अनुकूल नही। अग्रेजो का प्रजातान्त्रिक और ससदीय प्रणालियो मे दृढ विश्वास है जबकि श्रम सघवाद आकस्मिक और सीधी कार्यवाही से परिवर्तन चाहता है। यह राज्य विहीन समाज की स्थापना चाहता है। श्रम सघवादियो की ये बातें अग्रेजी स्वभाव को कभी स्वीकार नही हो सकती। इसलिए श्रेणी समाजवादियो ने दोनो विचारधाराओ का मध्यम मार्ग (Golden mean–Middle path) अपनाया। उन्होने दोनो विचारधाराओ की अच्छाइयो को अपना कर एक नये वाद को जन्म दिया जिसे श्रेणी समाजवाद कहते है।

श्रेणी समाजवाद राज्य के अन्दर ही उत्पादको और उपभोक्ताओ की, प्रजातान्त्रिक प्रणालियो द्वारा सत्ता बनाये रखना चाहते हैं। वे न केवल राजनीतिक स्वतन्त्रता के पक्ष मे हैं बल्कि आर्थिक स्वतन्त्रता भी चाहते है। वे उद्योगो मे स्वशासन लाना चाहते हैं। उनकी धारणा है कि आर्थिक स्वतन्त्रता के अभाव मे राजनीतिक स्वतन्त्रता केवल धोखा है, मिथ्या है।

श्रेणी समाजवाद के मध्यम वर्ग को दो दृष्टिकोणो से स्पष्ट किया जा सकता है—(1) राजनीतिक विचारो मे मध्यम मार्ग, और (2) साधनो मे मध्यम मार्ग।

1 राजनीतिक विचारों मे मध्यम मार्ग

श्रम सघवादी राज्य विरोधी है। उनके लिए राज्य एक बुर्जुआ सस्था है, उनके लिए यह पूँजीपतियो के हाथो मे अन्याय और शोषण का यन्त्र है। उनकी धारणा है कि केन्द्रीय सस्था एकरूपता, नियमितता, कल्पना तथा कार्यारम्भ के अभाव तथा स्थानीय विकास तथा साहस कार्यों के सम्बन्ध मे अविश्वास भावना को उत्पन्न करती है।" सारेल तो निश्चित रूप से राजनीतिक विरोधी था। उसने राज्य को पूर्णतया अस्वीकार कर दिया। इतना ही नही श्रम समाजवादी मध्यम वर्ग के नेतृत्व तथा मध्यम वर्ग के समाजवाद मे भी विश्वास नही करते। वे तो पूँजीवाद का पूर्ण उन्मूलन कर सारी शक्ति को श्रमिको के नियन्त्रण मे रखना चाहते हैं। वे "स्वतन्त्र समाज मे स्वतन्त्र कार्य' (free work in a free society) के आदर्श के समर्थक हैं। श्रम सघवादियो ने 'देश प्रेम' के विचार की भी आलोचना की। उनके लिए 'मेरा देश' या 'हमारा देश' जैसी कोई चीज नही। उनके लिए "सामान्य बौद्धिक तथा नैतिक विरासत (heritage) की परम्परा के बन्धन जैसी कोई चीज नही। वे तो उस स्थान को ही श्रमिक का देश मानते हैं जहाँ वह कार्य करता है। उनके लिए तो आर्थिक बन्धन ही सर्वोत्तम बन्धन है। यही आर्थिक बन्धन श्रमिको को एक सूत्र मे बाँधते हैं तथा उन्हे पूँजीपतियो से पृथक् करते हैं।

दूसरी ओर समष्टिवादी प्रो राज्यवादी (Pro State) हैं। वे न तो मार्क्सवादियो की तरह राज्य को एक वर्ग सस्था मानते हैं और न ही व्यक्तिवादियो की तरह।

राज्य को आवश्यक बुराई मानते हैं। वे राज्य को अराजकतावादियों की तरह अनावश्यक बुराई भी नहीं मानते। उनके लिए राज्य तो एक धनात्मक अच्छाई (positive good) है जिसका उद्देश्य सामान्य हित की देख रेख करना है। वे राज्य के कार्यों को सीमित करना नहीं चाहते बल्कि उसका विस्तार करना चाहते हैं। उनकी धारणा है कि लोगों के आर्थिक बौद्धिक और नैतिक हितों की सुरक्षा राज्य द्वारा हो सकती है। राज्य के माध्यम से ही वे पूँजीवाद, निजी सम्पत्ति और स्वतन्त्र प्रतियोगिता से उत्पन्न होने वाले दोषों का निराकरण चाहते हैं। उनकी धारणा है कि राज्य ही शोषण, अधःपतन और बेरोजगारी को समाप्त कर सकता है। इस तरह समष्टिवादी राज्य की तुलना एक लोक कल्याणकारी राज्य से की जा सकती है। लिण्डसे के शब्दों में, "तटस्थ सत्ता के रूप में राज्य की नितान्त आवश्यकता है।"

श्रेणी समाजवादी उपर्युक्त दोनों विचारधाराओं (श्रम संघवादी और समष्टिवादी) का मध्यम मार्ग अपनाते हैं। वे न तो श्रम संघवादियों की तरह राज्य का उन्मूलन चाहते हैं और न ही समष्टिवादियों की तरह राज्य के कार्यों का विस्तार चाहते हैं। वे समष्टिवादियों की भाँति परन्तु अराजकतावादियों और श्रम संघवादियों के विपरीत राज्य को स्थायी रखना चाहते हैं और उसे समाज के प्रतिनिधि के रूप में महत्त्वपूर्ण शक्तियाँ प्रदान करना चाहते हैं। साथ ही, कम से कम सिद्धान्त में, वे राज्य के कार्यों को सीमित करना चाहते हैं। दूसरी ओर, *अराजकतावादियों और श्रम संघवादियों की भाँति परन्तु समष्टिवादियों के विपरीत वे कार्य की आवश्यकताओं पर नियन्त्रण न तो पूँजी के स्वामियों और न राज्य (या संगठित समाज) के हाथों में देना चाहते हैं बल्कि श्रमिकों के हाथों में सौंपना चाहते हैं जो प्रादेशिक प्रणाली के स्थान पर व्यावसायिक प्रणाली पर संगठित होंगे।* श्रेणी समाजवादियों की धारणा है कि कोई व्यक्ति किसी दूसरे व्यक्ति का प्रतिनिधित्व नहीं कर सकता। इसलिए वे क्षेत्रीय प्रतिनिधित्व के स्थान पर व्यावसायिक प्रतिनिधित्व की प्रणाली को स्थापित करना चाहते हैं। कोल के शब्दों में, 'एक आदमी एक मत', का स्थान 'एक आदमी उतने ही मत जितने कि हित ले लेगा। परन्तु प्रत्येक हित के सम्बन्ध में एक मत होगा। इस तरह एक डाक्टर डाक्टरों का प्रतिनिधित्व करेगा, एक बढ़ई बढ़इयों का प्रतिनिधित्व करेगा आदि।

श्रेणी समाजवाद पूर्ववर्ती श्रम संघवादियों की भाँति उन सभी सिद्धान्तों का विरोधी है जो औद्योगिक उत्पादन की प्रक्रिया को राज सत्ता के अधीन रखते हैं। वह श्रमिकों की पूँजीपतियों के शोषण से ही रक्षा नहीं करना चाहता बल्कि नौकरशाही के दमन से उनकी शिल्प कला की भी रक्षा करना चाहता है। उसका उद्देश्य काम को अधिक रोचक तथा समाज की आर्थिक व्यवस्था को अधिक प्रजातान्त्रिक बनाना है। परन्तु श्रम संघवाद की भाँति वह समाज से राज्य का निष्कासन नहीं चाहता। श्रेणी समाजवाद उत्पादन कर्त्ताओं के विशिष्ट हितों के श्रम संघवादी विचार सार्वजनिक

हितो के राजनीतिक विचार म सामजस्य स्थापित करने का प्रयास है। वह समाज मे न तो प्रादेशिक समुदायो का पूण मानता है और न व्यावसायिक समुदाया को ही पूण मानता है। उसका विश्वास है कि "कुछ सामान्य आवश्यकतायें पहली से और कुछ दूसरी से पूरी होती हैं। इस तरह श्रेणी समाजवाद मे राज्य समाज की एक अनिवार्य सस्था बना रहता है यद्यपि सावजनिक काय के ऐसे अनेक रूप भी है जिनम राज्य का कोई भाग नही होता।"[1]

श्रेणी समाजवादी औद्योगिक क्षेत्र म राज्य के हस्तक्षेप को शरारतपूण (mischievous) मानते हैं। उद्योगा म वे गिल्डो को पूण स्वायत्तता देने के पक्ष मे हैं। उनकी धारणा है कि उद्योग पर नियन्त्रण उन लोगो का होना चाहिए जो उसका सचालन करते हु अर्थात उद्योगा का प्रबन्ध तथा उद्योगो पर नियन्त्रण उत्पादकों (श्रमिको) का होना चाहिए। उनकी धारणा है कि गिल्ड के सारे सदस्य—श्रमिक और बुद्धिजीवी—गिल्ड के सचालन मे भाग लेंगे।

उत्पादका और उपभोक्ताओ दोनो के हिता को सुरक्षित रखने के लिए भी श्रेणी समाजवादी मध्यम माग अपनाते है। जहा श्रम सघवादी उपभोक्ताओ के हितो की उपेक्षा कर उत्पादको (श्रमिको) के हाथो मे औद्योगिक सत्ता रखना चाहते हैं और जहा समष्टिवादी उपभोक्ताओ के हितो की रक्षा के लिए औद्योगिक शक्ति का नियन्त्रण राज्य के हाथा मे रखना चाहते है वहा श्रेणी समाजवादी दोनो के हितो मे सामञ्जस्य उत्पन्न करने का प्रयास करते हैं। जितने वे उत्पादको (श्रमिका) के हितो की रक्षा करने के लिए चिंतित हैं उतन ही वे उपभोक्ताओ के हिता की रक्षा करने के लिए भी चिन्तित है। यही कारण है कि जिन विषयो का सम्बन्ध उपभोक्ताओ से है, जसे उत्पादन की मात्रा, वस्तुओ के मूल्य आदि उन विषया को निर्धारित करने के लिए श्रेणी समाजवादी उत्पादका और उपभोक्ताओ की सयुक्त परिषदो की बात करते हैं अर्थात उनकी योजनाओ म दोनो मे (उत्पादको और उपभोक्ताआ मे) परामश द्वारा विषया या विवादो के निवारण की व्यवस्था भी की गयी है।

साधनों के सम्बन्ध मे मध्यम माग—श्रम सघवादी सीधी कायवाही (direct action) के हिसक और क्रान्तिकारी साधना का समथन करते हैं। वे मार्क्स के वग सघष के सिद्धान्त पर बल देते है। वे हडताल, तोड फोड, बहिष्कार, लेबल (label) के साधना का प्रयाग करते हैं। श्रम सघवादिया के लिए हडताल का शैक्षणिक महत्त्व है। हडतालें न केवल श्रमिका म आज्ञाकारिता और अनुशासन की भावनाएँ पैदा करती हैं बल्कि उनमे एकता की भावना भी पैदा करती हैं। वे पूँजीपतियो को नष्ट कर उद्यागा पर श्रमिका का अधिकार चाहते है। सक्षेप म, श्रम सघवाद एक क्रान्तिकारी आन्दोलन है।

समष्टिवाद अपने उद्देश्या को प्राप्त करने के लिए पूणतया सवधानिक, शान्ति

1 Coker, Francis W *Recent Political Thought*, p 274

मय तथा श्रमिक विकास में साधना का प्रयोग करता है । उसकी धारणा है कि समाज मे परिवतन श्रमिक और शान्तिमय साधनो से ही सम्भव है । प्रत्येक क्षेत्र मे परिवतन के लिए समष्टिवादी राज्य को सर्वोत्तम साधन मानते हैं । उनके लिए राज्य सामान्य कल्याण का मुख्य मन्त्र है । समष्टिवादी प्रचार द्वारा जनमत को समष्टिवादी विचार धारा के अनुकूल बनाना चाहते हैं । जनमत तैयार करके ही वे उद्योगों पर सावजनिक स्वामित्व स्थापित करना चाहते हैं । वे दल का सगठन कर निर्वाचन द्वारा ससद में बहुमत प्राप्त कर, सरकार का निमाण कर अपनी समाजवादी नीतियो को कार्यान्वित करना चाहते हैं ।

श्रेणी समाजवादियो ने अपने उद्देश्यो को प्राप्त करने के लिए न तो पूणतया श्रम सघवादियो के हिंसात्मक तथा सीधी कायवाही के साधनो को अपनाया और न ही पूणतया समष्टिवादियो के सवैधानिक एव शान्तिमय साधनो को । यहाँ भी उन्होंने मध्यम माग का अपनाया । अपने उद्देश्यो को प्राप्त करने के लिए श्रेणी समाजवादी सवधानिक साधनो के साथ श्रमिक सगठनो (trade unions) का प्रयोग भी करना चाहते हैं । वे ससदीय साधनो को यदि पूणतया स्वीकार नही करते तो उनका पूर्ण तया बहिष्कार भी नही करते । वे तो श्रमिको की दशा सुधारने के लिए ससद का प्रयोग करते हैं । श्रमिको की दशा सुधारने के लिए वे कानून निर्माण के समथक हैं । परन्तु साथ मे वे ससद पर इतना अधिक विश्वास नही करते कि वह स्वय काय करेगी । श्रमिको की दशा को सुधारने के लिए वे श्रमिक सघो का प्रयोग भी करते हैं । जैसाकि कोल ने कहा है कि 'सवधानिक एव राजनीतिक साधनो द्वारा शान्ति हो नही सकती ।" श्रेणी समाजवादी आज के श्रमिक सघो को वग के विरुद्ध स्वीकार करते हैं ।

श्रेणी समाजवादी पूँजीवादी भवन को भी एक दम गिराना नही चाहते । वे क्रमिक रूप से धनिको के हाथो से आर्थिक सत्ता छीन कर श्रमिको के प्रतिनिधियो के हाथो मे देना चाहते हैं । यह प्रक्रिया क्रमिक परन्तु नियोजित एव नियमित रूप से शीघ्र विकसित होगी । इसके लिए उन्होंने क्रमश अधिकार जमाने की नीति (policy of encroaching control) सामूहिक ठेका (collective control) या औद्योगिक प्रतियोगिता (Industrial Competition) की नीति अपनाइ ।

उपयुक्त वणन से स्पष्ट है कि श्रेणी समाजवाद बुद्धिजीवियो का आन्दोलन है श्रमिको का नहीं' यह श्रम सघवाद और समष्टिवाद का विश्राम शिविर है ।

EXERCISES

1 श्रेणी समाजवाद से आप क्या समझते हैं ? उसके मूल सिद्धान्तो की व्याख्या कीजिये ।

2 श्रेणी समाजवाद के दशन की आलोचनात्मक व्याख्या कीजिये ।

3 श्रेणी समाजवादियो के राज्य, गिल्ड, और श्रमिक संघो के प्रति दृष्टिकोण की व्याख्या कीजिये।

4 राजनीतिक दर्शन को कोल की देन का मूल्यांकन कीजिये।

5 क्या श्रेणी समाजवाद क्रान्तिकारी सिद्धान्त है?

6 श्रेणी समाजवादियो के भावी समाज की रूप रेखा का वर्णन कीजिये।

7 "कोल श्रेणी समाजवाद का कौतुक शिशु' था।" व्याख्या कीजिये।

8 "गिल्ड समाजवाद को बीसवी शताब्दी के अर्थशास्त्र और समाज शास्त्र पर निर्मित किया गया था।" व्याख्या कीजिये।

9 श्रेणी समाजवाद राज्य समाजवाद (समष्टिवाद) के अति एकमार्गीकरण के विरुद्ध प्रतिक्रिया थी।' (मक्सी) व्याख्या कीजिये।

10 "श्रेणी समाजवाद अंग्रेजी फेबियनवाद और फ्रांसीसी श्रम संघवाद का बुद्धिजीवी शिशु है।" (रॉको) इस कथन की समीक्षा कीजिये।

11 "श्रेणी समाजवाद का दर्शन 'श्रम संघवाद और समष्टिवाद (समूहवाद) का विश्राम शिविर है।" (मेरियम और बार्नस) इस कथन की व्याख्या कीजिये।

10 अराजकतावाद
(Anarchism)

अराजकतावाद का अर्थ तथा परिभाषा
(Meaning and Definition of Anarchism)

अराजकतावाद शब्द की उत्पत्ति ग्रीक शब्द, अनारको से या अनारकिया (anarchos or anarchia) से हुई है जिसका अर्थ बिना मुखिया के (without a head or chief) अर्थात् 'शासन का अभाव' (absence of rule) है। इस अर्थ में अराजकतावाद ऐसा क्रान्तिकारी सिद्धान्त है जो राज्य तथा सब प्रकार की अधिकार शक्ति का न केवल विरोधी है बल्कि उसका पूर्ण उन्मूलन चाहता है। अराजकतावाद राज्य विहीन, वर्ग विहीन, सत्ता (अधिकार शक्ति) विहीन, निजी सम्पत्ति विहीन तथा धर्म विहीन समाज की स्थापना चाहता है।

व्यक्तिवादी राज्य को 'आवश्यक बुराई' मानकर उसके कार्यों को सीमित करना चाहते हैं, साम्यवादी संक्रमण काल में राज्य को सर्वहारा के अधिनायकवाद के लिए आवश्यक मानते हैं (आधुनिक समय में अनेक साम्यवादियों का यह भी मत है कि जब तक संसार के समस्त देशों में या कम से कम बहुसंख्यक देशों में साम्यवादी क्रान्ति नहीं हो जाती तब तक राज्य शक्ति आवश्यक है) परन्तु अराजकतावादी राज्य को अनावश्यक बुराई मानते हैं अर्थात् अराजकतावादियों के लिए राज्य अनावश्यक भी है और बुराई भी। इस दृष्टि से अराजकतावादी व्यक्तिवाद से दो कदम आगे और आदर्शवाद के विपरीत है। आदर्शवाद न केवल राज्य के महत्त्व पर बल देता है बल्कि उसकी यह धारणा भी है कि व्यक्ति के व्यक्तित्व का विकास राज्य की सहायता से ही सम्भव है। परन्तु अराजकतावादियों के लिए राज्य दमनकारी यन्त्र है और व्यक्ति

के स्वाभाविक विकास में बाधक है। अराजकतावादी राज्य के परोपकारी कार्यों को भी उसी प्रकार अस्वीकार करते हैं जिस प्रकार वे उसके सुरक्षात्मक एवं व्यवस्थापक कार्यों को अस्वीकार करते हैं।

अराजकतावादी राज्य को पूर्णतया नष्ट कर देना चाहते हैं। वे व्यक्ति को हर प्रकार की बाध्यकारी शक्ति से, चाहे वह राज्य की हो धर्म की हो, मुक्ति दिलाना चाहते हैं। वे व्यक्ति को निरपेक्ष स्वतन्त्रता प्रदान करने के पक्ष में हैं। जे० एस० रुसक तथा अन्य लेखकों (I S Roucek and others) ने ठीक लिखा है कि अराजकतावाद की आवश्यक विशेषताएँ हैं सब प्रकार की गठित सत्ता का उन्मूलन, हर प्रकार के नियन्त्रण—राजनीतिक, सामाजिक धार्मिक—से व्यक्ति की पूर्ण मुक्ति।"

अराजकतावाद की मुख्य परिभाषाएँ निम्न प्रकार से हैं —

(1) प्रो० ई० एम० बर्नस के शब्दों में, "शुद्ध रूप में अराजकतावाद शक्ति पर आधारित सरकार का विरोधी है।"

(2) डिकिन्सन के शब्दों में, "अराजकता का अर्थ व्यवस्था का अभाव नहीं अपितु शक्ति का अभाव है। इसका अर्थ स्वतन्त्रता, मेलजोल तथा प्रेम है।"

(3) हक्सले के शब्दों में, "अराजकता समाज की वह व्यवस्था है जिसमें प्रत्येक व्यक्ति अपना शासक होगा।'

(4) क्रोपोटकिन के शब्दों में "अराजकतावाद राज्य विहीन समाज की कल्पना करता है। शक्ति और कानून के अभाव में पारस्परिक प्रेम और समझौते के आधार पर शान्ति और व्यवस्था स्थापित होगी। राज्य के अन्त होने पर समाज में अनेक प्रादेशिक और व्यावसायिक समुदायों का स्वतः ही उत्पादन एवं उपभोग और विभिन्न आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए जन्म होगा। ये समुदाय आपस में प्रेम पूर्वक समझौते के आधार पर व्यवस्था स्थापित करेंगे। अराजक समाज की व्यवस्था प्राकृतिक और स्वाभाविक होगी। उसमें बल का प्रयोग करके किसी को एक विशेष प्रकार का आचरण करने के लिए बाध्य नहीं किया जायगा।"

(5) फोस्टर के शब्दों में, 'अराजकतावाद का सिद्धान्त यह है कि राजनीतिक सत्ता किसी रूप में अनावश्यक एवं अवाञ्छनीय है। आधुनिक अराजकतावाद में राज्य के सैद्धान्तिक विरोध के साथ वैयक्तिक सम्पत्ति की संस्था का विरोध और संगठित धार्मिक संस्था के प्रति शत्रुता का भी समावेश है।"

अराजकतावादी दर्शन या अराजकतावाद के मूल विचार
या
अराजकतावादी आक्रमण

(Anarchist Philosophy or Fundamental Ideas of Anarchism or Anarchist Attack)

अराजकतावादी दर्शन के मूल विचार चार हैं जो निम्न प्रकार से हैं —

(1) राज्य पर आक्रमण।
(2) निजी सम्पत्ति पर आक्रमण।
(3) धर्म पर आक्रमण।
(4) विकेन्द्रित सामाजिक व्यवस्था।

1 राज्य पर आक्रमण (Attack on State)

अराजकतावादी राज्य को एक ऐसी दूषित संस्था मानते हैं जो अनुपयुक्त, अनावश्यक, अवाञ्छनीय तथा अस्वाभाविक है। उनकी धारणा है कि राज्य एक हानिकारक संस्था है जिसने सभ्यता और मानवता को अवनति और पतन की ओर धकेला है। इस दृष्टि से अराजकतावादियों की विचारधारा अरस्तू के इस कथन के विपरीत है कि राज्य एक नैसर्गिक एवं स्वाभाविक संस्था है जिसका उदय मानव की आवश्यकताओं के लिए हुआ और जिसका अस्तित्व अच्छे जीवन के लिए विद्यमान है।

अराजकतावादी राज्य को शक्ति का प्रतीक मानते हैं। इस कारण वह मानवीय अधिकारों एवं स्वतन्त्रताओं का शत्रु है। उनका विश्वास है कि शक्ति का (सत्ता द्वारा या कानून द्वारा या आदेश द्वारा) प्रत्येक प्रयोग मानव स्वतन्त्रताओं में कटौती करता है। इतना ही नहीं अराजकतावादी राज्य को दुर्गुणों की खान मानते हैं। उनके अनुसार राज्य युद्ध, हिंसा, अन्याय शोषण असमानता, अत्याचार आदि को बढ़ावा देता है तथा विलगीकरण हत्या और घृणा को बढ़ावा देता है।

अराजकतावादियों के लिए राज्य समाज के रास्ते में बाधा है। यह उस प्रणाली की पुष्टि करता है जिससे सामाजिक जीवन दुःखदायी बनता है। राज्य अपनी त्रुटिपूर्ण आर्थिक व्यवस्था द्वारा व्यक्तियों को दरिद्र बनाता है तथा समाज में असमानताओं को दृढ़ करता है। बेकुनिन के शब्दों में प्रत्येक राजनीतिक प्रणाली का उद्देश्य पूंजीपतियों द्वारा श्रमिकों के शोषण का संगठन एवं समर्थन करना है। क्रापोटकिन के शब्दों में, 'समस्त सरकारें चाहे उनका स्वरूप राजतन्त्रात्मक हो, वैधानिक हो या गणतान्त्रिक हो, कुलीन वर्ग, पादरियों और व्यापारियों के हितों की बलपूर्वक रक्षा करती हैं।'

अराजकतावादियों की धारणा है कि आर्थिक विषमताओं के कारण, जिनकी पुष्टि राज्य अपनी सत्ता के प्रयोग द्वारा करता है, व्यक्ति का विकास रुक जाता है। उनकी धारणा है कि व्यक्ति स्वभावत विवेकशील, शांतिप्रिय, सहयोगी और शुभेच्छु प्राणी है। परन्तु आर्थिक विषमताओं के कारण वह स्वार्थी, पद लोलुप, ईर्षालु और निर्दय बन जाता है। इस तरह राज्य निर्दोष को कपटी व दोषी बनाता है और सज्जन (साधु) को अपराधी बनाता है। "प्रथम तो राज्य निरपराध व्यक्ति को अपराधी बनाता है और फिर उसे अपराधी होने के अभियोग मे दण्डित करता है।'

अराजकतावादी न केवल पूंजीवादी राज्य को नष्ट करना चाहते हैं बल्कि प्रजातान्त्रिक राज्य का भी नष्ट करना चाहते हैं। उनकी धारणा है, जोड के शब्दो मे, कि 'प्रतिनिधि सरकार ऐसे लोगो की सरकार होती है जो हर वस्तु के सम्बन्ध मे उतना ही ज्ञान रखते है जितने से वे सब कार्यों को सन्तोषजनक रूप से कर सकें तथा वे किसी वस्तु के सम्बन्ध म उतना पर्याप्त ज्ञान नही रखत जिसस व किसी भी वस्तु को अच्छी प्रकार कर सकें।'[1] अराजकतावादियो का विश्वास है कि प्रजातान्त्रिक प्रणाली व्यावसायिक राजनीतिज्ञ, व्यावसायिक वकीलो, व्यावसायिक पादरियो आदि को जन्म देती है जो मानव की निर्बलताओ पर पोषण पाते है। यही कारण है कि बकुनिन को प्रजातान्त्रिक सरकार से उतनी ही आपत्ति थी जितनी कि निरकुश या स्वेच्छाचारी शासन से। बेकुनिन के शब्दो म, "शक्ति उन्हे भ्रष्ट करती है जो उसका सचालन करते है और उन्हे भी भ्रष्ट करती है जिन्हे उसे स्वीकार करने के लिए बाध्य किया जाता है।"[2] क्रापाटकिन के शब्दो म, "एक निकृष्ट पतित मन्त्री भी सम्भवत एक बहुत ही अच्छा व्यक्ति होता यदि उसके हाथो म राज्य की शक्ति नही होती।"[3]

अराजकतावादी बौद्धिक और नैतिक दृष्टि से भी राज्य को पतनकारी मानते हैं। उनका विश्वास है कि जो शासन करते हैं तथा जो शासित हैं, दोनो के लिए राज्य पतनकारी है। राज्य प्रबोधन तथा प्रोत्साहन की अपेक्षा आदेश, दमन और शक्ति से काम लेता है, और जिस कार्य मे आदेश या निर्देश का भाव रहता है उसम बौद्धिक और नैतिक गुणो का सर्वथा अभाव होता है। कार्य तभी नैतिक माना

---

1 Joad, C E M *Introduction to Modern Political Theory*, p 104

2 "Power corrupts those who wield it as much as those who are forced to obey it "—*Bakunin*

3 This or that despicable minister might have been an excellent man if power had not been given him "—*Kropotkin*

जाता है जो उसे स्वेच्छा से किया जाता है। मानव के सर्वोत्तम कार्य वे हैं जो अन्तरात्मा से प्रेरित होते हैं। एक स्थान पर क्रोपाटकिन लिखता है कि "वही नैतिकता सच्ची नैतिकता है जो स्वाभाविक हो गयी है। थोपी गयी नैतिकता नैतिकता नहीं रह जाती।" अराजकतावादियों का यह भी विश्वास है कि राज्य की आदेशात्मक शक्ति गिने चुने व्यक्तियों को अत्याचारी और अधिकांश व्यक्तियों को दास बना देती है। जैसा कि बकुनिन ने लिखा है कि 'राज्य कुछ लोगों को अत्याचारी एवं अहंकारी और बहुसंख्यक लोगों को सेवक या पराधीन बना देता है।'[1]

अराजकतावादियों का, विशेषकर क्रोपाटकिन का, विश्वास है कि राज्य का न तो कोई प्राकृतिक औचित्य है और न कोई ऐतिहासिक महत्व। राज्य मानव की स्वाभाविक सहकारी प्रवृत्तियों के भी विरुद्ध है। क्रोपोटकिन के लिए तो राज्य मनोवैज्ञानिक सिद्धान्त के भी विपरीत है। उसका विश्वास है कि कानून या तो अनावश्यक है या हानिप्रद। आज के कानूनों में कुछ तो ऐसे रिवाज हैं जो समाज के लिए हितप्रद हैं। अतः वे बिना राज्य की स्वीकृति के भी मान्य रहेंगे और कुछ नियम ऐसे हैं जिनका पालन सम्पत्ति के स्वामियों के लिए हितप्रद होने के कारण, शासनकर्त्ता अल्पमत द्वारा प्रयुक्त सत्ता के भय से होता है। गाडविन का विश्वास है कि "विधि निर्माण लगभग सभी देशों में धनवानों के पक्ष में तथा निर्धनों के विपक्ष में होता है।"[2]

अराजकतावादियों के लिए, विशेषकर क्रोपाटकिन के लिए राज्य की न तो रक्षात्मक और न ही पारमार्थिक सेवाएँ आवश्यक हैं और न प्रभावकारी। जनता स्वयं कार्य करते हुए आन्तरिक लुटेरों तथा विदेशी आक्रमणकारियों से अपनी रक्षा कर सकती है। इतिहास से यह सिद्ध होता है कि राज्य की स्थायी सेनाएँ नागरिक सेनाओं द्वारा पराजित हुई हैं और आक्रमण लोक विद्रोह द्वारा व्यर्थ कर दिये गये हैं। शासन समाज के दुष्टों से भी हमारी रक्षा नहीं करता। कारागार अपराधों को रोकने की अपेक्षा उन्हें फैलाने में ही अधिक सफल होते हैं। अन्त में, राज्य के सांस्कृतिक तथा परोपकारी काम भी अनावश्यक हैं। जब व्यक्ति अपनी आर्थिक एवं राजनीतिक पराधीनता से मुक्त हो जायेंगे तो अपनी शिक्षा एवं दानशीलता के लिए सभी आवश्यक बातों की वे स्वयं स्वेच्छा से व्यवस्था कर लेंगे।

अराजकतावादियों की धारणा है कि शिक्षा, विज्ञान, साहित्य, कला, आदि

---

1 "The state makes tyrants or egoists out of the few and servants or dependents out of the many —*Bakunin*

2 'Legislation is in almost every country grossly in favour of the rich and against the poor '—*Godwin*

का विकास व्यक्ति की स्वाभाविक प्रवृत्तियों के कारण हुआ है राज्य सत्ता या शक्ति के कारण नहीं। राज्य ने तो सदा इनके विकास में बाधा प्रस्तुत की है।

राज्य पर उपर्युक्त अराजकतावादी आक्रमण को लो डिकिंसन ने इन शब्दों में व्यक्त किया है, "शासन का अर्थ बाध्यता, बहिष्करण, व्याकुलता तथा पृथक्करण, होता है जबकि अराजकता का अर्थ स्वतन्त्रता, संयोग और प्रेम है। शासन का आधार अहंवाद तथा भय है तो अराजकता का आधार है भ्रातृत्व। क्योंकि हम अपने आपको विभिन्न राष्ट्रों में विभाजित कर लेते हैं इसलिए हम सेना तथा युद्धास्त्रों के भार से उत्पीडित हैं। क्योंकि हम व्यक्तियों के रूप में एक दूसरे से अलग हैं इसलिए हमें विधि के संरक्षण की आवश्यकता होती है।"

उपर्युक्त वर्णन से स्पष्ट है कि अराजकतावादी राज्य को न केवल अनावश्यक बुराई मानते हैं बल्कि हानिकारक संस्था भी मानते हैं। वे हर प्रकार की राजनीतिक या आधिकारिक शक्ति को नष्ट करना चाहते हैं। उनके विचार में तो राज्य का केवल एक ही कर्त्तव्य है और वह है कि "उसे अपने मृत्यु पत्र पर हस्ताक्षर कर अपना अन्त कर देना चाहिए।"

2 सम्पत्ति पर आक्रमण

अराजकतावादी राज्य की भाँति पूँजीवाद का भी पूर्ण उन्मूलन चाहते हैं। वे निजी सम्पत्ति का भी, जो पूँजीवादी व्यवस्था में फलती फूलती है पूर्ण उन्मूलन चाहते हैं। उनका विश्वास है कि पूँजीवाद ही धनिकों को धनी और निर्धनों को और अधिक निर्धन बनाता है। इस व्यवस्था में ही कुछ लोग अनेकों के श्रम का उपभोग करते हैं। यह व्यवस्था ही समाज में शोषण, अत्याचार और अन्याय का आधार है। प्रूधों के लिए 'सम्पत्ति चोरी'[1] है जबकि क्रापोटकिन के लिए निजी सम्पत्ति न्याय के प्रति अपराध है।"[2]

अराजकतावादी सम्पत्ति को सामाजिक आधार देना चाहते हैं अर्थात अराजकतावादी समाज में सम्पत्ति सामूहिक होगी निजी नहीं। साम्यवादियों की भाँति उनकी भी धारणा है कि सम्पत्ति एक व्यक्ति या किसी एक युग की उत्पत्ति नहीं बल्कि यह तो सामूहिक प्रयास का फल है।

अराजकतावादियों का विश्वास है कि समाज में जितनी भी बुराइयाँ—शोषण, दुःख दरिद्रता बेरोजगारी, युद्ध विलासिता, आलस्य अपव्यय, आडम्बर, अनैतिकता, आदि—विद्यमान हैं वे सब निजी सम्पत्ति के कारण हैं। बकुनिन के शब्दों में, "निजी सम्पत्ति जो राज्य के अस्तित्व का आधार तथा उसका परिणाम भी है, हर प्रकार के भौतिक तथा नैतिक दुर्गुणों को जन्म देती है। करोड़ों मजदूरों को

---

1 'Property is theft —*Proudhon*

2 Private property is an offence against justice —*Kropotkin*

उससे आर्थिक परतन्त्रता तथा अत्यधिक श्रम का अभिशाप प्राप्त होता है। वह उन्हें अज्ञान, अन्धकार और सामाजिक तथा आध्यात्मिक निश्चलता में रखती है और केवल कुछ सम्पत्तिशाली व्यक्तियों को ही भोग विलास की सुख सामग्री तथा शारीरिक सुख और कलात्मक एवं बौद्धिक सुखभोग के लिए विशिष्ट सुविधाएँ प्रदान करती है।" क्रोपोटकिन के शब्दों में, "वास्तविक सामाजिक व्यवस्थाओं से व्यक्तिगत सम्पत्ति के जो परिणाम प्रकट होते हैं वे हैं जनता में दुःख दारिद्रय, करोड़ों के लिए बेरोजगारी, अस्वस्थ बालक, किसानों की सदैव ऋणग्रस्तता, धनिकों में अति व्यय (अर्थात् अपव्यय), आडम्बर, आलस्य जिसके कारण वे विलासी बन जाते हैं, समाचार पत्रों की अधोगति और युद्धों की उत्तेजना आदि।" इन सब दूषित परिणामों के कारण अराजकतावादी निजी सम्पत्ति का पूर्णतया उन्मूलन चाहते हैं।

3 धर्म पर आक्रमण (Attack on Religion)

अराजकतावादियों के अनुसार धर्म एक बुराई है और सामाजिक विकास में बाधक है। उनका विश्वास है कि धर्म (चर्च) पूँजीपतियों का मित्र है और साधारण जनता का शत्रु है। धर्म पूँजीपतियों के स्वार्थ साधन का सहारा है। अराजकतावादी मार्क्स के इस कथन को स्वीकार करते हैं कि 'धर्म सर्वसाधारण के लिए अफीम की गोली है।" धर्म ही समाज में दुःख, अन्धविश्वास और अधःपतन का कारण है। धर्म ही निर्धनों को अपनी यथा स्थिति (status quo) से सन्तोष करना सिखाता है। धर्म ही सामाजिक विषमताओं के प्रति सन्तोष और आत्म समर्पण की भावना को जीवित रखता है।

अराजकतावादियों का विश्वास है कि धर्म दूषित संस्थाओं को जन्म देता है। धर्म बुद्धि के स्थान पर अन्धविश्वास को जन्म देता है। धर्म व्यक्ति को क्रियाशील बनाने के स्थान पर श्रद्धालु, उदासीन और क्रियाहीन बनाता है। बेकुनिन के शब्दों में "धर्म दूषित संस्थाओं का समर्थन करता है और मानव की उत्कृष्ट प्रकृति के प्रतिकूल भी है वह मानवता के इस दृश्यमान जगत के महत्वपूर्ण कार्यों से मनुष्य को विमुख कर देता है, उसमें कल्पना, अन्ध विश्वास एवं श्रद्धालुता उत्पन्न करता है और उसकी बुद्धि तक शक्ति तथा विवेक को निष्फल बना देता है।' इस तरह अराजकतावाद धर्म के विरुद्ध एक भीषण प्रतिक्रिया है।

विकेन्द्रीकृत सामाजिक व्यवस्था

अराजकतावादी राज्य, धर्म, और निजी सम्पत्ति का उन्मूलन कर सत्ताहीन समाज की स्थापना करना चाहते हैं। इस अराजक समाज में व्यक्ति पूर्णतया स्वतन्त्र होगा और समाज का आधार भ्रातृभाव, प्रेम और स्वाभाविक सहयोग होगा। जोड़ के शब्दों में, अराजक समाज में 'स्वतन्त्र सहयोग बाध्यता का स्थान ले लेता है और स्वेच्छाकृत समझौता राज्य द्वारा प्रभावीकृत नियमों का। लो डिकिन्सन के शब्दों में 'अराजकता शक्ति का अभाव है व्यवस्था का नहीं।

अराजकतावादियो ने अपने अराजक समाज के सगठन की कोई रूप रेखा तैयार नही की। केवल इतना कहा है कि यह समाज विकेन्द्रीकृत (decentralized) समाज होगा। जैसाकि जोड ने लिखा है "अराजकता का प्रथम तथा प्रधान उद्देश्य क्षेत्रीय तथा व्यावसायिक विकेन्द्रीकरण है। सबसे छोटी तथा सरलतम इकाई कम महत्त्वपूर्ण समझे जाने के स्थान पर सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण समझी जायगी। उसी पर समाज का सम्पूर्ण सगठन निर्भर होगा।

अराजक समाज के भिन्न भिन्न उद्देश्यो की पूर्ति के लिए ऐच्छिक सघो का सगठन होगा। इन ऐच्छिक सघो का आधार प्रेम, सहयोग और व्यक्तिगत श्रम होगा। विभिन्न छोटे छोटे सघो के प्रतिनिधियो से प्रादेशिक सघ प्रादेशिक सघो से राष्ट्रीय सघ और राष्ट्रीय सघो से अन्तर्राष्ट्रीय सघ बनेंगे। सक्षेप म, समाज का आधार स्थायी पूर्णता (static perfection) न होकर प्रगतिशील विकास (dynamic evolution) होगा।

अराजकतावादी समाज मे आपसी विवादो और अपराधो के निपटारे के लिए पचायती न्यायालय स्थापित करना चाहते हैं। वतमान न्यायालय, जेल तथा पुलिस आदि का अराजक समाज म अभाव होगा। समाज विरोधी कार्यों का सामान्यत नतिक प्रभाव तथा सहानुभूति पूर्ण हस्तक्षेप या सामाजिक बहिष्कार से दमन किया जायगा। परन्तु आवश्यकता पडने पर बल पूर्वक हस्तक्षेप भी किया जायगा। यद्यपि अराजक समाज म इसके अवसर बहुत कम होगे। फोरियर ने अराजक समाज मे व्यवस्था को इस प्रकार व्यक्त किया है "छोटे छोटे ककडो को एक सन्दूक म भरकर हिलाइये व इस सुन्दरता से आपस मे बठ जायगे कि आप उस प्रकार का आकार किसी व्यक्ति के द्वारा कभी भी नही बनवा सकते।"

आर्थिक क्षेत्र मे अराजक समाज का सगठन पूर्णतया साम्यवादी (Communistic) ढग का होगा। इस समाज मे सभी को काय करना होगा। सभी व्यक्ति योग्यतानुकूल परिश्रम करेंगे और आवश्यकतानुकूल पारिश्रमिक पायेंगे।

अराजकतावादियो का विश्वास है कि मानव स्वभाव काय का विरोधी नही। वह काय के प्रति उदासीन भी नही। मानव काम चाहता है। परन्तु वह अधिक श्रम, अस्वस्थ वातावरण, कम वतन, अनिश्चित काय का विरोध करता है। जब अराजकतावादी समाज म इन दोषो को दूर कर दिया जायगा तो व्यक्ति अपनी योग्यता और श्रम के अनुसार काय करेगा। क्रोपोटकिन लिखता है कि "काम से पहले आवश्यकता को रखो और सबसे पहले सब व्यक्तियो के जीने के अधिकार को स्वीकार करो और तब उन सब लोगों की सुख सुविधा का विचार करो जो उत्पादन मे भाग लेते हैं।" अराजक समाज म उत्पादन की वस्तुओ और उपभोग की वस्तुओ मे कोई अन्तर नही होगा। चूंकि समाज मे शोषण, प्रतिक्रिया, शक्ति और अत्याचार नही होगा इसलिए सयोग ही सन्तुलनात्मक शक्ति होगी। क्रोपोटकिन के शब्दो म,

"इस प्रकार के अस्पष्ट सूत्र नहीं होंगे 'काम का अधिकार' या 'प्रत्येक का उसके श्रम का पूर्ण प्रतिफल'। हम जिस बात की घोषणा करते हैं वह है 'कल्याण का अधिकार सबका कल्याण।" बेकुनिन के शब्दों में अराजकता "मनुष्य की मौलिक पशुता का प्रगतिशील निषेध है तथा उसकी मनुष्यता का एक प्रगतिशील विकास है।"

अराजक समाज में धर्म का स्थान प्राकृतिक नैतिकता ले लेगी। यही नैतिकता सच्ची नैतिकता है। क्योंकि यह एक वृत्ति बन गयी है। यही नैतिकता ऐसी नैतिकता है जो स्थायी रहती है जबकि धर्म और दर्शन की व्यवस्थाओं का पतन होता रहता है।

संक्षेप में अराजक समाज राज्य विहीन, वर्ग विहीन, सत्ता विहीन, धर्म विहीन, सम्पत्ति विहीन समाज होगा। इसमें राजनीतिक व्यवस्था की आवश्यकता इसलिए नहीं रहेगी कि इसमें किसी व्यक्ति को गलत कार्य करने के लिए प्रलोभन नहीं होगा। इस समाज में न किसी का शोषण होगा न किसी पर अत्याचार न प्रतिद्वन्द्विता होगी न संघर्ष, न किसी का दमन होगा न विरोध। यह व्यवस्था सरकार रहित साम्यवादी (communism without government) व्यवस्था होगी। यह स्वेच्छित अर्थात स्वाभाविक समूहों का संगठन होगा जिसमें सहयोग और प्रेम की भावना सर्वत्र रहेगी। बेकुनिन के शब्दों में, 'मनुष्य की स्वतन्त्रता उसकी मानवता का दर्पण है अर्थात उसके सब मानव अधिकार उसके भाई की चेतनाएँ हैं'।

अराजकतावादी साधन
(Anarchist Methods)

जिस तरह से समाजवाद के दो स्वरूप हैं—विकासवादी और क्रांतिकारी—उसी प्रकार अराजकतावाद के भी दो स्वरूप है। एक वह है जो विकासवादी शांतिवादी तथा संवैधानिक साधनों में विश्वास करता है। इस विचारधारा का नेतृत्व टॉलस्टाय करता है। ये अराजकतावादी केवल अच्छे उद्देश्यों में ही विश्वास नहीं करते बल्कि अच्छे साधनों पर भी बल देते हैं। ये प्रेम, शिक्षा दृष्टान्त, प्रेरणा, अनुनय का सहारा लेते है। अर्थात ये आध्यात्मिक और नैतिक क्रांति द्वारा अराजक समाज की स्थापना चाहते हैं। दूसरा स्वरूप वह है जो क्रांतिकारी साधनों—हिंसा—में विश्वास करता है। इस विचारधारा का नेतृत्व बकुनिन और क्रोपोटकिन करते हैं। ये विचारक वर्तमान पूँजीवादी समाज को नष्ट करना चाहते हैं। इनका विश्वास है कि राज्य सम्पत्ति और धर्म की शक्ति को दृढ़ एवं कठोर साधनों द्वारा ही अर्थात शक्तिशाली साधनों द्वारा ही नष्ट किया जा सकता है। इनका विश्वास है कि अहिंसा, अनुनय और प्रेरणा में वाञ्छित परिवर्तन लाने की क्षमता नहीं होती। क्रोपोटकिन की धारणा है कि विकास की परिणति क्रांति में होगी। उसके शब्दों में, 'इस गन्दगी तथा सड़ान की सफाई के लिए चेतना शून्य आत्माओं में प्राण फूँकने के लिए और फिर से मानवता में भक्ति, वीरता तथा आत्म त्याग की उन्नत भावनाओं का प्रादुर्भाव करने के लिए

जिनके अभाव में समाज जराग्रस्त, दुर्बल और क्षीण हो जाता है, एक भयानक तूफान की आवश्यकता है''।

दार्शनिक और क्रान्तिकारी अराजकतावादी
या
व्यक्तिवादी और साम्यवादी अराजकतावादी
(Philosophical and Revolutionary Anarchists
or
Individualistic and Communistic Anarchists)

अराजकतावादी विचारकों में दो प्रकार के विचारक हैं। एक वे जिन्हें दार्शनिक या व्यक्तिवादी अराजकतावादी कहा जाता है। दूसरे वे जिन्हें क्रान्तिकारी या साम्यवादी अराजकतावादी कहा जाता है। दार्शनिक या व्यक्तिवादी अराजकतावादियों में मुख्य हैं गाडविन हाजस्किन, प्रोधां थारो, वारन, टकर, टॉलस्टाय गांधी, विनोबा आदि। इन विचारकों में कोई भी विचारक इस बात की अपेक्षा नहीं करता कि राज सत्ता का अन्त सहसा (at once) हो सकता है। ये राज सत्ता के क्रमश विनाश में विश्वास करते हैं और इसके लिए वे शान्तिमय, संवैधानिक साधनों का प्रयोग करते हैं। वे जनता को वर्तमान व्यवस्था के (जो पूंजीवाद पर आधारित है) अन्यायों से अवगत कराना चाहते हैं। इसके लिए वे शिक्षा, अनुनय निष्क्रिय प्रतिरोध, बहिष्कार आदि साधनों का सहारा लेते हैं। ये विचारक पूंजीवाद के शोषण, अन्याय तथा अत्याचार के ढंग का विनाश तो करना चाहते हैं परन्तु निजी सम्पत्ति का पूर्ण तथा उन्मूलन नहीं चाहते। वे श्रम के आधार पर सम्पत्ति के अधिकार को सुरक्षित रखना चाहते हैं। इनमें से किसी ने भी, टकर को छोड़कर, यह बताने का प्रयास नहीं किया कि राज्य के विनाश के बाद राज्य विहीन वर्ग विहीन अराजक समाज कैसा होगा।

दूसरी ओर वे अराजकतावादी दार्शनिक हैं जिन्हें क्रान्तिकारी या साम्यवादी अराजकतावादी कहा जाता है। इनमें मुख्य हैं बेकुनिन और क्रोपोटकिन। इन्हें साम्यवादी इसलिए कहा जाता है कि ये निजी भूमि या निजी सम्पत्ति के अधिकार का पूर्णतया उन्मूलन करना चाहते हैं अर्थात ये भूमि और सम्पत्ति का सामाजीकरण करना चाहते हैं। इन्हें अराजकतावादी इसलिए कहा जाता है कि ये राज्य का सहसा (at once) क्रान्ति द्वारा अन्त करना चाहते हैं। ये साम्यवादियों की तरह हिंसक साधनों के समर्थक तो हैं परन्तु ये मार्क्सवादी (साम्यवादी) पद्धति के केन्द्रीय नियन्त्रण के उतने ही विरोधी हैं जितने कि वे राज्य, निजी सम्पत्ति या धर्म के विरोधी हैं। ये विचारक दार्शनिक अराजकतावादियों के शान्तिमय, शिक्षा, अनुनय के साधनों में विश्वास नहीं करते। इनका कहना है कि राज्य सम्पत्ति और धर्म जैसी शक्तिशाली संस्थाओं का पतन एक भयंकर तूफान द्वारा ही हो सकता है। दूसरे शब्दों में, क्रान्ति

कारी अराजकतावादी हिंसा क्रांति द्वारा इन संस्थाओं का पतन चाहते हैं। इन दार्शनिकों की विशेषता यह है कि ये उस अराजक समाज अर्थात राज्य विहीन, वर्ग विहीन समाज की विस्तृत रूप रेखा प्रस्तुत करते हैं जो राज्य के पतन के बाद स्थापित होगी। यह अराजक व्यवस्था साम्यवादी व्यवस्था के ठीक विपरीत है। यह पूर्णतया विकेन्द्रीकृत सामाजिक व्यवस्था है इसमें सहकारिता के आधार पर स्थित स्वेच्छिक समुदाय है। इसमें व्यक्ति 'सच्ची स्वतन्त्रता' का उपभोग करता है। इसमें प्रेम और सहयोग का वातावरण है तथा व्यक्तियों में साहचर्य (भाईचारे) की भावना विद्यमान है।

दार्शनिक और क्रान्तिकारी या व्यक्तिवादी और साम्यवादी दार्शनिकों में 'साधनों' और 'निजी सम्पत्ति' के बारे में अनेक भिन्नतायें होते हुए भी वे इस बात पर सहमत हैं कि राज्य एक दूषित संस्था है। यह समाज में शोषण, अन्याय और अत्याचार का पोषक है। इसलिए राज्य का पूर्णतया विनाश होना चाहिए।

अराजकतावादी दार्शनिक
(Anarchist Thinkess)

1 विलियम गॉडविन (William Godwin 1756 1836)

विलियम गाडविन पहला आधुनिक अराजकतावादी है जिसने 'राजनीतिक सत्ता के विरोध के साथ निजी सम्पत्ति का भी विरोध किया'। उसने अपने विचारों का उल्लेख सन 1793 में प्रकाशित अपनी रचना 'राजनीतिक न्याय की खोज और सामान्य कल्याण पर उसका प्रभाव" में किया। परन्तु अपनी रचना में गाडविन ने अराजकतावाद शब्द का प्रयोग नहीं किया। इसलिए तकनीकी दृष्टि से हम उसे अराजकतावादी नहीं कह सकते। परन्तु जैसा कि अलेक्जेण्डर ग्रे ने कहा है, वह एक पूर्ण अराजकतावादी है उसने अपनी रचनाओं में उन सामाजिक और नैतिक बुराइयों का विश्लेषण किया है जो सरकार और सम्पत्ति से उत्पन्न होती है। उसने अराजकतावादियों की भांति व्यक्ति को स्वाभाविक रूप से अच्छा, सहयोगी, न्यायप्रिय तथा विवेकशील प्राणी माना है।

गॉडविन की विचारधारा को निम्न बिन्दुओं में व्यक्त किया जा सकता है—

1 **राज्य अन्याय और अत्याचार का समर्थन करता है**—गाडविन की धारणा है कि राज्य अपनी सत्ता द्वारा अन्याय असमानता और अत्याचार का पोषण करता है। वह व्यक्ति की स्वाभाविक, न्यायपूर्ण तथा समुचित ढंग से कार्य करने की वृत्तियों का विरोध करता है। राज्य ऐसा वातावरण उत्पन्न करता है कि व्यक्ति को अपनी स्वतन्त्र इच्छा को अभिव्यक्त करने का अवसर ही नहीं मिलता। गाडविन के शब्दों में, 'शासन, मानव जाति के व्यक्तिगत निर्णय तथा व्यक्तिगत अन्त करण पर धावा है।"

2 **मानव स्वभाव पर वातावरण का प्रभाव पड़ता है**—गॉडविन के लिए व्यक्ति जन्म से न तो अच्छा है न बुरा, न सदाचारी है न दुराचारी। वातावरण ही व्यक्ति को अच्छा या बुरा, सदाचारी या दुराचारी बनाता है।

3 'सरकार' और 'सम्पत्ति' 'बुराई' हैं—गॉडविन के लिए 'सरकार और 'सम्पत्ति' बुराई हैं चूंकि समाज म ये दोना बुराइयो की पोषक हैं। सरकार इस लिए बुराई है कि वह हिंसा पर आधारित है और कानून तथा न्यायालय व्यक्ति की तृष्णा, ईर्ष्या, कायरता और महत्वाकांक्षाओं के परिणाम हैं। सम्पत्ति इसलिए बुराई है कि यह धनिकों म मिथ्या अभिमान पैदा करती है और निधनो मे दास वृत्तियो को जन्म देती है। सरकार और सम्पत्ति दोनो का उन्मूलन करके ही बुराइयो का अन्त किया जा सकता है।

4 परिवर्तन के लिए क्रान्ति की नहीं विवेक और जागृति की आवश्यकता है—गॉडविन समाज के उद्धार के लिए किसी क्रान्ति की आवश्यकता नही समझता। उसके लिए तो व्यक्ति एक विवेकशील प्राणी है। उसके इस विवेक को जाग्रत करने की आवश्यकता है। उसे इस ज्ञान का बोध कराने की आवश्यकता है कि सरकार और सम्पत्ति बुराई हैं। इस तरह गॉडविन मानव के विवेक को जाग्रत कर राज्य, सरकार, कानून, न्यायालय, सम्पत्ति आदि का विनाश चाहता है।

2 थॉमस हॉजस्किन (Thomas Hodgskin 1787-1869)

थॉमस हाजस्किन आदर्शवादी (utopian) अराजकतावादी था। उसके विचार अति व्यक्तिवादी थे। उसका विचार था कि विश्व 'स्थायी एव अपरिवर्तनीय नियमो द्वारा शासित' होता है और व्यक्ति का आचरण जो इस विशाल विश्व का एक अग है, 'इन नियमो द्वारा ही प्रभावित, नियन्त्रित एव नियमित होता है।" उसकी धारणा है कि किसी प्रकार की मानवीय योजना या मानवीय कानूनो की आवश्यकता नही। उसका कहना था कि "केवल उन कानूनो को छोड कर जो वर्तमान कानूनो को रद्द करने के लिए बनाये जाते हैं, सब कानूनो का निर्माण नितान्त पाखण्ड है।"[1]

हाजस्किन का विश्वास है कि यदि व्यक्तियो के कार्यों मे हस्तक्षेप न किया जाय और उन्हे अपने ऊपर छोड दिया जाय तो उनकी सारी इच्छाओ की पूर्ति हो जायगी। राज सत्ता के अभाव मे प्रत्येक व्यक्ति प्राकृतिक अधिकारो का उपभोग करेगा। उसकी धारणा थी कि प्रत्येक व्यक्ति को अपने श्रम की पूरी कमाई का उपभोग करने का अधिकार है।

हॉजस्किन ने राज्य विहीन समाज का चित्र अंकित करने का प्रयास नही किया। कही कही तो वह राजनीतिक सत्ता को रखने के लिए भी तैयार था यदि वह अन्याय पूर्ण एव अनुचित कानूनो का समर्थन न करे और अपने क्षेत्र को शान्ति और व्यवस्था तक सीमित रखे।

---

1 'All law making except gradually and quietly to repeal all existing laws is errant humbug —*Hodgskin*

3 पियर जोसफ प्रोधों (Pierre Joseph Proudhon 1809 1865)

प्रोधों सम्भवत पहला दार्शनिक है जिसने अपने आपको अराजकतावादी[1] कहा। इसने ही अराजकतावाद को एक जन आन्दोलन का रूप दिया। इसी कारण इसे अराजकतावाद का संस्थापक या पिता कहा जाता है। उसने ही व्यक्ति की स्वतन्त्रता, समानता और भ्रातृत्व का बीड़ा उठाया। उसने ही व्यक्ति पर व्यक्ति के शासन की निन्दा की। उसने ही व्यक्ति का राज्य, धर्म और सम्पत्ति के कुप्रभाव से मुक्ति दिलाने के लिए प्रयास किया। उसने ही पहली बार अराजकतावादी दृष्टिकोण का सुव्यवस्थित ढंग से प्रतिपादन किया।

प्रोधों ने अराजकतावादी विचारधाराओं को अपनी निम्न रचनाओं में व्यक्त किया—

(1) सम्पत्ति क्या है ? (What is Property, ?

(2) निर्धनता की दार्शनिकता (Philosophy of Poverty, 1846)

(3) सामाजिक समस्या का हल (The Solution of the Social Problem 1849)

(4) क्रान्ति में न्याय तथा चर्च (Of Justice in the Revolution and the Church 1858)

(5) श्रमिक वर्ग की राजनीतिक योग्यता (Political Capacity of the Working Class)

प्रोधों के अराजकतावादी विचारों का निम्न [illegible] किया जा सकता है —

चाहता है। वह मुनाफे, भाड़े और ब्याज की निंदा करता है। वह पूंजीवादी व्यवस्था मे सम्पत्ति के अन्यायपूर्ण वितरण का, जिसमे सामाजिक अन्याय और अत्याचार को बढ़ावा मिलता है विरोधी है।

प्रोधा व्यक्ति को सम्पत्ति का अधिकार देना चाहता है। साथ ही वह उत्तराधिकार के अधिकार को भी देना चाहता है। वह सम्पत्ति म असमानता का विरोधी नही। परन्तु वह उसका न्यायसगत वितरण चाहता है। वह प्रत्यक को कम से कम तीन एकड़ भूमि और एक गाय देने के पक्ष म है। स्पष्ट है कि प्रोधा निजी सम्पत्ति का पूर्णतया विरोधी नही। वह सम्पत्ति का केवल न्यायसगत वितरण चाहता है ताकि समाज मे अधिक विषमतायें न रह।

3 परस्परवाद (Mutualism)—प्रोधा राज सत्ता का स्थान परस्परवाद को देना चाहता है। उसकी धारणा है कि व्यक्तियो को या व्यक्तियो के समूहो को राज्य का पतन करके उत्पादक उद्योगो (productive enterprises) की स्थापना करनी चाहिए जिनमे सहयोग सवत्र विद्यमान रह। इसी पारस्परिकता को प्रोधा ने रचनात्मक अराजकतावाद (positive anarchy) का नाम दिया है।

4 लोगो का बक (Bank of People)—प्रोधा लोगो के बैंक को स्थापित करना चाहता है जो ऐसी कागज की मुद्रा जारी करेगा जो समयानुसार श्रम की इकाइयो के सूचक होगे। प्रोधा ने इस मुद्रा को श्रम नोटो (Labour notes) की सज्ञा दी है। यह बैंक सहकारिता के आधार पर काय करेगा और भिन्न भिन्न ऐच्छिक समुदायो को बिना ब्याज के कज भी देगा। इस तरह पारस्परिक सहयोग के आधार पर अराजकतावादी समाज की आर्थिक व्यवस्था का सचालन होगा।

II अमरीकन अराजकतावादी
(American Anarchists)

उन्नीसवी शताब्दी के मध्य मे अमरीका मे अनेक अराजकतावादी दार्शनिक हुए। इनमे मुख्य थे थोरो, वारेन, टकर। इनके विचार अमरीका की सामाजिक समस्याओ—दासता और औद्योगीकरण के साथ उत्पन्न होने वाली श्रमिक समस्याओ—के सन्दभ म विकसित हुए।

1 जोसिया वारेन (Josiah Warren 1799 1874)

वारेन ने अपने अराजकतावादी विचारो को अपने साप्ताहिक पत्र दी पीसफुल रिवोल्युशनिस्ट (The Peaceful Revolutionists) मे प्रकाशित किया। उसने अपने सामाजिक सिद्धान्त को 'आत्म रक्षण के सावभौम स्वाभाविक नियम (Universal Natural Law of Self preservation) पर आधारित किया। उसका विश्वास है कि व्यक्ति को राज्य की आवश्यकता अपने स्वभाव के कारण नहीं वरन् उन गलतियो क कारण होती है जो उसके पूर्वजों ने व्यक्तिगत सम्पत्ति तथा दमनकारी शासन की

स्थापना करके की। सामान्य व्यवस्था के लिए वह विशेषज्ञों की समिति का ही पर्याप्त समझता है। उसने श्रमिकों का राजनीति से अलग रहने और अपने कार्यों को स्वेच्छापूर्ण सहयोगी प्रयत्नों तक ही सीमित रखने की सलाह दी। उसका विश्वास है कि यदि ऐसा किया जाय तो समाज में निर्धनता और लाभ का धीरे धीरे अन्त हो जायगा और अन्त में शासन की आवश्यकता का भी लोप हो जायगा।

2 बेंजिमन टकर (Benjamin Tucker)

बेंजिमन टकर भी अमरीकी अराजकतावादी दार्शनिक है। उसने अपने विचारों को 'लिबर्टी' (Liberty) नामक अर्द्ध साप्ताहिक पत्रिका में प्रकाशित किया। इस पत्रिका में प्रकाशित लेखों को एकत्रित कर उसने सन 1893 में एक पुस्तक 'Instead of a Book, by a Man Too Busy to Write One : a Fragmentary Exposition of Philosophical Anarchism' प्रकाशित की।

टकर ने विवेकपूर्ण आत्म हित (Intelligent Self interest) को अपने सिद्धान्त का आधार बनाया। उसका विश्वास था कि मानव का विवेकपूर्ण आत्म हित उसे एक ऐसे समाज की ओर अग्रसर करता है जिसमें सब व्यक्ति सामान्य रूप से स्वतन्त्र होते हैं क्योंकि स्वतन्त्रता ही व्यवस्था का प्रभावकारी साधन है और उसी में सुख का मूल तत्त्व भी विद्यमान है। राजनीतिक सत्ता का अवश्य ही पतन होना चाहिए क्योंकि उसने सदा स्वतन्त्रता के सिद्धान्त का उल्लंघन किया है। टकर राज्य के कर निर्धारण सैनिक रक्षा और न्याय व्यवस्था के कार्यों को आक्रमणकारी कार्य समझता है।

टकर राज्य का पतन चाहता है। राज्य के स्थान पर वह स्वतन्त्र समझौते द्वारा निर्मित संस्थायें स्थापित करना चाहता है। इन ऐच्छिक समुदायों में किसी सदस्य पर किसी प्रकार की बाध्यकारी शक्ति का प्रयोग नहीं किया जायगा। प्रत्येक व्यक्ति को किसी समुदाय की सदस्यता छोड़ने का अधिकार होगा। प्रत्येक समुदाय को यह अधिकार होगा कि वह अपने सदस्यों पर स्वीकृत करों को लगाये और उनमें अनुशासन स्थापित करे। टकर प्रतिस्पर्धी समुदायों (rival associations) को स्थापित करने के पक्ष में भी था।

टकर सुरक्षा समुदाय (Defence Association) को सबसे महत्त्वपूर्ण समुदाय समझता है। यह सुरक्षा समुदाय गैर सदस्यों के विरुद्ध उसकी शक्ति अथवा आर्थिक सहायता प्राप्त करने अथवा उपकारी सेवाओं को स्वीकार करने के लिए नहीं बल्कि आक्रमणात्मक कार्यों को रोकने के लिए दमन का प्रयोग करेगी। टकर इसे अराजकतावाद ही कहता है। उसके शब्दों में, 'आक्रमणकारी व्यक्ति की अधीनता शासन नहीं शासन का विरोध और उसके विरुद्ध सुरक्षा है।'

3 हेनरी डेविड थोरो (Henry David Thoreau 1817-1862)

हेनरी डेविड थोरो एक अन्य अमरीकी अराजकतावादी है जो राज्य का विरोधी है। वह कहता है कि जो राज्य दासता का समर्थन करता है उसके करों को देने से इन्कार करना व्यक्ति का अधिकार है। थोरो ने स्वयं मैसाचुसैटस की सरकार को, जो दास प्रथा का समर्थन करती थी, कर देने से इन्कार कर दिया। दूसरे व्यक्तियों ने उसके करों को अदा किया।

थोरो बहुमत पर आधारित सरकारों का भी विरोध करता है। वह कहता है कि यह आवश्यक नहीं कि बहुमत पर आधारित सरकार न्याय पर आधारित हो। उसका विश्वास है कि सरकार अपनी शक्ति का प्रयोग गलत और अन्यायपूर्ण ढंग से करती है जिससे सज्जन व्यक्तियों को दुख झेलने पड़ते हैं। थोरो कहता है कि अत्याचारी कानूनों के प्रति श्रद्धा रखना कोई आवश्यक नहीं।

थोरो "उस सरकार को सबसे अच्छी सरकार मानता है जो बिल्कुल शासन नहीं करती।"[1] उसकी यह धारणा है कि यदि राज्य व्यक्तियों के कार्यों में हस्तक्षेप नहीं करे तो मानव अच्छे जीवन के कार्यों को स्वयं कर सकता है। थोरो व्यक्ति को स्वाभाविक रूप से अच्छा मानता है। वह कहता है "हमें पहले मनुष्य होना चाहिए प्रजाजन नहीं।'[2]

परन्तु थोरो राज्य का 'घातक शत्रु' (mortal enemy) नहीं है। वह तो केवल अच्छी सरकार चाहता है जो लोगों को शिक्षित करे, जो व्यापार और उद्योग का विकास करे परन्तु पूंजीवाद और वर्ग विभेद उत्पन्न न होने दे, जो देश को स्वतन्त्र रखे परन्तु जो व्यक्ति का किसी हालत में दमन न करे। थोरो, टॉलस्टाय की भांति, *राज्य का विरोध शान्तिपूर्ण साधनों से करता है। वह अनैतिक कानूनों* का विरोध 'निष्क्रिय प्रतिरोध' (Passive resistance) द्वारा चाहता है।

III जर्मन अराजकतावादी
(German Anarchists)

जर्मन अराजकतावादियों में केवल एक का नाम ही विशेष रूप से उल्लेखनीय है और वह है जान कास्पर श्मिट (Johann Kasper Schmidt) जो मैक्स स्टर्नर (Max Stirner) के उप नाम से लिखता था। स्टर्नर ने अपने विचारों को अपनी रचना 'Ego and His Own' में व्यक्त किया है।

स्टर्नर का सिद्धान्त अत्यन्त व्यक्तिवादी (exclusively individualistic) है। उसके लिए व्यक्ति ही एक मात्र सत्य है और उसका स्वयं का हित और आनन्द

1 'That government is the best which governs not at all' *Thoreau*
2 We should be men first and subjects afterwards —*Thoreau*

उसके कार्यों का सर्वोच्च नियम है। उसके लिए शक्ति ही एक मात्र अधिकार है। 'मैं जो कुछ भी करता हूँ, अपने ही लिए करता हूँ।'[1] यद्यपि मैं मानवता और उदारतावाद का दावा करता हूँ। 'हमारा एक दूसरे के साथ एक ही सम्बन्ध है और वह है उपयोगिता का, उपयोग का।"

स्टनर राज्य को अस्वाभाविक मानता है। उसकी धारणा है कि समाज के कल्पित हितों के लिए राज्य व्यक्तियों के हितों का दमन करता है। व्यक्ति को मर्यादित करने, उसका दमन करने उसे अधीनता में लाने और उसे किसी सामान्य वस्तु के अधीन करने के अतिरिक्त राज्य का कभी कोई दूसरा उद्देश्य नहीं होता। मैं राज्य का घोर शत्रु हूँ।

स्टनर राज्य का पतन करने के लिए किसी भी उपाय का—विद्रोह, हिंसा सहित—सहारा लेने के लिए तैयार है यदि उससे सफलता मिल सके। स्टनर के विचार एक प्रतिवाद है जो अराजकतावादी परम्परा की तुलना में रूसी शून्यवाद (nihilism) और जर्मनी के नाजीवाद (विशेषकर निटशे के विचारों से) अधिक मिलते हैं।

IV रूसी अराजकतावादी
(Russian Anarchists)

रूसी अराजकतावादियों में तीन नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। ये हैं बकुनिन, क्रोपाटकिन और टालस्टाय। इनमें बकुनिन और क्रोपाटकिन क्रांतिकारी अराजकवादी हैं और टालस्टाय शांतिवादी अराजकतावादी है। बकुनिन और क्रोपोटकिन के अराजकतावाद को प्रायः साम्यवादी अराजकतावाद कहा जाता है। इनके अराजकतावाद को साम्यवादी इसलिए कहा जाता है कि ये भूमि और पूँजी पर निजी स्वामित्व के विरोधी हैं और इन्हें अराजकतावादी इसलिए कहा जाता है कि ये राज्य का पूर्णतया विनाश चाहते हैं। साथ ही इन्हीं दोनों लेखकों (बकुनिन और क्रोपोटकिन) की विचारधारा में अराजकतावादी दर्शन की पूरी अभिव्यक्ति स्पष्ट हो जाती है। दार्शनिक अराजकतावाद प्रायः मृत हो चुका है यद्यपि उसकी कुछ झलक रसल, गांधी और विनोबा के दर्शन में मिलती है।

1 काउण्ट लियो टालस्टाय (Count Leo Tolstoi 1828-1910)

टॉलस्टॉय ने अपने अराजकतावादी विचारों को अपने अनेक नाटकों तथा कहानियों में व्यक्त किया है। जो पुस्तकें उसने सन 1880 और सन 1893 के बीच में लिखी उनमें विशेष रूप से उसके अराजकतावादी विचारों का विवेचन मिलता है। ये पुस्तकें निम्न हैं

---

1 Whatever I do I do for my own sake —Stirner *The Ego and His Own* p 426

1 The Gospel in Brief
2 What I Believe ?
3 What Shall We Do Now ?
4 The Kingdom of God Within You

इन पुस्तको मे ही टालस्टाय के सामाजिक और राजनीतिक [illegible] है। इनमे उसने मुख्यत विलासिता, आडम्बर और दमन की निन्दा की [illegible] श्रम और सादा जीवन की प्रशसा की। इनमे ही उसने राज्य की [illegible] करके अराजकतावादी विचारधारा को बढावा दिया।

टालस्टॉय के अराजकतावाद को ईसाई अराजकतावाद ([illegible] chism) कहा जाता है। उसका कहना है कि लोग ईसा [illegible] जैसे पडौसी से प्रेम करना, पाशविक प्रवृत्तियो का [illegible] प्रतिष्ठा का परित्याग आदि को भूल चुके हैं। वे [illegible]

टॉलस्टाय की धारणा है कि राज्य और [illegible] है। वह राज्य को बुराई इसलिए कहता था कि [illegible] अपने आदेशो का पालन सेना, पुलिस तथा [illegible] करवाता है। राज्य ईसा की इस शिक्षा [illegible] प्रतिरोध शक्ति से न करो।" अपने वर्तमान [illegible] राज्य सर्वाधिक अपराधी, ईसा विरोधी [illegible] म, मेरी तथा मेरे भाइयो की स्थिति [illegible] हो जायेंगे।"

टालस्टाय निजी सम्पत्ति का [illegible] निजी सम्पत्ति के कारण कुछ व्यक्ति [illegible] विलासिता का जीवन व्यतीत [illegible] दानशीलता के उपदेशो के प्रति [illegible]

टॉलस्टॉय उस प्रकृति का [illegible] रित है। उसकी धारणा है कि [illegible] अधविश्वास पर आधारित [illegible]

टालस्टॉय [illegible] परिवर्तन के लिए [illegible] कि ईसाई सिद्धान्त [illegible] और विप्लव [illegible] प्रयोजन (enligh [illegible] साधन है। [illegible]

(spontaneous concession) द्वारा ऊपर से सम्पत्ति के स्वामियों द्वारा, स्वेच्छा से लाना चाहता है। वह अनुनय, शिक्षा, आदि में विश्वास करता है।

टालस्टाय ने भावी सामाजिक संगठन की कोई योजना प्रस्तुत नहीं की। वह तो केवल व्यक्ति का उद्धार चाहता है। वह कहता है कि 'पूर्ण ईसा मत की अवस्था अराजकता की अवस्था है।' 'व्यक्तियों की अन्तरात्मा को जाग्रत करो, प्रेम तथा समानता के आधार पर जीवन व्यतीत करो, निष्क्रिय प्रतिरोध का अभ्यास करो, सरकार के उन आदेशों को मानने से इन्कार करो जो ईसाई मत के विरुद्ध हैं और जहां सम्भव हो करों को मत दो और न्यायालयों में पंच (Juries) का कार्य मत करो।

2 माईकल बेकुनिन (Michael Bakunin 1814 1876)

अराजकतावाद के सिद्धान्तों का सर्वाधिक वैज्ञानिक एवं सुव्यवस्थित विवेचन माइकल बेकुनिन और प्रिंस क्रोपोटकिन की रचनाओं में मिलता है। पहले हम माईकल बेकुनिन की विचारधारा का उल्लेख करेंगे, बाद में प्रिंस क्रोपोटकिन की विचारधारा का उल्लेख करेंगे।

माईकल बेकुनिन रूसी क्रान्तिकारी अराजकतावादी है। उसकी अराजकतावादी दर्शन की मुख्य देन दो है—(1) उसने साम्यवादी अराजकतावाद की आधार शिला रखी, (2) उसने ही यह विश्वास प्रकट किया कि हिंसात्मक क्रान्ति के बिना राज्य को नष्ट नहीं किया जा सकता। इस तरह इन दोनों सिद्धान्तों का प्रतिपादन करके बेकुनिन आतंकवादी अराजकतावाद का जनक बन गया।

बेकुनिन हर प्रकार की सत्ता तथा अधिकार शक्ति का विरोधी है। वह व्यक्ति को हर प्रकार की अधीनता से मुक्ति दिलाना चाहता है। राजनीतिक क्षेत्र में वह व्यक्ति को राज्य से मुक्ति दिलाना चाहता है, आर्थिक क्षेत्र में पूंजीपतियों से छुटकारा दिलाना चाहता है और धार्मिक या वर्ण क्षेत्र में पंडितों के पाखंड से छुटकारा दिलाना चाहता है। यही कारण है कि बेकुनिन की विचारधारा राज्य विरोधी (anti state), अधिकार शक्ति विरोधी (anti authoritarian), निजी सम्पत्ति विरोधी (anti private property) और धर्म विरोधी मानी जाती है।

बेकुनिन की विचारधारा को निम्न बिन्दुओं में व्यक्त किया जा सकता है—

(1) राज्य विरोधी—बेकुनिन का विश्वास है कि राज्य व्यक्ति का पतन करता है तथा उसे अनैतिक बनाता है। राज्य अपने कार्यों की सिद्धि के लिए शक्ति का प्रयोग करता है अनुनय या प्रार्थना का नहीं। उसकी धारणा है कि सरकार का स्वरूप चाहे कैसा ही हो वह एक बुराई है। बेकुनिन को प्रजातान्त्रिक सरकार से उतनी ही आपत्ति थी जितनी कि निरंकुश एवं स्वेच्छाचारी शासन से।

बेकुनिन की धारणा है कि शक्ति या अधिकार शक्ति का प्रयोग पतनकारी होता है। यह उसे भी भ्रष्ट करती है जो इसका प्रयोग या संचालन करता है तथा उन्हें भी जिन पर इसका प्रयोग किया जाता है। "व्यक्ति की स्वतन्त्रता का सार केवल इस बात में निहित है कि वह प्रकृति के नियमों का पालन करे और वह भी इसलिए कि उसने इन्हें इस रूप में स्वीकार कर लिया है न कि इसलिए कि उन्हें उस पर किसी मानवीय, ईश्वरीय, सामूहिक या वयक्तिक बाह्य इच्छा द्वारा लादा गया हो।" "जो कार्य किसी आदेश या निदेश द्वारा किया जाता है उसमें नैतिक या बौद्धिक गुणों का सर्वथा अभाव होता है।"

(2) **निजी सम्पत्ति विरोधी**—बकुनिन ने निजी सम्पत्ति पर भी उतना ही आक्रमण किया जितना कि राज्य पर। उसका विश्वास है कि निजी सम्पत्ति ऐसा अस्त्र है जिसके माध्यम से पूंजीपति निर्धनों का शोषण करते हैं और राज्य शक्ति का प्रयोग कर समाज में अन्याय और अत्याचार को बढ़ावा देते हैं। "निजी सम्पत्ति, जो राज्य के अस्तित्व का आधार तथा उसका परिणाम भी है, हर प्रकार के भौतिक तथा नैतिक दुर्गुणों को जन्म देती है। करोड़ों मजदूरों को उससे आर्थिक पराश्रयता तथा अत्यधिक श्रम का अभिशाप प्राप्त होता है। वह उन्हें अज्ञान, अन्धकार और सामाजिक तथा आध्यात्मिक निश्चलता में रखती है और केवल कुछ सम्पत्तिशाली व्यक्तियों को ही भोग विलास की सुख सामग्री तथा शारीरिक सुख और कलात्मक एवं बौद्धिक सुखभोग के लिए विशिष्ट सुविधाएँ प्रदान करती है।"

(3) **धर्म विरोधी**—बेकुनिन धर्म का भी उतना ही विरोधी है जितना कि राज्य और निजी सम्पत्ति का। उसने धर्म की तुलना रूस के जार से की क्योंकि दोनों ही अत्याचार के प्रतीक हैं। "ईश्वर जार के समान है तथा जार ईश्वर के समान अत्याचारी है।"[1] धर्म दूषित संस्थाओं का समर्थन करता है और मानव की उत्कृष्ट प्रकृति के प्रतिकूल भी है—वह मानवता को इस दृश्यमान जगत के महत्त्वपूर्ण कार्यों से मनुष्य को विमुख कर देता है उसमें कल्पना, अन्ध विश्वास एवं श्रद्धालुता उत्पन्न करता है और उसकी बुद्धि, तर्क शक्ति तथा विवेक को निष्क्रिय बना देता है।" बेकुनिन धार्मिक विश्वासों के स्थान पर विज्ञान तथा ज्ञान की प्रतिष्ठा चाहता है और भावी दैवी न्याय के मिथ्यावाद के स्थान पर वर्तमान मानवीय न्याय के यथार्थवाद की स्थापना चाहता है।"

(4) **क्रान्तिकारी साधन**—बेकुनिन विकासवादी और क्रान्तिकारी दोनों साधनों का समर्थक है। परन्तु वह विकासवादी साधनों को अपर्याप्त मानता है। उसकी धारणा है कि विकासवादी साधनों से राज्य, निजी सम्पत्ति और धर्म की

---

1 "God was very like the Czar and the Czar was like God, a tyrant"

(spontaneous concession) द्वारा ऊपर से सम्पत्ति के स्वामियों द्वारा, स्वेच्छा से लाना चाहता है। वह अनुनय, शिक्षा, आदि में विश्वास करता है।

टॉलस्टाय ने भावी सामाजिक संगठन की कोई योजना प्रस्तुत नहीं की। वह तो केवल व्यक्ति का उद्धार चाहता है। वह कहता है कि "पूर्ण ईसाई मत की अवस्था अराजकता की अवस्था है। 'व्यक्तियों की अन्तरात्मा को जाग्रत करो, प्रेम तथा समानता के आधार पर जीवन व्यतीत करो, निष्क्रिय प्रतिरोध का अभ्यास करो, सरकार के उन आदेशों को मानने से इन्कार करो जो ईसाई मत के विरुद्ध है और जहां सम्भव हो करों को मत दो और न्यायालयों में पंच (Juries) का कार्य मत करो।"

2 माईकल बेकुनिन (Michael Bakunin 1814 1876)

अराजकतावाद के सिद्धान्तों का सर्वाधिक वैज्ञानिक एवं सुव्यवस्थित विवेचन माईकल बेकुनिन और प्रिंस क्रोपाटकिन की रचनाओं में मिलता है। पहले हम माईकल बेकुनिन की विचारधारा का उल्लेख करेंगे, बाद में प्रिंस क्रोपोटकिन की विचारधारा का उल्लेख करेंगे।

माइकल बकुनिन रूसी क्रान्तिकारी अराजकतावादी है। उसकी अराजकतावादी दर्शन को मुख्य देन दो हैं—(1) उसने साम्यवादी अराजकतावाद की आधारशिला रखी (2) उसने ही यह विश्वास प्रकट किया कि हिंसात्मक क्रान्ति के बिना राज्य को नष्ट नहीं किया जा सकता। इस तरह इन दोनों सिद्धान्तों का प्रतिपादन करके बकुनिन आतंकवादी अराजकतावाद का जनक बन गया।

बकुनिन हर प्रकार की सत्ता तथा अधिकार शक्ति का विरोधी है। वह व्यक्ति को हर प्रकार की अधीनता से मुक्ति दिलाना चाहता है। राजनीतिक क्षेत्र में वह व्यक्ति को राज्य से मुक्ति दिलाना चाहता है आर्थिक क्षेत्र में पूंजीपतियों से छुटकारा दिलाना चाहता है और धार्मिक या वर्ण क्षेत्र में पंडितों के पाखंड से छुटकारा दिलाना चाहता है। यही कारण है कि बकुनिन की विचारधारा राज्य विरोधी (anti state), अधिकार शक्ति विरोधी (anti authoritarian), निजी सम्पत्ति विरोधी (anti private property) और धर्म विरोधी मानी जाती है।

बकुनिन की विचारधारा को निम्न बिन्दुओं में व्यक्त किया जा सकता है—

(1) राज्य विरोधी—बकुनिन का विश्वास है कि राज्य व्यक्ति का पतन करता है तथा उसे अनैतिक बनाता है। राज्य अपने कार्यों की सिद्धि के लिए शक्ति का प्रयोग करता है, अनुनय या प्रबोधन का नहीं। उसकी धारणा है कि सरकार का स्वरूप चाहे कैसा ही हो वह एक बुराई है। बेकुनिन को प्रजातान्त्रिक सरकार से उतनी ही आपत्ति थी जितनी कि निरंकुश एवं स्वेच्छाचारी शासन से।

बेकुनिन की धारणा है कि शक्ति या अधिकार शक्ति का प्रयोग पतनकारी होता है। यह उसे भी भ्रष्ट करती है जो इसका प्रयोग या संचालन करता है तथा उन्हें भी जिन पर इसका प्रयोग किया जाता है। "व्यक्ति की स्वतन्त्रता का सार केवल इस बात में निहित है कि वह प्रकृति के नियमों का पालन करे और वह भी इसलिए कि उसने इन्हें इस रूप में स्वीकार कर लिया है न कि इसलिए कि उन्हें उस पर किसी मानवीय ईश्वरीय, सामूहिक या वयक्तिक बाह्य इच्छा द्वारा लादा गया हो।" "जो कार्य किसी आदेश या निदेश द्वारा किया जाता है उसमें नैतिक या बौद्धिक गुणों का सर्वथा अभाव होता है।"

(2) निजी सम्पत्ति विरोधी—बेकुनिन ने निजी सम्पत्ति पर भी उतना ही आक्रमण किया जितना कि राज्य पर। उसका विश्वास है कि निजी सम्पत्ति ऐसा अस्त्र है जिसके माध्यम से पूंजीपति निर्धनों का शोषण करते हैं और राज्य शक्ति का प्रयोग कर समाज में अन्याय और अत्याचार को बढ़ावा देते हैं। "निजी सम्पत्ति, जो राज्य के अस्तित्व का आधार तथा उसका परिणाम भी है, हर प्रकार के भौतिक तथा नैतिक दुर्गुणों को जन्म देती है। करोड़ों मजदूरों को उससे आर्थिक परतन्त्रता तथा अत्यधिक श्रम का अभिशाप प्राप्त होता है। वह उन्हें अज्ञान, अन्धकार और सामाजिक तथा आध्यात्मिक निश्चलता में रखती है और केवल कुछ सम्पत्तिशाली व्यक्तियों को ही भोग विलास की सुख सामग्री तथा शारीरिक सुख और कलात्मक एवं बौद्धिक सुखभोग के लिए विशिष्ट सुविधाएँ प्रदान करती है।"

(3) धर्म विरोधी—बेकुनिन धर्म का भी उतना ही विरोधी है जितना कि राज्य और निजी सम्पत्ति का। उसने धर्म की तुलना रूस के जार से की क्योंकि दोनों ही अत्याचार के प्रतीक हैं। "ईश्वर जार के समान है तथा जार ईश्वर के समान अत्याचारी है।"[1] "धर्म दूषित संस्थाओं का समर्थन करता है और मानव की उत्कृष्ट प्रकृति के प्रतिकूल भी है—वह मानवता को इस दृश्यमान जगत के महत्त्वपूर्ण कार्यों से मनुष्य को विमुख कर देता है उसमें कल्पना, अन्ध विश्वास एवं श्रद्धालुता उत्पन्न करता है और उसकी बुद्धि, तर्क शक्ति तथा विवेक को निष्क्रिय बना देता है।" बेकुनिन धार्मिक विश्वासों के स्थान पर विज्ञान तथा ज्ञान की प्रतिष्ठा चाहता है और भावी दैवी न्याय के मिथ्यावाद के स्थान पर वर्तमान, मानवीय न्याय व यथार्थवाद की स्थापना चाहता है।

(4) क्रांतिकारी साधन—बकुनिन विकासवादी और क्रान्तिकारी दोनों साधनों का समर्थक है। परन्तु वह विकासवादी साधनों को अपर्याप्त मानता है। उसकी धारणा है कि विकासवादी साधनों से राज्य, निजी सम्पत्ति और धर्म की

---

1 'God was very like the Czar and the Czar was like God, a tyrant"

शक्ति से छुटकारा पाना कठिन है और इन साधनों द्वारा लम्बे समय तक इन्तजार भी करना पड़ता है। राज्य निजी सम्पत्ति और धर्म से जल्दी छुटकारा पाने के लिए उसने क्रान्तिकारी साधनों का समर्थन किया। वह हिंसा, विद्रोह एवं क्रान्ति का समर्थक है। बकुनिन को इसी कारण शक्ति और विद्रोह का पुजारी कहा गया है। क्रान्ति लाने के लिए उसने एक योजना भी तैयार की थी जिसमें उसने एक क्रान्तिकारी परिषद (Revolutionary Council) तथा उसके अधीन क्रान्तिकारी समितियों की कल्पना भी की। यही परिषद् राज्य तथा उसकी संस्थाओं (पुलिस, सेना, व्यवस्थापिका, प्रशासनिक कार्यालयों आदि) धार्मिक संस्थाओं (गिरजाघरों) तथा पूँजीपतियों के विनाश का कार्यक्रम तैयार करेगी तथा उनका विनाश करेगी।

5 अराजक समाज—क्रान्ति के बाद अर्थात राज्य तथा उसकी संस्थाओं के विनाश के बाद जिस समाज की कल्पना बकुनिन ने की वह है राज्य विहीन, वर्ग विहीन, धर्म विहीन, निजी सम्पत्ति विहीन समाज। इस समाज में न कोई शोषक होगा न कोई शोषित। प्रत्येक को अपने श्रम के लाभ का उपभोग करने का अधिकार होगा। प्रत्येक अपनी क्षमतानुसार कार्य करेगा और आवश्यकतानुसार धन उसे प्राप्त होगा। इस स्वतन्त्र समाज का आधार सहयोग, प्रेम और समन्वय होगा। इसमें दबाव और दमन का कोई स्थान नहीं होगा। प्रत्येक व्यक्ति सच्ची स्वतन्त्रता का उपभोग करेगा। स्वतन्त्रता का स्वरूप सकारात्मक होगा नकारात्मक नहीं। बकुनिन के शब्दों में, "स्वतन्त्रता एकान्तता की नहीं पारस्परिकता की वस्तु है, पार्थक्य की नहीं संयोग की वस्तु है। वह तो प्रत्येक व्यक्ति के लिए उसके बन्धुओं की चेतना में उसकी मानवता का प्रतिबिम्ब है।" बेकुनिन इसे ही सुदृढता का सिद्धान्त कहता है। इस समाज में किसी प्रकार की राष्ट्रीय जातीय, रंग विश्वास (धर्म) आदि की भिन्नतायें नहीं होंगी, किसी प्रकार की राजकीय सीमाएँ नहीं होंगी और विश्व समुदाय का जन्म होगा। बकुनिन के शब्दों में "व्यक्तियों के स्वतन्त्र कम्यून (Commune) होंगे, कम्यूनों के स्वतन्त्र प्रान्त होंगे, प्रान्तों के राष्ट्र और राष्ट्रों का स्वतन्त्र संघ यूरोप का संयुक्त राज्य और अन्त में अखिल विश्व का एक संघ होगा।" बकुनिन की यह भी धारणा है कि इस प्रकार के समाज की स्थापना शीघ्र ही सम्भवत उन्नीसवीं शताब्दी की समाप्ति से पूर्व ही हो जायगी।

प्रिंस पीटर क्रोपोटकिन

बेकुनिन के शिष्यों में क्रोपाटकिन उसका सर्वोत्तम शिष्य है। वह एक बड़ा अराजकतावादी दार्शनिक भी है। क्रोपाटकिन ने अपने अराजकतावादी विचारों को अपनी निम्न रचनाओं में व्यक्त किया है —

1 रोटी पर विजय (The Conquest of Bread 1888)

2 राज्य तथा उसका इतिहास म योगदान (The State, its Part in History, 1898)
3 अराजकतावाद, इसका दशन तथा आदश (Anarchism Its Philosophy and Ideal, 1896)
4 भूमि, कारखाने तथा उद्योगशालाएँ (Fields, Factories and Workshops, 1899)
5 पारस्परिक सहायता विकासवाद का महत्वपूण अग (Mutual Aid, a Factor of Evolution, 1902)
6 आधुनिक विज्ञान तथा अराजकतावाद (Modern Science and Anarchism, 1903)

क्रोपोटकिन अपने दशन को मानव स्वभाव की प्रकृति से शुरू करता है और इस नि कप पर पहुँचता है कि मानव स्वभाव से एक "सहयोगी" प्राणी है। अपने निष्कप के प्रमाण के रूप म वह सामाजिक जीवन के लिए समानता, न्याय और सुदृढता के नियमा को प्रस्तुत करता है। उसका विश्वास है कि सामाजिक विकास के लिए सघप के स्थान पर सहयाग की अधिक आवश्यकता होती है। परन्तु इस पारस्परिक सहयोग और सुदृढता की भावना म राज्य, निजी सम्पत्ति और धम बाधक हैं, धार्मिक सत्ता ही राजनीतिक दमन और आर्थिक विशेषाधिकारा की सेविका और उन्हें पवित्र बताने वाली सस्था है। क्रोपोटकिन अपने गुरु की भांति राज्य, निजी सम्पत्ति और धम का कटु आलाचक है। वह इन सस्थाओं का पूण उन्मूलन चाहता है।

1 राज्य विरोधी—ऐतिहासिक आधार पर क्रोपोटकिन ने राज्य को अनावश्यक अनुपयागी और बेकार सस्था सिद्ध करने का प्रयास किया है। उसका विश्वास है कि "राज्य का न तो कोई प्राकृतिक और न ही कोई ऐतिहासिक औचित्य है।" अपन तक के समथन मे क्रोपोटकिन ने निम्न बिन्दु प्रस्तुत किये हैं —

(अ) राज्य ऐतिहासिक दृष्टि से अनावश्यक है—क्रोपाटकिन की धारणा है कि राज्य मानव के स्वाभाविक सहयोग की प्रवृत्ति के विरुद्ध है। उसकी रचना और कायप्रणाली इस असत्य धारणा पर आश्रित है कि व्यक्ति स्वभाव से प्रतियोगी एव असामाजिक है और इसी कारण समाज को स्थिर रखने के लिए प्रतिबन्ध और दबाव की आवश्यकता है। राज सत्ता उस आधारभूत मनोवैज्ञानिक सिद्धान्त के भी विपरीत है जिसके अनुसार मानव शक्तियों का विकास स्वत स्वतन्त्र रूप से काय करने म होता है। क्रोपोटकिन की धारणा है कि राज्य के विकास स पहले व्यक्ति स्वतन्त्र समुदायों म सगठित थे और राज्य के कानूनों से पहले रीति रिवाजों द्वारा समाज का गठन एव सचालन होता था। राज्य तथा उसके कानूनों का जन्म तो स्वार्थी परन्तु शक्तिशाली पुरोहितों या सैनिक सरदारों के हितों के लिए हुआ।

कानूनों के बारे में क्रोपोटकिन लिखता है "आज कानून या तो अनावश्यक हैं या हानिप्रद। आज के कानूनों में कुछ तो ऐसे रिवाज हैं जो समाज के लिए हितप्रद हैं, जो बिना राज्य की स्वीकृति के भी मान्य रहेंगे और कुछ नियम ऐसे हैं जिनका पालन सम्पत्ति के स्वामियों के लिए हितप्रद होने के कारण शासन कर्ता अल्पमत द्वारा प्रयुक्त सत्ता के भय से होता है।"[1] इस तरह क्रोपाटकिन राज्य तथा उसके कानूनों को अनावश्यक मानता है।

(ब) राज्य अन्याय तथा शोषण का पोषण करता है—क्रोपोटकिन का विश्वास है कि राज्य मानव प्रगति और स्वतन्त्रता का शत्रु है। इतिहास से उदाहरण देते हुए वह लिखता है कि राज्य ने न कारखाने के मजदूरों और कृषकों की उनके स्वामियों से रक्षा की है और न उसने जरूरत मन्दों (needy) को अन्न और न बेकारों को काम ही दिया है। उसकी धारणा है कि राज्य ने व्यक्ति के अधिकारों की रक्षा नहीं की। 'समाचार पत्रों की स्वतन्त्रता, सभा की स्वतन्त्रता, गृह की अलघनीयता की रक्षा तथा अन्य समस्त नागरिक स्वतन्त्रताओं का आदर उसी समय तक होता है जब तक जनता उनका प्रयोग विशेषाधिकार सम्पन्न वर्गों के विरुद्ध नहीं करती।"

(स) राज्य की सेवायें अनावश्यक हैं—क्रोपोटकिन की धारणा है कि राज्य की न तो रक्षात्मक और न पारमार्थिक सेवायें ही आवश्यक हैं और न ही प्रभाव कारी। उसका विश्वास है कि जनता स्वयं कार्य करते हुए आन्तरिक लुटेरों तथा विदेशी आक्रमणों से अपनी रक्षा कर सकती है। इतिहास से यह सिद्ध होता है कि राज्य की स्थायी सेनायें नागरिक सेनाओं द्वारा पराजित हुई हैं और आक्रमण लोक विद्रोह द्वारा व्यर्थ कर दिये गये हैं। शासन हमें असामाजिक तत्वों से भी सुरक्षित नहीं रखता। कारागार अपराधों को रोकने की अपेक्षा उन्हें फैलाने में ही अधिक सफल हुए हैं। राज्य के सांस्कृतिक एवं परोपकारी कार्य भी अनावश्यक हैं। क्रोपोटकिन का विश्वास है कि जब व्यक्ति अपनी आर्थिक एवं राजनीतिक पराधीनता से मुक्ति पा लेंगे तब वे शिक्षा और दानशीलता की स्वयं व्यवस्था कर लेंगे।

(द) सरकार का कोई भी स्वरूप पतनकारी है—अपने गुरु बकुनिन की भांति क्रोपोटकिन सरकार के सब प्रकार के स्वरूपों चाहे वे प्रजातान्त्रिक ही क्यों न हों, का प्रयोग हानिकारक मानता है। उसकी धारणा है कि अधिकार शक्ति जिसका प्रयोग सरकार करती है, का प्रयोग ही अनैतिक है। उसके शब्दों में, "एक निकृष्ट और पतित मन्त्री भी सम्भवतः एक बहुत ही अच्छा व्यक्ति होता यदि उसके हाथों में राज्य की शक्ति नहीं होती।

(2) निजी सम्पत्ति विरोधी—अपने गुरु की भांति क्रोपाटकिन भी निजी सम्पत्ति का विरोधी है। निजी सम्पत्ति के दोषों के बारे में क्रोपाटकिन लिखता है कि

1 Kropotkin Quoted by Coker in his, *Ibid*, p 210

"वास्तविक सामाजिक अवस्थाओं से व्यक्तिगत सम्पत्ति के जो परिणाम प्रकट होते हैं, वे हैं जनता में दुःख दारिद्रय, करोड़ों की बेरोजगारी, अस्वस्थ बालक, किसानों की सदैव ऋणग्रस्तता, धनिकों में अति व्यय (अपव्यय), आडम्बर, आलस्य जिसके कारण वे विलासी बन जाते हैं, समाचार पत्रों की अधोगति और युद्ध की उत्तेजना, आदि।"

क्रोपोटकिन के लिए, सम्पत्ति का आधार सामाजिक है व्यक्तिगत नहीं। वह कहता है कि जब सम्पत्ति का उत्पादन सामाजिक प्रयत्नों द्वारा होता है तो उसका उपभोग भी सामाजिक अर्थात सामूहिक होना चाहिए। वह साम्यवाद के इस सिद्धान्त को स्वीकार करता है कि "प्रत्येक को उसकी आवश्यकता के अनुसार" साधन प्राप्त हों। उसकी धारणा है कि "प्रत्येक अन्वेषण, प्रत्येक प्रगति, मानवीय सम्पदा में प्रत्येक वृद्धि, अतीत तथा वर्तमान के अथक एवं भगीरथ शारीरिक तथा मानसिक परिश्रम का फल है। तब कोई किस आधार पर इस विशाल पूर्ण (ब्रह्माण्ड) में से जरा सा ले सकता है और यह कहने का दावा कर सकता है कि यह मेरा है तेरा नहीं।"

(3) धर्म विरोधी—क्रोपोटकिन ने धर्म की भी बड़े शब्दों में आलोचना की है। वह इसे 'अंधविश्वास 'विशेषाधिकार, राजनीतिक उत्पीडन, 'आर्थिक विषमता का पोषक मानता है। उसके शब्दों में, 'धार्मिक सत्ता, राजनीतिक उत्पीडन तथा आर्थिक विशेषाधिकार की सेविका और उन्हें पवित्र बनाने वाली है।" धर्म 'जगत की सृष्टि की मीमांसा करने वाला एक आदिम सिद्धान्त है, प्रकृति को समझने का एक भद्दा प्रयास है' या 'वह एक ऐसी नैतिक प्रणाली है जो जनता के अज्ञान तथा अन्धविश्वास से लाभ उठाकर उसे वर्तमान राजनीतिक तथा आर्थिक व्यवस्था के अन्तर्गत जो अन्याय सहने पड़ते है उन्हें सहन करने का आदेश देती है।" क्रोपोटकिन उस सामाजिक नैतिकता को जो स्वतः विकसित होती है धर्म का नाम देने के लिए तैयार था। उसके शब्दों में, वही नैतिकता सच्ची नैतिकता है जो स्वाभाविक हो गयी है।"

(4) क्रान्तिकारी साधन—राज्य, निजी सम्पत्ति और धर्म के [illegible] लिए क्रोपोटकिन क्रान्तिकारी साधनों का समर्थन करता है। उसका [illegible] इन्हें क्रान्तिकारी साधनों से ही नष्ट कर अराजक समाज की स्थापना [illegible] है। उसके शब्दों में 'इस गन्दगी तथा सड़ान की सफाई के लिए [illegible] में प्राण फूंकने के लिए और फिर से मानवता में भक्ति, [illegible] की उदात्त भावनाओं का प्रादुर्भाव करने के लिए, जिनके [illegible] दुर्बल और क्षीण होता है एक भयानक तूफान की [illegible] है।"

(5) अराजक समाज—क्रोपोटकिन का आदर्श [illegible] समाज [illegible] ही है जैसा कि बेकुनिन का है। इस समाज में '[illegible] रहेंगे [illegible]

शासन सत्ता के दबाव के कारण नहीं। पूर्ण समाज में स्वतन्त्र समुदाय होंगे, संघों का निर्माण पारस्परिक मेल जोल से होगा और हितों के अनुकूल (आर्थिक, सामाजिक, आदि) संघों का निर्माण होगा। इन्हीं छोटे छोटे संघों से बड़े बड़े संघों का निर्माण होगा। आर्थिक दृष्टि से यह नवीन व्यवस्था पूर्ण रूप में साम्यवादी व्यवस्था होगी। क्रोपोटकिन का यह विश्वास है कि अराजक व्यवस्था में व्यक्ति वेतन दासता के अंकुश की अपेक्षा अपनी स्वाभाविक एवं रचनात्मक प्रवृत्तियों की प्रेरणा से काम करेंगे, इस लिए वे अधिक मनोयोग एवं कुशलता से काम करेंगे। इस समाज में विवादों का निर्णय जनता द्वारा स्वेच्छापूर्वक स्थापित न्यायालय करेंगे। जब समाज व्यवस्था स्वतन्त्रता और न्याय के सिद्धान्तों पर आधारित होगी तो समाज विरोधी कार्यों के लिए कोई उत्तेजना नहीं होगी और यदि ऐसे कार्य होंगे भी तो उनका "नैतिक प्रभाव और सहानुभूतिपूर्ण हस्तक्षेप द्वारा दमन किया जायगा। आवश्यकता पड़ने पर 'निष्कासन और बलपूर्वक हस्तक्षेप' का प्रयोग किया जायगा।

आतंकवादी अराजकतावाद
(Terroristic Anarchism)

बकुनिन और क्रोपोटकिन के शिष्यों ने अराजकतावादी सिद्धान्तों को आतंक वादी अराजकतावाद का रूप दिया। जर्मनी और अमरीका में जान मोस्ट (Johann Most) ने अराजकतावादी उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए निरन्तर क्रान्तिकारी अन्तर्राष्ट्रीय कार्य' का प्रचार किया। वह छापामार युद्ध और बम्ब फेंकने में विश्वास करता था। इस आन्दोलन को शीघ्र ही दबा दिया गया परन्तु इमा गोल्डमेन (Emma Goldman) के नेतृत्व में यह आन्दोलन फिर उठ खड़ा हुआ जिसे प्रथम महायुद्ध के समय दबा दिया गया। रूस में अराजकतावाद के इस विध्वंसात्मक स्वरूप को रूसी शून्यवादियों (Nihilists) से अधिक प्रोत्साहन मिला। शून्यवाद न केवल राजकीय संस्थाओं को बल्कि समस्त प्रचलित एवं प्रतिष्ठित विचारों, संस्थाओं एवं मानदण्डों को उखाड़ फेंकना चाहता है। यह यथार्थवादी दर्शन है और अनुभव को ही प्रमाण मानता है। "धर्म तथा सदाचार के क्षेत्र में शून्यवादी दृष्टिकोण सत्तावाद कट्टर वादिता, सर्वातिशयिता (transcendentalism) तथा नियम निष्ठता (Formalism) की निन्दा में तथा धर्म में नास्तिकता और नीति में सुखवाद परीक्षणवाद तथा मानव वाद की शिक्षा में प्रकट हुआ। शून्यवाद के विचारों का प्रचार सरगी नेतशेव (Sergei Netschaiev) ने अपनी अनेक रचनाओं और पत्रिकाओं में किया। इनमें उसने "कार्य द्वारा प्रचार के सिद्धान्त (Theory of Propaganda by Deed) को अपनाया। उसने विष तलवार अग्नि, फांसी की रस्सी क्रान्ति के शत्रुओं की हत्या, बम्ब, गोली आदि का समर्थन किया। संक्षेप में तोड़ फोड़ और राजनीतिक हत्या इसका नारा था।

भारत में बीसवीं शताब्दी के प्रारम्भ में आतंकवादियों का जन्म हुआ। परन्तु

ब्रिटिश सरकार के दमन चक्र और महात्मा गाधी के अहिंसक आन्दोलन ने उनका विनाश कर दिया। भारत के आतकवादियो म प्रमुख थे विनायक सावरकर, लाला हरदयाल, सरदार अजीत सिह, भगतसिह, आदि।

आतकवादी अराजकतावाद कभी जन आन्दोलन नही बन सका। इसे लोकप्रियता नही मिली।

साम्यवाद और अराजकतावाद का तुलनात्मक अध्ययन
(A Comparative Study of Communism and Anarchism)

साम्यवाद और अराजकतावाद म अनक समानताएँ है। इसी कारण जोड ने इन्हें "एक ही पूण वस्तु के दो भाग"[1] कहा है। दोनो का उद्देश्य राज्य विहीन, वग विहीन, शोषण विहीन समाज की स्थापना करना है। दोना ही पूजीवाद के कट्टर शत्रु हैं तथा उसका उन्मूलन चाहत है (यद्यपि कुछ दाशनिक या व्यक्तिवादी अराजकतावादी ऐसे हैं जो श्रम के आधार पर सम्पत्ति के अधिकार को स्वीकार करते हैं), दोना वग चेतना को जाग्रत रखने के लिए कटुता, घृणा कट्टरता का प्रचार करते हैं, दोनो क्रान्तिकारी आन्दोलन हैं और क्राति द्वारा नवीन समाज की (साम्यवादी साम्यवाद समाज की और अराजकतावादी राजहीन समाज की) स्थापना करना चाहते हैं। दोना हिंसा, बलात्कार हत्या और विनाश के साधना म विश्वास करते हैं। (यद्यपि कुछ दाशनिक अराजकतावादी जसे टालस्टाय अहिंसक तथा अनुनय के साधनो म विश्वास करते हैं)। दानो वतमान सस्थाओ—राज्य सम्पत्ति, धम—का विरोध करत हैं। दाना इन सस्थाओ को शोषण, अन्याय और अत्याचार का साधन मानते हैं। दोना ही धम विरोधी है तथा धम का "लोगो की अफीम" कह कर निन्दित करत हैं। दोनो के लिए धम अन्ध विश्वास और 'यथा स्थिति' के प्रति सतोष और साम्यवाद' का आधार है।

साम्यवाद और अराजकतावाद को एक दूसरे का पूरक भी कहा जाता है। इसका कारण यह है कि साम्यवाद राज्य विहीन वग विहीन समाज की स्थापना के लिए साधनो का विस्तृत उल्लेख तो करता है परन्तु राज्य तथा वर्गों के समाप्त होने के बाद सामाजिक व्यवस्था कैसी होगी उसका उल्लख नही करता, दूसरी ओर, अराजकतावाद उस व्यवस्था का विस्तृत उल्लेख करता है जो राज्य और वर्गों के पतन के बाद स्थापित की जायगी। इसी कारण यह कहा जाता है कि जहाँ साम्यवाद समाप्त होता है वहा 'अराजकतावाद शुरु होता है। प्रो० जोड के शब्दो मे 'यह कहा जा सकता है कि अब अधिकाश साम्यवादी समाज के अराजकतावादी आदश को स्वीकार करत हैं और अनेक अराजकतावादी यह मानने को प्रस्तुत हैं कि इस प्रकार की सामाजिक व्यवस्था

---

1 'Communism and Anarchism are the two halves of the same whole —Joad C E M *Ibid* p 88

केवल साम्यवादी कायक्रम द्वारा ही सम्भव है। प्रसिद्ध विचारक प्रिंस क्रोपोटकिन 'अराजकतावादी साम्यवाद' का अग्रदूत माना जाता है। समाजवादी समाज के पूर्ण विकसित रूप के सम्बन्ध में उसके विचार साम्यवादियों के विचारों के ही समान हैं परन्तु संक्रमणकालीन अवस्था के सम्बन्ध में उनमें भेद है।"[1]

साम्यवाद और अराजकतावाद में अनेक समानतायें होते हुए भी अर्थात् एक दूसरे के पूरक होते हुए भी, उनमें अनेक भिन्नतायें हैं। इन भिन्नताओं को निम्न बिन्दुओं में व्यक्त किया जा सकता है —

1 साम्यवाद साधनों पर और अराजकतावाद साध्यों पर बल देता है

साम्यवाद और अराजकतावाद दोनों का लक्ष्य एक ही है और वह है राज्य विहीन वर्ग विहीन समाज की स्थापना। परन्तु दोनों के मार्ग बिलकुल भिन्न हैं। साम्यवाद वास्तव में "पद्धति का दर्शन (Philosophy of Method) है। वह उस कार्यक्रम का सिद्धान्त है जो पूँजीवाद से समाजवाद की ओर परिवर्तन की पद्धति को स्पष्ट करता है। अराजकतावाद उन सिद्धान्तों की घोषणा करता है जो इस परिवर्तन के बाद समाज में लागू होंगे। जहाँ अराजकतावादियों का सम्बन्ध एक आदर्श समाज से अर्थात् एक आदर्श जीवन यापन के ढंग से है वहाँ साम्यवादियों का सम्बन्ध मुख्य रूप से इस समस्या से है कि इस आदर्श समाज की स्थापना किस प्रकार की जाय। अर्थात् जीवन का यह आदर्श ढंग किस प्रकार हर व्यक्ति के लिए सम्भव बनाया जाय। दूसरे शब्दों में, अराजकतावादी साध्यों पर और साम्यवादी साधनों पर विचार करते हैं।

2 साम्यवादी संक्रमणकाल की व्यवस्था करते हैं परन्तु अराजकतावादी किसी संक्रमणकाल की व्यवस्था नहीं करते

सोवियत रूस के क्रान्तिकारी समाजवादी (साम्यवादी) यह मानते हैं कि समाजवादी सर्वहारा वर्ग के अधिनायकतन्त्र के सम्पूर्ण मार्ग का त्याग नहीं कर सकते जबकि अराजकतावादी कहते हैं कि दमन तथा सेंसर व्यवस्था से स्वतन्त्र तथा ऐच्छिक सहयोग के सिद्धान्त पर आधारित समाज की स्थापना नहीं हो सकती। लेनिन ने कहा था कि "हमारा अराजकतावादियों से अन्तिम लक्ष्य के रूप में राज्य के विनाश के प्रश्न पर मतभेद नहीं है परन्तु मार्क्सवाद अराजकतावाद से इस बात में भिन्न है कि वह सामान्यतः क्रान्तिकाल में तथा विशेषतया पूँजीवाद से समाजवाद की ओर अग्रसर होने के संक्रमणकाल में राज्य तथा राज्य की शक्ति की आवश्यकता को स्वीकार करता है। दूसरी ओर अराजकतावाद में संक्रमणकाल नाम की कोई चीज नहीं। यदुनिन के शब्दों में, 'किसी प्रकार के राज्य समाजवाद या सर्वहारा के अधिनायकवाद के संक्र-

---

1 Joad C E M *Ibid* p 87 88

मणराल की न तो आवश्यकता होगी और न ही इसकी आज्ञा दी जायगी ।" "इस बिन्दु पर मावर्स घातक रूप से गलत था ।'

3 साम्यवादी राज्य का लोप चाहते हैं, अराजकतावादी उसका पतन (विनाश) चाहते हैं

साम्यवाद का मुख्य शत्रु पूँजीवाद है और राज्य उसका गौण शत्रु है परन्तु अराजकतावाद का मुख्य शत्रु राज्य है और पूँजीवाद उसका गौण शत्रु है । साम्यवाद राज्य का विरोधी इसलिए है कि वह पूँजीवाद का मित्र है । अराजकतावादी राज्य का पतन इसलिए चाहते हैं कि वह स्वतन्त्रता का विरोधी है । जहाँ साम्यवादी साम्यवादी व्यवस्था स्थापित होने तक राज्य को बनाये रखना चाहता है और जैसे जैसे साम्यवादी व्यवस्था परिपक्व होती जायगी राज्य का उसी मात्रा में लोप होता जायगा (अर्थात राज्य मुरझाता जायगा) वहां अराजकतावादी राज्य का पतन एकदम भयंकर तूफान (क्रान्ति) द्वारा करना चाहते है । जहाँ साम्यवादी निजी सम्पत्ति का पूर्णतया उन्मूलन चाहते है तथा सारी सम्पत्ति का सामाजीकरण चाहते हैं वहाँ अराजकतावादी सम्पत्ति का सामाजीकरण तो चाहते हैं परन्तु साथ ही कुछ अराजकतावादी श्रम के आधार पर सम्पत्ति के अधिकार को भी बनाये रखना चाहते हैं । यह विचारधारा विशेषकर दार्शनिक अराजकतावादियों की है ।

4 साम्यवादी केन्द्रीयकृत व्यवस्था के समर्थक हैं, अराजकतावादी विकेन्द्रीकृत व्यवस्था के समर्थक हैं

साम्यवादी आर्थिक विकास के लिए विशाल, केन्द्रीयकृत उत्पादन के पक्ष में है जब कि अराजकतावादी विकेन्द्रीकृत तथा छोटे पैमाने पर उत्पादन के पक्ष में हैं ।

5 साम्यवादियों के लिए व्यक्तिगत स्वतन्त्रता का महत्त्व नहीं, अराजकतावादियों के लिए व्यक्तिगत स्वतन्त्रता का महत्त्व है

साम्यवादियों का नारा है "सब कुछ समाज के लिए", अराजकतावादियों का नारा है "सब कुछ व्यक्ति के लिए" । अराजकतावादी व्यक्तिगत स्वतन्त्रता को ऊँचा स्थान देते हैं और इस बात पर निर्भर रहते है कि वह सदा और सर्वत्र प्रभावकारी हो सकेगी । उनका विश्वास है कि समाजवादी समाज को उस समय तक प्रगति की ओर कदम नही समझा जा सकता जब तक उसके आधार के रूप में बल प्रयोग के स्थान पर स्वतन्त्रता प्रतिष्ठित न हो जाय । वे समाज में मनुष्यों की अनिवार्य अन्योन्याश्रयता को स्वीकार करते है और मानव की शारीरिक, बौद्धिक तथा आध्यात्मिक आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए सगठित सामाजिक सहयोग को आवश्यक समझते हैं । बेकुनिन के शब्दों में, स्वतन्त्रता एकान्तता की नहीं, पारस्परिकता की वस्तु है पृथक्ता की नही सयोग की वस्तु है, वह तो प्रत्येक व्यक्ति के लिए उसके बन्धुओं की चेतना में उसकी मानवता (अर्थात उसके मानव अधिकारों) का प्रतिबिम्ब है ।"

दूसरी ओर, साम्यवाद के अन्तर्गत व्यक्तिगत स्वतन्त्रता का कोई मूल्य नहीं। उसकी धारणा है कि राजनीतिक शासन की मुख्य विशेषता शक्ति है और किसी भी अवस्था में राज्य के अन्दर व्यक्ति की स्वतन्त्रता का स्थान नहीं। ऐंजिल्स के शब्दों में, "जब स्वतन्त्रता की बात करना सम्भव है तो राज्य का अस्तित्व समाप्त हो जाता है।"[1]

6 साम्यवादी साधन साम्यवादी व्यवस्था के अनुकूल वातावरण उत्पन्न नहीं करते, अराजकतावादी साधन अराजक व्यवस्था के अनुकूल वातावरण उत्पन्न करते हैं

साम्यवादी व्यवस्था में केन्द्रीयकरण, सेन्सरवाद और आतंकवाद के अतिरिक्त और कुछ नहीं जबकि अराजक व्यवस्था में विकेन्द्रीकरण, सहयोग और स्वतन्त्रता का वातावरण है। यह समझ नहीं आता कि साम्यवादी आतंकवादी और केन्द्रीयकृत व्यवस्था से राज्य विहीन वर्ग विहीन समाज की स्थापना कैसे कर सकेंगे जबकि अराजकतावादी समाज की स्थापना विकेन्द्रीकृत और स्वतन्त्रता के वातावरण में सम्भव है।

7 साम्यवाद एक संगठित आन्दोलन है, अराजकतावाद एक संगठित आन्दोलन नहीं

साम्यवाद एक संगठित आन्दोलन है परन्तु अराजकतावाद एक असंगठित आन्दोलन है। साम्यवादी क्रान्ति को सफल बनाने के लिए एक दृढ़ संगठन कठोर नियन्त्रण और अनुशासन पर अत्यधिक बल देते हैं। लेनिन क्रान्ति को एक अत्यधिक सत्तावादी प्रक्रिया मानता है। दूसरी ओर अराजकतावादियों का विश्वास है कि जनता स्वयं विद्रोह कर देगी और वह सफल बन जायगा।

8 साम्यवाद के लिए नैतिकता के कोई शाश्वत नियम नहीं, अराजकतावाद के लिए नैतिकता के शाश्वत नियम हैं

साम्यवाद के लिए मानव स्वभाव न्याय और नैतिकता के कोई शाश्वत नियम नहीं। उनका विश्वास है कि ये नियम समय परिस्थिति और काल के अनुसार बदलते रहते हैं। परन्तु अराजकतावादियों के लिए ये नियम सार्वभौम और सनातन होते हैं। उनकी धारणा है कि सहयोग, सहानुभूति और न्याय मानव स्वभाव के नियम हैं और ये नियम ही सामाजिक विकास की कुंजी हैं। दूसरी ओर, साम्यवादियों के लिए वर्ग संघर्ष ही सामाजिक परिवर्तनों की कुंजी है।

9 साम्यवाद समाज का वैज्ञानिक विश्लेषण करता है अराजकतावाद समाज का वैज्ञानिक विश्लेषण नहीं करता

साम्यवादियों ने समाज का वैज्ञानिक विश्लेषण किया है तथा इतिहास को आर्थिक अवस्थाओं का परिणाम माना है। वे मार्क्स के द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद और

---

1 When it is possible to speak of freedom, the state as such ceases to exist.' —*Engels*

अतिरिक्त मूल्य के सिद्धान्त से सहमत है। दूसरी ओर अराजकतावादियों ने न तो समाज का वैज्ञानिक विश्लेषण किया है, न द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद और अतिरिक्त मूल्य में विश्वास ही प्रकट किया है। अराजकतावादियों के लिए द्वन्द्ववाद एक "सूक्ष्म शब्द जाल" है "तार्किक शीर्षासन है।" यद्यपि अराजकतावादी अपने आपको भौतिकवादी कहते हैं परन्तु उनका दर्शन अधिकांशतया आदर्शवादी है।

10 साम्यवाद सर्वहारा वर्ग के अधिनायकवाद के पक्ष में है, अराजकतावाद सहकारी पक्ष में है

साम्यवाद सर्वहारा वर्ग का सिद्धान्त है और वह सर्वहारा वर्ग के अधिनायकवाद की स्थापना चाहता है। वह इसका प्रयोग राज्य द्वारा निर्दयतापूर्वक करना चाहता है। दूसरी ओर अराजकतावाद समाज के किसी वर्ग का सिद्धान्त नहीं वह तो ऐच्छिक आधार पर स्थित सहकारी व्यवस्था की स्थापना चाहता है। अराजकतावाद अराजक समाज में पशु शक्ति का प्रयोग कम से कम मात्रा में करेगा। अराजकतावाद की धारणा है कि जब हिंसा को एक संस्था का रूप दे दिया जाता है तो वह किसी के लिए भी स्वतन्त्रता प्राप्ति का साधन नहीं रह जाती। स्पष्ट है कि अराजकतावाद मानववाद है और साम्यवाद भौतिकवाद।

11 अन्त में, अराजक समाज में अन्तर्विरोधों का अन्त हो जायगा परन्तु साम्यवादियों के लिए अन्तर्विरोध शाश्वत है। साम्यवादी वर्ग सम्बन्ध में परिवर्तन करना चाहते हैं। वे आज के श्रमिकों को कल के स्वामी बनाना चाहते हैं। दूसरी ओर, अराजकतावाद सब व्यक्तियों में स्वाभाविक प्रेम, सहयोग और सहानुभूति का संचार करना चाहता है।

अराजकतावाद का मूल्यांकन

अन्य विचारधाराओं की भाँति अराजकतावाद में भी गुण दोषों का सम्मिश्रण है जिन्हें निम्न प्रकार से व्यक्त किया जा सकता है —

गुण (Merits)

अराजकतावादियों ने राज्य, धर्म और पूँजीवाद की दुर्बलताओं पर प्रकाश डालकर मानव की अत्यधिक सेवा की है। अराजकतावादियों के इस तर्क में काफी सत्यांश है कि पूँजीवादी व्यवस्था में दुःख दारिद्रय, बेरोजगारी, अरुचिकर कार्य तथा भूख की मात्रा अत्यधिक होती है। उनके इस तर्क में भी कुछ सत्यांश की मात्रा विद्यमान है कि सरकार का स्वरूप भले ही कैसा हो उसमें व्यक्तियों की स्वतन्त्रता पूर्ण नहीं होती। उनके इस तर्क में भी सत्यांश है कि राज सत्ता का प्रयोग स्वार्थी लोगों द्वारा अपने हितों की पूर्ति के लिए किया जाता है। निजी सम्पत्ति के दोषों तथा धर्म में अन्ध विश्वास की मात्रा पर प्रकाश डालकर उन्होंने समाज की सेवा की है। उनके इस तर्क में भी सत्यांश है कि मानव जन्म से दुर्गुणी नहीं होता बल्कि सामाजिक परि

स्थितियां उसे दुर्बलताओं का शिकार बना देती है। उनके इस तर्क में भी सत्यांश है कि प्रतियोगिता तथा प्रतिस्पर्धा के स्थान पर सहयोग की भावना सदा विद्यमान होने से समाज को अधिक लाभ होगा तथा केन्द्रीयकृत व्यवस्था से विकेन्द्रीकृत व्यवस्था में जन साधारणकी स्वतन्त्रतायें अधिक सुरक्षित रहती हैं। अराजकतावादी मानवके समक्ष एक आदर्श समाज की रूप रेखा रखते हैं और मानव जीवन मे आदर्शों का अत्यधिक महत्त्व होता है। उच्च आदर्श ही मानव समाज को अत्यधिक नैतिक बनाते हैं। संक्षेप मे, अराजकतावादियो ने विकेन्द्रीकरण सहयोग, आत्मनिर्भरता और आदर्श भावनाओं को प्रस्तुत कर मानवीय समाज की अत्यधिक सेवा की है।

दोष (*Demerits*)

उपर्युक्त वर्णन से यह नहीं समझ लेना चाहिए कि अराजकतावादियों के सभी तर्कों मे सत्यांश की मात्रा अधिक है। वास्तविकता यह है कि उनके अधिकांश तर्क अतिशयोक्तिपूर्ण, मिथ्या, अवांछनीय और हानिकारक हैं। यदि उनके तर्कों मे सत्यांश की मात्रा अधिक होती तो यह विचारधारा प्रायः मृतक न बन गयी होती। इसमें जो गम्भीर दोष हैं उन्हें निम्न प्रकार से व्यक्त किया जा सकता है —

1 राज्य का उन्मूलन न तो वांछनीय है और न ही सम्भव

अराजकतावादी राज्य का पूर्ण उन्मूलन चाहते हैं। परन्तु यह न तो वांछनीय है और न ही सम्भव। मानव की जो सेवा राज्य कर सकता है वह कोई भी ऐच्छिक समुदाय नहीं कर सकता। सुरक्षा व्यवस्था, सामञ्जस्य समन्वय दण्ड, पोषण तथा विकास की जो व्यवस्थाएँ राज्य कर सकता है वह कोई एक ऐच्छिक समुदाय नहीं कर सकता। इन महत्त्वपूर्ण कार्यों को करने के लिए ऐच्छिक समुदायों के पास न तो साधन होते है और न ही क्षमता और योग्यता हो। राज्य न केवल बाह्य आक्रमण से सुरक्षा की व्यवस्था करता है बल्कि आन्तरिक व्यवस्था भी बनाये रखता है, आपसी झगड़ो का निपटारा करता है भिन्न भिन्न समुदायो मे सामञ्जस्य तथा समन्वय का कार्य करता है न्याय की व्यवस्था करता है। इतना ही नहीं, राज्य सभ्यता और संस्कृति का भी पोषक रहा है। कला विज्ञान, साहित्य, दर्शन, धर्म का प्रसार भी राज्य का छत्र छाया में हुआ है। आज के जटिल समाज मे राज्य विहीन समाज की कल्पना मिथ्या है।

2 क्रान्ति के लिए दृढ़ संगठन कठोर नियन्त्रण और अनुशासन की आवश्यकता है

अराजकतावादियो का विश्वास है कि स्वेच्छा पर आधारित समुदायो द्वारा क्रान्ति राज्य का पतन कर देगी। परन्तु यह सम्भावना कोरा भ्रम है, वास्तविक या व्यावहारिक नहीं। राज्य की महाशक्ति के आगे स्वेच्छा पर आधारित समुदाय ने घुटने टेके हैं। क्रान्ति स्वतः उत्पन्न नहीं होती बल्कि उसे सफल बनाने के लिए अत्यन्त दृढ़ संगठन, कठोर नियन्त्रण और अनुशासन की आवश्यकता होती है। लेनिन ठीक कहा है कि क्रान्ति एक अत्यधिक सत्तामूलक प्रक्रिया है।'

3 'अधिकार शक्ति' से छुटकारा पाना कठिन है

अराजकतावादी अधिकार शक्ति विरोधी (anti authoritarian) है। परन्तु अधिकार शक्ति से छुटकारा पाना कठिन है। अराजकतावादी भूल जाते हैं कि राज्य के स्थान पर जिन ऐच्छिक समुदायों को वे सहकारी आधार पर स्थापित करना चाहते हैं उन्हें भी कुछ अधिकार शक्ति का प्रयोग करना पड़ेगा अन्यथा वे अपने कार्यों को पूरा नहीं कर सकेंगे जिनके लिए उन्हें स्थापित किया जायगा। जहाँ प्रबन्ध होगा वहाँ बाधाएँ अवश्य होंगी। जहाँ कार्य होगा वहाँ नियन्त्रण अवश्य होगा। इस तरह ऐच्छिक समुदायों के माध्यम से अधिकार शक्ति पुनः स्थापित हो जायगी। जब अधिकार शक्ति से छुटकारा नहीं पाया जा सकता तो अच्छा है कि इस शक्ति को निष्पक्ष राज सत्ता के हाथों में रहने दिया जाय जो अपनी सत्ता द्वारा न केवल व्यक्तियों तथा अल्पमत वालों की वल्कि बहुमतवालों की स्वेच्छाचारी लूट को नियन्त्रित कर सकने की सामर्थ्य रखता है।

4 राज्य के अभाव में अराजकता फैलने की सम्भावना अधिक है

मानव समाज में बाध्यकारी शक्ति का होना अनिवार्य है अन्यथा समाज में अराजकता फैलने का भय विद्यमान रहता है। राज्य के अभाव में व्यक्तियों की अपराधपूर्ण वृत्तियों का दमन करना कठिन है। यदि राज्य के संरक्षण और कानून की सुरक्षा को समाप्त कर दिया जाय तो समाज में "जंगल का नियम" (The Law of the Jungle) सर्वत्र विद्यमान रहेगा। 'जिसकी लाठी उसी की भैंस" का नियम चरितार्थ होगा। शक्ति लोलुप व्यक्ति अपना प्रभुत्व स्थापित कर लेंगे। इस तरह अव्यवस्था ही अव्यवस्था सर्वत्र विद्यमान रहेगी और मानव सदा आतंक और भय की स्थिति में रहेगा। सर जॉन सीले ने ठीक लिखा है कि "मानव इतिहास में जो कुछ भी महान अथवा प्रशंसनीय है वह सब कुछ शासित समुदायों में पाया गया है। यह स्वतन्त्रता पर लगायी गयी बाध्यताओं का ही परिणाम है।'

5 कानून स्वतन्त्रता का नाशक नहीं, रक्षक है

अराजकतावादियों का कहना है कि कानून व्यक्ति की स्वतन्त्रता का हनन करते हैं। परन्तु यह सब प्रकार के कानूनों के लिए नहीं कहा जा सकता। अधिकांश कानूनों का उद्देश्य स्वतन्त्रता को वास्तविकता प्रदान करना होता है। कानून केवल उच्छृङ्खलता को मर्यादित करते हैं और सामाजिक जीवन के लिए ऐसी उच्छृङ्खल स्वतन्त्रता को मर्यादित करना उचित है। विधि की अधीनता दासता नहीं सर्वोच्च स्वतन्त्रता है जैसाकि सिसरो ने कहा है कि "हम स्वतन्त्र होने के लिए बन्धन में रहते हैं।" इस तरह कानून और स्वतन्त्रता में विरोध नहीं बल्कि वे एक दूसरे के पूरक हैं।

6 राज्य दमनकारी संस्था नहीं यह लोक कल्याणकारी संस्था है

यह कहना उचित नहीं कि समाज में विद्यमान दुर्गुणों के लिए राज्य उत्तर-

दायी है। वास्तव मे आज समाज मे जो बुराइया विद्यमान हैं उनके लिए समाज, परिवार, रीति रिवाज तथा जाति प्रथा उत्तरदायी है। इन सस्थाओ के द्वारा उत्पन्न बुराइयो को दूर करने के लिए राज्य सर्वदा प्रयत्नशील रहा है। आज का लोक कल्याणकारी राज्य निधनो का या समाज के निर्बल वर्गों का दमन नही करता बल्कि आर्थिक सहायता द्वारा, श्रमिक कानूनो द्वारा तथा स्वास्थ्य, चिकित्सा, शिक्षा आदि लोक सेवाओ द्वारा मानव के दुखो को दूर करने का प्रयास करता है। इन सार्वजनिक नीतियो से करोड़ो निर्धन लोगो को लाभ हो रहा है।

अराजकतावादियो का यह विचार भी उचित नही कि समाज का विकास अराजकतावाद की ओरहो रहा है। वास्तविकता यह है कि लोककल्याणकारी राज्य के उदय से राज्य का काय क्षेत्र अत्यधिक विस्तृत हो गया है।

7 अराजकतावादी समाज की सिद्धि असम्भव है

अराजकतावादी ऐसे समाज की कल्पना करते हैं जिसमे अनैतिकता नहीं होगी, शोषण समाप्त हो चुका होगा, दुख लेश मात्र न होगा तथा बाध्यता अतीत की घटना हो चुकी होगी। यह ऐसा राज्य विहीन, धर्म विहीन वर्ग विहीन समाज होगा जिसमे सभी सुख का अनुभव करेंगे और प्रेम, सौहार्द, सहयोग और सेवा भावना सर्वत्र विद्यमान होगी। परन्तु इस प्रकार के राम राज्य' की सिद्धि केवल आदर्शों और कल्पनाओ मे है व्यवहार या यथार्थ मे नही। ऐसा समाज पृथ्वी पर विद्यमान नही। समाज को अपनी दुर्बलताओ और विषमताओ से तभी छुटकारा मिल सकता है जब सभी व्यक्ति साधु सन्यासी और देवता बन जायें। चूंकि व्यक्ति पूर्ण नही इसलिए समाज कभी पूर्ण नही हो सकता।

8 अराजकतावादी मानव स्वभाव के एक पहलू पर बल देते हैं और दूसरे पहलू की उपेक्षा करते हैं

मानव स्वभाव के बारे मे अराजकतावादियो की धारणा एक पक्षीय है। वे मानव को स्वाभाविक रूप से अच्छा मानते है। सामाजिक उत्थान की प्रथम शर्त यह है कि व्यक्ति का सुधार किया जाय परन्तु अराजकतावादी इसे स्वीकार नही करते। अराजकतावादी भूल जाते है कि मानव मे दैवी और आसुरी (पाशविक) दोनो वृत्तियो का सम्मिश्रण है। यदि वह निःस्वार्थी है तो वह स्वार्थी भी है, यदि वह सार्वजनिक भावनाओ से प्रेरित होता है तो व्यक्तिगत भावनाएँ भी उस पर प्रभावी होती है यदि उसमे परोपकारिता के तत्त्व हैं तो उसमे लोभ, मोह इच्छा, वासना आदि तत्त्व भी विद्यमान है। अराजकतावादियो की यह धारणा कि मानव मे सदैव दैवी गुणो का सचार होगा उनकी मनोवैज्ञानिकता व दिवास्वप्न का सूचक है। जहाँ सहयोग यदि जीवन का अटिग नियम है तो सघर्ष भी उसी नियम का एक भाग है।

9 धर्म नतिक प्रेरणा का स्रोत है

अराजकतावादी धम को 'अंध विश्वास', पूजीवाद का समथक, तथा 'अन्याय का आधार' कह कर निदित करते हैं। परन्तु अराजकतावादी भूल जाते हैं कि धम का तिरस्कृत करना स्वय नैतिकता को तिरस्कृत करना है। धर्म स्वय मे बुराई नही। धम तो नैतिकता और आध्यात्मिकता का पोषक है अनैतिकता और भौतिकता का नही।

10 राज्य नतिक विकास के लिए बाह्य परिस्थितिया उत्पन्न कर सकता है

यह सत्य है कि नतिकता व्यक्ति का व्यक्तिगत क्षेत्र है और राज्य प्रत्यक्ष रूप से नैतिकता का विकास नही कर सकता। परन्तु यह भी सत्य है कि राज्य नैतिकता के विकास म आने वाली बाधाओं को अवश्य दूर कर सकता है। राज्य बाह्य परिस्थितिया को इस ढग से उत्पन्न कर सकता है कि व्यक्तिगत नतिकता का विकास हो। उदाहरणतया राज्य द्वारा शिक्षा का विस्तार मानव के नतिक विकास मे सहायक है।

11 अराजकतावादियो का समानता का सिद्धान्त कोरा आदश है

अराजकतावादियो का यह विश्वास भी कोरा आदर्श है कि अराजक समाज म "मानव अपनी क्षमतानुसार काय करेगा तथा आवश्यकतानुसार उसे प्राप्त करेगा।" जीवन का वास्तविक अनुभव यह सिद्ध करता है कि जब तक व्यक्तियो मे बुद्धि शारीरिक शक्ति और योग्यता आदि मे भिन्नतायें रहगी तब तक मानव समाज मे असमानतायें रहगी। अधिक से अधिक राज्य अपने कानूनो द्वारा इन विषमताओं को कम कर सकता है परन्तु उनका उन्मूलन नही कर सकता।

12 निजी सम्पत्ति का पूण उन्मूलन हानिकारक है

अराजकतावादी निजी सम्पत्ति का पूण उन्मूलन चाहत है परन्तु इसका समूल उन्मूलन हानिकारक है। इसका कारण यह है कि निजी सम्पत्ति न केवल व्यक्ति के लिय काय की प्रेरणा है बल्कि समाज के विकास की द्योतक भी है। इसके अतिरिक्त निजी सम्पत्ति मानव की स्वाभाविक वत्ति है। प्रतियोगिता मे चाहे कितनी ही बुराइयां क्या न हो वह समाज की गति की सूचक तो है ही।

13 अराजकतावादी क्रान्तिकारी हैं

श्रम सघवादियो नाशवादियो (Nihilists) साम्यवादियो की भांति अराजकतावादी भी घृणा और दुराग्रह (Fanaticism) का प्रचार करत ह। इतना ही नहीं, वे अपने उद्देश्या की पूर्ति के लिए पशु शक्ति (हिंसा क्रान्ति) पर निभर करते हैं। यह समझ मे नही आता कि विनाश, हत्या और हिंसा का प्रयोग कर अराजकतावादी किस तरह ऐसे अराजक समाज की स्थापना कर सकते हैं जो प्रेम, सौहार्द, सहयोग पर आधारित होगा। शान्ति का पाठ पढा कर शान्ति की आशा करना भ्रामक है। यह

ठीक कहा गया है कि अराजकतावादी समाज की विषमताओं (बुराइयों) का "ऐसा उपचार बताते हैं जो रोग से भी बुरा है।"[1]

EXERCISES

1 अराजकतावादी दर्शन की आलोचनात्मक व्याख्या कीजिए।

2 अराजकतावाद के आदर्श क्या हैं ? क्या आप अराजकतावाद को अति व्यक्तिवाद का रूप कहेंगे या समाजवाद का रूप कहेंगे ? कारण लिखिए।

3 "अराजकतावाद दर्शन का स्कूल नहीं, यह तो अतिशयोक्तिपूर्ण और कोरा विरोध है" व्याख्या कीजिए।

4 दार्शनिक अराजकतावाद के आधारभूत सिद्धान्तों पर टिप्पणी लिखिए। क्रान्तिकारी अराजकतावाद से उसकी क्या भिन्नतायें हैं ?

5 अराजकतावादियों के राज्य सम्बन्धी दृष्टिकोण की व्याख्या कीजिए। वे अपने समाज का संगठन किस प्रकार करना चाहते हैं ?

6 "राज्य का न कोई प्राकृतिक औचित्य है और न कोई ऐतिहासिक औचित्य ही है। राज्य मानव की स्वभावतः सहकारी प्रवृत्तियों के विरुद्ध है।' इस कथन की दृष्टि में क्रोपाटकिन के राज्य सम्बन्धी विचारों और अराजक समाज की व्याख्या कीजिए।

7 'अधिकार शक्ति के प्रति अराजकतावादियों का क्या दृष्टिकोण है ?'

8 अराजकतावादी किन आधारों पर राज्य से मुक्ति चाहते हैं ? उनके तर्कों का मूल्यांकन कीजिए।

9 "राज्य एक विशुद्ध बुराई है और जितना शीघ्र हम इससे छुटकारा पा लें उतना ही मनुष्य के नैतिक विकास के लिए हितकर होगा।' इस कथन के प्रकाश में अराजकतावाद की व्याख्या कीजिये।

10 'राज्य एक आवश्यक बुराई है" राज्य एक अनावश्यक बुराई है।' इन कथनों की दृष्टि में व्यक्तिवाद और अराजकतावाद के दृष्टिकोणों को स्पष्ट कीजिये।

11 अराजकतावाद के पक्ष और विपक्ष में तर्क प्रस्तुत कीजिये।

12 'अराजकता व्यवस्था का अभाव नहीं, यह शक्ति का अभाव है।' (डिकिन्सन) इस कथन की परीक्षा कीजिये।

13 बकुनिन द्वारा प्रतिपादित अराजकतावादी सिद्धान्त की आलोचनात्मक व्याख्या कीजिये।

14 क्रोपोटकिन इस बात पर आग्रह करता है कि अराजकतावाद जीवन और आचरण का ऐसा नियम या सिद्धान्त है जिसमें समाज की कल्पना बिना

---

1 Anarchists suggest a remedy, which is worse than the disease

सरकार के की गई है।" क्या इस प्रकार का समाज व्यावहारिक है ? व्याख्या कीजिये।

15 "अराजकतावाद और साम्यवाद एक दूसरे के पूरक हैं।' क्या आप इस कथन से सहमत हैं ? कारण लिखिये।

16 "अराजकतावादियों और साम्यवादियो का लक्ष्य एक ही है—वर्ग विहीन राज्य विहीन समाज की स्थापना परन्तु उनके मार्ग बिल्कुल अलग हैं।" (कोकर) व्याख्या कीजिये।

17 "अराजकतावाद और साम्यवाद एक ही पूर्ण वस्तु के दो भाग हैं।" (जोड) क्या आप इस कथन से सहमत हैं ? कारण लिखिये। दोनो में समानताओं और भिन्नताओं का उल्लेख भी कीजिये।

18 उद्देश्य और कार्य पद्धति की दृष्टि से अराजकतावाद और साम्यवाद की तुलनात्मक व्याख्या कीजिये।

19 यह बतायें कि अराजकतावाद और समष्टिवाद किस तरह एक दूसरे के विपरीत है ?

20 'अराजकता समाज की वह स्थिति है जिसमें प्रत्येक व्यक्ति स्वयं अपना शासक होगा।" (हक्सले) व्याख्या कीजिये।

21 'साम्यवाद साधना का और अराजकतावाद आदर्शों का वर्णन करता है।" व्याख्या कीजिये।

11 फासिज्म
(Fascism)

परिचय
(Introduction)

फासिज्म शब्द की उत्पत्ति रोमन शब्द फासस या फासियो (Fasces or Fascio) से हुई है जिसका अर्थ है लकड़ी का गट्ठा। इसे कुल्हाड़ी और लकड़िया के गट्ठे की भी संज्ञा दी जा सकती है। रोमन साम्राज्य में यह शब्द अनुशासन एकता और सत्ता का प्रतीक था। इस तरह फासिज्म वह प्रणाली है, यदि इसे एक प्रणाली की संज्ञा दी जा सकती है, जिसमे राज्य या राष्ट्र की सत्ता उसकी सम्प्रभुता, उसकी नैतिकता तथा धर्म उसकी ही स्वतन्त्र इच्छा आदि पर बल दिया जाता है। यह वह सर्वसत्तावादी प्रणाली है जिसमे व्यक्ति के अधिकारों तथा उसकी नैतिकता का कोई मूल्य नहीं। मुसोलिनी के शब्दों में, फासिज्म राष्ट्रीय आधार पर संगठित, केन्द्रित तथा सर्वसत्तावादी प्रजातन्त्र है।[1]

फासिज्म बीसवी शताब्दी की उन दो समग्रवादी विचारधाराओं में से एक है (दूसरी विचारधारा है साम्यवाद) जिसका विकास पश्चिम में प्रथम् महायुद्ध के बाद हुआ। ये दोनो विचारधारायें उन्नीसवी शताब्दी के मध्यमवर्गीय पूंजीवाद की सभ्यता, प्रजातन्त्र की निर्बलता अकुशलता तथा असफलता के विरुद्ध प्रतिरोध थी। ये दोनो विचारधारायें अनुशासन नियन्त्रण और नियमन द्वारा अपने-अपने क्षेत्र मे अपनी शक्ति को हिंसा या पशुबल द्वारा बनाये रखने में विश्वास करती हैं। फासिज्म तो विशेषकर व्यक्तिवाद पूंजीवाद समाजवाद अन्तराष्ट्रीयवाद और साम्यवाद का विरोध करता है। वह कट्टर राष्ट्रवादी, जातिवादी, सेनावादी और साम्राज्यवादी है।

---

1 Fascism is ' Organized concentrated authoritarian democracy on a national basis —Mussolini *Opera Omni di Benito Mussolini* (Florence 1951)

फासिज्म की नींव अनिश्चितता और निराशा के वातावरण में रखी जाती है। जब विवेक का स्थान अविवेक ले लेता है, जब व्यक्तियों का विश्वास निरपेक्ष, सर्वव्यापी और सतत सत्य में उठ जाता है, जब सब मूल्य व्यक्तिनिष्ठ या सापेक्ष नजर आते है, जब स्वयं व्यक्ति को विवेकहीन प्राणी समझा जाने लगता है तो फासिस्ट विचारधारा का विकास होने लगता है। यूरोप में, विशेषकर इटली और जर्मनी में, जब फासिज्म का विकास हुआ, तो ये सब तत्त्व वहां विद्यमान थे। राष्ट्रों के बुद्धिजीवियों—डाक्टरों, अध्यापकों, वकीलों, इंजीनियरों आदि—का विश्वास हो गया था कि संगठित तथा सर्वसत्ताधारी व्यवस्था ही उन्हें सुरक्षित जीवन, सुव्यवस्थित समाज का ढांचा प्रदान कर सकती है।

मन्दी का वातावरण (economic depression) भी फासिस्ट तत्त्वों को प्रोत्साहित करता है। इस वातावरण में प्रत्येक वर्ग अपनी कठिनाइयों के लिए दूसरे वर्ग को उत्तरदायी मानता है। इस वातावरण में सबसे गम्भीर प्रभाव बेरोजगारी की समस्या से उत्पन्न होता है जिसमें व्यक्ति अपने आपको अनुपयोगी और व्यर्थ समझने लगता है। फासिज्म ऐसे लोगों को वर्दी पहना कर उनके सम्मान को बढ़ाने और उन्हें सामाजिक स्तर प्रदान करने का प्रयत्न करता है और फिर उन पर पूर्ण सैनिक नियन्त्रण स्थापित करता है।

इटली में फासिस्टवाद का विस्तार

इटली की स्थिति प्रथम युद्ध के ठीक बाद बड़ी शोचनीय व नाजुक थी। इटली में आर्थिक अशान्ति, अभाव, दरिद्रता, निराशा और मन्दी का बोलबाला था। संसद की दुर्बलता तथा युद्ध के कारण उत्पन्न कठिनाइयों ने लोगों का विश्वास प्रजातान्त्रिक संस्थाओं में समाप्त कर दिया था और सर्वसत्तावादी, समग्रवादी भावनाओं को समर्थन मिलने लगा था। डा० विलियम राज ने ठीक ही कहा है कि 'फासिज्म का उदय इटली में "युद्धोत्तर काल के गुटों के झगड़ों से उत्पन्न अव्यवस्था से हुआ।"

फासिस्ट दल का पूर्वरूप फसियो डी कम्बटीमेंटो (Fascio de Combattimento) था जिसका उदय मार्च 23, 1919, को मिलान (Milan) नामक स्थान पर मुसोलिनी द्वारा आमन्त्रित एक छोटी सी सभा में हुआ। यह ऐसा राष्ट्रवादी समुदाय था जो हिंसा और साहसिक कार्यों में विश्वास करता था। अपने प्रारम्भिक काल में यह समुदाय पूंजीवाद और राजतन्त्र विरोधी था परन्तु सन 1921 में इस समुदाय ने सम्पत्तिवान वर्गों—जमींदारों और उद्योगपतियों—का साथ दिया और सम्पत्तिवान वर्गों ने इस समुदाय का साथ दिया। सन् 1921 के नवम्बर माह में राष्ट्रीय फासिस्ट दल का निर्माण किया गया। 28 अक्टूबर 1922 का प्रसिद्ध रोम अभियान (March on Rome) आरम्भ हुआ। इटली के राजा ने अभियान (मार्च) को खदेड़ने के स्थान पर मुसोलिनी का स्वागत करना चाहा। अक्टूबर 29 को इटली के राजा ने मुसोलिनी को सरकार बनाने के लिए आमन्त्रित किया जिसे उसने सहर्ष

स्वीकार कर लिया। 30 अक्टूबर, 1922 को मुसोलिनी ने अपना प्रथम मन्त्रिमण्डल बनाया और 24 जुलाई 1943 तक वह इटली पर एक छत्र शासक बना रहा। इस तरह फासिस्ट दल का निर्माण करके मुसोलिनी ने सदा उस पर अपना आधिपत्य रखा। वास्तव में फासिज्म की नींव रूसो, हीगल, नित्शे और चेम्बरलेन के विचारों ने ही रख दी थी। इन लेखकों की विचारधाराओं ने ही मुसोलिनी तथा हिटलर जैसे नेताओं को जन्म दिया, एक जाति, एक राज्य, एक दल, एक नेता के मन्त्र का मार्ग प्रदर्शित किया। रूसो ने जो बुद्धि के प्रति अविश्वास प्रकट किया था वह फासिज्म के बुद्धि विरोधी तत्त्व का आधार बना, सामाजिक डार्विनवाद, गोबीनो और चेम्बरलेन ने जो 'नस्ल' के सिद्धान्तों का प्रतिष्ठित किया वे फासिज्म के लिए काल्पनिक गाथा (myth) बन गये—इटली में इसका रूप राष्ट्र और जर्मनी में 'नार्डिक जाति' के रूप में निखरा। हीगल का रहस्यवाद और निरपेक्षतावाद तो फासिज्म का हृदय था। हीगल ने राज्य को सर्वशक्तिमान अभ्रान्त और नैतिक गुणों का स्रष्टा माना था, मुसोलिनी के लिए ये गुण—मानव मात्र के लिए—सर्वोत्तम आदर्श बन गये। चेम्बरलेन के नेतृत्व के सिद्धान्त ने 'फासिस्ट नेता' की कल्पना का समर्थन किया। स्वयं इटली के लेखकों ने विशेषकर एनरीको कोरादीनी (Enrico Corradini) और गेबरील डी० अननजियो (Gabrielle D Annunzio) ने उग्र राष्ट्रवाद और साम्राज्य विस्तार का प्रचार किया। इन राष्ट्रवादी समुदायों ने जो इटली में विद्यमान थे, व्यक्ति के स्थान पर राष्ट्र की प्रतिष्ठा और उसके गौरव की गाथाओं पर बल दिया। फासिज्म इन सब विचारधाराओं का प्रतिफल था।

फासिस्ट दर्शन
(Fascist Philosophy)

फासिस्टवादी किन्हीं राजनीतिक सिद्धान्तों और राजनीतिक दर्शन में विश्वास नहीं करते। उनके लिए "औपचारिक सिद्धान्त लोह और टीन की बेड़ियाँ हैं।'[1] मुसोलिनी के शब्दों में, 'हमारा कार्यक्रम सरल है। हम इटली पर शासन करना चाहते हैं। वे (विपक्ष वाले) हमसे कार्यक्रम पूछते हैं किन्तु पहले से ही बहुत से कार्यक्रम हैं। वास्तव में इटली की मुक्ति के लिए कार्यक्रमों की कमी नहीं। आवश्यकता है मनुष्यों की तथा इच्छा शक्ति की"। फासिज्म को प्रयोगात्मक और अनुभव मूलक कहा गया है। मुसोलिनी के शब्दों में 'मेरा कार्यक्रम कार्य है बातें नहीं।'[2] किसी मत की कोई आवश्यकता नहीं अनुशासन ही पर्याप्त है।[3]

1 'Formal principles are iron and tin fetters' —*Mussolini, Benito*

2 My programme is action, not talk' —*Mussolini Benito*

3 There is no need of dogma discipline suffices' — *Mussolini, Benito*

फासिज्म आवश्यकता की देन है, ठोस सिद्धान्तों की नहीं। यही कारण है कि फासिस्ट आन्दोलन पहले आरम्भ हुआ, फासिस्ट दर्शन बाद में बना। फासिस्ट दर्शन का निर्माण तो फासिस्ट आन्दोलन के औचित्य को सिद्ध करने के लिए किया गया था। जैसे जैसे फासिस्ट आन्दोलन में प्रगति होती गई वैसे वैसे उसके विचारों तथा प्रोग्रामों में परिवर्तन होता गया। मुसोलिनी जो पहले पूंजी विरोधी था बाद में उसने पूंजीपतियों से समझौता कर उनसे समर्थन प्राप्त किया, जो फासिस्ट विचारधारा पहले धर्म विरोधी थी उसने बाद में चर्च के साथ समझौता किया, जो फासिस्टवादी अपने प्रारम्भिक काल में गणतन्त्रवादी तथा प्रजातन्त्रवादी थे व बाद में प्रजातन्त्र विरोधी हो गये, इसी तरह जो फासिस्टवादी नौकरशाही को अकर्मण्य व अकुशल बताते थे वे ही नौकरशाही के अत्यन्त प्रशंसक बन गये। उनके लिए बाद में शिष्ट वर्ग ही "वीर", "योग्य" और "शक्तिशाली" व्यक्तियों की जमात बन गया। इसी प्रकार फासिज्म ने मोरन के व्यवसायिक गण्डलों (Syndicates) को स्वीकार तो किया परन्तु न तो श्रम संघवाद की भांति उन्हें श्रमिकों के अधिकार में रखा और न ही श्रेणी समाजवादियों की भांति उन्हें स्वतन्त्रता ही दी गई। इस तरह फासिज्म तो समय, परिस्थिति और आवश्यकता के अनुकूल कार्य करता है किन्हीं सिद्धान्तों के आधार पर नहीं।

फासिस्टवादी जिन विचारों का प्रचार करते हैं उन्हें जान बूझकर तथा सोच समझकर विशेष समय और अवसर के लिए बनाया जाता है। यही कारण है कि फासिज्म में अनेक विचारधाराओं का मिश्रण मिलता है। इसमें हमें मकियावली, हाब्स, फिक्टे, हीगल, ट्रीश्के नित्श्चे मार्क्स, सोरेल मामका स्कोपनहाअर, बर्गसन, जेम्स और परेटो के विचारों की झलक मिलती है। फासिस्टवादी अपने आपको इस बात की छूट देते हैं कि समय स्थान और वातावरण के अनुसार वे अपने आपको कुलीनतन्त्रवादी, प्रजातन्त्रवादी अनुदारवादी, प्रगतिवादी प्रतिक्रियावादी, क्रान्तिकारी, यथास्थितिवादी तथा अयथास्थितिवादी बना सकते हैं।

फासिज्म राष्ट्र को क्रान्ति की स्थिति में रखना चाहता है। हर्मन रौशिनग (Hermann Raushning) ने ठीक ही फासिज्म को स्थायी क्रान्ति" (Permanent revolution) की संज्ञा दी है। इसमें कोई ऐसी आकांक्षायें नहीं जिन्हें सन्तुष्ट किया जा सके, कोई प्रोग्राम नहीं जिनकी पूर्ति हो सके। इसके पास कोई दूसरा विकल्प नहीं सिवाय इसके कि वह राष्ट्र को सर्वदा संकट की स्थिति में रखे और जब कोई संकट नहीं हो तो कोई काल्पनिक संकट उत्पन्न कर दिया जाय। मुसोलिनी इटली राष्ट्र के नाम पर और हिटलर नार्डिक जाति के नाम पर अपने नागों से सब कुछ न्योछावर करने के लिए कहते हैं।

मुसोलिनी ने अपने लेख 'फासिज्म के राजनीतिक और सामाजिक सिद्धान्त" (The Political and Social Doctrine of Fascism) में हमें यह बताया है

कि फासिज्म क्या नहीं— 'यह उदारवाद नहीं यह समाजवाद या प्रजातन्त्र नहीं इसकी राजतन्त्र और गणतन्त्र से कोई समानता नहीं, इसे पश्चिमी स्वतन्त्रता और समानता की विचारधाराओं में विश्वास नहीं, इसकी तुलना परम्परागत प्रतिक्रियावादी राजनीतिक आन्दोलनों से भी नहीं की जा सकती। जब फासिज्म यह सब कुछ नहीं तो फिर यह क्या है ? इस प्रश्न का उत्तर भी मुसोलिनी स्वयं इन शब्दों में देता है "यह शक्ति को प्राप्त करने की सह इच्छा है[1] "यह राज्य की व्यक्ति पर निरपेक्ष शक्ति है, इसमे व्यक्ति राज्य के लिए है राज्य व्यक्ति के लिए नहीं" "राज्य स्वयं में आध्यात्मिक और नैतिक सस्था है। दूसरे शब्दों में, फासिस्टवादी इटली राज्य पर शासन करना चाहते हैं और इसे हिंसा और शक्ति द्वारा स्थायी बनाना चाहते हैं। यह एक ऐसी लड़ाकू विचारधारा है जो सैनिक अनुशासन और कार्य में विश्वास करती है और जिसके लिए नैतिक आचरण के नियमों का कोई महत्त्व नहीं।

फासिस्टवादी पक्के राष्ट्रवादी हैं। वे शुद्ध राज्य तथा राष्ट्र में विश्वास करते हैं। उन्हें शान्ति ससद या अन्तर्राष्ट्रीयवाद में कोई दिलचस्पी नहीं। उन्हें मार्क्स के भौतिकवाद और सघर्ष (हिंसा को छोड़कर) से कोई लगाव नहीं। उनके लिए तो 'राष्ट्र के अन्दर ही सब कुछ है और राष्ट्र के अन्दर ही सब कुछ सम्भव है राष्ट्र के विरुद्ध या राष्ट्र के बाहर कुछ भी नहीं।'[2] वे केवल राष्ट्रीय आध्यात्मिक या राष्ट्रीय नैतिक मूल्यों को स्वीकार करते हैं। राष्ट्र व्यक्ति समाज या समुदाय या उन सबके जोड़ से बड़ा है श्रेष्ठ है।

फासिज्म शक्ति को प्राप्त करने के लिए भावनापरक प्रेरणा[3] के अतिरिक्त और कुछ नहीं। *यह बीसवीं शताब्दी का विवेक के विरुद्ध विद्रोह है।* जेम्स ड्रेनन के शब्दों में, *फासिज्म वास्तविक विद्रोह है यह भावनाओं का (अनुभूतियों का) विद्रोह है, यह आधुनिक परिस्थितियों के विरुद्ध व्यक्तियों की बगावत है जिन सामान्य या गली मुहल्ले के व्यक्तियों ने इटली और जर्मनी में फासिज्म का निर्माण किया उन्होंने सिद्धान्तों को बुद्धिजीवियों के लिए और प्रोग्राम प्रजातन्त्रवादियों के लिए छोड़ दिए। फासिस्टवादी तो वास्तव में सहज क्रिया में काम करता है सैद्धान्तिक रूप से नहीं।'*[4]

फासिज्म के सिद्धान्त
(Fascist Doctrines)

यद्यपि फासिज्म का कोई घोषणा पत्र नहीं जिसमें उसके सिद्धान्तों को ढूँढा

---

1 Fascism is 'an embodied will to power' Mussolini Benito
2 Everything inside the state nothing outside the state nothing against the state
3 Fascism is nothing but an irrationally motivated will to power
4 Drennan James B U F *Oswald Mosley and British Fascism* London (1934) pp 212 213

जा सके या जिन्हें प्रमाणित रूप से प्रस्तुत किया जा सके फिर भी कुछ ऐसे पत्र या लेख विद्यमान हैं जिनसे फासिस्ट दर्शन के मुख्य तत्वों या सिद्धान्तों को जोड़ा जा सकता है। मुसोलिनी ने फासिज्म के आदर्शों और उसकी मान्यताओं को अपने अनेक भाषणों, वक्तव्यों और भेंटों (Interviews) में व्यक्त किया है। उसके द्वारा रचित लेख "फासिज्म के राजनीतिक और सामाजिक सिद्धान्त" उसके आदर्शों और उसकी मान्यताओं का प्रमाण है। दूसरे फासिस्टवादियों ने फासिज्म की अनेक व्यवस्थित व्याख्यायें की हैं, जैसे एल्फ्रेडो राक्को (Alfredo Rocco) का "फासिज्म का राजनीतिक सिद्धान्त' (The Political Doctrine of Fascism), गियोवानी जेन्टाइल (Givoanni Gentile) के 'विदेशी विषयों पर लिखे गये पत्र तथा फासिज्म के दार्शनिक आधार' (the 'Foreign Affairs' papers and the Philosophical Basis of Fascism) फासिज्म के सिद्धान्तों पर प्रकाश डालते हैं। इनके अतिरिक्त अन्य अनेक लेखकों ने भी फासिस्ट विचारधारा को निरूपित किया है जैसे ल्यूगी फेडरजोनी (Luigi Federzoni), मौरिजियो मारविगलिया (Maurizio Maraviglia), वोल्पी, गेडा तथा पाल्मीरो।

फासिज्म के सिद्धान्तों का मुख्य रूप से निम्न प्रकार से व्यक्त किया जा सकता है —

(1) फासिज्म की काल्पनिक गाथा (Myth) राज्य या राष्ट्र है।
(2) फासिज्म लोकतन्त्र विरोधी है। इसके अन्तर्गत फासिज्म के निम्न तत्व मुख्य है —
  (i) स्वतन्त्रता अधिकार नहीं कर्त्तव्य है।
  (ii) समता निर्बल धारणा है, असमानता प्राकृतिक नियम है।
  (iii) सच्चा लोकतन्त्र गुणात्मक (qualitative) होता है मात्रात्मक (quantitative) नहीं।
(3) फासिज्म शिष्ट वर्ग के शासन में विश्वास करता है।
(4) फासिज्म हिंसा और युद्ध का पुजारी है, उसके लिए शान्ति कायरों का स्वप्न है।
(5) फासिज्म जातिवाद और साम्राज्यवाद में विश्वास करता है।
(6) फासिज्म अन्तर्राष्ट्रीय कानून और व्यवस्था का विरोधी है।
(7) फासिज्म विवेक विरोधी अर्थात अबुद्धिवाद है।
(8) फासिज्म सर्वसत्तावाद है।
(9) फासिज्म धर्म में विश्वास करता है अर्थात धर्म के साथ समझौता करता है।
(10) फासिज्म निगमात्मक राज्य में विश्वास करता है अर्थात् फासिज्म के आर्थिक विचार हैं।

1 फासिज्म की काल्पनिक गाथा (Fascist Myth)

फासिज्म की काल्पनिक गाथा या मिथ (myth) राज्य या राष्ट्र है। यही उसकी अंतिम नैतिक वास्तविकता है। यही फासिस्ट समाज का गौरव एवं प्रतिष्ठा है। मुसोलिनी के शब्दो मे, "हमने अपनी काल्पनिक गाथा या मिथ का निर्माण किया है। यह मिथ निष्ठा (विश्वास) है, यह भावावेग है, यह आवश्यक नही कि यह वास्तविक रूप से विद्यमान होगी। यह इस तथ्य से वास्तविक रूप से विद्यमान है कि यह एक प्रेरक है, यह निष्ठा है, यह साहस है। हमारी काल्पनिक गाथा राष्ट्र है, हमारी काल्पनिक गाथा राष्ट्र की प्रतिष्ठा (महानता) है। इस काल्पनिक गाथा को, इस श्रेष्ठता को, हम पूर्ण वास्तविकता मे बदल देना चाहते हैं। बाकी सबको हम इसके अधीन रखते हैं।"[1]

फासिज्म की काल्पनिक गाथा या मिथ अर्थात् राज्य या राष्ट्र व्यक्तियों का केवल जोड मात्र ही नही बल्कि यह स्वय मे एक जीवधारी रचना है, इसका पृथक व्यक्तित्व है जो अपने घटको के व्यक्तित्व से सर्वश्रेष्ठ है, इसकी अपनी इच्छा है जिसमे इसके घटको की इच्छा का समावेश है तथा यह इच्छा, जो स्वतन्त्र इच्छा है, अपने घटको की इच्छा से सर्वोच्च है, इसके अपने सार्वजनिक कल्याण के उद्देश्य हैं जो व्यक्तिगत स्वार्थी उद्देश्यो से पृथक एव सर्वोच्च हैं, इसका निर्माण किसी एक पीढी से नही होता बल्कि पीढी दर पीढी इसका विकास होता रहता है। सर फ्रैंक फॉक्स के शब्दो मे, "राज्य एक पीढी के व्यक्तियो के जोड से अधिक है, वास्तव मे इसका स्वय का अपना अस्तित्व है, इसकी स्थिति श्रेष्ठता की है जिसे यह भूत, वर्तमान और भविष्य से प्राप्त करता है।'[2] "राष्ट्र अपनी एकता मे न केवल अपने जीवित सदस्यो का ही सक्षिप्त वर्णन करता है बल्कि अगणित पीढियो का भी वर्णन करता है।" मुसोलिनी के शब्दो मे, "राज्य व्यक्ति के ऐतिहासिक अस्तित्व की सर्वव्यापी आत्मा और इच्छा है।'[3]

फासिस्ट राज्य अपने नागरिको से, जिनसे इसका निर्माण होता है पूर्ण भक्ति की माँग करता है क्योकि राष्ट्र ही जाति के भौतिक तथा आध्यात्मिक मूल्यो का प्रतिनिधित्व करता है। व्यक्ति और समुदायो का महत्त्व राष्ट्र के प्रसग मे ही है। उससे पृथक उनका कोई महत्त्व नही। मुसोलिनी के शब्दों मे, 'इतिहास के बाहर

---

1 Mussolini Benito Quoted in Hallowell, John H *Main Currents in Modern Political Thought*, p 605

2 Fox, Sir Frank *Italy Today* p 97

3 The state is the Universal Conscience and will of man in his historical existance —Mussolini Benito Quoted in Maxey's, *Political Philosophies* p 631

मनुष्य का कोई महत्त्व नही।" फासिज्म की यह कहावत भी चरितार्थ है कि प्रत्येक चीज राज्य के अन्दर, कोई चीज राज्य के बाहर नही और कुछ भी राज्य के विरुद्ध नही।" मुसोलिनी, मैकियावली की भाँति, किन्ही नैतिक मूल्यो को सयुक्त एव साम्राज्यीय (united and imperial) इटली से सर्वोच्च नही मानता।

फासिज्म व्यक्तिवाद, उदारतावाद और प्रजातन्त्र के इस सिद्धान्त को स्वीकार नही करता कि राज्य व्यक्ति के कल्याण के लिए है। अपितु उसके लिए राज्य ही एक ऐसी आध्यात्मिक एकता है जिसके कारण और जिसके लिए उसके सदस्यो का जीवन है। कोकर ने बहुत सुन्दर शब्दो मे लिखा है कि फासिज्म का उदय "समाजवादियो के देशद्रोह उदारवादियो के व्यक्तिवाद और परम्परागत राजनतिक नेताओ के अत्यन्त उदासीन राष्ट्रवाद के विरुद्ध एक आन्दोलन के रूप में हुआ।"[1]

फासिज्म निरपेक्ष, सर्वव्यापी, सतत सत्य की सभी विचारधाराओ को अस्वीकार करता है। उसके लिए सभी मूल्य, सभी झूठ सच के निणय सापेक्ष हैं। यही कारण है कि फासिस्टवादी निरपेक्ष सत्य के स्थान पर अपने मूल्यो को निर्धारित करते है ताकि वे अपने राष्ट्रीय उद्देश्यो को प्राप्त कर सकें। उसके लिए सत्य वह है जो अधिनायक कहता है, उचित वही है जो अधिनायक सोचता है। डब्लू० स्टेपल (W Stapel) के शब्दो मे, "राज्य के हस्तक्षेप से कुछ भी सुरक्षित नही अधिकार समझौते का परिणाम नही, इसका निर्धारण तो अधिनायक द्वारा होता है, यह समझौते पर आधारित नहीं, आदेश पर आधारित है।'[2]

फासिस्ट राज्य मे व्यक्तियो का कर्तव्य राज्य के प्रति है परन्तु राज्य का कर्तव्य व्यक्तियो के प्रति कुछ भी नही। व्यक्ति को ही अपने हितो की राष्ट्रीय हितो पर बलि चढ़ानी पड़ती है। व्यक्ति अपने व्यक्तित्व का विकास राज्य के विरोध मे नही बल्कि उसके प्रति अपने उचित कर्तव्य पालन द्वारा करता है। जेन्टाइल ने बहुत सुन्दर शब्दो मे लिखा है कि "सच्चा फासिस्टवादी अपने घर मे, विद्यालय में, कारखाने मे, तथा राजनीति मे, हर कहीं फासिस्टवादी होता है।"

फासिस्ट राज्य मे व्यक्तियो को केवल उन्ही कार्यों को करने तथा विचारो व भावनाओ को व्यक्त करने की आज्ञा दी जाती है जो राज्य के लिए लाभकारी हैं, उन विचारो व कार्यों पर राज्य नियन्त्रण लगा सकता है जो राष्ट्रीय हित मे नही। फासिज्म के अन्तर्गत 'राज्य राष्ट्र की वध प्रतिमूर्ति है।'[3]

फासिज्म मे राज्य ही नागरिको को सद्गुणो की शिक्षा देता है, वह ही उन्हें

---

1 Coker, Francis W *Recent Political Thought*, p 475
2 Stapel W Quoted in Aurel Kolanis *The War Against the West*
3 Roy P N *Mussolini and the Cult of Italian Youth*, p 17

उद्देश्यों की जानकारी देता है, वह ही उन्हें एकता के सूत्र में बाँधता है, वह ही कार्य द्वारा भिन्न भिन्न हितों में समन्वय स्थापित करता है, वह ही विज्ञान, कलों और कानून पर मानव की विजय की और मानवता की सुदृढता की भावनाओं को भविष्य की पीढ़ियों तक पहुँचाता है। वह ही मानव को कबायली जीवन की आदिम स्थिति से निकाल कर मानव शक्ति के चरम स्वरूप—साम्राज्य—में लाता है। यह शता[illegible] से उन सदस्यों के नामों का जीवित रखता है जिन्होंने इसके कानूनों की आज्ञाओं का पालन करते हुए तथा उसके अस्तित्व को जीवित रखने के लिए अपना सब कुछ इस पर न्योछावर कर दिया। यह उन नेताओं की यादगारों को जीवित रखता है जिन्होंने इसके क्षेत्र का विस्तार किया तथा राष्ट्र के नाम पर चार चाँद लगाये।'[1]

स्पष्ट है कि फासिस्टवादियों की राष्ट्र या राज्य की कल्पना हीगल जैसी है। जिस तरह हीगल ने राज्य को सर्वशक्तिमान, अभ्रान्त, त्रिकालदर्शी, निरंकुश, न्याय तथा नैतिक मापदण्डों का सृष्टा व लोकपाल तथा स्वयं में साध्य बताया उसी प्रकार फासिस्टवादी भी राज्य को इन्हीं समानों से विभूषित करते हैं। रॉको के लिये तो राज्य "विचारों और भावों की आध्यात्मिक विरासत है जिसे प्रत्येक पीढ़ी अपने पूर्वजों से प्राप्त करती है और अपने वाली पीढ़ी को सौंप देती है।"[2]

हीगल की भाँति फासिस्टवादी राज्य, राष्ट्र और समाज में कोई भेद नहीं करते। उनके लिए समाज का अभिप्राय सदा राष्ट्र से होता है। उनके लिए समाज भी स्वयं में साध्य है, व्यक्ति तो उस साध्य की प्राप्ति के लिए केवल साधन मात्र है। फासिस्ट समाज सर्वदा व्यक्तियों का प्रयोग अपने उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए साधन के रूप में करता है। समाज (राष्ट्र) की रक्षा उसके गौरव तथा विस्तार के लिए युद्ध अत्यन्त आवश्यक और उचित हो सकता है चाहे ऐसा करने में लाखों योग्य व्यक्तियों का बलिदान देना पड़े या मनुष्यों के हितों के विरुद्ध कार्य करना पड़े क्योंकि "राष्ट्र ही निर्देशात्मा है और राजनीति का उद्देश्य राष्ट्रीय आत्म सिद्धि है।" इस तरह फासिस्ट राज्य में व्यक्ति और समाज का पूर्ण संश्लेषण (synthesis) है। जेन्टाईल के शब्दों में, "व्यक्ति और राज्य आवश्यक संश्लेषण के अपृथक्करणीय पद हैं।"[3]

(11) फासिस्ट लोकतन्त्र विरोधी है (Fascism is anti-democratic)

लोकतन्त्र के तीन मुख्य सिद्धान्त हैं (i) स्वतन्त्रता (ii) समानता या बन्धुत्व

---

1 Mussolini Benito *The Political and Social Doctrine of Fascism*

2 Rose Dr William *An Outline of Modern Knowledge*

3 The State and the individual are inseparable terms of a necessary synthesis'.—*Gentile*

और (iii) लोक सम्प्रभुता। फासिज्म इन तीनों सिद्धान्तों को निरलता का जनक मानकर न केवल इनका विरोध करता है बल्कि इनका खण्डन कर उनका पूर्ण उन्मूलन चाहता है। फासिज्म लोकतन्त्र के स्वतन्त्रता, समानता या बन्धुत्व और लोक प्रभुता के सिद्धान्तों के स्थानपर उत्तरदायित्व अनुशासन, शिष्ट वर्ग की योग्यता और सीढ़ी नुमा शासन पर बल देता है। इसमे शासन नीचे से, अर्थात जन साधारण से, जैसाकि प्रजातन्त्र म होता है, शक्ति प्राप्त नही करता बल्कि ऊपर से अर्थात् दल के नेता या दल से जो शासन का अध्यक्ष या सचालक होता है, प्राप्त करता है। फासिज्म की लोकतन्त्र विरोधी विचारधारा को निम्न सूत्रो म व्यक्त किया जा सकता है —

(i) स्वतन्त्रता अधिकार नहीं कर्तव्य है।

(ii) समता निर्बल धारणा है, असमानता प्राकृतिक नियम है।

(iii) सच्चा लोकतन्त्र गुणात्मक (qualitative) होता है, मात्रात्मक (quantitative) नही।

(i) स्वतन्त्रता अधिकार नहीं कर्तव्य है (Liberty is not a right but a duty)—व्यक्तिगत स्वतन्त्रता के बारे मे फासिज्म की विचारधारा हीगलवादी और प्राचीन ग्रीक के नगर राज्यो जैसी है। हीगल की भाँति फासिस्टवादी भी व्यक्तियो की स्वतन्त्रता को राज्यकी स्वतन्त्रता मे अन्तर्निहित समझते है। इसमे व्यक्ति की व्यक्तिगत स्वतन्त्रता जसी कोई चीज नही केवल राज्यकी ही स्वतन्त्रता है। इसमे राज्य की इच्छा मे ही व्यक्तियों की इच्छा का समावेश है, व्यक्ति की कोई स्वतन्त्र इच्छा नहीं। अपनी इच्छाओ को व्यक्ति राज्य की इच्छा पर न्योछावर कर देता है। व्यक्ति अपनी सिद्धि को राज्य म रह कर ही प्राप्त कर सकते हैं उसके बाहर नही। इस तरह कर्तव्य अनुशासन और स्व बलिदान द्वारा व्यक्ति राज्य म बँधा रहता है। जिस प्रकार प्राचीन ग्रीक नगर राज्यो म व्यक्ति का राज्य मे विलयन हो जाता था उसी प्रकार फासिज्म क शक्तिशाली एकीकृत राष्ट्रीय राज्य मे व्यक्ति का विलयन हो जाता है।

व्यक्तिवादी या उदारवादी स्वतन्त्रता को प्राकृतिक और स्वाभाविक मानते है। परन्तु फासिस्टवादी इसे न तो प्राकृतिक मानते हैं और न ही स्वाभाविक, बल्कि वे राज्य द्वारा प्रदत्त एक 'रियायत' (concession) मानते हैं। परन्तु रियायत की कल्पना तो देने वाले की इच्छा पर निर्भर करती है। इस तरह फासिस्ट राज्य मे व्यक्ति की स्वतन्त्रता राज्य की इच्छा पर निर्भर करती है। यदि स्वतन्त्रता प्रदान करना राज्य, राष्ट्र या समाज के सर्वोच्च उद्देश्यो को प्राप्त करने के लिए आवश्यक है तो राज्य ऐसी रियायत (स्वतन्त्रता) अपने नागरिको को देता है और यदि ऐसी रियायत देने से उसके उद्देश्यो की पूर्ति म बाधा उपस्थित होती है तो राज्य न केवल उसे वापस ले लेता है बल्कि राज्य रूपी यन्त्र की सारी शक्ति का प्रयोग भी किया

जा सकता है। इस तरह फासिस्ट राज्य मे नागरिको की स्वतन्त्रता की मात्रा का निर्धारण राज्य करता है।

फासिस्ट नेताओ का विश्वास है कि नागरिको को स्वतन्त्रता की अपेक्षा कानून, व्यवस्था और क्षमता की अधिक आवश्यकता है। व्यक्ति की स्वेच्छाचारी इच्छा को दबाना न केवल व्यक्ति बल्कि राज्य के कल्याण मे है और राज्य इन इच्छाओं को दबाने के लिए सर्वोत्तम निकाय है। "राज्य स्वेच्छाचारी, इच्छा को दबाने के लिए, अधिकृत सस्था है। यह सामान्य रूप से समाज और विशेष रूप से व्यक्ति को गारण्टी है कि उसकी सुरक्षा कानून रूपी कवच द्वारा सुरक्षित है।"

फासिज्म मे वतमान लोकतान्त्रिक सविधानो की तरह नागरिक स्वतन्त्रताओं —भाषण, लेखन, समुदाय बनाने, विचार व्यक्त करने, आलोचना करने, छापाखानो की स्वतन्त्रता इत्यादि—का कोई मूल्य नही। ऐसी स्वतन्त्रतायें फासिस्ट राज्य मे न तो विद्यमान होती हैं और न ही इनकी आज्ञा दी जा सकती है क्योकि यहा पर तो नागरिक स्वतन्त्रता के स्थान पर विधि (कानून) को महत्त्व दिया जाता है। नागरिक स्वतन्त्रता विधि की दासी है और विधि द्वारा निर्धारित सीमाओ मे ही स्वतन्त्रता का प्रयोग किया जा सकता है। नागरिक तब तक ही स्वतन्त्र हैं जब तक वे अपनी इच्छाओ को राज्य इच्छा के अनुकूल बनाये रखते हैं। यहा स्वतन्त्रता अधिकार नही कत्तव्य है, राज्याज्ञाओ अथवा कानूनो का पालन ही स्वतन्त्रता है। जसाकि जेनटाईल ने कहा है, 'कानून और राज्य स्वतन्त्रता की सर्वोच्च अभिव्यक्ति है। अधिकतम स्वतन्त्रता अधिकतम राज्य शक्ति से मेल खाती है।"

फासिज्म राज्य की सावभौम सत्ता मे विश्वास करता है। उसके लिए अच्छे राज्य का चिन्ह उसकी शक्ति है। जितनी ही अधिक राज्य की शक्ति होगी उतनी अधिक स्वतन्त्रता का उपभोग व्यक्ति करेंगे। जहाँ बहुलवादी समुदायो तथा सघो के स्वाभाविक क्षेत्रो को स्वीकार करते हैं वहाँ फासिस्टवादी केवल राज्य या राष्ट्र के क्षेत्र को ही स्वीकार करते हैं। फासिस्ट राज्य मे समुदाय या सघ राज्य की सावभौम सत्ता की आज्ञा से ही विद्यमान रह सकते हैं। फासिस्ट राज्य किसी प्रकार के सवधानिक प्रतिबन्धो को स्वीकार नही करता। उसके विचार मे सवधानिक प्रतिबन्ध और सन्तुलन अव्यवस्था उत्पन्न करते हैं। जिस शक्ति पृथक्करण के सिद्धान्त का बोलबाला वतमान प्रजातान्त्रिक सविधानो मे इतना अधिक है और जिस स्वतन्त्रता को सुरक्षित रखने के लिए मौन्टेस्क्यू ने इस सिद्धान्त का प्रतिपादन किया फासिस्ट राज्य मे उसका कोई महत्त्व नही। उसके लिए तो यथाथ राज्य वही है जिसकी सम्प्रभुता निरपेक्ष एव शक्ति केन्द्रीकृत है। जेन्टाइल के शब्दो म "राज्य की सत्ता निरपेक्ष है। यह किसी से समझौता नही करती, यह किसी से सौदेबाजी नहीं

करती, यह अपने क्षेत्र के किसी अश को किसी नतिक या धार्मिक सिद्धान्त को सौंपने के लिए तैयार नही।"[1]

फासिस्ट राज्य मे, जसा कि ऊपर कहा गया है व्यक्ति के अहरणीय अधिकारा (inalienable rights) जैसी कोई चीज नही। अधिकार तथा स्वतत्रता तो केवल राज्य के लिए ही है क्योकि "वही वास्तविक स्वतत्रता है जो राज्य मे अन्तर्निहित है।"[2] इस पर भी फासिस्ट लेखक स्वीकार नहीं करते कि फासिस्ट राज्य मे व्यक्ति को स्वतत्रता से वचित किया जाता है, उसे निगला जाता है, उसकी राज्य रूपी देवी पर बलि दी जाती है। इसके विपरीत, वे यह दावा करते हैं कि फासिस्ट राज्य मे ही व्यक्ति वास्तविक स्वतत्रता का उपभोग करता है। मुसोलिनी के शब्दो मे 'जिस प्रकार किसी रेजीमेन्ट (regiment) मे अन्य साथियो की उपस्थिति से किसी एक सैनिक का निराकरण (विलयन) नहीं होता बल्कि उसकी शक्ति मे वृद्धि होती है उसी प्रकार फासिस्ट राज्य मे व्यक्ति का निराकरण (विलयन) नही होता बल्कि उसकी वृद्धि होती है।"

सत्ता और स्वतत्रता के विरोधाभासो (paradoxes) को हल करने के लिए फासिज्म के अपने ही तरीके हैं। इसमे प्रजातान्त्रिक या सवधानिक तरीको से काम नही लिया जाता बल्कि शक्तिशाली निरकुश राष्ट्रीय राज्य की स्थापना द्वारा ही इनका निराकरण किया जाता है। दूसरे शब्दो म, सत्ता और स्वतत्रताओ की समस्याओ को राष्ट्रीय हित को ध्यान मे रख कर हल किया जाता है न कि व्यक्ति के हितो का ध्यान मे रख कर।

उपर्युक्त वणन से स्पष्ट है कि फासिस्ट राज्य मे व्यक्तिगत स्वतन्त्रता नाम की कोई चीज नही। यदि वहाँ स्वतत्रता है तो वह सामूहिक है जिसका मूर्तरूप राज्य है। फासिस्टवादी हीगल की भाँति सारी स्वतन्त्र शक्तियो को एक स्थान पर निश्चित कर देते है और फासिज्म म वह स्थान राष्ट्रीय राज्य है।

(ii) समता निबल धारणा है, असमानता प्राकृतिक नियम है—फासिज्म लोकतन्त्र मे विद्यमान समानता के सिद्धान्त को केवल अस्वीकार ही नही करता बल्कि इसे निर्बलो की विचारधारा कह कर इसकी खिल्ली उडाता है। फासिज्म का यह विश्वास है कि जब प्रकृति म ही असमानता विद्यमान है तो मानव समाज म समानता का प्रश्न ही नही उठता, दुर्बल को सबल के साथ समान बनाने का अभिप्राय सबल की कुशलता को कुण्ठित बनाना है। फासिज्म इसलिए असमानता के तथ्य

1 Gentile Quoted in Maxey's *Political Philosophies*, p 641

2 "There is no liberty but the liberty which is inherent in the State."

को न केवल स्वीकार करता है बल्कि उसको आदर्श रूप में प्रतिष्ठित भी करता है। वह श्रेष्ठता और न्यूनता (Superiority and inferiority) की भावनाओं का प्रोत्साहन करता है। मुसोलिनी के शब्दों में, "फासिज्म सतत, लाभकारी और फलदायी मानवजाति की असमानता की पुष्टि करता है।"[1]

फासिज्म की संहिता (Code) में, एबनस्टीन के शब्दों में व्यक्ति स्त्रियों से श्रेष्ठ है, सैनिक नागरिकों से श्रेष्ठ हैं, (फासिस्ट) दल के सदस्य अन्य दलों के सदस्यों से श्रेष्ठ हैं, स्वयं का राष्ट्र अन्य राष्ट्रों से श्रेष्ठ है, शक्तिशाली निर्बल से श्रेष्ठ है, विजेता पराजित से श्रेष्ठ है।"[2]

फासिस्ट राज्य कानून द्वारा नागरिकों में भी असमानता करता है। वहां कानून कुछ जातियों को अन्य जातियों से श्रेष्ठ मानता है। इसी प्रकार समाज के कुछ वर्गों को, विशेषकर जो फासिस्ट सिद्धान्तों में विश्वास करते हैं कानून अन्य वर्गों से श्रेष्ठ मानता है। इटली में हुई समाजवादियों और अन्य अल्पमत वालों की दुर्दशा तथा जर्मनी में यहूदियों की हुई दुर्गति फासिज्म की असमानताओं (विषमताओं) वाले सिद्धान्त को सिद्ध करती है।

(iii) सच्चा लोकतन्त्र गुणात्मक होता है, मात्रात्मक नहीं (True Democracy is qualitative, not quantitative)—फासिज्म के लिए, लोकतन्त्र "लड़ाकू गुटों का गिरोह है", "वयस्क मताधिकार रूढ़िवादी प्रणाली है", "लोक प्रभुता सर्वथा अनिक झूठ है", संसद सामूहिक अनुत्तरदायित्व की परिचायक है', 'बहुमत शब्द धोखा है।' इस तरह फासिस्टवादी न केवल लोकतन्त्र का विरोध करते हैं बल्कि उसका पूर्ण प्रत्याख्यान भी करते हैं।

फासिज्म का संसदात्मक प्रणाली में कोई विश्वास नहीं। उनके लिए यह प्रणाली मूर्ख, भ्रष्ट धीमी गति से चलने वाली, काल्पनिक, अव्यावहारिक तथा अयोग्य है। संसदों को फासिज्म ने 'बातें करने वाली ऐसी दुकानें' (talking shops) कह कर निन्दित किया है जो अपनी कब्र की ओर बढ़ रही हैं।

फासिज्म प्रजातन्त्र के ठीक विपरीत है। जहाँ प्रजातन्त्र में विरोधी दलों को सुदृढ़ बनाया जाता है ताकि वे सरकार की गलतियों का सही मूल्यांकन कर उनका विरोध करें और सरकार को ठीक रास्ते पर लाने का प्रयास करें वहाँ फासिस्ट राज्यों में विरोधियों की पूर्णतया सफाई कर दी जाती है।

---

1 'Fascism affirms the immutable the beneficial and fruitful inequality of mankind —*Mussolini, Benito*

2 Ebenstein, William *Today's Isms*, p 106

फासिस्टवादियो के लिए लोक प्रभुता केवल आडम्बर और दिखावा है जिसमे केवल थोड से व्यावसायिक जनोत्तेजक (professional demagogues) जनता को बहका कर स्वय वास्तविक सम्प्रभुता का प्रयोग करते है। मुसोलिनी के शब्दो म, 'प्रजातान्त्रिक शासन मे लोगो को समय समय पर इस भ्रम मे डाल दिया जाता है कि वे सम्प्रभुता का प्रयोग करते ह। जब कि वास्तविक बात यह है कि सम्प्रभुता हर समय, दूसरी शक्तिया और कई बार अनुत्तरदायी और गुप्त शक्तिया म निवास करती है तथा वे ही शक्तिया उसका प्रयोग करती है।'[1]

फासिज्म बहुमत के शासन को भी स्वीकार नही करता। वह इस बात म इकार करता है कि बहुमत बहुमत होने से मानव समाज का निर्देशन कर सकता है या सार्वजनिक नीतियो को निर्धारित कर सकता है। फासिज्म मात्राओ (सख्याओं) के स्थान पर गुणात्मक शासन का समर्थन करता है। गुण ही अपनी योग्यता विवेक और अनुभव के आधार पर समाज को निर्देशन देने की शक्ति रख सकता है, मात्रात्मक सूचना नही। फासिज्म का विश्वास है कि एक या कुछ गुणी व्यक्तियो द्वारा ही, जो उच्चतर बुद्धिमत्ता और अनुभवशीलता के कारण योग्य ह, लोगो को कार्य क लिए उत्तेजित (actuated) किया जा सकता है। फासिज्म इस बात को स्वीकार नही करता कि प्राकृतिक व स्वाभाविक रूप से असमान व्यक्तियो को यान्त्रिक तरीका से वयस्क मताधिकार देकर समान बनाया जा सकता है।

फासिज्म की धारणा है कि जनता सदैव कुछ प्रमुख नेताओ के अधीन रहेगी और उनक आदेशो को स्वीकार करन तथा उन्ह कार्यान्वित करने के लिए तयार रहेगी। इसलिए जनता का पथ प्रदर्शन करन के लिए योग्य व्यक्तियो की आवश्यकता होती है जिन्हे जनता स्वय निर्वाचन द्वारा चुनने मे असमर्थ है। ऐसे योग्य व्यक्तियो को दल (इटली मे फासिस्ट दल) तथा उसके नेताओ द्वारा ही नियुक्त किया जा सकता है। इस तरह फासिज्म मे जनता का काय अधिकारियो या शासको का निर्वाचन करना नही बल्कि उनके द्वारा उन्हे सौपे गये कार्यो को करना है। फासिस्टवादियो के नारे थे 'विश्वास करो', 'आज्ञा पालन करो', "सघर्ष करो" "मुसोलिनी सदा ठीक है।" एमिलियो बोदरेरो (Emilio Bodrero) के शब्दो में, *"स्वतन्त्रता, समानता एव बन्धुत्व के प्रजातान्त्रिक नारे के स्थान पर फासिस्ट लोग अधिक पवित्र, श्रेष्ठ एव उच्च भावनापूर्ण तीन शब्दो को प्रतिष्ठित करते है—* दायित्व, अनुशासन और सीढीनुमा श्रेणीबद्ध सगठन —जो मनुष्य को राष्ट्रीय जीवन मे प्रभावकारी भाग लेने के लिए अपनी समस्त शक्तियो का उपयोग करने के लिए प्रोत्साहित करते हैं।[2]

---

1 Mussolini Benito Quoted in McGovern's *From Luther to Hitler*, p 75

2 Bodrero Emilio Mussolini and the Dictatorship of Italy Quoted in Coker's *Ibid* p 476

फासिस्टवादी प्रजातन्त्र के लोक प्रभुता के सिद्धान्त को स्वीकार नहीं करते। वे कहते हैं कि जब जनता में योग्य व्यक्तियों के निर्वाचन करने की योग्यता नहीं, जब उनमें सामान्य समस्याओं का निवारण करने की क्षमता नहीं और जब वह शासन की जटिल समस्याओं को समझ नहीं सकती तो लोक प्रभुता का आडम्बर दिखाना व्यर्थ है। इस तरह फासिज्म सामान्य इच्छा जानने के लिए लोगों पर निर्भर नहीं करता। उसके लिए सामान्य इच्छा प्रयोजन या प्रश्न है जिसका निवास राज्य या राष्ट्र में होता है, और जिसकी सिद्धि कुछ योग्य व्यक्तियों द्वारा ही हो सकती है।

3 फासिज्म शिष्ट वर्ग के शासन में विश्वास करता है (Fascism believes in the rule of the elite)

शिष्ट वर्ग की विचारधारा इस मान्यता पर आधारित है कि समाज में कुछ ही लोग ऐसे होते हैं जो शासन करने की योग्यता रखते हैं। जैसाकि ऊपर कहा गया है कि फासिज्म लोकतन्त्र के इस नियम को स्वीकार नहीं करता कि लोग अपने आपको शासित करने की योग्यता रखते हैं। फासिज्म तो यह मानता है कि समाज में कुछ ही लोग अपने जन्म, शिक्षा, सामाजिक स्तर, बुद्धिमत्ता तथा विवेक के कारण ही शासन करने की विशेष योग्यता रखते हैं। अपनी बौद्धिक योग्यता और नैतिक पवित्रता के कारण ही वे शिष्ट वर्ग के सदस्य हैं। क्योंकि, इन लोगों ने अपने स्वार्थ को गौण बना लिया है इसलिए ये व्यक्ति (शिष्ट वर्ग) सामान्य कल्याण के बारे में सोचने और उसे कार्यान्वित करने की क्षमता रखते हैं। साधारण व्यक्ति अपने स्वार्थ में रत होने के कारण, सार्वजनिक उपयोगिता के कार्यों को नहीं समझ सकते तथा समाज की जटिल समस्याओं का निवारण नहीं कर सकते। फासिस्टवादी शिष्ट वर्ग को ही "समाज के लिए क्या अच्छा है क्या बुरा" सोचने की क्षमता से भरपूर समझते हैं। उनके द्वारा (शिष्ट वर्ग द्वारा) शासन को चलाना न केवल अधिकार है बल्कि कर्तव्य भी है। यही फासिज्म की सर्वोत्कृष्ट राजनीतिज्ञों द्वारा शासन को चलाने की कल्पना है।

स्पष्ट है कि फासिज्म समाज को दो भागों में विभक्त करता है। एक शासक वर्ग और दूसरा शासित वर्ग, एक आज्ञा या आदेश देने की योग्यता रखता है दूसरा उसके पालन करने की, एक में बुद्धि, विवेक, राष्ट्रभक्ति, कर्तव्यपरायणता तथा नैतिक तत्त्व प्रचुर मात्रा में है दूसरे में इसका अभाव सा है, एक कानून तथा राज्य नीति का निर्माता है दूसरा कानून का पालक तथा नीतियों का अनुसरण करता है।

शिष्ट वर्ग के शासन की उत्पत्ति फासिस्टवादियों ने नहीं की। प्लेटो, जिसे पश्चिमी राजनीतिक दार्शनिक का जनक माना जाता है शिष्ट वर्ग के शासन का जनक है। रिपब्लिक (Republic) में दार्शनिक राजा या संरक्षक वर्ग (Philoso

pher king or guardian class) की उत्पत्ति इसी शिष्ट वर्ग की विचारधारा की जननी है। परन्तु जहाँ प्लेटो को शिष्ट वर्ग को ढूँढ़ना तथा उसे प्रशिक्षण देने मे काफी कठिनाई आयी थी वहाँ फासिस्टवादियो—मुसोलिनी तथा हिटलर जैसे सर्वसत्तावादियो— के लिए ऐसे वर्ग को ढूँढ निकालना कठिन कार्य नही था। उन्होंने इस वर्ग को अनुदारवादी या प्रजातन्त्रवादी तरीका से ढूँढने की कोशिश नही की क्योंकि ये सब प्रणालियाँ (वंशानुगत, प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष चुनाव तथा सत्ता द्वारा नियुक्ति) उनकी दृष्टि म त्रुटिपूर्ण हैं। फासिज्म इस शिष्ट वर्ग को फासिस्ट दल से प्राप्त करता है।

फासिस्ट राज्य मे फासिस्ट दल ही "राज्य की आत्मा है।"[1] मुसोलिनी के शब्दो मे, 'दल वास्तव मे आत्मा है, राष्ट्र की मोटर है।"[2] दल ही राजनीति का प्रचुर मात्रा मे निर्माता होगा, राज्य पुलिस का प्रचुर मात्रा म प्रतिनिधित्व करेगा। फासिज्म, 'केवल दल ही नही, यह शासन है, यह शासन ही नही, एक विश्वास है, यह केवल विश्वास ही नही, एक धर्म है।'[3] इन वक्तव्यो से स्पष्ट है कि फासिस्ट दल का राज्य पर एकाधिकार है, दल ही राज्य की नीतियो, विधियों तथा प्रशासन के अन्य कार्यों का स्रष्टा एव कर्ता है। दल और शासक वर्ग (शिष्ट वर्ग) वास्तव म एक ही हैं। दल के सदस्य ही शिष्ट वर्ग के सदस्य हैं। दल ही शासक और शासक ही दल है। मक्सी न बहुत सुन्दर शब्दो म कहा है कि "पीढ़ी दर पीढ़ी दल ही शासक प्रदान करता है और सदा वह ही शासक वर्ग है।'[4]

इटली मे फासिस्ट दल की स्थिति बहुत सुदृढ़, सर्वोच्च और गौरवपूर्ण थी। दल का नेता ही प्रशासन का मुखिया था, दल की सर्वोच्च परिषद् (प्रमुख समिति) राज्य की सर्वोच्च सभा थी। सभी सार्वजनिक पदो पर या तो पक्के (सुदृढ़) फासिस्टवादी नेता थे या वे व्यक्ति जिनकी हमदर्दी फासिस्ट दल के साथ असंदिग्ध थी। अन्य दल या तो समाप्त कर दिये गये थे या उन्ह गैर कानूनी बना दिया गया था।

शिष्ट वर्ग की विचारधारा मे "नेतृत्व के सिद्धान्त" (Leadership principle) का मुख्य स्थान है क्योंकि राज्य के कार्यों मे एकता लाने और उनका निर्देशन तथा नियमन करने के लिए एक नेता की आवश्यकता होती है। हिटलर के शब्दो म, "नेता

1 Party is 'Conscience of the state Gentile
2 'The party is in truth the soul the motor of the nation ' Mussolini Benito Quoted in Nolte, Ernst *Three Faces of Fascism* Tr by (Leila Vennewitz) p 269
3 "Fascism is not only a party, it is a regime, it is not only a regime but a faith, it is not only a faith but a religion ' *Ibid*, p 224
4 Maxey, *Ibid*, p 643

दल है और दल ही नेता है।[1] यही नेतृत्व का सिद्धान्त शिष्ट वर्ग के सिद्धान्त की चरम सीमा है। फासिस्ट साहित्य में नेता की प्रतिष्ठा और प्रशंसा प्रचुर मात्रा में की गई है। इतना ही नहीं नेता को कई प्रकार की संज्ञाओं से भी विभूषित किया गया है जैसे 'नेता ही राष्ट्र व जाति का रक्षक है', "नेता ही राष्ट्र व जाति को उसकी दुर्भाग्यपूर्ण स्थिति से निकाल सकता है", 'नेता अभ्रान्त है'। मुसोलिनी की आत्म कथा में आदि से अन्त तक 'मेरा आदेश', "मेरा पथ प्रदर्शन", मेरी निर्णय बुद्धि', 'मेरा अदम्य आधिपत्य'[2] आदि शब्द मिलते हैं।

फासिस्ट विचारधारा में "वीर की पूजा" (Hero worship) अत्यधिक है। कार्लाइल और नित्शे की भांति फासिस्टवादी नेता की पूजा करते हैं। इसमें नेता को ईश्वर तुल्य माना गया है। इसलिए नेता स्तुत्य एवं वन्दनीय है। डा० एंजेल्के (Dr Engelke) के शब्दों में "ईश्वर ईसा मसीह के रूप में प्रकट नहीं हुआ बल्कि वह हिटलर के रूप में प्रकट हुआ।[3] गोरिंग के शब्दों में, "जिस तरह और नैतिकता के विषय में रोमन कैथोलिक पोप को अभ्रान्त मानते हैं उसी प्रकार हम राष्ट्रीय समाजवादी (जर्मन ब्राण्ड का फासिज्म) राष्ट्र के राजनीतिक विषयों में तथा जनता के सामाजिक हित के विषयों में नेता को आन्तरिक भावना से अभ्रान्त मानते हैं।"[4]

फासिज्म में नेता की इच्छा ही अन्तिम अपील का न्यायालय है। नेता सामान्य हित का प्रतिनिधित्व करता है क्योंकि उसका अहं या स्वार्थ गौण है, उसमें तो सामाजिक भावना देश भक्ति तथा उच्च नैतिक लक्ष्य का ही प्राधान्य है। नेता ही समाज के हित की बात सोच सकता है। इस तरह फासिज्म में नेता ही सब कुछ है। वही न्याय की प्रेरणा का स्रोत है वही न्याय, सत्य, विवेक का मापदण्ड है। इस लिए फासिस्ट नेता किसी के प्रति उत्तरदायी नहीं, ईश्वर के प्रति भी नहीं, क्योंकि वह तो स्वयं ईश्वर है।

फासिज्म में नेता की कल्पना राजतन्त्रवादियों से भी बढ़कर है। जहाँ राजतन्त्रवादी अपने आपको दैवी शक्ति का प्रतिनिधि मानते थे तथा उसके प्रति (ईश्वर) अपने आपको उत्तरदायी मानते थे वहाँ फासिस्ट नेता तो अपने आपको ईश्वर के प्रति भी उत्तरदायी नहीं मानता। वहाँ तो नेता स्वयं ईश्वर है।

---

1 'The leader is the party and the party is the leader —*Hitler*

2 Mussolini Benito My Autobiography Quoted in Cokers *HPT* p 609

3 God has manifested Himself not in Jesus Christ but in Adolf Hitler—Dr Engelke, Quoted in Hallowell *Ibid*, p 626

4 Goring, *Germany Reborn* p 79

फासिस्टवादी यह कहते हुए थकान अनुभव नहीं करते कि सफल प्रशासन के लिए बल, स्पष्ट दृष्टि एकाग्रता गौरव भिन्नता, निर्णय लेने की शक्ति, इत्यादि चीजो की आवश्यकता होती है जिसे फासिस्ट नेता राज्य को प्रदान करता है। नेता के होने से ही जनता सोच विचार कर सकती है या कार्य कर सकती है। साधारण व्यक्ति वीरता पूर्वक या सार्वजनिक भावना से तभी कार्य कर सकता है जब वह श्रेष्ठ नेता द्वारा उकसाया गया होता है। नेता और जनता का पारस्परिक सम्बन्ध रहस्यवादी (mystical) और अविवेकी (irrational) है। यह ठीक वैसा ही है जिसे मैक्स वैबर (Max Weber) नेता का करिश्मा (charisma) कहता है जो लोगों का सौभाग्य है। जिस प्रकार कोई कलाकार मिट्टी का हेर-फेर कर उसे रूप प्रदान करता है इसी प्रकार नेता हेर फेर कर जनता को रूप प्रदान करता है। अतः नेता के प्रति मन, वचन तथा कर्म से भक्ति रखना प्रत्येक नागरिक का कर्तव्य है और यदि यह भक्ति स्वाभाविक रूप से प्राप्त नहीं होती तो नेता इसे हिंसा के प्रयोग द्वारा प्राप्त करता है।

4 फासिज्म हिंसा और युद्ध का पुजारी है उसके लिए शांति कायरों का स्वप्न है

फासिज्म शक्ति और हिंसा में विश्वास करता है। जहां प्रजातन्त्र में विवादों का निपटारा करने के लिए संवैधानिक या शान्तिमय तरीकों (विचार विमर्श, मध्यस्थता इत्यादि) का सहारा लिया जाता है वहाँ फासिस्ट समाज शक्ति और हिंसा का प्रयोग करता है। साम्यवादियों की भांति फासिस्टवादी भी शक्ति और हिंसा की प्रतिष्ठा में विश्वास करते हैं। सारे फासिस्ट साहित्य में हिंसा और युद्ध को कई प्रकार की शलाकाओं से विभूषित किया गया है जैसे 'यह जीवन का साधारण अभिवचन है', "मानव उपलब्धि की सर्वोत्तम चरमावस्था है" 'यह इस्पात द्वारा शुद्धि स्नान है"[1], "युद्ध लोगों की परीक्षा करने का सर्वोत्तम साधन है, इसके द्वारा उनकी आन्तरिक शक्ति का अन्दाजा लगाया जा सकता है।"[2] मुसोलिनी ने सन 1925 में कहा था कि 'हम पर यह दोषारोपण किया जाता है कि हमने अपने राष्ट्र पर सामरिक अनुशासन लाद रखा है। मैं इसे स्वीकार करता हूं और इसमें गौरव मानता हूँ।'[3]

फासिस्टवादियों का हिंसा पर बल इस मान्यता पर आधारित है कि मानव बुद्धिहीन, विवेकहीन व स्वार्थी प्राणी है। वह केवल भय और शक्ति को पहचानता है

1 Quoted in Hallowell, *Ibid*, p 606

2 'War is the great testing ground of the peoples in it is revealed their inner composition —Quoted in Nolte Ernst *Ibid*, p 239

3 Mussolini, Benito, Quoted in Coker *Ibid*, p 481

और हिंसा के द्वारा ही उसकी गौण शक्तियो को कार्यान्वित किया जा सकता है। इस तरह फासिस्टवादी अपने उद्देश्यो को बल प्रयोग तथा जबदस्ती या हिंसा द्वारा प्राप्त करते हैं बौद्धिक तक वितर्क द्वारा नही। फासिज्म का हिंसा पर बल देना हॉब्स की याद दिलाता है कि 'व्यक्ति केवल हिंसा या शक्ति को ही पहचानता है।"

फासिज्म हिंसा का आवश्यक भी मानता है। उसके अनुसार यदि 'हिंसा सडाद को मिटाती है तो वह नैतिक दृष्टि से पवित्र और आवश्यक हो जाती है।" राष्ट्रीय एकता बनाये रखने के लिए फासिज्म राज्य के शत्रुओ का हिंसा द्वारा दमन करता है। हिंसा का सिद्धान्त न केवल राष्ट्र के आन्तरिक बल्कि बाह्य शत्रुओ को भी नष्ट करने के लिए प्रयोग मे लाया जाता है। फासिस्टवादी कहते हैं कि कौन इस बात से इन्कार कर सकता है कि शक्तिशाली व्यक्ति अपने शत्रु को थप्पड मार कर और उस पराजित करके स्वतन्त्रता की सास लेता है, अच्छा भोजन प्राप्त करता है तथा सुख की नीद सोता है।"[1]

फासिज्म का यह विश्वास है कि हिंसा स्वाभाविक भी है और मानसिक तथा शारीरिक शक्तियो के विकास के लिए अनिवार्य भी है। उसकी धारणा है कि हिंसा द्वारा व्यक्ति, समाज तथा राष्ट्र मे दृढता आती है और साहस तथा जोखिम उठाने के गुणो का विकास होता है। जब इन गुणो का ह्रास होता है तो राष्ट्र क्षीण होते हैं। इस तरह फासिस्ट विचारधारा के अनुसार हिंसा की प्रक्रिया से व्यक्ति म उच्च तम शक्तियों का स्फुरण होता है।

शान्ति या शान्ति क प्रयासो को फासिज्म कायरो का स्वप्न कहता है। फासिज्म शान्ति की वाछनीयता, उपयोगिता तथा सम्भाव्यता पर ही विश्वास नही करता। इसे वह दुबलो का आवरण मानता है जो भय की परिस्थितियो से दूर भागने के लिए इसका चोगा पहन लेते हैं। फासिज्म के लिए तो सघष ही जीवन का मूल आधार है और विकास का साधन है। मुसोलिनी के शब्दो मे, 'बिना खून बहाये, कोई जीवन नही।[2]

फासिज्म इस बात पर बल देता है कि जब समाज म दो परस्पर विरोधी विचार धारायें अपना अस्तित्व प्राप्त करने क लिए काय कर रही हैं तो उनमे से श्रेष्ठतर विचार धारा का निणय शारीरिक सघष द्वारा ही हो सकता है। अन्य सब साधन (जैसे सवैधानिक तरीके) इस बात का निणय करने के लिए अनुपयुक्त है। कोरादो गिनि (Corrado Gini) के शब्दो म, "कोई भी दार्शनिक सिद्धान्त चाहे वह कितना ही

1 Quoted in Hallowell *Ibid* p 608
2 'No life without shedding blood —*Mussolini, Benito*

विवेकपूर्ण एवं आध्यात्मिक क्यो न हो सबसे शक्तिशाली समुदाय को समाज पर नियन्त्रण प्राप्त करने से रोक नही सकता।"[1]

फासिज्म हिंसा का प्रयोग स्वय की सरकार के विरुद्ध भी करने को उचित मानता है जब वह सरकार भ्रष्ट हो जाय और राष्ट्र की शुद्ध इच्छा को व्यक्त करने मे असमर्थ हो। परन्तु इस प्रकार की हिंसा उच्च राष्ट्रीय उद्देश्यो से प्रेरित होने पर ही उचित ठहराई जा सकती है। मुसोलिनी ने इटली मे फासिस्ट दल द्वारा ढाये गये अत्याचारो और हत्याओ को इन्ही राष्ट्रीय उद्देश्यो के आधार पर उचित ठहराया। जेन्टाइल के शब्दो मे, "व्यक्ति सदव हिंसात्मक काय करते है जब उन्हे विश्वास हो जाता है कि ऐसे काय उच्चतर नियमो या सार्वलौकिक हितो का प्रतिनिधित्व करते हैं।" कोकर के शब्दो मे, फासिज्म "रोगी राजनीतिक समाज को ठीक करने को शल्य चिकित्सा है।"[2]

फासिस्टवादियो का दावा है कि उनकी 'हिंसा' पवित्र है क्योकि यह समाज मे "सड़ाद को मिटाती है", रोगी राजनीतिक समाज को पुनर्वासित (rehabilitate) करती है", "मृतक या बुजदिल दिलो मे साहस और जोखिम उठाने की भावना पैदा करती है', "राष्ट्रीय प्रतिष्ठा बढाती है"। यही कारण है कि फासिस्ट समाज अपने नागरिक को सवदा युद्ध की तयारी मे रखता है। क्रान्तिकारी समाजवादियो की हिंसा को फासिस्टवादी विघटनकारी हिंसा बताते हैं क्योकि वह समाज के एक वग के विनाश पर आधारित है जबकि फासिस्टवादी हिंसा समाज की सहमति पर आधारित है।

अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र म, फासिस्टवादी युद्ध को योग्य एव सभ्य राष्ट्रो मे आवश्यक प्रतियोगिता का अनिवाय साधन मानते हैं। वे कहते हैं कि 'युद्ध का महत्त्व पुरुष के लिए वही है जो स्त्री के लिए मातृत्व का है।'[3] हिटलर के शब्दो मे, 'युद्ध सतत है, युद्ध सवव्यापी है। कोई आरम्भ नही और कोई शान्ति नही। युद्ध जीवन है। प्रत्येक सघष युद्ध है। युद्ध सभी चीजो की उत्पत्ति है।'[4] सतत युद्ध मे ही मानव महान बनता है, सतत शान्ति मे मानवता नष्ट हो जायगी।'[5]

---

1 Gini, Corradini Quoted in Coker s *Ibid*, p 480

2 Fascism is a surgical method for rehabilitating a diseased body politics —Coker *Ibid*, p 481

3 "War is to the man what maternity is to the woman" —*Mussolini Benito*

4 War is eternal war is universal There is no beginning and there is no peace War is life Any struggle is war War is the origin of all things

5 ' In eternal warfare mankind has became great, in eternal peace mankind would be ruined

फासिस्टवादी मानते हैं कि जब युद्ध राष्ट्रीय उद्देश्यों से प्रेरित होता है तो वह नैतिक, स्वाभाविक और उपयोगी होता है[1]। मुसोलिनी के शब्दों में 'मानव की सभी शक्तियों को उच्चतम बनाने में केवल युद्ध ही ला सकता है और जो लोग उसका सामना करने का साहस रखते हैं उन पर वह शिष्ट वर्ग की मोहर लगा देता है।'[1] "मैं स्थायी शांति में विश्वास नहीं करता, (इसमें विश्वास करना) मानव के मूल सद्गुणों से इन्कार करना तथा उन्हें दबाना है।"[2] "मैं सारे राष्ट्र का सैन्यीकरण चाहता हूँ।"[3] फासिज्म के लिए हिंसा राष्ट्रीय उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए आवश्यक, फलदायी और नैतिक है। इसलिए अन्तर्राष्ट्रीय जगत में फासिज्म में किसी नैतिक संहिता, अन्तर्राष्ट्रीय कानून या अन्तर्राष्ट्रीय संगठन को स्वीकार नहीं किया गया।

5 फासिज्म जातिवाद और साम्राज्यवाद में विश्वास करता है

फासिस्ट समाज अपनी जाति और राष्ट्र को अन्य जातियों और राष्ट्रों से श्रेष्ठ मानता है। जिस प्रकार फासिस्ट राज्य के आन्तरिक प्रशासन में शिष्ट वर्ग के शासन की प्रधानता है तथा उसे अपनी इच्छा को राज्य के अन्य सदस्यों, समुदायों और संघों पर आवश्यकता पड़ने पर हिंसा के प्रयोग द्वारा भी थोपने का अधिकार है उसी प्रकार अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में फासिस्ट जाति और राष्ट्र को अन्य जातियों और राष्ट्रों पर अपनी इच्छा थोपने का अधिकार है। दूसरे शब्दों में, फासिस्ट राज्य की विदेश नीति में साम्राज्यवादी तत्वों का समावेश है। उदाहरणतः जर्मन राज्य का विश्व पर आधिपत्य का स्वप्न जर्मन जाति और जर्मन राष्ट्र की श्रेष्ठता पर आधारित था। इसी प्रकार इटली और जापान जैसे फासिस्ट राष्ट्रों ने साम्राज्यवादी नीति का अनुसरण किया। स्पष्ट है कि फासिज्म के लिए, विश्व शान्ति कायरों का स्वप्न है, मुसोलिनी के शब्दों में, 'साम्राज्यवाद जीवन का सनातन और अडिग (स्थिर) नियम है ... ' इटली का विस्तार उसके जीवन मरण का विषय है। इटली का विस्तार अवश्य होना चाहिए या इसे नष्ट हो जाना चाहिए।' फासिस्टवादियों की धारणा है कि लोग मक्खन की अपेक्षा बन्दूकों को, आराम की अपेक्षा त्याग को और स्वतन्त्रता की अपेक्षा अनुशासन को महत्व देते हैं। इस तरह फासिस्टवादी बन्दूक की नोक से सभ्यता का विकास करना चाहते हैं।

6 फासिज्म अन्तर्राष्ट्रीय कानून और व्यवस्था का विरोधी है

"जो विचारधारा व्यक्ति की स्वतन्त्रता में विश्वास नहीं करती जिसका विश्वास सर्वसत्ता, जातिवाद, साम्राज्यवाद, हिंसा और युद्ध में है जिसमें युद्ध गुणों का

---

1 Mussolini Benito Quoted in Ebenstein *Ibid* p 111

2 I do not believe in perpetual peace it is depressing and a negation of all the fundamental virtues of man —Mussolini Benito

3 The whole nation must be militarized —Mussolini Benito

गान और साहस का चिन्ह है, वह अन्तर्राष्ट्रीय भ्रातृत्व की भावना म अ न्तर्राष्ट्रीय कानून या व्यवस्था मे या अन्तर्राष्ट्रीय सगठनो म विश्वास नही कर सकती। फासिज्म अन्तर्राष्ट्रीय सगठन मे विश्वास नही करता और न ही वह ऐसे सगठनो की सदस्यता प्राप्त करने का इच्छुक है। ऐसे सगठनो की सदस्यता प्राप्त करने का अभिप्राय होगा छोटे बडे राष्ट्रों की समानता को स्वीकार करना जिसे फासिज्म स्वीकार नही करता। वह तो जातीय और राष्ट्रीय श्रेष्ठता म विश्वास करता है। मुसोलिनी ने स्पष्ट लिखा है कि "राष्ट्र उसी समय स्वतन्त्र होते हैं जबकि वे अपने भविष्य के पूर्ण स्वामी हो।"

7 फासिज्म विवेक विरोधी अर्थात् फासिज्म अबुद्धिवादी है (Fascism is Anti intellectualism or Fascism is Irrationalism)

पश्चिम की मान्यता है कि उसकी सभ्यता का प्रकाश स्तम्भ उसका विवेक पर विश्वास है। प्रत्येक वस्तु या सिद्धान्त को तर्क वितर्क विचार विमर्श द्वारा सिद्ध करके ही उसकी वास्तविकता को सिद्ध किया जा सकता है परन्तु फासिस्टवादी पश्चिमी सभ्यता के इस प्रकाश स्तम्भ को स्वीकार नही करते। वे कहते हैं कि निरपेक्ष, सर्वव्यापी सतत सत्य जैसी कोई चीज नही। उनके विचार म सभी मूल्य, सभी मूल्य-[illegible] के निर्णय सापेक्ष होते है। वह सतत सत्य के नियमो के स्थान पर अपने राष्ट्रीय मूल्यो को प्रतिष्ठित करता है। लोगो की भावनाओ को उभारने के लिए यह अनेक भूत (myth) का आविष्कार करता है। मानव सम्बन्धो म या मानव व्यापारों में [illegible] तर्क को महत्त्व नही देता बल्कि वह इसके स्थान पर [illegible] भावुकता अविवेक, भय और अन्य अनियन्त्रित तत्त्वों का सहारा [illegible]। [illegible] शब्दो मे, यह प्रेरणाओ और स्वाभाविक प्रवृत्तियो से काम लेता है। [illegible] प्रयोग मे हठधर्मी और पूर्वाग्रही है।

प्रत्येक फासिस्ट शासन की अपनी [illegible] है जिसे विश्वास के आधार पर स्वीकार किया [illegible] लिए राष्ट्र, राज्य या नेता ही उसका [illegible] (जर्मन ब्राण्ड का फासिज्म) के लिए [illegible] उसका रहस्य था। इस [illegible] व्याख्या नही की जा सकती [illegible] सत्य नही है जिसे [illegible] अधिकार, भान में। [illegible] की प्रेरणा की और [illegible] (Mussolini is always right) [illegible] सामाजिक [illegible]

फासिज्म व्यक्ति को विवेकहीन प्राणी मानता है जो तर्क वितर्क द्वारा नहीं बल्कि विश्वास, भय, या सहानुभूति द्वारा ही नियन्त्रित किया जा सकता है। इसका विश्वास है कि 'जनता अपने तानाशाह से प्रेम तभी करेगी जब वह उससे डरती होगी'। यही कारण है कि फासिस्ट शासन में व्यक्ति अपने फेफड़ों और मांसपेशियों (Muscles) का प्रयोग तो कर सकते हैं परन्तु अपनी बुद्धि का नहीं।

फासिज्म के अबुद्धिवाद का एक पहलू यह है कि वह उस विज्ञान तथा समस्त दर्शन के प्रति शत्रुता की भावना रखता है जो केवल कल्पना और बुद्धि के विषय हैं तथा जिन्हें व्यवहार में नहीं लाया जा सकता। जेन्टाइल के शब्दों में, "यदि बुद्धिवाद का अभिप्राय विचार को व्यवहार से अलग करना है तो फासिज्म मुख्य रूप से बुद्धि विरोधी और मेजिनीवादी है"। फासिज्म व्यवहार में 'विश्वास" करता है बौद्धिक कल्पनाओं में नहीं।

फासिज्म के अन्य बुद्धि विरोधी तत्त्व हैं हिंसा और युद्ध का उग्र समर्थन तथा शिष्ट वर्ग के शासन का समर्थन। पहले तत्त्व द्वारा फासिस्ट फासिज्म समाज को साम्राज्यवादी भावनाओं से प्रेरित करता है और दूसरे द्वारा समाज में असमानताओं या विषमताओं को प्रतिष्ठित करता है। नेता को अभ्रान्त मानना उसके अबुद्धिवाद का परिचायक है।

8 फासिज्म सर्वसत्तावाद है (Fascism is totalitarianism)

फासिज्म के पूर्ण दर्शन में सर्वसत्तावाद की झलक नजर आती है। जीवन का कोई क्षेत्र—राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक, कलात्मक, धार्मिक, बौद्धिक, नैतिक इत्यादि—फासिस्ट राज्य के नियन्त्रण से मुक्त नहीं है। राज्य की शक्ति निरपेक्ष तथा अनुत्तरदायी है। उसका प्रभुत्व सर्वोपरि है। इसमें राष्ट्र के सब शक्तिमान श्रेणीबद्ध संगठन द्वारा व्यक्तियों के समस्त स्वार्थगत या विशिष्ट हितों का दमन होता है। इसमें नागरिकों के राजनीतिक दायित्व उनके अधिकारों से अधिक महत्त्वपूर्ण हैं। राज्य ही अपने नागरिकों के समस्त अधिकारों का आधार और समस्त मूल्यों का स्रोत है। फासिज्म किसी भी दूसरे के प्रति व्यक्तिगत विवेक या अन्तरात्मा, किसी आर्थिक वर्ग, किसी अन्तर्राष्ट्रीय पंचायत अथवा किसी विश्व सर्वहारा वर्ग के प्रति—भक्ति को स्वीकार नहीं करता। इस तरह राज्य के प्रति अभक्ति—मनसा, वाचा, कर्मणा—विद्रोह है जो समस्त मानवीय दोषों में सबसे महान् है। फासिस्ट राज्य समस्त जीवन का केन्द्र है वही अधिकारों का स्रोत है, वही नैतिकता का मापदण्ड है, वही सम्प्रभुता का उपभोक्ता है तथा उसी के ध्येय (उद्देश्य) सर्वोत्कृष्ट हैं। इस राज्य में लोक सम्प्रभुता जैसी कोई चीज नहीं, राज्य में विद्यमान सघ या समुदाय फासिस्ट राज्य की सक्रिय या मौन स्वीकृति से ही विद्यमान हैं। [illegible] के लिए सब कुछ राज्य में ही है। कोई ऐसी मानवीय तथा आध्यात्मिक [illegible] या मूल्य नहीं जो राज्य से बाहर हो। इस तरह फासि[illegible] राज्य [illegible]। गया

और उसके उद्देश्यो की सर्वोच्चता की घोषणा करता है। ये सब तत्व फासिस्ट सर्व सत्तावाद के द्योतक हैं।

फासिस्ट सर्वसत्तावाद अन्य प्रकार के सर्वसत्तावादों (अधिनायक तन्त्रो) से भिन्न है। जहाँ अन्य प्रकार के सर्वसत्तावादी (अधिनायक) तब तक सामाजिक, धार्मिक, नैतिक या सांस्कृतिक जीवन मे हस्तक्षेप नही करते जब तक उन्हे राजनीतिक दृष्टि से अस्थिर करने का प्रयास ही न किया जाय वहाँ फासिस्ट सर्वसत्तावाद जीवन के प्रत्येक क्षेत्र म नियन्त्रण रखता है, शिक्षा केन्द्र विद्यार्थियो को वही शिक्षा देते हैं जो फासिस्ट राज्य प्रदत्त करना चाहता है। नृत्यगृह तथा कला केन्द्र उसी संस्कृति को चित्रित करते हैं जो राष्ट्रीय राज्य के लिए फलदायी है स्त्रियाँ भी सन्तान की उत्पत्ति पारिवारिक प्रेम की भावना से नही बल्कि राष्ट्रीय आवश्यकता के अनुसार करती हैं। व्यापार अर्थात् वस्तुओ का आयात और निर्यात राष्ट्रीय उद्देश्यो को ध्यान मे रखकर किया जाता है, राजनीतिक व्यवस्था राष्ट्रीय नियमो द्वारा निर्धारित होती है। संक्षेप मे, "झूले से कब्र तक' फासिस्ट सर्वसत्तावाद व्यक्ति पर अपना एकाधिकार बनाये रखता है।

9 फासिज्म धर्म मे विश्वास करता है अर्थात् धर्म के साथ समझौता करता है

साम्यवाद और फासिस्टवाद दोनो ही सर्वसत्तावादी व समग्रवादी शासन हैं। दोनो ही शक्ति और हिंसा पर आधारित हैं। परन्तु धर्म के मामले मे दोनो की विचारधारा बिल्कुल पृथक् है। जहाँ साम्यवाद धर्म से घृणा करता है तथा उसे 'अफीम की गोली' समझ कर निंदित करता है और शासन के मामलो मे उसे कोई महत्त्व नही देता वहाँ फासिज्म न केवल धर्म के साथ समझौता करता है बल्कि धर्म का खुल्लम खुला प्रचार भी करता है। अपने उद्देश्यो को प्राप्त करने के लिए फासिज्म इटली के प्राचीन धर्म—कैथोलिक चर्च—का प्रयोग करता है। इसलिए वह इटली की प्राचीन संस्थाओ का आदर भी करता है तथा फासिस्ट स्कूलो मे धार्मिक शिक्षा का प्रचार भी किया जाता है। मुसोलिनी के फासिस्ट प्रोग्राम का कैथोलिक फासिस्ट संगठन मुख्यत उल्लेखनीय है। मुसोलिनी के शब्दो मे, "साम्राज्यीय रोम की लतीनी परम्पराये क्थालिकवाद मे आज जीवित हैं।"[1] फासिज्म के लिए अधर्मी राज्य कोई राज्य नही।

10 फासिज्म के आर्थिक विचार अर्थात निगमात्मक राज्य व्यवस्था (Economic Ideas of Fascism or The Corporate State)

फासिज्म के आर्थिक विचार उसके सामाजिक और राजनीतिक विचारो की भाँति अद्वितीय हैं। वह न तो व्यक्तिवादियो की भाँति सम्पत्ति पर व्यक्तियो के निर-

---

1 "Latin traditions of Imperial Rome are today alive in Catholicism"—*Mussolini, Benito*

पेम व निर्बाध अधिकार को स्वीकार करता है और न ही समाजवादियों की भांति श्रम के फल पर श्रमिकों के पूर्ण अधिकार को ही मानता है। वह समष्टिवादियों की तरह इस बात को भी स्वीकार नहीं करता कि उपभोक्ताओं की आवश्यकतानुसार उत्पादन का वितरण होना चाहिए। एक ओर फासिज्म यथेच्छाकारिता (Laissez Faire) की बुराइयों (पूंजीपति द्वारा श्रमिकों के समय, शरीर और परिवार का शोषण तथा पूंजीपतियों की किराये, मुनाफा तथा ब्याज द्वारा लाभ को बढ़ाने की प्रवृत्ति) की निन्दा करता है तो दूसरी ओर वह श्रमिकों की इस विचारधारा का खण्डन करता है कि पूंजीपतियों का सफाया होना चाहिए और उद्योगों पर श्रमिकों का शासन होना चाहिए। इतना ही नहीं फासिज्म उत्पादन के चरमोत्कर्ष के लिए पूंजीपति वर्ग की आवश्यकता पर भी बल देता है।

फासिज्म सभी आर्थिक प्रश्नों पर राष्ट्रीय दृष्टिकोण से विचार करता है। उसके लिए सम्पत्ति के उत्पादन और वितरण के विषय राष्ट्रीय हैं, व्यक्तिगत नहीं। वह तो राष्ट्र की उत्पादन शक्ति को उच्चतम अवस्था में रखना चाहता है ताकि साहसी नागरिकों का पोषण हो सके और राष्ट्रीय शक्ति की वृद्धि हो। इसके लिए यह दोनों वर्गों (पूंजीपति और श्रमिक) को आवश्यक मानता है क्योंकि राष्ट्र की उन्नति किसी एक वर्ग की उन्नति पर निर्भर नहीं करती। वह, इसलिए, न तो श्रमिकों को भूखा मरने देना चाहता है और न पूंजीपतियों का सफाया चाहता है। वह इन दोनों के मतभेदों को दूर कर दोनों के हितों की रक्षा करना चाहता है। इन दोनों को उसने अपनी निगमात्मक प्रणाली में राज्य के नियंत्रण और नियमन में रख लिया है। निःसंदेह फासिज्म आर्थिक विषयों को व्यक्तिगत उद्योगपतियों के हाथों में रहने देना चाहता है क्योंकि उसका विश्वास है उत्पादन शक्ति को उच्चतम अवस्था में इसी व्यवस्था द्वारा रखा जा सकता है परन्तु जब इनसे राष्ट्रीय हित की सिद्धि नहीं होती तो फासिस्ट सरकार किसी भी समय और किसी भी प्रकार की सहायता नियंत्रण अथवा प्रत्यक्ष प्रबंध द्वारा हस्तक्षेप करने में अपने आपको स्वतन्त्र समझती है। मुसोलिनी के शब्दों में 'पूंजी और श्रम के विरोधों का निपटारा करने के लिए एक दलीय राज्य अंतिम मध्यस्थ है।'[1]

सन् 1922 में जब फासिस्ट राज्य की स्थापना इटली में हुई तो निगमात्मक राज्य की स्थापना द्वारा विश्व को यह बताने का प्रयास किया गया कि फासिज्म केवल उदार पूंजीवाद और समाजवाद के विरुद्ध प्रतिक्रिया ही नहीं बल्कि यह सामाजिक और आर्थिक संगठन का एक रचनात्मक सिद्धांत है। श्रमिकों को यह कह कर

---

1 The one party state is the ultimate arbiter of conflicts between capital and labour — *Mussolini, Benito*

पुनवार िया गया कि यह व्यवस्था पूँजीवादी नही और पूँजीवादियों को यह कह कर सन्तोष दे दिया गया कि यह व्यवस्था समाजवादी नही ।

सन 19 4 के निगमात्मक अधिनियम (Corporation Act of 1934) द्वारा राष्ट के जीवन को राजनीतिक एव आर्थिक आधार पर सगठित किया गया। स्थानीय मजदूरो और स्थानीय मालिको को अपने अपने व्यवस्थापक मण्डलो (syndicates) मे सगठित किया गया उनको मजदूरो और मालिको के प्रान्तीय व्यवस्थापक सघो मे सगठित किया गया और प्रान्तीय सघो को अतिम रूप मे, राष्ट्रीय सघो और राज्य सघो (Confederation) मे सगठित किया गया। इन सबको कुल मिलाकर 22 मजदूरो और मालिको के राष्ट्रीय निगमो (National Corporations of Workers and Employers) म सगठित किया गया। प्रत्येक निगम की एक परिषद् होती थी जिसमे सम्बन्धित मजदूर और मालिक सघो के प्रति निधि होते थे। ये 22 निगम परिषदें सयुक्त रूप म राष्ट्रीय निगम परिषद् (National Council of Corporation) को गठित करती थी जिसको वाणिज्य और औद्योगिक विषयो म नियन्त्रण और नियमन की विस्तृत शक्तिया प्राप्त थी। राष्ट्रीय परिषद् की केन्द्रीय समिति मे न केवल सब के प्रतिनिधि होते थे बल्कि फासिस्ट दल का सचिव तथा फासिस्ट राज्य के सब मन्त्री भी सम्मिलित होते थे। शासन का अध्यक्ष, फासिस्ट दल का नेता (मुसोलिनी) निगम मन्त्रालय (Ministry of Corporation) का अध्यक्ष होता था। इस तरह वह न केवल राष्ट्र की राज नीतिक सस्थाओ का ही अध्यक्ष होता था बल्कि राष्ट के सगठित आर्थिक जीवन के सर्वोत्तम सगठन का अध्यक्ष भी होता था।

इस निगमात्मक व्यवस्था मे प्रत्येक व्यापार या उद्योग के क्षेत्र में केवल एक ही व्यवस्थापक मण्डल (syndicate) को मान्यता दी गई थी। यद्यपि व्यवस्था पक मण्डल की सदस्यता प्राप्त करना अनिवार्य नही था परन्तु उसके चन्दे की राशि को देना अनिवार्य था। इन व्यवस्थापक मण्डलो (syndicates) के कर्मचारी या तो फासिस्ट राजनीतिज्ञ थे या वे लोग थे जिनकी भक्ति फासिस्ट शासन के प्रति असदिग्ध थी। वास्तव मे श्रमिको और मालिको के ये समुदाय राजनीति के यन्त्रो के अतिरिक्त और कुछ नही थे। कानूनी तौर पर व्यवस्थापक मण्डल स्वायत्त थे परन्तु वास्तव म वे राज्य द्वारा सचालित थे और उनकी स्थिति कारागारो से अच्छी नही थी। ये शक्ति पर आधारित फासिस्ट शासन के व प्रचार यन्त्र थे जिनकी स्थिति प्रशासनिक अभिकरणो (administrative agencies) से बढ कर नही थी।

उपर्युक्त वर्णन से स्पष्ट है कि फासिस्ट शासन जिस प्रकार राजनीति के क्षेत्र मे व्यक्तिगत स्वतन्त्रता के स्थान पर एक दलीय राज्य, गुप्त पुलिस और बन्दी शिविरो पर बल देता है अर्थात असीमित राज्य सत्ता पर बल देता है उसी प्रकार आर्थिक क्षेत्र मे वह स्वतन्त्र और कल्याणकारी अर्थव्यवस्था को—चाहे वह पूँजीवादी हो

या समाजवादी या मिश्रित—अस्वीकार करना है। निगमात्मक राज्य का उद्देश्य "राज्य की शक्ति है, व्यक्ति का कल्याण नही।"[1] निगमात्मक अर्थ व्यवस्था का अन्तिम उद्देश्य "स्थायी युद्ध अर्थ व्यवस्था की तैयारी करना है" क्योंकि तीव्र और विस्तारवादी साम्राज्यवाद फासिस्ट विदेश नीति का अन्तिम उद्देश्य है।

उपर्युक्त निगमात्मक राज्य का दर्शन दो मान्यताओ पर आधारित है। पहली मान्यता यह है कि व्यक्ति को, शिष्ट शासक वर्ग के सदस्यो के अतिरिक्त, राजनीतिक दृष्टि से जुडा हुआ (articulate) नही होना चाहिए। उसे तो केवल एक श्रमिक, एक उद्योगपति, एक व्यापारी, एक किसान, एक डाक्टर, एक वकील इत्यादि के रूप मे ही जुडा हुआ होना चाहिए। अर्थात् उसे केवल एक व्यवसाय के साथ ही सम्बद्ध होना चाहिए, राजनीति के साथ नही। यह विचार इस मान्यता पर आधारित है कि सामान्य राजनीतिक समस्यायें इतनी जटिल होती हैं कि साधारण व्यक्ति इन्हे समझ नही सकता। इसलिए उसे केवल उस व्यापार या कारोबार के विषयो को ही समझने का प्रयास करना चाहिए जिसका प्रभाव प्रत्यक्ष रूप से उसके व्यवसाय या कारोबार पर पडता है। दूसरी मान्यता यह है कि शिष्ट वर्ग के सदस्य ही सामान्य समस्याओ को समझ सकते है जिनका प्रभाव सारे समाज पर पडता है। इसलिये शिष्ट वर्ग ही समाज पर शासन करने की योग्यता रखता है।

मैक्सी का मत है कि निगम की मान्यता "फासिस्ट वस्त्र पहने हुए श्रम सघवाद है।" परन्तु फासिस्ट निगम प्रणाली और श्रम सघवाद मे एक बहुत बडा अन्तर भी विद्यमान है। फासिस्ट निगम प्रणाली श्रम सघवाद की पूँजी विरोधी और राजनीति विरोधी भावनाओ से बहुत दूर है, यह श्रेणी समाजवादियो के स्वतन्त्र प्रजातान्त्रिक व्यवस्थापक मण्डलो से भी दूर है। इन दोनो के उद्देश्यो मे भी अन्तर है। जहाँ श्रम सघवाद के व्यवस्थापक मण्डल या मजदूर सघ वर्ग सघर्ष के लिए बनाये गये थे वहाँ फासिस्ट निगमो का निर्माण राज्य के लिए, समुदायो मे सहयोग की भावना पैदा करने के लिए और सम्पूर्ण आर्थिक जीवन पर राज्य के नियन्त्रण को स्थापित करने के लिए किया गया था। श्रम सघवाद मे केन्द्रीय स्थान व्यक्ति या राज्य का नही वल्कि किसी विशेष उद्योग मे व्यवस्थापक मण्डल और श्रमिक सघ का है। निगमात्मक व्यवस्था मे केन्द्रीय स्थान राष्ट्र का है। फासिस्ट निगम व्यवस्था बहुलवादियो की सीमित सम्प्रभुता के सिद्धान्त और वर्तमान राज्यो मे विद्यमान स्वतन्त्र निगमो की प्रणाली से भी भिन्न है। जहाँ बहुलवादी राज्य की सर्वोच्च सत्ता से इन्कार करते हैं और व्यावसायिक या अन्य समुदायो के स्वाभाविक क्षेत्र की बात करते हैं

1 "The objective of the Corporate State is the power of the State rather than the welfare of the individual."

वहाँ फासिस्टवादी राज्य के सर्वेसर्वा होने की बात करते हैं। इसी तरह जहाँ वर्तमान प्रजातान्त्रिक राज्यों में स्थापित निगमों पर गैर सरकारी स्वामित्व होता है और वे स्वतन्त्र रूप में अपने व्यवसाय में लगे हुए रहते हैं तथा वे सीमित दायित्व की कम्पनियाँ हैं वहाँ फासिस्ट निगम राज्य के प्रशासनिक अभिकरणों से अधिक कुछ नहीं। उनका न कोई स्वतन्त्र जीवन है और न कोई स्वतन्त्र इच्छा।

निगमात्मक राज्य का मूल्यांकन

फासिस्टवादी निगमात्मक राज्य प्रणाली को अन्य कई प्रणालियों से सर्वश्रेष्ठ मानते हैं। इस प्रणाली की अनेक आधारों पर प्रशंसा की गई है जिनमें से मुख्य निम्न हैं—

(1) इस प्रणाली ने राज्य के कार्यों के बारे में एक नवीन विचारधारा प्रस्तुत की है जिसमें पूँजीवाद (व्यक्तिवाद की यथेच्छाकारिता की कल्पना) और सर्वहारा वर्ग (समाजवाद की कल्पना) का पूर्ण समाधान हो जाता है। इस प्रणाली ने न केवल वर्गों के आपसी मतभेदों को दूर करने का प्रयास किया बल्कि दोनों वर्गों को राज्य के नियन्त्रण और नियमन के अन्तर्गत रख कर सच्चे आर्थिक राज्य का निर्माण किया।

(2) इस प्रणाली में जहाँ एक ओर व्यक्तिगत प्रेरणा (individual initiative) की पर्याप्त स्वतन्त्रता है वहाँ यह, दूसरी ओर, सबके हितों की सुरक्षा भी करती है। फासिस्टवादियों के लिए निगमात्मक प्रणाली का सबसे बड़ा लाभ यह है कि वे इसके द्वारा सारी अर्थ व्यवस्था का, राष्ट्रीय आत्म निर्भरता के रूप में, प्रबन्ध कर सकते हैं।

(3) इस प्रणाली ने बीसवीं शताब्दी के एक नये और सच्चे प्रजातन्त्र (व्यावसायिक प्रजातन्त्र) को जन्म दिया। राजनीति के क्षेत्र में एक नई प्रकार की प्रतिनिधित्व प्रणाली को जन्म दिया जिसके अन्तर्गत व्यक्ति अपने आर्थिक स्तर पर और आर्थिक हितों के आधार पर (जिस व्यवसाय या कारोबार में वह लगा हुआ है) राज्य से संपर्क स्थापित कर सकता है। इससे न केवल उसकी नागरिकता मूर्तरूप और वास्तविक बनती है बल्कि उसका महत्त्व भी बढ़ जाता है जबकि वर्तमान प्रचलित प्रजातान्त्रिक प्रतिनिधित्व की प्रणाली में नागरिक केवल राजनीतिक आदर्श (political abstraction) बन कर ही रह जाता है। इस प्रणाली में व्यवस्थापिका क्षेत्रीय इकाइयों और झगड़ालू राजनीतिक दलों पर संगठित नहीं होती बल्कि उसे राष्ट्रीय संवर्गों (national cadres) और परिपूरक हितों (complementary interests) के आधार पर संगठित किया जाता है। बार्कर के शब्दों में, "यह प्रणाली प्रजातन्त्रवादियों के लिए उत्तर थी, इसने क्षेत्रीय आधार पर मात्रात्मक प्रतिनिधित्व की प्रिय प्रणाली को विस्थापित कर दिया और उसके स्थान पर एक नई गुणात्मक प्रतिनिधित्व की प्रणाली

निणय बुद्धि नही दे सकता। विवेक या निर्णय बुद्धि कोई ऐसी चीज नही जिसे फासिस्ट स्कूलो या प्रशिक्षण के द्रो मे सिखाया जा सकता है। यह तो चरित्र, योग्यता, अनुभव और व्यक्तिगत विचारो पर निर्भर करता है। नेतृत्व की भावनायें स्वाभाविक होती है जिन्हे प्रदत्त नही किया जा सकता। ईसामसीह को धर्म की शिक्षा नही दी गयी थी, सुकरात किसी स्कूल मे नही गया था, चर्चिल कभी महाविद्यालय मे नही गया, लिकन को राजनीति म प्रशिक्षण नही मिला था परन्तु फिर भी इन लोगो को अपने अपने क्षेत्र मे विशेष गुण योग्यता और विवेक प्राप्त था।

(5) निगमात्मक प्रणाली का खोखलापन तो इस बात से भी सिद्ध हो जाता है कि बीस वर्षो तक इटली के लोगो के कल्याण की बलि देकर भी शक्तिशाली इटली साम्राज्य के स्वप्न का पूरा न किया जा सका। राष्ट्र को सुदृढ बनाना तो दूर इस व्यवस्था के फलस्वरूप इटली को अपनी बस्तियो (colonies) मे भी हाथ धोने पडे। फासिज्म के उदय के समय जो स्थिति इटली की थी ठीक वही स्थिति फासिज्म के अन्त के समय इटली की थी। निधनता निराशा और अव्यवस्था सवत्र व्याप्त थी। युद्ध के एक झटके को भी निगमात्मक राज्य प्रणाली सहन न कर सकी जिसके लिए इसे चतुराई से बनाया गया था।

फासिस्टवाद और साम्यवाद का तुलनात्मक अध्ययन
(A Comparative Study of Fascism and Communism)

फासिस्टवाद और साम्यवाद बीसवी शताब्दी की दो महत्त्वपूर्ण विचारधारायें हैं। दोनो विचारधाराओ ने अपने अपने अनुयायियों से अपूर्व आत्म-त्याग और भगीरथ प्रयत्नो की माँग की। दोनो विचारधारायें यद्यपि एक दूसरे से अपने-अपने उद्देश्यो मे भिन्न हैं परन्तु साधना म समान हैं।

फासिस्टवाद और साम्यवाद की समानताओ और असमानताओ को निम्न प्रकार से व्यक्त किया जा सकता है —

(अ) समानताएं (Similarities)

1 दोनों का स्रोत हीगलवाद है

फासिस्टवाद और साम्यवाद दोनो का स्रोत हीगलवाद है। जहा फासिस्टवादियो ने हीगल के राज्य के रहस्यवादी सिद्धान्त से प्रेरणा पाई वहा साम्यवादियो ने उसकी द्वन्द्वात्मक प्रणाली से प्रेरणा पाई। मुसोलिनी ने हीगल की भांति राज्य को नैतिक तथा आध्यात्मिक संस्था माना तथा मार्क्स ने हीगल की द्वन्द्वात्मक प्रणाली के आधार पर इतिहास की भौतिकवादी व्याख्या की।

को स्थापित कर दिया जो चुनाव की व्यावसायिक प्रणाली की उनकी द्वारा राष्ट्र के अंतिम अवयवों को निकालन की प्रतिज्ञा करती है।"

यद्यपि फासिस्टवादी अपने निगमात्मक राज्य के गुणों का बखान विस्तृत रूप से करते हैं परन्तु प्रजातन्त्रवादी इस निगमात्मक राज्य को कई आधारों पर अस्वीकार करते हैं जिनमें से मुख्य निम्न प्रकार से हैं —

(1) सर्वप्रथम प्रजातन्त्रवादी फासिस्ट निगमात्मक राज्य की इस मान्यता को स्वीकार नहीं करते कि साधारण व्यक्ति को राजनीतिक दृष्टि से जुड़ा हुआ नहीं होना चाहिए। प्रजातन्त्रवादी व्यक्ति को इतना योग्य अवश्य मानता है कि वह प्रत्येक क्षेत्र में—क्या राजनीतिक, क्या सामाजिक, क्या आर्थिक या व्यावसायिक—क्रियाशील हो सकता है।

(2) प्रजातन्त्रवादियों का निगमात्मक राज्य पर यह आरोप है कि यह आर्थिक समस्याओं को अन्य समस्याओं से पूर्णतया पृथक मानता है जबकि वास्तविकता इसके ठीक विपरीत है। आर्थिक, राजनीतिक, सामाजिक यहाँ तक कि मनोवैज्ञानिक समस्यायें भी एक दूसरे से इतनी घुली मिली होती हैं कि उनको एक दूसरे से पूर्णतया पृथक करना सम्भव नहीं। उदाहरणतः शुल्क पद्धति (tariff) केवल मे तो शुद्ध आर्थिक विषय है परन्तु इसका प्रभाव प्रत्यक्ष रूप से राज्यों के आपसी राजनीतिक और राजनयिक (diplomatic) सम्बन्धों पर पड़ता है। इसी प्रकार राज्यों की आर्थिक सहायता का प्रश्न केवल शुद्ध आर्थिक प्रभावों से ही युक्त नहीं होता बल्कि इसके गम्भीर राजनीतिक सैनिक, साम्राज्यीय प्रभाव भी हो सकते हैं। इन सब उदाहरणों से स्पष्ट हो जाता है कि फासिस्ट निगमात्मक राज्य की यह मान्यता कि व्यक्ति का केवल आर्थिक या व्यावसायिक दृष्टि से राज्य से सम्बन्धित होना चाहिए गलत है।

(3) प्रजातन्त्रवादी फासिस्टवादियों के इस विचार को स्वीकार नहीं करता कि विशिष्ट वर्ग ही शासन की सामान्य समस्याओं को समझने की योग्यता रखता है। प्रजातन्त्रवादी इस बात में विश्वास करता है कि प्रत्येक व्यक्ति समझ सकता है कि उसकी समस्यायें क्या हैं? शिष्ट वर्ग के लिए साधारण व्यक्तियों की समस्याओं का समझना सम्भव नहीं। वे लोग जो शीशे के घरों में रहते हैं झोपड़ी वालों की कठिनाइयों का अनुभव नहीं कर सकते क्योंकि जूता पहनने वाला ही जानता है कि जूता कहाँ दर्द करता है।

(4) प्रजातन्त्रवादी फासिज्म की इस मान्यता को भी स्वीकार नहीं करता कि सामान्य हित के सम्बन्ध में शिष्ट वर्ग के निर्णय साधारण व्यक्तियों के निर्णयों से श्रेष्ठ होते हैं और इसलिए शिष्ट वर्ग को शासन करने का अधिकार है। प्रजातन्त्रवादियों का विश्वास है कि शिक्षा या प्रशिक्षण केवल ज्ञान प्रदान कर सकता है विवेक या

निणय बुद्धि नही दे सकता। विवेक या निणय बुद्धि कोई ऐसी चीज नही जिसे फासिस्ट स्कूलो या प्रशिक्षण केन्द्रो म सिखाया जा सकता है। यह तो चरित्र, योग्यता, अनुभव और व्यक्तिगत विचारो पर निभर करता है। नेतृत्व की भावनायें स्वाभाविक होती है जिन्हे प्रदत्त नही किया जा सकता। ईसामसीह को धर्म की शिक्षा नही दी गयी थी, सुकरात किसी स्कूल म नही गया था, चर्चिल कभी महाविद्यालय मे नही गया, लिंकन को राजनीति मे प्रशिक्षण नही मिला था परन्तु फिर भी इन लोगो को अपने अपने क्षेत्र म विशेष गुण, योग्यता और विवेक प्राप्त था।

(5) निगमात्मक प्रणाली का खोखलापन तो इस बात से भी सिद्ध हो जाता है कि बीस वर्षों तक इटली के लोगो के कल्याण की बलि देकर भी शक्तिशाली इटली साम्राज्य के स्वप्न को पूरा न किया जा सका। राष्ट्र को सुदृढ बनाना तो दूर इस व्यवस्था के फलस्वरूप इटली को अपनी उपनिवेशो (colonies) से भी हाथ धोने पड़े। फासिज्म के उदय के समय जो स्थिति इटली की थी ठीक वही स्थिति फासिज्म के अन्त के समय इटली की थी। निधनता निराशा और अव्यवस्था सवत्र व्याप्त थी। युद्ध के एक झटके को भी निगमात्मक राज्य प्रणाली सहन न कर सकी जिसके लिए इस चतुराई से बनाया गया था।

फासिस्टवाद और साम्यवाद का तुलनात्मक अध्ययन
(A Comparative Study of Fascism and Communism)

फासिस्टवाद और साम्यवाद बीसवी शताब्दी की दो महत्वपूण विचारधारायें हैं। दोनो विचारधाराओ ने अपने अपने अनुयायियो से अपूव आत्म-त्याग और भागीरथ प्रयत्नो की मांग की। दोनो विचारधारायें यद्यपि एक दूसरे से अपने-अपने उद्देश्यो मे भिन्न हैं परन्तु साधनो मे समान हैं।

फासिस्टवाद और साम्यवाद की समानताओ और असमानताओ का निम्न प्रकार से व्यक्त किया जा सकता है —

(अ) समानताएँ (Similarities)

1 दोनों का स्रोत हीगलवाद है

फासिस्टवाद और साम्यवाद दोनो का स्रोत हीगलवाद है। जहाँ फासिस्टवादियो ने हीगल के राज्य के रहस्यवादी सिद्धान्त से प्रेरणा पाई वहाँ साम्यवादियो ने उसकी द्वन्द्वात्मक प्रणाली से प्रेरणा पाई। मुसोलिनी ने हीगल की भांति राज्य को नैतिक तथा आध्यात्मिक सस्था माना तथा मार्क्स ने हीगल की द्वन्द्वात्मक प्रणाली के आधार पर इतिहास की भौतिकवादी व्याख्या की।

को स्थापित कर दिया जो चुनाव की व्यावसायिक प्रणाली की उननी द्वारा राष्ट के अंतिम अवयवों को निकालन की प्रतिना करती है।"

यद्यपि फासिस्टवादी अपन निगमात्मक राज्य क गुणों का बखान विस्तृत रूप से करते है परन्तु प्रजातन्त्रवादी इस निगमात्मक राज्य का कई आधारों पर अस्वीकार करते हैं जिनमे से मुख्य निम्न प्रकार स हैं —

(1) सवप्रथम प्रजातन्त्रवादी फासिस्ट निगमात्मक राज्य की इस मान्यता को स्वीकार नही करते कि साधारण व्यक्ति को राजनीतिक दृष्टि से जुड़ा हुआ नहीं होना चाहिए। प्रजातन्त्रवादी व्यक्ति को इतना योग्य अवश्य मानता है कि वह प्रत्यक क्षेत्र मे—क्या राजनीतिक क्या सामाजिक क्या आर्थिक या व्यावसायिक—क्रियाशील हो सकता है।

(2) प्रजातन्त्रवादियो का निगमात्मक राज्य पर यह आरोप है कि यह आर्थिक समस्याओं को अन्य समस्याओं से पूणतया पृथक मानता है जबकि वास्तविकता इसके ठीक विपरीत है। आर्थिक राजनीतिक, सामाजिक यहा तक कि मनोवैज्ञानिक समस्याये भी एक दूसरे से इतनी घुली मिली होती ह कि उनको एक दूसरे से पूणतया पृथक करना सम्भव नही। उदाहरणत शुल्क पद्धति (tariff) लगाने मे तो शुद्ध आर्थिक विषय है पर तु इसका प्रभाव प्रत्यक्ष रूप स राज्यों के आपसी राजनीतिक और राजनयिक (diplomatic) सम्बन्धो पर पडता है। इसी प्रकार राज्यो की आर्थिक सहायता का प्रश्न केवल शुद्ध आर्थिक प्रभावों स ही युक्त नहीं होता बल्कि इसके गम्भीर राजनीतिक सैनिक, साम्राज्यीय प्रभाव भी हो सकते है। इन सब उदाहरणो स स्पष्ट हो जाता है कि फासिस्ट निगमात्मक राज्य की यह मान्यता कि व्यक्ति को केवल आर्थिक या व्यावसायिक दृष्टि स राज्य स सम्बन्धित होना चाहिए गलत है।

(3) प्रजातन्त्रवादी फासिस्टवादियों के इस विचार को स्वीकार नहीं करता कि विशिष्ट वग ही शासन की सामान्य समस्याओं को समझने की योग्यता रखता है। प्रजातन्त्रवादी इस बात म विश्वास करता ह कि प्रत्यक व्यक्ति समझ सकता है कि उसकी समस्यायें क्या ह ? शिष्ट वग क लिए साधारण व्यक्तियो की समस्याओं का समझना सम्भव नही। व लोग जो शीश क घरो म रहते हैं झोपडी वालो की कठिनाइयो का अनुभव नही कर सकते क्योकि जूता पहनने वाला ही जानता है कि जूता कहाँ दद करता है।

(4) प्रजातन्त्रवादी फासिज्म की इस मान्यता का भी स्वीकार नहीं करता कि सामान्य हित के सम्बन्ध म शिष्ट वग क निर्णय साधारण व्यक्तियो क निर्णय श्रेष्ठ होते है और इसलिए शिष्ट वग को शासन करन का अधिकार है। प्र यादियो का विश्वास है कि शिक्षा या प्रशिक्षण द्वारा ज्ञान प्राप्त कर सकता

2 दोनों युद्ध के बाद की परिस्थितियों के परिणाम हैं

फासिस्टवाद और साम्यवाद दोनों ही प्रथम महायुद्ध के बाद की परिस्थितियों के परिणाम हैं। दोनों का जन्म, यदि पूर्णत नहीं तो अधिकांशत अवश्य ही, उस सामाजिक और आर्थिक निराशा के वातावरण से हुआ जो युद्ध की स्थिति का प्रत्यक्ष परिणाम था। दोनों आन्दोलनों के नेताओं ने अपने अपने राज्य में अस्त व्यस्त व्यवस्था से लाभ उठा कर अपनी शक्ति को दृढ़ कर लिया।

3 दोनों में साधनों की समानता है

फासिस्टवाद और साम्यवाद दोनों ही अपने उद्देश्यों को प्राप्त करने के लिए एक जैसे साधनों को अपनाते हैं। दोनों ने राजनीतिक सत्ता को प्राप्त करने के लिए हिंसक साधनों का प्रयोग किया और दोनों ही राजनीतिक कार्य के लिए हिंसक साधनों को सर्वोच्च साधन मानते हैं। दोनों ही हिंसा और शक्ति को नैतिक और स्वाभाविक रूप में प्रस्तुत करते हैं। दोनों की यह मान्यता है कि जब हिंसा मवाद (रोग) को मिटाती है तो वह स्वाभाविक, पवित्र और नैतिक है।

4 दोनों प्रजातन्त्र और उदारवाद का विरोध करते हैं

फासिस्टवाद और साम्यवाद दोनों प्रजातन्त्र, उदारवाद के सिद्धान्तों तथा उन पर आधारित संस्थाओं को स्वीकार नहीं करते। दोनों ही इनकी खिल्ली उड़ाते हैं तथा इनका खण्डन करते हैं। दोनों संसदात्मक प्रणाली को मूर्ख, भ्रष्ट, धीमी गति से चलने वाली, अयोग्य और अकुशल कह कर निन्दित करते हैं। इनके लिए संसदें "बातें करने वाली दुकानों" के अतिरिक्त कुछ नहीं।

5 दोनों विरोधियों का सफाया चाहते हैं

फासिस्टवाद और साम्यवाद अपने-अपने विरोधियों को शत्रु की श्रेणी में रखते हैं। उनके लिए, संवैधानिक सरकारों की भाँति, "विरोधी" नाम की कोई चीज नहीं। इटली में मुसोलिनी ने समस्त विरोधियों को अपना शत्रु समझ कर कुचल डाला, यहाँ तक कि संसद सदस्यों और मन्त्रियों तक को भी नहीं छोड़ा गया। गियाकोमो मैटियोटी जो समाजवादी दल का मन्त्री और संसद का सदस्य था और जो निरन्तर सरकार से प्रश्न पूछ कर उसकी भर्त्सना करता था, का फासिस्टवादियों ने अपहरण किया और उसकी हत्या करदी। इसी प्रकार रूस में लेनिन तथा बोलशेविक साथियों ने विरोधियों को कुचल डाला, यहाँ तक कि मनशेविकों जैसे क्रान्तिकारियों को, जो लेनिन के साथी थे भी नहीं छोड़ा गया।

6 दोनों निरपेक्ष व्यक्तिगत स्वतन्त्रता को स्वीकार नहीं करते

फासिस्टवाद और साम्यवाद दोनों किन्हीं ऐसे निरपेक्ष, अहरणीय अधिकारों को स्वीकार नहीं करते जिन्हें राज्य नियन्त्रित नहीं कर सकता। दोनों अधिकारों के

स्थान पर कर्तव्यो पर बल देते हैं। दोनो प्रचार के यन्त्रा—प्लेटफार्म (मंच), भाषण समाचार पत्र, पत्रिकाओ, छापाखाना, शिक्षा केन्द्रो, इत्यादि—पर राज्य का एकाधिकार समझते हैं। दोनो स्वतन्त्र विचार विमर्श, तर्क वितर्क की आज्ञा नही देते। दोनो मे स्वतन्त्र आलोचना को देशद्रोही समझा जाता है। इस तरह एक म राष्ट्र के नाम पर और दूसरे मे समाजवादी व्यवस्था के नाम पर व्यक्तियो से अपने व्यक्तित्व की बलि देने के लिए कहा जाता है।

7 दोनों मे दल और शासन मे तादात्म्य है

फासिस्टवाद और साम्यवाद दोनो व्यवस्थाओ म दल और शासन का तादात्म्य रहता है। फासिस्टवाद मे फासिस्ट दल और साम्यवाद मे साम्यवादी दल शासन पर छाया रहता है। विरोधी दलो का या तो सफाया कर दिया जाता है या उन्हे गैर कानूनी करार दे दिया जाता है। दोनो मे दल के सदस्य ही शासन के मुख्य पदो पर नियुक्त होते हैं, दल ही शासन की नीतियो का निर्धारण करता है, शासन तो केवल उन्हे कार्यान्वित कर सकता है। दोनो मे दल ही अभिजात (शिष्ट) वर्ग है और उसी के सदस्य शासन करने की योग्यता रखत है। दोनो म दल का नेता शासन के प्रमुख पद पर विराजमान होता है। दोनो मे नेता का काम अपने अनुयायियो को सही राह दिखाना, उन्हे प्रशिक्षण देना तथा यदि उनकी भक्ति स्वाभाविक न हो तो शक्ति द्वारा उस भक्ति को प्राप्त करना है।

8 दोनों में प्रभावशाली नेता हुए है

फासिस्टवाद और साम्यवाद दोनो आन्दोलनो म उग्र, साहसी, चतुर एव सार्वजनिक भावना पूर्ण नेता रहे है। फासिज्म मे मुसोलिनी, राष्ट्रीय समाजवाद मे (जर्मन छाप का फासिस्टवाद) हिटलर और साम्यवाद मे लेनिन तथा स्टालिन। दोनो म नेताओ न अपने-अपने देश को प्राचीन शासको के अन्याय और कुशासन से बचाने के लिए वहाँ की जनता को नई भावनाओ से प्रेरित किया। फासिस्ट नेताओ ने इटली राष्ट्र के लिए "एकता, शक्ति और गौरव" की भावनाये प्रस्तुत की और साम्यवादी नेताओ ने रूसी जनता के लिए "स्वतन्त्रता, समानता और सुख' की भावनायें प्रस्तुत की।

9 दोनों संघर्ष मे विश्वास करते हैं

फासिस्टवाद और साम्यवाद दोनो ही संघर्ष को स्वाभाविक व अनिवार्य मानते हैं। जहाँ फासिस्टवाद राष्ट्रीय संघर्षों मे विश्वास करता है वहा साम्यवाद वर्ग संघर्षों मे विश्वास करता है।

10 दोनों सर्वसत्तावादी हैं

फासिस्टवाद और साम्यवाद दोनो ही निरकुश, अनुत्तरदायी, निरपेक्ष शासन मे विश्वास करते हैं, दोनो व्यक्ति के स्थान पर राष्ट्र की श्रेष्ठता पर बल देते हैं, दोनो व्यक्तिगत निर्णय और सार्वजनिक नियन्त्रण के क्षेत्र के भेद को समाप्त कर देते

हैं, दोनों में शिक्षा पद्धति को अपने सिद्धान्तों के प्रचार के रूप में प्रयोग किया जाता है दोनों ऐसे दावे करते हैं जिन्हें पूरा नहीं किया जाता। सेबाइन के शब्दों में, "दोनों की नीति भी समान थी। वे अन्धाधुन्ध दावे करते थे। वे विरोधियों को गालियाँ देते थे। यदि वे खुद कोई रियायत करते थे तो उसे स्थायी चाल समझते थे और यदि उनका विरोधी कोई रियायत करता था तो उसे कमजोरी का चिह्न मानते थे दोनों राजनीति को शक्ति प्रदर्शन का साधन मानते थे।"[1] दोनों व्यवस्थाओं में गुप्तचरों, गुप्त पुलिस, शिविर केन्द्रों का बोलबाला रहता है। दोनों में, इस तरह, आतंक पूर्ण वातावरण रहता है।

(ब) असमानताएँ (Differences)

उपर्युक्त समानताओं के बावजूद भी फासिस्टवाद और साम्यवाद में मूल विरोध है। वास्तव में फासिस्टवाद का उदय ही साम्यवाद के विरोध में हुआ, इटली की जनता ने फासिस्टवाद का समर्थन ही साम्यवाद के लाल आतंक से भयभीत होकर किया। इन दोनों विचारधाराओं में भेदों को निम्न प्रकार से व्यक्त किया जा सकता है—

1 फासिस्टवाद अबुद्धिवाद है, साम्यवाद बुद्धिवाद है

फासिस्टवाद अवसरवाद है जो समय समय पर सनकीवाद (cynicism) का स्वरूप धारण कर लेता है। इसमें विवेक तथा बौद्धिक तर्क वितर्क या विचार विमर्श का कोई स्थान नहीं, यह बईमानी, धोखाधड़ी या झूठ का प्रपंच है। सबाईन के शब्दों में, फासिस्टवाद "मूलत एक अबौद्धिक स्वप्न है जो कि अनुभूति अथवा भावना द्वारा उत्पन्न किया हुआ एक रहस्य प्रस्तुत करता है जिसे केवल इच्छा और विश्वास के द्वारा सत्य बनाया जाता है।" दूसरे शब्दों में, फासिस्टवाद रहस्यवाद और रोमांसवाद है। यह व्यक्ति को विवेकहीन प्राणी मानता है, यह विशुद्ध रूप से बुद्धि विरोधी और मेजिनीवादी है। दूसरी ओर, साम्यवाद नैतिक और बौद्धिक दृष्टि से फासिस्टवाद से उच्चतर अवस्था में है। इसका उद्देश्य बड़ा उदार एवं कल्याणकारी है। यह एक ऐसी चीज है जिस पर तर्क वितर्क किया जा सकता है, इसका बौद्धिक मूल्यांकन किया जा सकता है। यह व्यक्ति को मूलत विवेकहीन प्राणी नहीं मानता। सबाइन के शब्दों में, साम्यवादी दर्शन कभी भी बुद्धिविरोधी नहीं रहा। साम्यवाद का ईमानदारी से विश्वास था कि द्वन्द्वात्मक पद्धति तर्क का साधन है, इसके आधार पर विभिन्न कार्यों और व्यापारों की युक्तिसंगत रीति से परख हो सकती है।"[2]

---

1 Sabine G H *A History of Political Theory*, p 751
2 Sabine, G H *Ibid*, p 752

2 फासिस्टवाद के सिद्धान्तो का कोई घोषणा पत्र नही, साम्यवाद के सिद्धान्तो के स्पष्ट घोषणा पत्र हैं

फासिस्टवाद का ऐसे कोई घोषणा पत्र नही जिन्हे फासिज्म के सिद्धान्तो के रूप म प्रस्तुत किया जा सके परन्तु साम्यवाद के सिद्धान्त मार्क्स द्वारा रचित कम्युनिस्ट घोषणा पत्र (Communist Manifesto) और दास केपिटल (Das Capital) मे स्पष्ट लिपिबद्ध है। फासिज्म मे जिन तत्त्वो को मिलाने का प्रयास किया गया वे एक दूसरे से इतने भिन्न हैं कि उनम कोई सगति नही। फासिज्म के सिद्धान्तो को, यदि उन्हें यह सज्ञा दी जा सकती है, तो केवल परिस्थिति विशेष के लिए गढा जाता था और परिस्थिति समाप्त होने पर यदि उसकी आवश्यकता नही होती थी, तो उसे त्याग दिया जाता था। फासिज्म का स्वरूप इस तरह काम चलाऊ (ad hoc) है। मुसोलिनी के शब्दो मे, 'हम किन्ही पूर्वाग्रही प्रोग्राम मे विश्वास नही करते मेरा कार्यक्रम काय ह कोरी बातें करना नही फासिस्ट सिद्धान्त केवल आज के लिए है हम अपने आपको इस बात की छूट देत ह कि समय, स्थान और वातावरण के अनुसार कुलीनतन्त्रीय बनें या प्रजातन्त्रवादी अनुदारवादी बने या प्रगतिवादी, प्रतिक्रियावादी बन या क्रान्तिकारी, वैधानिकवादी बनें या अवधानिकवादी।' इतना ही नही फासिस्ट विचारधारा तो फासिस्ट क्रा शासन के बाद म आयी जिसका निर्माण फासिस्टवादियो न अपने कार्यों और अनुभवो को उचित सिद्ध करने के लिय किया। दूसरी ओर, साम्यवादी आन्दोलन मार्क्स, एजल्स और लेनिन की पीढ़ियो के अनुसन्धान और तर्क वितर्क का फल था। इन्हे स्थिति विशेष के लिए नही बनाया गया था। इसके अपने निश्चित सिद्धान्त है जिनके कारण इसमे असगति नही। इस तरह पहले साम्यवादी सिद्धान्तो का निर्माण किया गया बाद म साम्यवादी आन्दोलन शुरू हुआ।

3 फासिस्टवाद मानव असमानताओ पर आधारित ह, साम्यवाद मानव समानता पर आधारित है

फासिज्म समाज के वर्तमान ढाचे म परिवर्तन नही चाहता। वह सामाजिक विषमताओ को ज्यो का त्यो बनाये रखना चाहता है। इतना ही नही वह फासिस्ट समाज म विषमताओ को प्रतिष्ठित करता है। फासिस्ट सहिता म, एबन्स्टीन के शब्दो म "व्यक्ति स्त्रियो से श्रेष्ठ हैं, सैनिक नागरिको से श्रेष्ठ है, फासिस्ट दल के सदस्य अन्य दलो के सदस्यो से श्रेष्ठ ह, स्वय का राष्ट्र अन्य राष्ट्रो से श्रेष्ठ है शक्तिशाली निर्बल से श्रेष्ठ है, विजेता पराजित से श्रेष्ठ है।"[1] इस तरह फासिज्म

2 Ebenstein William *Today s Isms*, p 106

अधिकारों में भी कमी करता है। यह धर्म और ... को समाप्त ही कर देना चाहता है क्योंकि ये व्यवस्थायें शोषण की प्रक्रिया को स्थायी बनाती हैं। दूसरी ओर, फासिस्टवादी धर्म के साथ समझौता कर लेते हैं और अपने उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए उसका पूरा प्रयोग करते हैं।

9 फासिस्टवाद जातीय शुद्धता पर बल देता है, साम्यवाद जातीय भिन्नता को स्वीकार करता है

साम्यवाद जातीय भिन्नताओं को स्वीकार करता है तथा एक जाति पर अन्य किसी जाति के आधिपत्य की भर्त्सना करता है। वह किसी जाति का देश निकाला नहीं चाहता। यही कारण है कि रूस में अनेक राष्ट्र, उपराष्ट्र एवं जातियाँ विद्यमान हैं और प्रत्येक को अपनी सांस्कृतिक स्वतन्त्रता प्राप्त है। परन्तु दूसरी ओर, फासिस्टवादी जाति की शुद्धता पर बल देते हैं, विशेष कर जर्मन नाजीवादी जातियों का (विशेषकर यहूदी जाति का) सफाया चाहते हैं। फासिज्म की काल्पनिक गाथा में "राष्ट्र" और "जाति" के प्रेरणाकारी तत्वों का विशेष महत्त्व है।

10 साम्यवाद जीवन दर्शन है, फासिस्टवाद मृत्यु दर्शन है

साम्यवाद, कम से कम सिद्धान्त में, शान्ति, स्वतन्त्रता और न्याय का समर्थन करता है। दूसरी ओर, फासिस्टवादी इस बात में विश्वास करते हैं कि व्यक्ति तभी अपने सर्वोत्कृष्ट स्वरूप में होता है जब वह तोड़-फोड़ करता है, जब वह संघर्ष में संलग्न है, जब वह युद्ध में रत है। साम्यवाद 'जीओ और जीने दो' के सिद्धान्त में विश्वास करता है, फासिस्टवाद दूसरों को मार कर, पराजित कर, जीने में विश्वास करता है।

11 फासिस्टवाद वर्ग सहयोग पर बल देता है, साम्यवाद वर्ग संघर्ष पर

साम्यवाद वर्ग संघर्ष पर अत्यधिक बल देता है। उसका विश्वास है कि अमीर गरीब में, सम्पन्न और विपन्न (अस्तिमान और नास्तिमान में—Haves and Haves not) में किसी प्रकार का सहयोग सम्भव नहीं। इसलिए साम्यवाद पूँजीपति वर्ग का सफाया चाहता है। परन्तु फासिस्टवाद वर्गों के सहयोग पर बल देता है और उनके भेदों को समाप्त कर देना चाहता है। उसका विश्वास है कि पूँजीपति और श्रमिक के ऐसे कोई भेद नहीं जिन्हें राज्य हल नहीं कर सकता। फासिस्टवादी निजी सम्पत्ति के अधिकारों का भी सम्मान करते हैं। यही कारण है कि जहाँ पश्चिम के पूँजीपतियों ने फासिस्टवाद का साथ दिया वहाँ उन्होंने साम्यवाद का विरोध किया।

12 फासिस्टवादी घोर राष्ट्रवादी हैं

इनमें राष्ट्रवाद की भावना कूट-कूट कर भरी हुई है। साम्यवादी राष्ट्रवाद को पूँजीवाद की कृत्रिम रचना मानता है। राष्ट्र की सेवा करना, उसकी प्रतिष्ठा और गौरव के लिए आत्म बलिदान देना फासिस्टवादी के लिए सर्वोत्तम कार्य है। एक

सच्चा साम्यवादी राज्य की अपेक्षा अपने दल के प्रति अधिक भक्ति रखता है, उसके लिए राष्ट्रीय सीमाओं का कुछ महत्त्व नही, अन्तर्राष्ट्रीय सर्वहारा वर्ग के हित ही उसके लिये सब कुछ हैं।

फासिस्टवाद का मूल्यांकन

फासिस्टवाद के बारे मे दो प्रकार की विचारधारायें प्रचलित हैं। एक विचार धारा वह है जो अधिनायकतन्त्र मे विश्वास करते हुए उसकी प्रशंसा करती है। इसके प्रशंसकों के अनुसार फासिज्म ने इटली को उसके पतन से मुक्ति दिलाई, इसने निर्जीव व्यक्तियों मे एक नया जीवन भर दिया, देश की आर्थिक स्थिति को स्थिर किया, शासन मे दक्षता पैदा कर दी, योजनाओं द्वारा बंजर भूमि को उपजाऊ बना दिया, उद्योगों का समुचित विकास किया, श्रमिकों के सामाजिक स्तर म सुधार किया, श्रम और पूँजी मे सहयोग उत्पन्न किया, चर्च के साथ समझौता कर उसके साथ संघर्ष को समाप्त किया, इत्यादि। यह कहा जा सकता है कि मुसोलिनी ने संकट काल मे इटली मे अव्यवस्था को व्यवस्था म परिवर्तित किया, इटली राष्ट्र का निर्माण किया, जनता मे एक नवीन जीवन स्फूर्ति और एकता का संचार किया तथा उसके अन्तर्राष्ट्रीय सम्मान को पुन स्थापित किया। नाल्टे अर्नस्ट के शब्दों म, "हडतालें जादू की भाँति बन्द हो गइ, गाडियाँ समय पर चलने लगी और लोकशाही कार्य करने लग गइ', "सारे इटालियन जीवन मे नयी शक्ति पैदा कर दी।"[1]

दूसरी विचारधारा वह है जो प्रजातन्त्र और उदारवाद मे विश्वास करते हुए फासिज्म की कटु आलोचना करती है। इस विचारधारा के अनुसार फासिज्म ने राष्ट्र पर सैनिक अनुशासन लाद कर वर्तमान सभ्यता के चक्र को मोडने का प्रयास किया, इसने व्यक्ति को आदिम सभ्यता की अवस्था म पहुँचाना चाहा, इसने व्यक्ति की राज्य रूपी देवी पर बलि चढा दी, इसने व्यक्तिगत अधिकारों के स्थान पर उसके कर्त्तव्यों की व्याख्या की। इस तरह फासिज्म ने न केवल व्यक्ति की आत्मा का हनन करना चाहा बल्कि उसके मस्तिष्क को भी विकृत बनाने का प्रयास किया। आलोचकों की दृष्टि मे फासिज्म 'धोखाधडी', अवसरवादिता', काम चलाऊ और 'अतीत के पागलपन' के अतिरिक्त कुछ नही।

जिन आधारों पर फासिज्म की तीव्र आलोचना की गई है उनमे से मुख्य निम्न हैं —

1 फासिज्म सिद्धान्त रहित कोरा अवसरवाद है

फासिज्म की यह कह कर कटु आलोचना की गई है कि यह कोरा अवसर-

---

1 Nolte Ernst *Three Faces of Fascism*, Tr by Leila Vennewitz, p 214

स्थिति म एव निदय आवश्यक्ता हो सकती है स्वभाव नही, मानव की सर्वोत्कृष्ट शक्तियाँ युद्ध काल मे नही शान्ति काल म प्रकट होती हैं।

4 फासिज्म प्रगति का विरोधी है

मानव सभ्यता और सस्कृति का विकास स्वतन्त्र वातावरण मे ही सम्भव है परन्तु फासिज्म स्वतन्त्र वातावरण से इन्कार कर प्रगति को रोकना चाहता है। कोकर के शब्दो म, 'किसी राष्ट्र के सावजनिक एव सास्कृतिक जीवन का अत्यन्त केन्द्रीभूत एव दमनकारी निर्देशन साहित्य ज्ञान विज्ञान तथा कला के विकास की सम्भावना को नष्ट कर देता है।'[1] आइन्स्टाईन के शब्दो मे, 'अधिनायक तन्त्र का अथ है सब ओर से प्रतिबन्ध और उसके परिणाम स्वरूप निरथक प्रयत्न। विज्ञान केवल स्वतन्त्र भाषण के वातावरण म ही अभिवृद्धि कर सकता ह।'[2]

5 फासिज्म मे मानवीय मूल्यो का अभाव है

फासिज्म प्रजातन्त्र तथा उदारवाद के नियमो तथा उन पर आधारित सस्थाओ को स्वीकार नही करता वह न तो व्यक्ति के अधिकारो को स्वीकार करता है और न व्यक्ति की समानता को। वह मानव की कानून को स्वाभाविक तौर पर मानने की प्रवृत्ति को भी नही मानता। परन्तु इन सब बातो से इन्कार करना मानवीय मूल्यो से इन्कार करना है और उसे पशु बनाना है। फासिस्टवादियो का यह कहना भी मिथ्या है कि प्रजातन्त्र और ससदवाद का युग बीत चुका। वास्तविकता तो यह है कि अधिकाश राज्यो ने प्राचीन अधिनायकवादी सरकारो का तिरस्कार कर प्रजातान्त्रिक प्रणालियो को अपनाया है। यदि अधिनायकतन्त्र मे कोई मानवीय मूल्य होते तो स्वय फासिस्ट वादी राज्य उन्हे क्यो पुराने वस्त्रो की तरह त्याग देते। उन्होने इन्हें इसलिए त्याग दिया कि अधिनायकवादी शासन मानव हितो के रक्षक नही, भक्षक है, सामाजिक भावनाओं के हित साधक नही, विरोधी है। प्रजातान्त्रिक मूल्य—स्वतन्त्रता, समानता, बन्धुत्व इत्यादि—ही वास्तविक मानवीय मूल्य है।

6 फासिज्म सवसत्तावाद है

राष्ट्र को उचित महत्त्व देना गलत नही परन्तु उसे रहस्यवादी देवता मानकर उसकी पूजा करना अवश्य ही हानिकारक है। मानव अपने व्यक्तित्व की अभिव्यक्ति केवल राज्य म ही नही करता वल्कि अन्य समुदायो म भी करता है जिसका वह सदस्य है। फासिस्टवादियो ने राज्य को व्यापक मानकर मानव के अन्य समुदायो की स्वाभाविक प्रवृत्तियो की उपेक्षा की। वहुलवादियो ने जिस तथ्य के महत्त्व को बताने का प्रयास किया फासिस्टवादी उससे इन्कार करते है।

---

1 Coker *Ibid*, p 490
2 Ebenstein, Albert Quoted in Coker s *Ibid* p 490

7 फासिस्ट व्यवस्था अराजक व्यवस्था है

फासिज्म की यह कह कर प्रशंसा की गयी है कि इसने अव्यवस्था को व्यवस्था म बदल दिया परन्तु वास्तविकता कुछ और ही है क्योकि अधिनायकवाद का स्वरूप तो नग्न शक्ति होता है, विवेक, न्याय और ईश्वर नही। इसमे सिवाय नेता या फासिस्ट दल के और कोई स्वतन्त्र न्यायिक संस्था नही जहा व्यक्ति को निष्पक्ष न्याय मिल सके क्योकि इस व्यवस्था मे तर्क वितर्क और विचार विमर्श का कोई स्थान नही। ज्योही शक्ति का आवरण तितर बितर होता है त्योही राष्ट्र अव्यवस्थित स्थिति मे पहुँच जाता है जैसा कि इटली और जर्मनी मे मुसोलिनी और हिटलर की मृत्यु के बाद हुआ।

8 फासिज्म जन प्रभुता का विरोधी है

फासिज्म म जन प्रभुता नाम की कोई चीज नही। इसमे तो अधिनायक ही विवेकपूर्ण एव शक्तिशाली व्यक्ति है जो जन को रास्ता दिखाता है। फासिज्म का धारणा है कि साधारण व्यक्तियो म सामान्य समस्याओ को समझने की योग्यता नही होती पर तु फासिज्म की यह विचारधारा मिथ्या है। मनुष्य भले ही पूर्णतया विवेकशील प्राणी नही परन्तु इस बात से भी इन्कार नही किया जा सकता कि वह पूर्णतया विवेकहीन भी नही। विवेक जिसे फासिस्टवादी शिष्ट वर्ग की विशेषता मानता है कोई ऐसी चीज नही जिसका आयात किया जा सके। यह तो चरित्र, योग्यता, अनुभव और व्यक्तिगत विचारो पर निर्भर करता है जो साधारण व्यक्ति मे भी उतनी मात्रा म हो सकता है जितना कि शिष्ट वर्ग के सदस्यों म। इसके अतिरिक्त शिष्ट वर्ग साधारण व्यक्तियो का प्रतिनिधित्व भी नही कर सकता क्योकि 'जूता पहनने वाला ही जानता है कि जूता कहाँ दर्द करता है।

प्रजातन्त्रवादियो का कहना है कि लोगो मे अपने आपको शासित करने की योग्यता होती है। सेबाइन ने इस सम्बन्ध म अरस्तू की विचारधारा को इस प्रकार व्यक्त किया है 'कानून का निर्माण करने म लोगो का सामूहिक ज्ञान सबसे बुद्धिमान कानून निर्माता के ज्ञान से श्रेष्ठ होता है समूह म मनुष्य एक दूसरे के पूरक बन जाते हैं। एक मनुष्य प्रश्न के एक भाग को समझता है दूसरा मनुष्य प्रश्न के दूसरे भाग को समझता है इस प्रकार वे सारे विषय को समझते हैं।" परन्तु फासिज्म जनता के सामूहिक ज्ञान को स्वीकार नहीं करता। फासिज्म स्पष्टतया विवेकहीन दर्शन है।

9 फासिज्म एक लोक कल्याणकारी विचारधारा नहीं

फासिज्म राष्ट्र के गौरव और उसकी प्रतिष्ठा का सिद्धान्त है लोगो के कल्याण का नही। जो सिद्धान्त राष्ट्र या राज्य को साध्य मानता है वह व्यक्ति की उपेक्षा करता है। इस राज्य म व्यक्ति की स्थिति एक दास से बढ़ कर नहीं होती जो मालिक (राज्य) के आदेशानुसार कार्य करने के लिए बाध्य होता है। यह स्थिति

राज्य और व्यक्ति दोनों के लिए हानिकारक है। कल्याणकारी राज्य तो वह है जो व्यक्तियों के कल्याण और विकास में अपना कल्याण और विकास मानता है क्योंकि व्यक्तियों की प्रसन्नता और विकासशीलता पर ही राज्य की खुशहाली और विकास शीलता का अन्दाजा लगाया जा सकता है।

10 अधिनायकतन्त्र शासन व्यवस्थाओं में उत्तराधिकार की समस्या गम्भीर होती है

अधिनायकवादी शासनों का सबसे बड़ा दोष यह है कि शान्तिकाल में भी ये राष्ट्र पर सैनिक शासन और सैनिक वातावरण बनाये रखते हैं। इस तनावपूर्ण स्थिति का प्रभाव राष्ट्र पर प्रतिकूल पड़ता है और जब अधिनायकों की मृत्यु हो जाती है तो राजनीतिक शून्यता उपस्थित होने से उत्तराधिकार के लिए या तो गृह युद्ध या अन्य समस्यायें उत्पन्न हो जाती हैं जो राष्ट्र की एकता और अखण्डता के लिए भी हानिकारक हो सकती हैं।

11 फासिज्म पूँजीवाद की पतनोन्मुख दशा का स्वरूप है

फासिज्म को पूँजीवाद की पतनोन्मुख दशा की संज्ञा भी दी गई है। यह कहा जाता है कि जब पूँजीवाद अपनी रक्षा मजदूरों की माँगों तथा उनके संघर्ष से नहीं कर सकता तो वह अधिनायक का रूप धारण कर लेता है। इटली इसका प्रमुख उदाहरण है।

क्या फासिज्म का भय विश्व में विद्यमान है?

साधारणतया यह कहा जाता है कि द्वितीय महायुद्ध में धुरी राष्ट्रों (जर्मनी, इटली, जापान) की हार के बाद विश्व को फासिज्म से कोई खतरा नहीं रहा क्योंकि फासिज्म के सिद्धान्तों, भावनाओं और विचारों का प्रचार करने के लिए किसी राज्य में ऐसा कोई दल सत्तारूढ़ नहीं। परन्तु यह विचारधारा ठीक प्रतीत नहीं होती। यह ठीक है कि फासिस्ट दर्शन का प्रचार करने के लिए किसी राष्ट्र में कोई ऐसा दल सत्ता रूढ़ नहीं परन्तु राष्ट्रों में ऐसी प्रवृत्तियाँ अवश्य विद्यमान हैं या रही हैं जो सर्वसत्ता वादी, निरंकुशवादी प्रवृत्तियों का पोषण करती हैं जैसे जर्मनी में नव नाजिस्ट (Neo Nazists) समुदाय, स्पेन में फैलंगिस्ट, चीन में क्युमनतांग दल अर्जेंटाइना में पैरोनिस्ट ब्राजील में वारगस शासन इत्यादि। जहाँ कहीं सर्वसत्तावादी प्रवृत्तियाँ विद्यमान हैं उन्हें पोषण के लिए फासिज्म से भोजन प्राप्त हो जाता है क्योंकि फासिज्म में वह सब कुछ विद्यमान है जो वे चाहते हैं। मक्सी के शब्दों में फासिज्म ने "कोरी और अपरिष्कृत शक्ति को रहस्यवादी आदर्शवाद की मीठी चुस्की प्रदान की, इसने हिंसा को नैतिक औचित्य प्रदान किया, इसने देश भक्ति की भावना का चरम सीमा तक प्रयोग किया, इसने अल्पमतवर्ग शासन को विवेकपूर्ण सिद्ध किया, इसने सर्वव्यापी साम्यवाद के भय और उतने ही व्यापक नोस्त न तथा अहस्तक्षेप (यथेच्छाकारिता)

के असंतोष को थाम दिया, इसने सर्वसाधारण के समक्ष एक नवीन धर्म प्रस्तुत किया तथा उपासना के लिए नये देवता प्रदत्त किये।'[1]

फासिज्म उन समाजों में अधिक आसानी से फल सकता है जहाँ सामाजिक परम्परायें तथा शक्तियाँ सर्वसत्तावाद में विश्वास करती हैं। ऐसे समाजों में उन व्यक्तियों या समुदायों को बहिष्कृत नहीं समझा जाता जो सर्वसत्तावाद की बात करते हैं तथा ऐसे तत्त्वों को सगठित करते हैं। ऐसी परम्परायें जर्मनी और जापान में विद्यमान थी और द्वितीय महायुद्ध में पराजित होने के बाद भी इन समाजों में नये फासिस्ट समुदायों का जन्म हो रहा है। अभी तक तो अपने प्रचण्ड और पशुत्व रूप में ये शक्तियाँ केवल जर्मनी, इटली और जापान में ही प्रकट हुईं परन्तु जिन अन्य तत्त्वों ने—आर्थिक असन्तोष, राजनीतिक निर्बलता और सामाजिक दुर्बलता व उदासीनता ने—अधिनायकवादी शासनों को जन्म दिया वे अन्य राष्ट्रों में आज भी विद्यमान हैं।

केवल सर्वसत्तावादी समाजों में ही फासिस्ट प्रवृत्तियाँ विद्यमान नहीं बल्कि प्रजातन्त्रवादी समाजों में भी ये प्रवृत्तियाँ पनप रही हैं। जिन समस्याओं को प्रजातन्त्रवादी सरकारें अभी तक हल नहीं कर पाईं और जो फासिस्ट दर्शन की पोषक हैं उनमें से मुख्य है उदारवाद से उत्पन्न समस्यायें। उदारवाद ने स्वतन्त्र प्रतियोगिता के द्वारा केवल पूँजी का ही केन्द्रीयकरण नहीं किया बल्कि सत्ता का भी केन्द्रीयकरण किया। बेरोजगारी से आर्थिक कठिनाइयाँ तो उत्पन्न होती ही हैं परन्तु उनसे व्यक्तियों में जो हीनता और व्यर्थता की भावना पैदा होती है वही उसमें फासिस्ट प्रवृत्तियों को जन्म देती है। ये व्यक्ति अपने आपको समाज के उपयोगी घटक नहीं समझते। इतना ही नहीं उदारवाद में भ्रष्टाचार और अयोग्यता भी फासिज्म का पोषण करते हैं। स्वयं इटली में लोगों को कहते हुए सुना गया है कि मुसोलिनी के काल में कम से कम गाड़ियाँ तो समय पर चलती थीं। प्रजातन्त्र में भी बॉसइज़म (Bossism) की प्रवृत्ति उसके लिए हानिकारक और फासिज्म के लिए लाभकारी है क्योंकि बॉसइज़म में भी तर्क वितर्क, विमर्श पर बल नहीं दिया जाता बल्कि आदेश और आज्ञापालन पर बल दिया जाता है।

प्रजातान्त्रिक समाजों को दूसरा खतरा उनमें विद्यमान जातिवाद की भावना है। यदि कोई जाति अपने आपको अन्य जातियों से श्रेष्ठ मानती है तो ऊँच नीच की भावनायें पैदा होती हैं जो फासिस्ट विचारों का पोषण करती हैं। यह भावना कई प्रजातान्त्रिक राज्यों में विद्यमान है जैसे अमरीका।

---

1 Maxey, *Ibid*, p 647

अमरीका म नीग्रो समस्या इतनी गम्भीर है कि गुन्नर मायरडल को यह विचार व्यक्त करना पडा कि "जाति का प्रश्न प्रजातान्त्रिक जीवन के भविष्य का ही निर्णय कर देगा।" वास्तव म जातिवाद और प्रजातन्त्र दोनो साथ साथ नही चल सकते। दक्षिण अफ्रीका और दक्षिण रोडेशिया मे यह समस्या काफी गम्भीर रूप ले सकती है। वहाँ की सरकारें सर्वसत्तावादी ही है। भारत म भी कई ऐसे राजनीतिक दल है जो केवल "हिन्दूवाद" पर बल देते हैं या प्रदेशो पर बल देते है। गटिल न बहुत सुन्दर शब्दो मे लिखा है कि जो विचार व्यक्तियो के मस्तिष्को म घर कर जाते है उन्हे युद्ध द्वारा परास्त नही किया जा सकता।"[1]

'शीत युद्ध' ने भी फासिस्ट विचारो का पोषण किया है। जो सरकारें अपने आपको प्रजातन्त्र की जननी तथा प्रजातान्त्रिक सस्थाओ की समर्थक मानती हैं व ही सर्वसत्तावादी शासनो का, अपने राष्ट्रीय हितो की रक्षा के लिए, समर्थन करती हैं जसे ब्रिटेन दक्षिण अफ्रीका और रोडेशिया का और अमरीका, स्पेन तथा इटली व तवान का। अप्रजातान्त्रिक सरकारो का प्रजातान्त्रिक सरकारो द्वारा समर्थन सर्व सत्तावादी प्रवृत्तियो की स्वीकृति नही तो क्या है? गटिलने ठीकही कहा है कि "यदि साम्यवाद के विरुद्ध दक्षिणपन्थी प्रतिक्रिया का जोर बढा तो फासिस्टवाद पुन भयकर शक्ति क रूप म उठ खडा होगा।"

फासिज्म और प्रजातन्त्र दोनो ही साम्यवाद के विरोधी हैं। इस तथ्य को ध्यान म रखकर कुछ विचारको न यह विचार व्यक्त किया है कि फासिज्म और प्रजातन्त्र एक ही है जबकि स्थिति सर्वथा भिन्न है। य विचारक भूल जात है कि साम्यवाद और फासिज्म मे सघर्ष इस बात से उत्पन्न होता है कि दोनो चोर के "लूट क माल' के विभाजन पर सहमत नही होत जबकि साम्यवाद और प्रजातन्त्र मे सघर्ष चोर और कानून के बीच मे भेद के कारण होता है। वही सघर्ष प्रजातन्त्र और फासिज्म के बीच का है।

प्रजातन्त्र मे नागरिको की उदासीनता और आलस्य भी फासिस्ट प्रवृत्तियो को बढावा देते है क्योंकि राजनीति म उदासीनता जनोत्तेजको (demagogues), हाकिमवादियो (bossism) तथा अधिनायकवादियो का जन्म देती है। लोगो की चुनाव म दिखाई गई उदासीनता प्रजातान्त्रिक सस्थाओ के लिए घातक सिद्ध हो सकती है।

उपर्युक्त वर्णन के बाद यह कहना कठिन नही कि फासिज्म किसी न किसी रूप म प्रत्येक राष्ट्र म विद्यमान है और जब तक प्रजातान्त्रिक सरकारे अपनी निर्बलताओ को दूर करने का प्रयास नही करती फासिज्म का भय विद्यमान रहेगा।

---

1 Gettell R G *History of Political Thought* (Hindi Tr) p 454

EXERCISES

1 फासिज्म क सिद्धान्ता की आलोचनात्मक व्याख्या कीजिये।

2 "स्वत त्रता अधिकार नही, कर्तव्य है।" (मुसोलिनी) इस कथन का दृष्टि म रखते हुए फासिस्ट राज्य म व्यक्ति और राज्य के सम्ब धा पर प्रकाश डालिय।

3 "फासिज्म लोकत त्रवादी, उदारवादी तथा समाजवादी विचारा का प्रतिवाद है।' व्याख्या कीजिय।

4 "फासिज्म लोकत त्र का विरोध है।" व्याख्या कीजिये।

5 क्या फासिज्म लोकत त्र की दुबलताओ के निराकरण का सन्तोष जनक विकल्प हो सकता है ? यदि नही तो क्यो नही ? यदि हा तो कैसे ?

6 "फासिज्म व्यक्तिवाद के उतना ही विरुद्ध है जितना समाजवाद के।" व्याख्या कीजिये।

7 "फासिज्म एक ही समय मे प्रजातन्त्र पर प्रहार था और उसी समय बोलशेविजम पर भी प्रत्याक्रमण फिर भी एक के पूजीवाद और दूसरे क सर्वसत्तावाद को उनकी चरम सीमाओ म स्थायी रखा गया।" इस कथन की व्याख्या करते हुए यह स्पष्ट कीजिय कि क्या इन परस्पर विरोधी विचार-धाराओ को मिलाना युक्ति सगत था ?

8 'फासिज्म समाजवादी सुधारा क प्रति विशेप रूप मे जन साधारण की ओर स पूजीपतिया के प्रतिरोध का आ दोलन है।" (कोकर) क्या आप इस विचार से सहमत है ? यदि नही तो कारण लिखिय।

9 राज्य का अपना व्यक्तित्व है, अपनी इच्छा है जो अपन घटका के व्यक्तित्व और इच्छाओ से सर्वोच्च है।" इस कथन का दृष्टि म रखत हुए फासिज्म म राज्य की कल्पना पर प्रकाश डालिय।

10 राज्य के बाहर कुछ नही, राज्य क विरुद्ध कुछ नही हर चीज राज्य के अन्दर ही हो', य फासिज्म के प्रधान तत्त्व है। आलोचनात्मक व्याख्या कीजिये।

11 निगमात्मक राज्य की कल्पना फासिस्ट विचारधारा म क्या है ? इसकी तुलना प्रजातान्त्रिक राज्यो म निगमो स कीजिय।

12 निगमात्मक राज्य के आर्थिक और राजनीतिक परिणामा पर प्रकाश डालिय।

13 क्या आप इस कथन से सहमत ह कि निगमात्मक राज्य की प्रणाली प्रजातान्त्रिक समाज म अनुपयुक्त ह ? कारण लिखिय।

14 फासिज्म शान्ति, प्रजातन्त्र और अन्तर्राष्ट्रीयता का शत्रु है। व्याख्या कीजिय।

15 'फासिज्म प्राचीन तथा अबुद्धिवाद है।" व्याख्या कीजिय।

16 'फासिज्म कम नतृत्व तथा मिलकर काय करने की भावना का खिलाडियो क क्षेत्र से राजनीति के क्षेत्र म स्थानान्तरण मात्र है।" क्या आप फासिज्म के इस मूल्याकन से सहमत है ? व्याख्या कीजिय।

17 "फासिस्ट दशन अस्पष्ट तथा असगतियो से भरपूर है।" व्याख्या कीजिय।

18 'समानतायें होने हुए भी साम्यवाद और फासिस्टवाद म मूल भेद ह इस कथन का दृष्टि म रखते हुए साम्यवाद और फासिस्टवाद म समानताओ और असमानताओ का वणन कीजिये।

19 "दोनो वादो म (फासिज्म और साम्यवाद) कुछ आवश्यक पक्षो म परस्पर विरोध होते हुए भी घनिष्ठ आध्यात्मिक सम्बन्ध ह और कई बातो मे उनके शासन की रीतियाँ भी समान है।" (Coker) व्याख्या कीजिय।

12

गाधीवाद
(Gandhism)

परिचय
(Introduction)

गाधीवाद क्या है इसका वणन कठिन है पर तु गाधीजी के विचारा और आदर्शों का वणन अवश्य किया जा सकता है। वतमान मे, गाधीजी के इन्ही विचारा तथा आदर्शों को 'गाधी दशन', 'गाधी तत्त्वज्ञान', 'गाधी माग', "गाधीवादी राजनीतिक दशन", 'गाधीवादी राजनीतिक विचारधारा' तथा 'गाधीवाद' इत्यादि नामा की सज्ञायें दी गयी है। इन विचारा तथा आदर्शों का भि न भि न नाम इसलिय दिये गये है कि गाधी स्वय किसी वाद, सम्प्रदाय या सिद्धा त मे विश्वास नही करते थे और न ही अपने पीछे किसी प्रकार का 'वाद छोडना चाहते थे।

गाधीजी वास्तविकता क एक निष्पक्ष छात्र थे और उनका तरीका प्रयागात्मक, अनुभववादी तथा वज्ञानिक था यद्यपि गाधीजी तर्कों म विश्वास नही करत थे। गाधीजी प्लेटो, ऐक्विनास, रूसो आदि दाशनिका की तरह नही थे जि होने विचार दशन पर म थन किया और सिद्धान्ता का ज म देकर कार्यों को निर्धारित किया। गाधीजी काय मे विश्वास करते थे, वह कमयोगी थ, सिद्धान्त, यदि इन विचारा को सिद्धा त कहा जाय, तो उनके अनुयायिया द्वारा गाधी के विचारो पर लगाई गई सीमाये है।

गाधीजी सत्य, अहिसा प्रेम, भ्रातृभाव, इत्यादि के पुजारी थ। अपन ही ढग से इनकी व्याख्या कर वह व्यक्ति को उसकी विकृत प्रवृत्तिया स हटाना चाहत थ। वह राजनीति को पवित्र करना चाहत थे तथा उसे धम और याय पर आधारित करना चाहत थे, वह व्यक्ति म प्रेम और स्वत त्रता का सचार करना चाहत थ, वह व्यक्ति को पुरुषाथ का महत्त्व समझाना चाहत थे। गाधीवाद इस तरह जीवन शली या जीवन दशन म सम्बन्धित है किसी सिद्धा त स नही। बी० पी० सीतारमया के शब्दा म, 'गाधीवाद सिद्धान्ता का, मता का, नियमा का,

विनियमो का और आदेशो का समूह नही है , प्रत्युत वह एक जीवन शली या जीवन दशन है । यह एक नई दिशा की ओर सकेत करती अथवा मनुष्य की जीवन समस्याओ के लिए प्राचीन समाधान प्रस्तुत करती है ।"[1]

गाधीवाद एक ऐसा वाद है जो सबके कल्याण की बात करता है , हिंसक शस्त्रो के स्थान पर अहिसक शस्त्र को अधिक श्रेष्ठ मानता है , शत्रुता के स्थान पर मित्रता और घृणा के स्थान पर प्रेम का सबक सिखाता है , इसम काय की प्रेरणा का स्रोत सत्य, धम और ईश्वर है । इसम छल, कपट, स्वाथ, क्रूरता हिंसा, द्वेष, इत्यादि विकृत प्रवृत्तियो का स्थान नही । गाधीवाद यह स्वीकार करता है तथा इस पर बल देता है कि जितनी मात्रा मे साधनो की पवित्रता, शुद्धता होगी उतनी ही मात्रा मे साध्य पवित्र और श्रेष्ठकर होगा ।

गाधीजी ने जीवन की भिन्न भिन्न समस्याओ पर भिन्न भिन्न समयो पर भिन्न भिन्न विचार व्यक्त किये है । इसलिये उनका नाम किसी एक वाद से सम्बन्धित नही किया जा सकता जसे कि हीगल का विचार दशन से, ब थम का उपयोगितावाद से, काल माक्स का समाजवाद से । गाधीजी के आदर्शो के जो आधार थे (सत्य, अहिसा, प्रेम, भ्रातृभाव) व किसी व्यक्ति, देश या समय के लिए नही थे बल्कि व मानवता के लिए और सावदेशिक तथा सावकालिक है । गाधीजी ने इस सन्दभ म एक बार कहा था कि ' गाधी मर सकता है परन्तु गाधीवाद (सत्य, अहिसा) सवदा जीवित रहेगा ।"[2]

गाधीजी एक सिद्धान्त या पद्धति से चिपके नही रहते थ । आवश्यकता पडने पर वह परिवतन मे विश्वास करते थे । गाधीजी के शब्दो मे, "म तो हमशा सत्य के प्रयोग करता रहता हू , नित्य नई आग आने वाली समस्याओ को मैं सत्य की कसौटी पर कसता रहता हूँ । इस म कुछ भूल की सम्भावनायें बनी रहती है, उसम कल ही कुछ सुधार हो सकता है ।'[3]

गाधीजी विचारशील होने के साथ साथ आचारवान् व्यक्ति भी थ । जिस विचार को वह आचार म नही ला सकते थ उसे वह बहुत गोण समझते थ । वह ऐसे व्यक्ति थे जो ईश्वर पर अटल विश्वास रखते हुए और अहिसा क माग को अपनाते हुए अपने कार्यों को विश्वास के आधार पर करते थे । गाधीजी की विशेषता यही थी, अन्य दाशनिको के विपरीत, कि जो कुछ उन्होने विचार किया उसका दशन भी उन्होने किया और प्रत्यक्ष काय रूप म भी उन्होने उसे परिणत किया ।

---

1 Sitaramayya, B P *Gandhi and Gandhism*, p 35
2 Sitaramayya B P *Ibid*, p 37
3 Quoted in Dr Rajendra Prasad— गाधीजी की देन', p 21

दक्षिण अफ्रीका और भारत म उ होने जो सामाजिक आर्थिक और राजनीतिक काय किय वे स्वय सिद्ध करते है कि वह भक्तियोगी, ज्ञानयोगी और कर्मयोगी थ।

गाधोजी क विचार व्यापक, बहुमार्गी और विभिन्नतामय थे। वह जहा, एक ओर, ऋषी थे वहा, दूसरी ओर व्यक्तिवादी, व्यावहारिक आदर्शवादी समाजवादी, उदारवादी अनुदारवादी, राष्ट्रवादी, अन्तराष्ट्रवादी तथा सर्वोदयवादी थे। वह य सब और इन सबसे भी अधिक मानवतावादी थ। जहाँ एक ओर गाधी ऋषियो की भाषा बोलते थे (सत्य, अहिंसा, प्रेम दया, क्षमा, भ्रातभाव) वहा वह आधुनिक रूप मे जन समूह के सर्वोत्तम नेता भी थे, एक ओर, वह ईसाई अराजकतावादी, व्यक्तिवादी तथा आदर्शवादी विचारधारा से ओत प्रोत थ तो, दूसरी ओर वह समाजवादी विचारधारा स भी प्रभावित थ। जहा वह निरपेक्ष प्रभुता व सत्ता के विरोधी थे वहा, दूसरी ओर, गाव रूपी सघो (Village Republics) म समन्वय स्थापित करने तथा व्यवस्था के लिए राज्य को आवश्यक समझते थ। वह राज्य के पक्के भक्त और कानून क पक्के आज्ञापालक थे, जहाँ, एक ओर, वह राजनीतिक और आर्थिक विके द्रीकरण म विश्वास करत थे वहाँ, दूसरी ओर, सर्वोदय क लिए यदि आवश्यक हो तो औद्यागीकरण और राष्ट्रीयकरण से भी नही हिचकिचाते थे यद्यपि इसके लिए उ होने बहुत कम मात्रा म गु जाइश रखी, जहा, एक ओर, वह काल मार्क्स क राज्य विहीन वग विहीन समाज क समथक थ वहा, दूसरी ओर मार्क्स की इतिहास की भौतिक व्याख्या वग सघष और हिंसा के प्रयोग क घोर विरोधी थे, न केवल कार्यो म वल्कि विचारो और भावनाओ म भी गाधीजी हिंसा को स्वीकार नही करत थ। नणी समाजवादियो तथा बहुलवादियो की भाति गाधीजी न ऐच्छिक समुदायो की आवश्यकता पर बल दिया तथा सामाजिक और आर्थिक जीवन क विकास के लिए उ ह अनिवाय माना, राज्य को एक समुदाय मानत हुए उसक कार्यो को सीमित रखा। गाधीजी उदारवादी और नैतिकतावादी भी थ। वह जीवन म स्व-निय त्रण और सयम को बहुत महत्त्व दत थ, वह जीवन म अस्तेय, अपरिग्रह और ब्रह्मचय को महत्त्व देत थ। उनक लिए जो व्यक्ति 'अपनी आवश्यकताओ स अधिक उपभोग करता है' वह गरीबो का शोषण करता है तथा उन पर अयाय करता है।

उपर्युक्त वणन से स्पष्ट है कि गाधीजी के विचारो म कोई एक धम, सिद्धात या पद्धति सवश्रेष्ठ नही थी, मानव सेवा ही उनके लिए सवश्रेष्ठ कम था और इसी म उ ह ईश्वर (सत्य) का प्रत्यक्ष साक्षात्कार होना था। यदि हम गाधीवाद म ठोस व निश्चित सिद्धान्तो या सूत्रो को ढूँढना चाहत है जि ह उनके अनुयायियो के लिए मानना आवश्यक हो तो गाधीवाद नाम की कोई चीज नही परन्तु यदि हम उसे एक जीवन शैली या जीवन दशन के रूप म लें तो उसके आधारभूत सिद्धान्त हैं समस्याओ के निवा ण के लिए विशिष्ट तकनीक भी है तथा सिद्धान्त और तकनीक म एकता और सगतियद्धता भी है। उनक विचारो क आधार सत्य, अहिंसा, प्रेम तथा मान

वतावादी दृष्टिकोण है तथा तकनीक सत्याग्रह है। इन सबकी व्याख्या गाधीजी न अपनी रचनाओ विशेषकर हिन्द स्वराज्य, आत्मकथा और पत्रिकाओ विशेषकर हरिजन, यग इण्डिया, इण्डियन ओपीनियन और अनेक भाषणो मे की है।

गाधीवाद के स्रोत या गाधीवादी दृष्टिकोण की पृष्ठभूमि अथवा गांधी के विचारो पर प्रभाव डालने वाले तत्त्व (Sources of Gandhism or Background of Gandhian Outlook or Factors that influenced Gandhi s Thought)

गाधीजी के विचारो पर चार प्रकार के प्रभाव नजर आते है—(1) धार्मिक ग्रथो का प्रभाव (2) दार्शनिको का प्रभाव, (3) सुधारवादी आदोलनो का प्रभाव, और (4) सामाजिक आर्थिक परिस्थितिया का प्रभाव।

1 धार्मिक ग्रन्थो का प्रभाव

गाधीजी पूर्ण धार्मिक व्यक्ति थे, अध्यात्म उनका प्रिय विषय था। इसी कारण उनके विचार, भावनायें तथा कार्य धार्मिक भावनाओ से ओत प्रोत थे। उनम इन धार्मिक भावनाओ का विकास पूर्व व पश्चिम के ग्रन्थो के अध्ययन स हुआ। पातजली के योग सूत्र का अध्ययन तो उन्होन सन 1903 म अफ्रीका के जाहसबग जेल म ही कर लिया था। उपनिषदो का उन्होने गहरा अध्ययन किया था। अपरिग्रह (किसी वस्तु को आवश्यकता से अधिक एकत्रित न करना) तथा त्याग (किसी का मोह न करना) जस व्रतो को उन्होने उपनिषदो स प्राप्त किया। वेदो तथा रामायण और महाभारत जस महाकाव्य का प्रभाव भी उन पर अत्यधिक था। भगवद् गीता क तो गाधीजी भक्त ही थ। यह पुस्तक उनकी 'पथ प्रदशक', आध्यात्मिक निर्देशक, तथा 'आध्यात्मिक माता' ही थी। यह उन्ह अधेरे मे उजाला स दह म विश्वास हुनात्साह म आशा की किरण दिखाती थी। गाधीजी न जो कर्म पर बल दिया वह गीता की देन है। गीता का यह वाक्य कि व्यक्ति को काम करन का अधिकार ह उसे उसक परिणाम पर अधिकार नही उनक जीवन क्रियाओ का आधार बन गया। गीता की शिक्षाओ के कारण ही गाधीजी स्वार्थहीन कर्मयोगी बन जिन्ह सफलता खुशी से पागल नही करती थी और असफलता निराश नही करती थी। भय घृणा, शत्रुता और अह को त्यागने की भावना भी उन्होन गीता स सीखी। सत्य रूपी ज्ञान भी उन्ह गीता स प्राप्त हुआ। उनके शब्दो म, "गीता को म सत्य के ज्ञान के लिए अद्वितीय पुस्तक मानता हूँ।"

जन और बौद्ध धम का प्रभाव गाधीजी के अहिंसा नामी पथ प्रदशन स स्पष्ट हो जाता है। यह जन साधु बेचरजी थ जिन्होने गाधीजी स इगलण्ड जात समय तीन प्रतिज्ञायें ली कि वह कभी मदिरा, परायी स्त्री और मांस को नही छुएँगे।

बाईबल के गिरि प्रवचन (Sermon on the Mount) के अध्याय का प्रभाव

तो इतना प्रत्यक्ष था कि उसने गांधीजी के हृदय में तत्काल स्थान प्राप्त कर लिया। 'बुराई को भलाई से' "शत्रुता को मित्रता से", "हिंसा को अहिंसा से", "बददुआ को दुआ से", "घृणा को प्रेम से" "अत्याचार को प्रार्थना से", जीवन का मार्ग गांधीजी ने इस अध्याय से सीखा। ये सब से देश गांधीजी के आचरण (व्यवहार) दर्शन, धर्म और राजनीति के अभिन्न अंग बन गये। अहिंसक प्रतिरोध की विचारधारा गांधीजी को ईसामसीह के इन अन्तिम शब्दों से प्राप्त हुई 'भगवान उन्हें क्षमा करना क्योंकि वे नहीं जानते कि वे क्या कर रहे हैं।"

गांधीजी पर चीनी लाओत्से और कन्फ्यूशियस की विचारधाराओं का भी प्रभाव पड़ा। नम्रता अच्छाई, शुद्धता और न अड़ने (non assertiveness) के विचार इन्हीं की विचारधाराओं से प्राप्त हुए।

इस्लाम की शांतिवादी शिक्षाओं का प्रभाव भी गांधी जी पर पड़ा। जिस प्रकार हिन्दू धर्म, बुद्ध धर्म और ईसाई धर्म को गांधी जी शांति के धर्म मानते थे उसी प्रकार इस्लाम धर्म को भी वह शान्ति का धर्म मानते थे।

उपर्युक्त धर्मों के प्रभाव के कारण ही गांधी जी ने अपने जीवन में निम्न विचारों को अपनाया—(1) सत्य (2) अहिंसा, (3) ब्रह्मचर्य (4) अस्वाद, (5) अस्तेय, (6) अपरिग्रह, (7) अभय, (8) अस्पृश्यता निवारण, (9) शारीरिक श्रम, (10) सर्वधर्म, (11) समभाव, (12) स्वदेशी। प्रेम, दया, क्षमा, भ्रातृभाव इन विचारों में ही सन्निहित हैं।

धार्मिक ग्रन्थों का गांधीजी के जीवन और विचारों पर अत्यधिक प्रभाव होते हुए भी वह उन पर अन्धविश्वास नहीं करते थे बल्कि जो धार्मिक तथ्य उनकी तर्क बुद्धि पर खरे उतरते थे उन्हें ही स्वीकार करते थे। गांधीजी के शब्दों में, 'धार्मिक पुस्तक की किसी बात को मैं तर्क बुद्धि से अधिक महत्त्व नहीं देता'।

2 दार्शनिकों का प्रभाव

गांधीजी के विचारों पर अनेक दार्शनिकों का प्रभाव था जिनमें से मुख्य हैं जॉन रस्किन, हेनरी डेविड थोरो, लियो टालस्टाय, सुकरात।

जान रस्किन का प्रभाव (Influence of John Ruskin)—जान रस्किन की "अन्टू दिस लास्ट" (Unto This Last) और क्राउन आफ वाइल्ड आलिब्स (Crown of Wild Ovlies) पुस्तकों का प्रभाव गांधीजी पर अत्यधिक था। सर्वोदय सिद्धान्त और शारीरिक श्रम के सिद्धान्त को गांधीजी ने रस्किन से सीखा। विशेष कर अन्टू दिस लास्ट से गांधीजी ने निम्न तत्त्व सीखे

(1) जिससे सबको लाभ हो वही आर्थिक व्यवस्था अच्छी है,

(2) प्रत्येक कार्य अच्छा है और उसके अनुसार जीविकोपार्जन का अधिकार सबको है, एक वकील के कार्य का उतना ही मूल्य है जितना कि एक नाई का,

(3) 'शारीरिक श्रम' ही वास्तविक जीवन है अर्थात् श्रमिक का जीवन (मजदूर, कृषक और हस्त करघा काय करने वाले का जीवन) ही उच्च जीवन है ।

हेनरी डेविड थोरो का प्रभाव (Influence of Henry David Thoreau)—गाधीजी को थोर के इस राजनीतिक विचार ने कि "जन हित करने वाले सभी व्यक्तियो और सस्थाओ के साथ अत्यधिक सहयोग और यदि वे अहित करें तो असहयोग करो" बहुत प्रभावित किया । कई लेखको ने यह विचार व्यक्त किया है कि गाधीजी ने सत्याग्रह के अस्त्र को थोरो के विचारो से प्राप्त किया परन्तु गाधीजी ने स्वय इस बात से इन्कार किया है ।

लियो टाल्सटाय का प्रभाव (Influence of Leo Tolstoy)—गाधीजी टाल्सटाय के प्रशसको मे से थे । वह अपने आपको उनका शिष्य[1] मानते थे जो उनके प्रति बहुत कुछ ऋणी[2] थे । एक पत्र मे गाधीजी ने अपने आपको 'आपका एक तुच्छ अनुयायी लिखा'[3] । टॉलस्टाय के नैतिक दशन (ईसाई अराजकता) का प्रभाव गाधीजी पर इतना अधिक था कि उन्होने स्वय लिखा है कि जब मैंने उनकी पुस्तक "ईश्वर का साम्राज्य आपके अन्दर है (The Kingdom of God Within You) पढी तो मेरा सशय और नास्तिकता दूर हो गई और अहिंसा के प्रति मेरा विश्वास दृढ हो गया । अत्याचार और अन्याय का प्रतिरोध शातिमय तरीको से कैसे किया जाता है यह गाधीजी ने टॉलस्टॉय से सीखा । गाधीजी के शब्दो मे, 'टाल्सटाय तीन व्यक्तियो[4] मे से एक है जिन्होने मेरे जीवन पर सबसे अधिक आध्यात्मिक प्रभाव डाला है ।'

सुकरात का प्रभाव (Influence of Socrates)—गाधीजी सुकरात को सबसे बडा सत्याग्रही मानते थे । इतना होने पर भी यह कहना कठिन है कि सुकरात का प्रभाव गाधीजी पर कितना पडा । परन्तु इतना अवश्य है कि गाधीजी सुकरात के भी प्रशसक थे ।

3 **सुधारवादी आन्दोलनो का प्रभाव (Influence of Reformative Movement)**

भारत मे चल रहे सास्कृतिक, दार्शनिक एव धार्मिक सुधारवादी आन्दोलनो

---

1 Gandhi, M K *An Indian Patriot,* p 3

2 *Young India,* Vol I, p 652

3 *In a letter to Tolstoy* dt April 4 1910

4 अन्य दो व्यक्तियो मे एक थे श्री राजचन्द्र रावजी भाई महता जिन्हे रायचन्द भाई (Raj Chandra Reujibhai Mehta or Raj Chand Bhai) कहा जाता था और बम्बई मे जो एक जौहरी, कवि और समाज सुधारक थे, दूसरे व्यक्ति थे जान रस्किन ।

का प्रभाव भी गाधी जी पर पडा , राम कृष्ण और विवेकानन्द का प्रभाव तो विशेष कर उन पर था । स्वदेश प्रेम और स्वदेशी की भावना तो गाधीजी ने इन्ही से सीखी ।

उपर्युक्त वर्णन से स्पष्ट है कि, वसारिया के शब्दो म, "गाधीवादी दर्शन विश्व के प्रत्येक कोने के साधुजनो की शिक्षाओ का सम्मिश्रण है । उन्होने विचार व विवेक के विभिन्न स्रोतो से प्रेरणा ली और बिल्कुल नये और विशिष्ट दर्शन का सृजन किया ।"

4 सामाजिक आर्थिक परिस्थितियो का प्रभाव

भारतीयो की असहाय अवस्था और नगी गरीबी का प्रभाव भी गाधीजी के विचारो पर अवश्य पडा होगा और शायद यही उनके समाजवादी विचारो का आधार था । उडीसा के लोगो की गरीबी का वर्णन उन्होने सन 1924 म इस प्रकार किया 'उनम जीवन लुप्त हो रहा था । वे निराशा की जीवित तस्वीरें थी उनकी प्रत्येक पसुली गिनी जा सकती थी प्रत्येक धमनी देखी जा सकती थी, उनके शरीर पर कोई पुट्ठ या चमडी नही थी उनके लिये तो सतत अनिवार्य उपवास था ।"[1]

दक्षिण अफ्रीका गाधीजी के प्रयोगों की प्रयोगशाला

दक्षिण अफ्रीका गाधीजी के प्रयोगो की प्रयोगशाला थी, वही पर उनकी धार्मिक चेतना का विकास हुआ वही पर उन्होने पश्चिम के लेखको की विचार-धाराओ का अध्ययन किया वही पर उनके राजनीतिक दर्शन का विकास, श्वेत जातिवाद के प्रतिरोध म, हुआ, वही पर उन्होने अपने तकनीक (सत्याग्रह) का श्रीगणेश तथा उसके प्रारम्भिक प्रयोग भी वही किय और वही पर उसे परिपक्व बनाया, वहीं पर उनम नि स्वार्थ मानव सेवा की भावना पैदा हुई तथा अपने समाज के प्रति कर्त्तव्यो की अनुभूति हुई, वही पर वह राष्ट्रवादी नेता बने तथा श्रमिको के कार्य के महत्त्व को उन्होने वही समझा ।

धर्म और राजनीति अथवा राजनीति का आध्यात्मीकरण
(Religion and Politics or Spiritualization of Politics)

राजनीति शास्त्र म ऐसे दार्शनिक हुए हैं जिन्हे राजनीति को धर्म से पृथक करने का श्रेय है । इनम से मुख्य मैक्यावली हाब्स और मार्क्स हैं । इन लेखको ने धर्म को राजनीति से पृथक ही नही किया बल्कि उसको राजनीति से निम्न स्थान दिया तथा उसे राजनीति द्वारा मर्यादित भी किया । मार्क्स ने धर्म को 'अफीम की गोली कह कर निर्दित किया । परन्तु गाधीजी की विचारधारा इन लेखको से भिन्न है । उन्होने राजनीति शब्द म नीति अर्थात धर्म' और मानवता' को प्राथमिकता दी, राज' अर्थात 'सत्ता' को नही । वह धर्म और राजनीति को एक ही सिक्के के दो

1 *Young India* dt 31 10 1924

परन्तु समझते थे जिन्हें एक दूसरे से पृथक नहीं किया जा सकता। उनके शब्दों में, "मैं विश्वास नहीं करता कि धर्म का राजनीति से कोई सम्बन्ध नहीं, धर्म रहित राजनीति शव के समान है जो दफनाने योग्य है।"[1] 'धर्म रहित राजनीति एक मौत का फन्दा है क्योंकि वह आत्मा का हनन करती है।" "जो कहते हैं कि धर्म का राजनीति से कोई सम्बन्ध नहीं है वह धर्म का अर्थ नहीं जानते।"[2]

गाधीजी के लिए धर्म और राजनीति एक ही कार्य के दो नाम हैं। उनका विश्वास है कि राजनीति का उद्देश्य, धर्म के उद्देश्य की तरह, उन सामाजिक सम्बन्धों में परिवर्तन लाना है जो अन्याय, अत्याचार तथा शोषण पर आधारित है तथा समाज में न्याय (Justice) तथा न्यायपरायणता (Righteousness) की व्यवस्था करना है। क्योंकि मानव का प्रत्येक कार्य आदर्श न्याय से सम्बन्धित है या होना चाहिए इसलिए मानव कृति का कोई भी पहलू दोनों के क्षेत्र से बाहर नहीं। इसके अतिरिक्त सच्चा धर्म और सच्ची राजनीति का सम्बन्ध मुख्य रूप से मानव जीवन और मानव क्रियाओं से है क्योंकि 'मानव क्रियाओं से पृथक कोई धर्म नहीं है।"[3] गाधीजी के लिए इन दोनों का आधार भी सामान्य है जो नैतिकता के सामान्य मूल्यों द्वारा निर्धारित होता है।

गाधीजी ने राजनीति में प्रवेश ही धर्म के कारण किया। उनकी राजनीति इसलिए धार्मिक थी। उन्होंने अनुभव किया कि व्यक्ति की सभी क्रियायें धर्म रहित होने से वह दुःखी है। यदि राजनीति को धर्म (न्याय, सत्य, अहिंसा, प्रेम इत्यादि) पर आधारित किया जाय तो उसके दुःखों का निवारण हो सकता है और मानव सुखी बन सकता है। क्योंकि राजनीति का समस्त मानव जीवन पर प्रभाव पड़ता है इसलिए राजनीति को धर्म पर आधारित होना चाहिए। उनके शब्दों में, "मैं यदि राजनीति में भाग लेता हूँ तो इसका केवल यही कारण है कि राजनीति हमें एक सर्पिणी की भांति जकड़े हुए है और हम चाहे कितना ही प्रयास क्यों न करें उससे बाहर नहीं निकल सकते। मैं इस सर्पिणी से जूझना चाहता हूँ। मैं राजनीति में धर्म को प्रविष्ट करने का प्रयास कर रहा हूँ।"[4] इस सर्पिणी से जूझने के लिए उन्होंने जिन साधनों का अनुसरण किया वे भी धर्म अर्थात् नीति पर आधारित थे। अर्थात् गाधी का सत्य और अहिंसा का मार्ग धार्मिक और नैतिकता का मार्ग है।

राजनीतिक दार्शनिकों में ऐसे विचारक हुए हैं जैसे मार्क्स, जिन्होंने ईश्वर

---

1 Quoted in D G Tendulkar *Mahatma*, Publication Division, Government of India, 1960, Vol I, p 185

2 Gandhi M K *My Experiments with Truth*, p 591

3 Quoted in Tendulkar, *Ibid*, Vol IV, p 318

4 Gandhi, M K *My Experiments with Truth*, p 591

के अस्तित्व से ही इन्कार किया है परन्तु गाधीजी के लिए ईश्वर ही सत्य' और 'सत्य ही ईश्वर' है। उनके लिए केवल एक ही सत्य (ईश्वर) सवत्र विद्यमान है। इस सत्य से बढ कर विश्व म दूसरी कोई सत्ता नही। यह सत्ता मानव धम मे प्रकट होती है। "वह नियम जो समग्र जीवन को अनुशासित करता है ईश्वर है।" गाधीजी का विश्वास था कि यदि इस सत्य (ईश्वर) को छोड दिया जाय तो सारी सस्थाओ का अस्तित्व ही नष्ट हो जायगा।

गाधीजी धार्मिक व्यक्ति थे राजनीतिक नही। उनके सभी काय—सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक—धम द्वारा प्रभावित थे। अपने सावजनिक जीवन के लम्बे इतिहास म उन्होने धम के साथ (सत्य, अहिंसा) ही प्रयोग किया। उन्होने अपनी आत्म कथा का नाम भी 'मेरे सत्य के प्रयोग" (My Experiments with Truth) रखा। स्वय उन्होन लिखा है कि 'जबसे मुझ सावजनिक जीवन का ज्ञान है, प्रत्येक शब्द जो मेरे मुह से निकला है, प्रत्येक काय जो मैने किया है सबके पीछे एक धार्मिक चेतना और धार्मिक उद्देश्य रहा है।"[1]

धम गाधीजी का जीवन था। परन्तु धम से उनका अभिप्राय किसी सम्प्रदाय, कमकाण्ड या सस्कारवाद अर्थात हिन्दू धम, इस्लाम जन धम आदि से नही था। उनका धम तो 'मानव धम था। मानव की निष्काम सेवा ही उनके लिए सबसे वडा धम था। व्यक्ति पूण जीवन की तभी अनुभूति कर सकता है जब वह मानव धम का पालन करता है और जब धम को विशिष्ट या साम्प्रदायिक बना दिया जाता है तो वह पूण जीवन को नही देख सकता उसके आशिक या सीमित रूप को ही देखता है।

गाधीजी ने धम के सिद्धान्तो, आदशो या नियमो की घोषणा नही की और न ही वह ऐसा करना चाहते थ। वह तो सत्य के अन्वेषक थ और निरन्तर इसी की खोज करते रहे। वह मानव प्रेम और मानव सेवा के उपासक थे। वह अपने आप को अभ्रान्त (infallible) नही समझते थे, गलती होने पर प्रायश्चित भी करत थे। उन्होने जीवन भर मानव की आत्मा को जगाने का प्रयास किया।

गाधीजी की सभी विचारधाराएँ इसी 'मानव प्रेम तथा 'मानव सेवा' पर आधारित होती थी। उनका विश्वास था कि जो धम जीवन के व्यावहारिक विषयो मे हमारा पथ प्रदशन नही कर सकता अर्थात् जो पीडितो की सहायता करने की प्रेरणा नही देता या जो कतव्य से विमुख करता है वह धम नही है।

गाधीजी धम के परम्परागत नियमो को अन्ध विश्वास की भाँति स्वीकार नही करते थे बल्कि तक बुद्धि के आधार पर उन्ह स्वीकार या अस्वीकार करत थे।

---

1 Young India

जो धार्मिक नियम उनकी तक बुद्धि पर खरे नही उतरते थे उन्हे कभी स्वीकार नही करते थे।

गाधीजी धर्म परिवर्तन मे भी विश्वास नही करते थे। वह कहा करते थे, 'धर्म परिवर्तन करना या कराना धर्म नही।" धर्म तो मानव को अच्छा बनना सिखाता है। प्रत्येक मानव को समान समझना धर्म है। प्रत्येक मे दवित्व (Divinity) का अश है। इसलिए धर्म परिवर्तन के स्थान पर अच्छा है कि मानव को अच्छा मानव बनाया जाय। "मानव धर्म' और 'मानव सेवा" के अतिरिक्त गाधीजी के लिए दूसरा कोई धर्म नही।

गाधीजी ने धर्म को किसी सन्यासी के लिए सुरक्षित नही रखा था जो ससार के कर्तव्यो और दायित्वो से मुक्त हो जाता है बल्कि प्रत्येक व्यक्ति चाहे वह किसी भी व्यवसाय मे क्यो न हो—श्रमिक हो, कृषक हो व्यापारी हो, अध्यापक हो, शासक हो, इत्यादि—धर्म का अनुकरण करते हुए अपने कर्तव्यो को पूरा कर सकता है। "कर्म के बिना धर्म नही" इसका सृजन गाधीजी ने किया।

उपर्युक्त वर्णन से स्पष्ट है कि गाधीजी ने धर्म की परम्परागत विचारधारा को स्वीकार नही किया। उनके लिये सच्ची नैतिकता (धर्म) यह नही कि बताये हुये मार्ग पर अन्ध विश्वास करके चले बल्कि नैतिकता (धर्म) यह है कि स्वय के लिए सत्य मार्ग ढूढे तथा उस पर निडरता पूर्वक चले। इसी तरह गाधीजी ने राजनीति की सामान्य विचारधारा को स्वीकार नही किया। उनके लिए राजनीति सत्ता की खोज नही थी आत्मा की खोज थी। वह 'वसुन्धरा के राज्य" (Kingdom of Earth) के इच्छुक नही थे, वह तो "स्वर्ग के राज्य (Kingdom of Heaven) के इच्छुक थे। उनके लिए सत्य की निष्काम खोज ही आत्मा की खोज है, धर्म की खोज है। सत्य से उच्च कोई धर्म नही, सत्य ही जीवन का अडिग नियम है। इसी कारण गाधीजी की गणना राजनीतिज्ञो जैसे मेजिनी, गैरीबाल्डी हैम्पडन, डी वेलरा जगलुल पाशा, सन यात सेन इत्यादि मे नही होती बल्कि पैगम्बरो जैसे बुद्ध ईसा मसीह, जोरोअस्टर इत्यादि मे होती है। गाधीजी को सन्त (Saint) और 'महात्मा' (Mahatma) की सज्ञा भी इसी कारण दी गई।

जैसाकि ऊपर कहा गया है कि गाधीजी के लिए धर्म का अभिप्राय कर्तव्य निष्ठा है। राज्य और राजनीति उसके बिना नही चल सकते। धर्म पर आधारित होकर ही अच्छे राज्य की स्थापना की जा सकती है। जहा शासन' या सत्ता' की भावना प्रधान है वहाँ मानव भावना स्थिर नही रह सकती। गाधीजी की राजनीति मे इसलिए असत्य—छल कपट, क्रूरता, हिंसा, दावपेच, धोखाधडी इत्यादि—का कोई स्थान नही था। उसमे तो धर्म (सत्य, अहिंसा, प्रेम) का प्रवाह था। वह राजनीति को शुद्ध बनाना चाहते थे। जहाँ अन्य राजनीतिक दार्शनिको ने, जैसे काण्ट स्पेन्सर, काब्डन इत्यादि, राजनीति को नैतिक बनाने के स्वप्न देखे वहाँ उसे वास्तविक रूप से नैतिक

नियमों के आधार पर कार्यान्वित करने का श्रेय गांधीजी को ही है। गांधीजी की यह विशेषता है कि जो धार्मिक नियम प्राचीन समय से व्यक्तिगत प्रयोग के क्षेत्र समझे जाते थे उन्हें उन्होंने राष्ट्र के सामूहिक जीवन पर लागू किया। वह कहा करते थे कि 'यदि किसी की सम्पत्ति को हस्तगत करना अनैतिकता है, पाप है, चोरी है तो राष्ट्रों द्वारा दूसरे राष्ट्रों की भूमि हस्तगत करना भी अनैतिकता है, पाप है, चोरी है।" गांधीजी ने इस बात का खण्डन किया कि 'राजनीति तो राजनीति है या 'व्यापार तो व्यापार है' और उनमें नीति या धर्म की आवश्यकता नहीं। गांधीजी बार बार कहा करते थे कि 'यदि अहिंसा जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में लागू नहीं की जा सकती तो मेरे लिए इसका कोई व्यावहारिक मूल्य नहीं"। गांधीजी किसी भी कार्य की कल्पना धर्म के बिना नहीं करते थे और प्रत्येक क्षेत्र में, व्यवसाय में, व्यक्ति, समाज, जाति, राष्ट्र तथा अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में, नैतिक गुणों का विकास करना चाहते थे। इस तरह गांधीजी ने धर्म का राजनीति में प्रवेश कर उसे नैतिक बनाया। नैतिकता, धर्म साध्य साधन की पवित्रता व शुद्धता का राजनीति में प्रवेश ही उसका आध्यात्मीकरण है।

गांधीजी द्वारा राजनीति का आध्यात्मीकरण करने का प्रयास किसी नई धार्मिक भावना या कट्टरता का द्योतक नहीं, न ही वह कालिक (temporal) और लौकिक (secular) शक्तियों में समझौता है, न ही वह राज्य और धर्म के कार्य क्षेत्र का मिलान है, न ही वह प्राचीन दैवी नियमों की पुनः स्थापना है। उनका राजनीति का आध्यात्मीकरण करने से अभिप्राय केवल इतना है कि सामूहिक कार्यों में भी सत्य, न्याय और सर्वोदय की भावना सर्वदा विद्यमान रहे अर्थात् राजनीति को इन नैतिक भावनाओं द्वारा प्रेरित होना चाहिए।

साध्य और साधन
(End and Means)

गांधीजी के विचारों की यह विशेषता है कि उनमें साध्य और साधन में कोई भिन्नता नहीं। वह कहा करते थे, 'मेरे जीवन दर्शन में साधन और साध्य सपरिवर्तनीय शब्द हैं।'[1] न केवल साध्य ही नैतिक पवित्र शुद्ध और उच्च होने चाहिए बल्कि साधन भी उसी मात्रा में नैतिक पवित्र और शुद्ध होने चाहिए। वह दोनों को अविभाज्य समझते थे। उनके लिए साधन एक बीज की तरह है और साध्य एक पेड़। साधन और साध्य में वही सम्बन्ध है जो बीज और पेड़ में।[2] अगर कोई व्यक्ति साधनों का ध्यान रखता है तो साध्य स्वयं अपना ध्यान रखेगा।[3]

---

1 *Young India* dt 26 12 1924

2 *Hind Swaraj*, p 60

3 *Harijan*, February, 1939

गाधीजी इस सिद्धात म विश्वास नही करते थे कि "साध्य साधना का औचित्य है" (end justifies the means)। उनके लिए साध्य चाहे कितना ही उच्च क्यो न हो यदि उसको प्राप्त करने के साधन अपवित्र हैं तो वह साध्य साधना सहित त्याज्य है। गाधीजी के शब्दो म, "यदि पवित्र साध्य के लिए पवित्र साधन उपलब्ध नही तो उस साध्य को त्याग देना ठीक है'[1] क्योकि अपवित्र साधना से उच्च साध्य की प्राप्ति नही हो सकती। 'जैसा हम बोयेंगे वैसा ही हम काटेंगे।"[2] उद्देश्य (साध्य) की ओर हमारी प्रगति साधना की पवित्रता के अनुपात म होगी[3] जैसे साधन वैसा साध्य, साधन और साध्य को पृथक करने वाला कोई परदा (दीवार) नही।"[4] गाधीजी के लिए साधन ही सब कुछ थे। वह कहा करते थे 'अहिंसा की स्थापना हिंसा से नही हो सकती, जहा प्रेम की जगह विकर्षण की प्रक्रिया चल रही हो वहाँ प्रेम कैसे स्थापित होगा? जहाँ स्वय विषमता की वृत्ति है वहाँ विषमता दूर कैसे होगी? असत स्थिति स सत की विक्षेप से प्रेम की शरीर बल से आत्मबल की स्थिति की स्थापना कभी सम्भव नही। कटु बीज से मीठे फल की प्राप्ति कभी नही हुई है। विषमतायें, अन्याय तथा उत्पीडन तभी दूर हो सकते हैं जब हमारे साधन भी निर्दोष एव प्रेमपूर्ण हो। वनानिक एव आध्यात्मिक दृष्टि से साध्य साधन से भिन्न नही, उसी का घनीभूत है। साधन ही साध्य म रूपान्तरित होता है।"

गाधीजी ने भारत की राजनीतिक स्वतन्त्रता की लडाई मे किसी भी पहलू पर अपवित्र(हिंसक) साधनो का समर्थन नही किया उस समय भी नही जब उत्तेजना सरकार द्वारा प्रोत्साहित होती थी। गाधीजी के लिए अपवित्र साधनो का प्रयोग तो दूर उनकी कल्पना भी त्याज्य थी। गाधीजी छल, कपट हत्या और पशु बल के द्वारा स्वराज्य प्राप्त करने के इच्छुक नही थे। उनके शब्दो म, 'मैं तो अहिंसा और सत्य हेतु देश को होमने के लिए तयार हूँ, देश के लिए अहिंसा और सत्य को नही'।[6]

साधनो और साध्य दोनो की पवित्रता पर बल देकर गाधीजी ने राजनीति मे एक क्रांतिकारी परिवर्तन ला दिया है।

मानव प्रकृति पर गाधीजी के विचार

प्रत्येक दर्शन, धर्म या राजनीतिक प्रणाली मे मूल प्रश्न 'मानव प्रकृति" का

---

1 'Forgo the holy end, if the means are unholy' Gandhi, M K
2 *Collected Works of Mahatma Gandhi* Vol X p 43
3 Tendulkar *Ibid*, Vol III p 216
4 *Young India*, dt 17 7 1924
5 सत्याग्रह' पृ० 19 (उत्तर प्रदेश गाधी स्मारक निधि, सेवापुरी, वाराणसी)।
6 *Navajivan*, dt 25 10 1928

होता है। यद्यपि दार्शनिक मानव प्रकृति के बारे में भिन्न भिन्न विचार रखते हैं परन्तु प्रत्येक दर्शन मानव की परिभाषा या मानव प्रकृति के विश्लेषण से ही आरम्भ होता है। कुछ के लिये, जैसे मैक्यावली तथा हाब्स, मानव झगड़ालू, स्वार्थी तथा ईर्ष्यालु है और कुछ के लिए, जैसे रूसो, वह शान्त, सहयोगी एवं न्यायप्रिय है।

गाधीजी के लिए व्यक्ति न तो पूर्ण अच्छा और न पूर्ण बुरा है बल्कि उसमें अच्छाई और बुराई का सम्मिश्रण है। जहाँ वह शरीरधारी है वहाँ उसमें आध्यात्मिक तत्त्व भी विद्यमान है। इसलिये गाधीजी इस बात से सन्तुष्ट नहीं होते थे कि व्यक्ति क्या है बल्कि वह सर्वदा इस खोज में रहे कि व्यक्ति क्या बन सकता है। वह कहते थे कि "हममें पशु शक्ति अवश्य है परन्तु हम इसलिये पैदा हुए हैं कि हम उस ईश्वर की प्राप्ति करें जो हमारे में निवास करता है।" *यह व्यक्ति का ही विशेषाधिकार है* और यही तत्त्व उसे पशु जगत से पृथक् कर मानव बनाता है। मानव पूर्ण नहीं हो सकता परन्तु पूर्ण बनने के लिए 'पूर्ण प्रयास ही उद्देश्य की पूर्ण विजय है।"

अहिंसा पर गाधीजी के विचार
(Gandhiji's Views on Non Violence)

अहिंसा का अर्थ है मन, वचन और कर्म से किसी को कष्ट न देना अर्थात किसी का दिल न दुखाना। अहिंसक व्यक्ति प्रेम, दया, क्षमा, सहानुभूति और सत्य की मूर्ति होता है। उसका कोई शत्रु नहीं होता। विश्व प्रेम, जीव मात्र पर करुणा और उससे प्रकट होने वाली, अपनी देह को ही होम देने वाली *शक्ति का नाम अहिंसा* है। अहिंसा प्रेम की ऐसी जड़ी बूटी है जो कट्टर से कट्टर शत्रु को भी मित्र बना सकती है शक्ति से शक्तिशाली अस्त्र को परास्त कर सकती है। यह वह शक्ति है जो अजय है। यह "आत्मा का गुण है" जो चिरञ्जीवी है।

गाधीजी सत्य और अहिंसा को एक ही चीज मानते थे। उनके लिए दोनों एक ही धातु के दो पहलू हैं जिसके एक तरफ तो सत्य है और दूसरी तरफ अहिंसा। दोनों अविभाज्य हैं। *दोनों की स्थिति एक दूसरे के बिना सम्भव नहीं। दोनों एक दूसरे के पूरक हैं। यदि सत्य साध्य है तो अहिंसा उसकी प्राप्ति के लिए साधन है।* गाधीजी के शब्दों में, "अहिंसा वह ज्योति है जिसके द्वारा मुझे सत्य का दर्शन होता है।[1] 'अहिंसा ही सत्येश्वर का दर्शन करने का सीधा और छोटा मार्ग है।[2]

गाधीजी ने अहिंसा की परम्परागत व्याख्या को अस्वीकार कर उसे नई व्याख्याओं अर्थो और प्रकाश से विभूषित किया। *उनके लिए अहिंसा केवल नकारात्मक* नहीं थी अर्थात अहिंसा का अर्थ केवल मन, वचन और कर्म से दूसरों को दुःख

1 Navajivan dated 26-12 1924
2 Harijan Sewak, dated 10 11 1933

न पहुँचाने से नही या वल्कि इसका अथ सकारात्मक भी था अर्थात मानव का यह कतव्य है कि वह दूसरा की भलाई के लिये काय करे। प्रेम, दया क्षमा, स्व बलिदान गाधीजी की अहिंसा के आवश्यक पहलू हैं।

गाधीजी को अहिंसा केवल धर्मों तक सीमित नही था। यह व्यक्तिगत, निष्क्रिय और सैद्धान्तिक भी नही थी। गाधीजी की अहिंसा व्यावहारोपयोगी और सामाजिक थी। यह सक्रिय, प्रवल और व्यावहारिक शक्ति से विभूषित थी। गाधीजी ने इसे सामाजिक क्षत्र का विषय बना दिया। उनकी धारणा थी कि यदि अहिंसा केवल व्यक्तिगत है तो वह त्याज्य है।

गाधीजी की अहिंसा का क्षेत्र वहुत व्यापक है। इसम ब्रह्मचय (celibacy), अस्वाद, अस्तय (non stealing), अपरिग्रह (non possession) आदि सब कुछ शामिल है। गाधीजी का कहना है कि यदि कोई व्यक्ति "अपनी अनिवाय आवश्यकता से अधिक लेता ह तो वह हिसा है।" 'अविनय', तिरस्कार', 'अहकार' हिंसा ह। झूठ बोलना', ठगना' कम तोलना', 'विवशता का अनुचित लाभ उठाना' हिंसा है। गाधीजी का मत है कि "किसी को कभी नही मारना यह तो अहिंसा ह ही परन्तु तमाम खराब विचार हिंसा है। द्वेष वैर डाह हिंसा ह। किसी का बुरा चाहना हिंसा ह। जिसकी जगत का जरूरत ह उस पर कब्जा करना हिंसा है।"[1] क्रोध हिंसा है क्योकि क्रोध म जहर तो है ही, सग्रह मात्र हिंसा है, अनावश्यक क्रिया या अनावश्यक विरोध हिंसा है, पशु बल से दबाना हिंसा है, जरूरत से ज्यादा सम्पत्ति रखना चोरी है। शारीरिक श्रम गाधीजी की अहिंसा का अभिन्न अग है। उनकी धारणा है कि बिना शारीरिक श्रम क जो भोजन करता है वह चोरी का माल खाता है।

गाधीजी की अहिंसा सर्वोच्च प्रेम, सर्वोच्च दयालुता और सर्वोच्च आत्मबलिदान है। यही कारण है कि अग्रेजी का नॉन वायले स गाधीजी की अहिंसा को पूण रूप से व्यक्त नही करता। अपने पूण रूप मे यह अनिष्ठ हीनता (harmlessness), कल्याण ममता और सर्वोदय है। अहिंसक व्यक्ति विरोधी की बुराई का विरोध करता है विरोधी का नही। वह अत्याचार और अन्याय को अहिंसक साधनो से दूर करता है। वह विरोधी को कष्ट नही देता, स्वय कष्ट सहन करता है।

गाधीजी की अहिंसा शुद्धता और स्वच्छता पर आधारित ह। इसम घृणा, द्वेष, हिंसा आदि ऐसे तत्त्वो का लेश मात्र स्थान नही। गाधीजी की यह धारणा अवश्य थी कि प्रत्यक काय म कुछ न कुछ तो हिंसा ह ही और मानव को कम तो करना ही ह, इसलिए मानव को कम से कम हिंसा का माग ढूँढना चाहिए। परन्तु कइ परिस्थितियो मे दिखाई देने वाला हिंसा को गाधीजी हिंसा नही अहिंसा कहते थे। उदाहरणत जब गाधीजी ने आश्रम म, सन् 1928 म, गाय के बछड़े को सुई

---

1 From Mangal Prabhat, dated 29 7 1930

लगवा कर मरवा डाला तो कुछ लोगो ने इसे हिंसा कह कर पुकारा परतु गाधीजी ने इस अहिंसा की सज्ञा दी। गाधीजी कहते ह कि 'जब सेवा शक्य न हो, जीने की आशा ही न हो, रोगी बसुध हो और महादु ख भोगता हो तो उसके प्राण हरण म मैं लेश मात्र दोष नही मानता।"[1] गाधीजी कहते है कि किसी काय को हिंसक या अहिंसक करार देने से पूव उसके आशय (intention) और उद्देश्य (motive) का समझ लेना आवश्यक और महत्त्वपूण है।

गाधीजी की अहिंसा की एक अन्य बडी विशेषता यह ह कि यह सगठित हो सकती है। उनका विश्वास है कि जिस प्रकार हिंसा प्रशिक्षण द्वारा सगठित हो सकती है उसी प्रकार अहिंसा को भी सगठित किया जा सकता ह। गाधीजी कहते है कि 'यदि अहिंसा सगठित नही हो सकती तो वह धम नही।" "यदि मुझम काइ विशेषता है तो यही कि में सत्य अहिंसा को सगठित कर रहा हूँ।" उनका विश्वास ह कि जहा अ याय ह, उत्पीडन ह, भय है या मानव परम्परा, समाज, कानून, दण्ड या अविवेक के कारण सुकडा हुआ, दबा हुआ है अथात् जहाँ प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष हिंसा है वहा अहिंसा को सगठित कर इन अत्याचारा का दूर किया जा सकता ह। दक्षिण अफ्रीका, चम्पारन और खेडा म अहिंसक साधनो द्वारा जनमत को सगठित करके गाधीजी ने सिद्ध कर दिया कि अहिंसा सगठित हो सकती है और यह ऐसा अस्त्र है जो कभी विफल नही होता और द्वेष या शत्रुता पदा नही करता। इस तरह गाधीजी की अहिंसा, एक ओर सामाजिक एव समाजगत अन्यायो से लोहा लने का माग बताती ह तो, दूसरी ओर, युद्ध का एक नतिक विकल्प भी हमार सामन प्रस्तुत करती है।

अहिंसा के प्रकार (Types of Non violence)

गाधीजी ने अहिंसा के तीन प्रकार बताये है—(1) बहादुर की अहिंसा जिसे उ होने जागृत अहिंसा की सज्ञा दी है, (2) निबल की अहिंसा जिसे उ होने औचित्य अहिंसा की सज्ञा दी है, (3) कायर की अहिंसा जिसे वह अहिंसा का मिथ्या नाम कहते हैं।

1 बहादुर की अहिंसा

इस प्रकार की अहिंसा शूरवीर का लक्षण है, क्षत्रिय धम की परिसीमा है। यह 'अभय की चरमावस्था' वीरता की परिसीमा' है। इस प्रकार की अहिंसा विवशता म स्वीकार नही की जाती बल्कि यह आत्मिक और नतिक बल का परिणाम होती है। यह राजनीतिक नही, इसम कोई अपवाद नही, इसकी कोई परिकल्पना नही की जा सकती, यह जीवन का अडिग नियम है। इसम भय का नाम लेश मात्र

1 Navajivan, dated 4-10 1928

भी नहीं। इस प्रकार की अहिंसा प्रचण्ड शक्ति रखती है और किसी भी भयंकर से भयंकर स्थिति का सफलतापूर्वक सामना करने की सामर्थ्य रखती है। यह कभी झुकती नहीं। इस प्रकार की अहिंसा अजय है। यह बड़े से बड़े और कठिन से कठिन उद्देश्य को प्राप्त कर सकती है। यह प्रतिरोधी को बलपूर्वक नहीं दबाती बल्कि उसका हृदय परिवर्तन करती है।

2 निर्बल की अहिंसा

इस प्रकार की अहिंसा दुर्बलता का परिणाम है इसे विवशता पूर्वक स्वीकार किया जाता है। यह किसी विशेष उद्देश्य की प्राप्ति हेतु कार्य करती है। यह नैतिक विचारों का परिणाम नहीं होती, इसलिए इसका फल सीमित होता है। इसमें, आवश्यकता पड़ने पर, हिंसा का सहारा लिया जा सकता है। यह अहिंसा अँग्रेजी के नान वायलेन्स शब्द के अधिक समीप है। इसमें भी साधन जितनी मात्रा में शुद्ध होंगे उतनी ही मात्रा में सफलता प्राप्त होगी। इस प्रकार की अहिंसा में जालसाजी, धोखेबाजी गोपनीयता या लुका छिपी का कोई स्थान नहीं।

3 कायर (बुजदिल) की अहिंसा

गांधीजी इस अहिंसा को सत्ता नहीं देते थे बल्कि हिंसा को सत्ता देते थे। उनके शब्दों में, 'कायरता स्वयं एक सूक्ष्म इसलिए भीषण प्रकार की हिंसा है।[1] उनका विश्वास था कि जिस प्रकार अग्नि और जल एक साथ नहीं रह सकते उसी प्रकार अहिंसा और कायरता साथ साथ नहीं रह सकते। गांधीजी कायर से हिंसक होना पसन्द करते थे। उन्हीं के शब्दों में, "आप अपमानित और भयभीत होकर मरें, इसकी अपेक्षा में यह कहीं अधिक पसन्द करूँगा कि आप वीरता पूर्वक प्रहार करते हुए और उसे झेलते हुए मरें।'[2] "अहिंसा को कायरता की ढाल तो कदापि न बनाना चाहिए। जब हम अपनी बहनों (या धार्मिक स्थानों) की रक्षा अहिंसा से नहीं कर सकते तो ऐसे अत्याचारों को बेबसी के साथ देखते रहने की अपेक्षा तो हिंसक तरीके से लड़ते हुए मर मिटना चाहिए। सच्चा अहिंसक पुरुष तो ऐसे अत्याचारों और बलात्कारों की कहानी कहने के लिए कभी जिन्दा नहीं रहेगा। वह तो अहिंसक तरीकों से जूझता हुआ अपनी जान पर खेल चुका होगा, मर मिटा होगा।[3] इसी बिन्दु की व्याख्या करते हुए गांधीजी कहते हैं कि जब किसी स्त्री पर बलात्कार किया जाता है तो उसका पहला कर्तव्य स्वयं की सुरक्षा है न कि हिंसा या अहिंसा के बारे में विचार करना। अहिंसा न तो बुजदिली है और न ही

---

1 *Harijan Bandhu*, dt 24 6 1939

2 'अहिंसा और सत्य" (गांधी साहित्य प्रकाशन 1 2) से उद्धृत p 19

3 *Harijan Sewak*, dt 10 2-1946

प्रतिरोध न करना है। गाधीजी कायर व्यक्ति को इसान रहने के लिए भी तयार नही थे। "यदि हमारे हृदय म हिंसा है तो अपनी नपुसकता छुपाने के लिए अहिंसा का चोला पहनने की अपेक्षा हिंसात्मक रहना ही अच्छा है। नपुसकता की अपेक्षा हिंसा सदा अच्छी है। एक हिंसक से कभी अहिंसक होने की आशा को जा सकती है परन्तु नपुसक से कभी ऐसी आशा नही की जा सकती।"[1]

सत्याग्रह पर गाधीजी के विचार
(Gandhiji's Views on Satyagrah)

सत्याग्रह शब्द की उत्पत्ति—सत्याग्रह शब्द की उत्पत्ति गाधीजी ने दक्षिण अफ्रीका म की थी। इगलण्ड और दक्षिण अफ्रीका म चल रह निष्क्रिय प्रतिरोध (Passive Resistance) स भेद दिखाने क लिए भी इस शब्द की उत्पत्ति की गई थी। वि सेन्ट शीयन क शब्दो म यह 'सर्वोच्च आविष्कार या उत्पत्ति थी।"[2] इसके द्वारा गाधीजी ने हिंसक जगत को अहिंसा की शिक्षा दी।

सत्याग्रह शब्द के अर्थ

साधारण भाषा म सत्याग्रह बुराई का दूर करने अथवा विवादो को अहिंसक तरीको से दूर करने का तरीका है। साधारण भारतीय नागरिक के लिए यह गार तीया की अग्रेजी साम्राज्य के विरुद्ध स्वतन्त्रता की लडाई का तरीका था। प्रो० एन० क० बोस के शब्दो म, "सत्याग्रह अहिंसक तरीको द्वारा युद्ध का सचालन करन का तरीका है।'[3] डा० कृष्णलाल श्री धारणी के अनुसार, सत्याग्रह "अहिंसक सीधी कार्यवाही"[4] है।

साहित्यिक दृष्टि स सत्याग्रह एक सयुक्त शब्द है जो सत्य+आग्रह शब्द को मिला कर बना है। इसका अर्थ है सत्य के लिए आग्रह करना अर्थात् जिसे व्यक्ति सत्य समझता है उस पर जीवन पर्यन्त दृढ या डटा रहना। यह सत्य पर आरूढ रह कर बुराई का विरोध है। जो कुछ असत्य है उसका विरोध सत्याग्रह है। हर स्थिति मे सत्य को पकडे रहना सत्याग्रह है। हिंसा, भय और मृत्यु उसे इस पथ से विचलित नही कर सकते। सत्य के लिए अपने जीवन की बाजी लगा देना ही सत्याग्रही के कार्यक्रम का केन्द्र बिन्दु है। यह 'सत्य के लिए तपस्या है।'

---

1 *Harijan*, dt 21 10 1939
2 Sheean Vincent—*Lead Kindly Light*, p 244
3 Prof Bose, N K *Studies in Gandhism*, p 116
4 Dr Sridharani, Krishan Lal His Study on Satyagraha is entitled *War Without Violence*

सत्याग्रह की व्याख्या

सत्याग्रह का समस्त शास्त्र प्राणीमात्र पर विश्वास के आधार पर गढा गया है। यह "प्रेम का कानून' है। इसलिए सत्याग्रही का कोई शत्रु नही होता। वे लोग भी उसके मित्र हैं जो उससे विरोधी विचारधारा रखते है। सत्याग्रही का विरोध विपक्षी से नहीं उसके दुष्कृत से है, उसकी अनीति से है। वह अपने विरोधी के सम्मुख अपना आध्यात्मिक व्यक्तित्व स्थापित करता है और विरोधी के हृदय मे यह भावना जाग्रत करता है कि वह अपने व्यक्तित्व को हानि पहुँचाये बिना उसे हानि नही पहुँचा सकता। इस तरह सत्याग्रह आत्मानुभूति और सयोग' की कला है। सत्याग्रही कभी प्रतिपक्षी को कष्ट नही देता, स्वय कष्ट सहन करता है। "सत्याग्रही का बल दु ख उठाने म है।' 'दूसरो को कष्ट पहुँचाने से सत्य की उल्लघना होती है।' 'सन्देह, शका और अविश्वास तो उससे कोसो दूर है," "धाधली, अधीरता और वाचालता उसके समीप नही फटकत, द्वेष तो सत्याग्रह म है ही नही।"। गाधीजी अक्सर डनियल, सुकरात, प्रह्लाद और मीरा का उदाहरण दिया करते थे जिन्होने अपने पीडको के प्रति किसी प्रकार की दुर्भावना नही रखी।

सत्याग्रही सत्ता प्राप्त करने के लिए नही अपितु प्रतिपक्षी के हृदय परिवर्तन के लिए सत्याग्रह करता है। 'स्वपीडन ज्ञान की आखें खोल देता है।"[1] इसमे अधिकार नही त्याग की भावना प्रधान है। यह शस्त्र स्वार्थ का नही परमार्थ का है। यह एक ऐसी विधि है जिसमे व्यक्ति की चेतना की स्वतन्त्रता और समाज के हित दोनो सुरक्षित रहते है। इसम व्यक्तिवादी और समाजवादी दोनो दृष्टिकोणो का समन्वय है।

सत्याग्रह किसी एक पक्ष की विजय और दूसरे पक्ष की पराजय नही चाहता। उसका हेतु केवल एक हो है कि सत्य की विजय हो और असत्य विलीन हो जाय। समन्वय ही सत्याग्रह का आशय है ताकि दोनो पक्षो का एक सा कल्याण हो। परन्तु गाधीजी अपनी सुविधा के लिए सत्य को नापने का गज छोटा भी नही करना चाहते थे। इसमे किसी प्रकार की सौदेबाजी नही होती। सत्याग्रह म सख्या का महत्त्व नहीं वल्कि गुणो का महत्त्व है। गाधीजी कहा करते थे कि सत्याग्रह की क्षमता सत्याग्रहियो की सख्या पर नही वल्कि उनके गुणो पर निर्भर करती है। "सख्या तो बुजदिल के लिए प्रसन्नता का विषय हो सकता है, शूरवीर तो अकेला ही लडने म शूरवीरता पाता है।'

गाधीजी सत्याग्रह मे निम्न गुणो पर बल देते है—

(1) ईश्वर श्रद्धा, (2) सत्य-अहिंसा पर अटल विश्वास, (3) चरित्र, (4) निर्व्यसनी (5) शुद्ध ध्येय, (6) हिंसा का त्याग।

---

1 'Suffering opens the eyes of understanding' Y I dt 19 3 1925

रा ओर, यह समूहगत, समाजगत अन्यायों को दूर करने का उपाय भी है। यह क धार्मिक आन्दोलन है, शुद्धिकरण और तप की क्रिया है, शिकायत दूर करने की पलब्धि है, यह सात्विक सर्वकल्याणकारी युद्ध भी है और उच्च जीवन की शिक्षा क्षा देने वाला अध्यापन कार्य भी, दक्षिण अफ्रीका में फिनिक्स सेटलमेंट की स्थापना ति भेद, भाषा भेद, धर्म भेद, और वंश भेद को गौण बनाकर ही की गई थी।

गाधीजी ने सत्याग्रह को कई नामों से पुकारा है। यह "गुरु कुंजी"[1] Master key) है जिससे सभी प्रकार के ताले खुल जाते हैं। यह "अक्सीर लाज"[2] है जो भीषण से भीषण रोगों को दूर कर सकता है। यह सर्वसंकट निवा-णी संजीवनी बूटी"[3] भी है। यह "यज्ञ है जिसमें आत्म शुद्धि होती है"[4]। यह "ऐसी लवार है जिसे जंग नहीं लगता और जो दुश्मन की तलवार को निस्तेज कर देती ।" "पलकें जिस प्रकार आप ही आंखों की रक्षा किया करती हैं उसी प्रकार सत्या-ह प्रकट हो कर आत्म स्वतंत्रता की रक्षा स्वयं ही किया करता है।"[5] गाधीजी का ूर्ण विश्वास था कि दुराग्रह की दीवार सत्य रूपी प्रेम और अहिंसा रूपी साधन के ामने टिक नहीं सकती।

सत्याग्रह और निष्क्रिय प्रतिरोध
(Satyagrah and Passive Resistance)

सत्याग्रह के युद्ध कौशलों का वर्णन करने से पहले निष्क्रिय प्रतिरोध और सत्याग्रह में अन्तर को स्पष्ट समझ लेना उपयोगी होगा। यद्यपि दोनों ही आक्रमण का सामना करने, विवादों को सुलझाने, अन्याय और अत्याचारों को समाप्त करने तथा सामाजिक और राजनीतिक परिवर्तन लाने के तरीके हैं परन्तु यह बात ध्यान में रखने की है कि गाधीजी निष्क्रिय प्रतिरोध को सत्याग्रह की अनुभूतियों में नहीं लेते थे। वह इन दोनों में उतना ही अन्तर मानते थे जितना कि उत्तरी ध्रुव और दक्षिणी ध्रुव में। इन दोनों में अन्तर को निम्न प्रकार से स्पष्ट किया जा सकता है —

(1) निष्क्रिय प्रतिरोध निर्बलों का अस्त्र है जबकि सत्याग्रह वीरों का। जहां निष्क्रिय प्रतिरोधी अहिंसा का सहारा नीति के रूप में लेता है वहां सत्याग्रही अहिंसा का पालन धर्म के रूप में करता है।

---

1 Indian Opinion dt 28 10 1911
2 Indian Opinion dt 8 2 1908
3 Gandhi, M K dt 2 9 1917 (के भाषण से)
Hindi Navajiwan dt 17 5 1928
Gujrati dt 3 11 1917

संक्षेप में, सत्याग्रह के लिए, विशेषकर सामूहिक सत्याग्रह के लिए, उत्साह, धैर्य और सहिष्णुता की आवश्यकता है। इनमें से किसी एक की अनुपस्थिति सत्याग्रह को निष्फल कर सकती है। गाधीजी के शब्दों में, "यदि उत्साह है परन्तु धैर्य नहीं तो सफलता न मिलने पर धैर्य खो बैठने की शंका बनी रहती है और यदि धैर्य भी है परन्तु सहिष्णुता नहीं तो अधिक कष्ट मिलने पर थक जाने की सम्भावना है।"

सत्याग्रह सर्वव्यापी हो सकता है। यह सबके विरुद्ध हो सकता है—सरकार, कौम, जाति, व्यक्ति विशेष, समूह—यदि वे दूषित हैं। यह केवल शासकों और शासितों के बीच की वस्तु नहीं। जितना इसका प्रयोग शासन की अत्याचारी नीतियों या अन्यायों के विरुद्ध किया जा सकता है उतना ही इसका प्रयोग सामाजिक कुरीतियों जैसे सामाजिक बुराइयों (अस्पृश्यता) साम्प्रदायिक झगड़ों, इत्यादि को दूर करने के लिए भी किया जा सकता है।

गाधीजी युद्ध की स्थिति (सशस्त्र आक्रमण) का सामना भी सत्याग्रह के साधनों द्वारा करना चाहते थे। इस स्थिति के लिए उन्होंने दो विकल्प बताये—(1) आक्रमणकारी को देश का आधिपत्य दे देना अर्थात् उसे देश के अन्दर आने देना परन्तु उसके साथ असहयोग करना। यह आत्म समर्पण नहीं बल्कि मृत्यु को निमन्त्रण है। असहयोग करके देशवासी आक्रमणकारी के ध्येयों को नष्ट कर देंगे तथा उसे शक्तिहीन बना देंगे। (2) अहिंसात्मक तरीकों द्वारा देशवासी आक्रमणकारी की तोपों की प्यास बुझा देंगे अर्थात् निःशस्त्र सत्याग्रही छातियाँ खोल कर आक्रमणकारी की तोपों और संगीनों के सामने अपने आपको प्रस्तुत करेंगे। यह दृश्य आक्रमणकारी के हृदय को द्रवित पिघला देगा। गाधीजी का विश्वास था कि जब आक्रमणकारी निहत्थे व्यक्तियों स्त्रियों और बच्चों की पंक्तियों का दृश्य देखेगा तो कोई भी क्रूर से क्रूर हृदय भी पिघल जायगा। नीरो जैसा क्रूर हृदय भी पिघल जायेगा। द्वितीय महायुद्ध में गाधीजी ने अबीसीनिया के निवासियों, चैकों, पोलों, अंग्रेजों तथा अन्य आक्रमण से पीड़ित लोगों को यही सलाह दी थी, जापान द्वारा चीन पर आक्रमण होने की दशा में भी चीनियों को गाधीजी ने यही सलाह दी थी।

स्पष्ट है, गाधीजी ने सत्याग्रह शस्त्र को युद्ध के विकल्प के रूप में प्रस्तुत किया है। इतना ही नहीं, सत्याग्रह के तकनीक द्वारा युद्ध की समस्त रचना और उसकी कला (strategy) को ही बदलने का प्रयास किया गया है। उनका विश्वास था कि अनीति, अत्याचार, दलन, पीडन, दबाव (हिंसा) का निवारण एवं निराकरण सत्याग्रह द्वारा ही सम्भव है।

उपर्युक्त वर्णन से स्पष्ट है कि सत्याग्रह जहाँ एक ओर श्रेष्ठ, सरल, निष्कपट, निःस्वार्थ, आत्माप्रधान प्रेम प्रधान, जीवन विधान की अनुशासनात्मक श्रृंखला है वहाँ

दूसरी ओर, यह समूहगत, समाजगत अ याया को दूर करने का उपाय भी है। यह एक धार्मिक आन्दोलन है, शुद्धिकरण और तप की क्रिया है, शिकायत दूर करने की उपलब्धि है, यह सात्विक सवकल्याणकारी युद्ध भी है और उच्च जीवन की शिक्षा दीक्षा देने वाला अध्यापन काय भी, दक्षिण अफ्रीका म फिनिक्स सेटलम ट की स्थापना जाति भेद, भाषा भेद, धम भेद, और वश भेद का गौण बनाकर ही की गई थी।

गाधीजी ने सत्याग्रह को कई नामा से पुकारा है। यह 'गुरु कुजी'[1] (Master Key) है जिसस सभी अ धकार मई ताले खुल जाते ह। यह "अक्सीर इलाज'[2] है जो भीषण स भीषण रागा को दूर कर सकता है। यह सवसकट निवारणी सजीवनी बूटी '[3] भी है। यह यज्ञ है जिसम आत्म शुद्धि हाती है"[4]। यह "ऐसी तलवार है जिसे जग नही लगता और जा इस्पात की तलवार का निस्तज कर दती है।" 'पलकें जिस प्रकार आप ही आंखो की रक्षा किया करता है उसी प्रकार सत्याग्रह प्रकट हा कर आत्म स्वत त्रता की रक्षा स्वय ही किया करता है।[5] गाधीजी का पूण विश्वास था कि दुराग्रह का दीवार सत्य रूपा प्रेम और अहिंसा रूपी साधन के सामन टिक नही सकता।

सत्याग्रह और निष्क्रिय प्रतिरोध
(Satyagrah and Passive Resistance)

सत्याग्रह क युद्ध कौशला का वणन करन स पहले निष्क्रिय प्रतिराध और सत्याग्रह म अन्तर का स्पष्ट समझ लना उपयागी होगा। यद्यपि दोनो ही आक्रमण का सामना करने, विवादो को सुलझान, अ याय और अत्याचारा को समाप्त करने तथा सामाजिक और राजनीतिक परिवतन लान क तरीक है परन्तु यह बात ध्यान म रखन की है कि गाधीजी निष्क्रिय प्रतिरोध का सत्याग्रह की अनुभूतिया म नही लेत थे। वह इन दोना म उतना ही अ तर मानते थ जितना कि उत्तरी ध्रुव और दक्षिणी ध्रुव म। इन दोना म अ तर को निम्न प्रकार से स्पष्ट किया जा सकता है —

(1) निष्क्रिय प्रतिरोध निबलो का अस्त्र है जबकि सत्याग्रह वीरा का। जहाँ निष्क्रिय प्रतिरोधी अहिंसा का सहारा नीति के रूप म लता है वहाँ सत्याग्रही अहिंसा का पालन धम क रूप म करता है।

---

1 Indian Opinion dt 28 10 1911
2 Indian Opinion dt 8 2 1908
3 Gandhi, M K dt 2 9 1917 (के भाषण स)
4 Hindi Navajiwan dt 17 5 1928
5 Gujrati dt 3 11 1917

(2) निष्क्रिय प्रतिरोधी प्रत्येक स्थिति में सत्य के पूर्ण आचरण की आवश्यकता नहीं मानता जबकि सत्याग्रही के लिए सत्य के अतिरिक्त बाकी सब निस्सार है। हर स्थिति में सत्य का आचरण करना सत्याग्रह की आवश्यक शर्त है।

(3) निष्क्रिय प्रतिरोधी साधना की शुद्धता पर बल नहीं देता। अपने ध्येय की प्राप्ति के लिए आवश्यकता पड़ने पर वह हिंसा के प्रयोग की भी आकांक्षा करता है। दूसरे शब्दों में, निष्क्रिय प्रतिरोध में सर्वथा शान्ति धारण किए रहने की अनिवार्यता नहीं जबकि सत्याग्रह में न केवल साध्य ही शुद्ध और पवित्र होने चाहिए बल्कि साधन भी शुद्ध और पवित्र होने चाहिए। सत्याग्रह में हिंसा के प्रयोग की कल्पना भी हिंसा है। इसमें शान्तिपूर्ण उपायों का अनुसरण अनिवार्य है।

(4) निष्क्रिय प्रतिरोध आवश्यक नहीं ईश्वर श्रद्धा पर आधारित हो जबकि सत्याग्रह में सत्याग्रही का बल ईश्वर श्रद्धा है। सत्याग्रही का बल तो शून्य है। "निर्बल के बलराम" सत्याग्रही के मुँह में सदा रहता है।

(5) निष्क्रिय प्रतिरोध एक राजनीतिक अस्त्र है जिसका प्रयोग इच्छा पूर्ति के लिए किया जा सकता है। इसमें स्वार्थ की भावना बनी रहती है। सत्याग्रह एक नैतिक शस्त्र है। इसमें आत्मिक शक्ति का प्रदर्शन होता है। इसमें न तो सत्ता की भूख है न शक्ति की, इसमें केवल न्याय की भूख है। इसमें स्वार्थ की भावना नहीं होती। यह परमार्थ के लिए है।

(6) निष्क्रिय प्रतिरोध में विरोधी को तंग करना अथवा पीड़ा पहुँचाना शामिल है। यह विरोधी को विवश करके वांछित मार्ग पर लाना चाहता है। इसमें विरोधी के प्रति प्रेम की भावना नहीं होती। दूसरी ओर, सत्याग्रही में त्याग की भावना होती है। वह विरोधी को पीड़ा नहीं पहुँचाता, वह स्वयं दुःख झेलता है। सत्याग्रही तो प्रेम में ओत प्रोत होता है। वह मारने के स्थान पर मरने के लिए तैयार रहता है। वह आत्मा की शक्ति से विरोधी को जीतता है। वह उसका हृदय परिवर्तन करता है।

(7) निष्क्रिय प्रतिरोध निषेधात्मक (negative) एवं गतिहीन (Static) है परन्तु सत्याग्रह सकारात्मक (positive) एवं गतिशील (dynamic) है। निष्क्रिय प्रतिरोधी बिना किसी फल की प्राप्ति के कष्ट सहन करता है फल प्राप्त न होने पर उदासीन और निराश हो जाता है। दूसरी ओर, सत्याग्रही के त्याग का फल कभी निष्फल नहीं होता, वह हमेशा प्रसन्नचित्त रहता है, *निराशा तो उससे कोसों* दूर रहता है। सत्याग्रही हमेशा सफल होता है।

(8) *निष्क्रिय प्रतिरोध* का क्षेत्र सीमित है परन्तु सत्याग्रह का क्षेत्र असीमित है। जहाँ निष्क्रिय प्रतिरोध राजनीतिक अधिकारों को प्राप्त करने तक सीमित है वहाँ सत्याग्रह सभी क्षेत्रों में—सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक, इत्यादि—इसका प्रयोग

किया जा सकता है। प्रभाव मे भी निष्क्रिय प्रतिरोध सीमित है परन्तु सत्याग्रह से सारा ब्रह्माण्ड प्रभावित हो सकता है।

9 निष्क्रिय प्रतिरोध अन्याय और अत्याचार का सामना सुदृढता से नही कर सकता जबकि सत्याग्रह इनका सामना सुदृढता से कर सकता है।

10 निष्क्रिय प्रतिरोध युद्ध का नैतिक विकल्प नही, सत्याग्रह युद्ध का नैतिक विकल्प है।

11 निष्क्रिय प्रतिरोध नैतिक दृष्टि से निर्बल है, सत्याग्रह नैतिक दृष्टि से सुदृढ है।

सत्याग्रह के युद्ध कौशल (स्वरूप)
(Forms of Satyagrah War)

सत्याग्रह के युद्ध कौशल मुख्य रूप से निम्न प्रकार से हैं —

1 असहयोग तथा उसके स्वरूप (Non Cooperation and its forms)
   (अ) हड़ताल (Strike)
   (ब) सामाजिक बहिष्कार (Social Ostracism)
   (स) धरना (Picketing)
2 प्रव्रजन या हिजरत (Hijrat)
3 सविनय अवज्ञा (Civil Disobedience)
4 उपवास (Fast)

1 असहयोग

सत्याग्रह की प्रविधियो (techniques) म असहयोग प्रथम प्रविधि है। गाधी जी इसे "सन्तप्त प्रेम की अभिव्यक्ति"[1] कहते थे। इसका अभिप्राय यह है कि जिसे व्यक्ति असत्य, 'अवध', अनतिक या अहितकर' समझता है अर्थात जिसे व्यक्ति बुराई समझता है उसके साथ सहयोग नही करता। गाधीजी क लिए बुराई के साथ असहयोग करना न केवल व्यक्ति का वक्तव्य है वरिक उसका धर्म भी है। 'जो शासक कुशासन करते हैं उनकी शासन मे सहायता करने से इनकार प्रजा का चिरकाल से प्रमाणित अधिकार रहा है। अपमान या बुराई को चुपचाप सहना न केवल नैतिकता के विरुद्ध है वल्कि विधि के भी विरुद्ध है। गाधीजी की यह धारणा थी कि जब लिखा-पढ़ी याचिकाएँ असफल हो जाती हैं तो बुराई के साथ असहयोग करके सफलता प्राप्त की जा सकती है।

---

1 *It is the 'expression of anguished love"—Gandhi*, M K *Young India*, Vol I, p 241

(2) निष्क्रिय प्रतिरोधी प्रत्येक स्थिति में सत्य के पूर्ण आचरण की आवश्यकता नहीं मानता जबकि सत्याग्रही के लिए सत्य के अतिरिक्त बाकी सब निस्सार है। हर स्थिति में सत्य का आचरण करना सत्याग्रह की आवश्यक शर्त है।

(3) निष्क्रिय प्रतिरोधी साधना की शुद्धता पर बल नहीं देता। अपने ध्येय की प्राप्ति के लिए आवश्यकता पड़ने पर वह हिंसा के प्रयोग की भी आकांक्षा करता है। दूसरे शब्दों में, निष्क्रिय प्रतिरोध में सर्वथा शान्ति धारण किये रहने की अनिवार्यता नहीं जबकि सत्याग्रह में न केवल साध्य ही शुद्ध और पवित्र होने चाहिए बल्कि साधन भी शुद्ध और पवित्र होने चाहिए। सत्याग्रह में हिंसा के प्रयोग की कल्पना भी हिंसा है। इसमें शान्तिपूर्ण उपायों का अनुसरण अनिवार्य है।

(4) निष्क्रिय प्रतिरोध आवश्यक नहीं ईश्वर श्रद्धा पर आधारित हो जबकि सत्याग्रह में सत्याग्रही का बल ईश्वर श्रद्धा है। सत्याग्रही का बल तो शून्य है। 'निबल के बलराम' सत्याग्रही के मुँह में सदैव रहता है।

(5) निष्क्रिय प्रतिरोध एक राजनीतिक अस्त्र है जिसका प्रयोग इच्छा पूर्ति के लिए किया जा सकता है। इसमें स्वार्थ की भावना बनी रहती है। सत्याग्रह एक नैतिक शस्त्र है। इसमें आत्मिक शक्ति का प्रदर्शन होता है। इसमें न तो सत्ता की भूख है न शक्ति की, इसमें केवल न्याय की भूख है। इसमें स्वार्थ की भावना नहीं होती। यह परमार्थ के लिए है।

(6) निष्क्रिय प्रतिरोध में विरोधी को तंग करना अथवा पीड़ा पहुँचाना शामिल है। यह विरोधी को विवश करके वांछित मार्ग पर लाना चाहता है। इसमें विरोधी के प्रति प्रेम की भावना नहीं होती। दूसरी ओर, सत्याग्रही में त्याग की भावना होती है। वह विरोधी को पीड़ा नहीं पहुँचाता वह स्वयं दुःख झेलता है। सत्याग्रही तो प्रेम में ओत प्रोत होता है। वह मारने के स्थान पर मरने के लिए तैयार रहता है। वह आत्मा की शक्ति से विरोधी को जीतता है। वह उसका हृदय परिवर्तन करता है।

(7) निष्क्रिय प्रतिरोध निषेधात्मक (negative) एवं गतिहीन (Static) है परन्तु सत्याग्रह सकारात्मक (positive) एवं गतिशील (dynamic) है। निष्क्रिय प्रतिरोधी बिना किसी फल की प्राप्ति के कष्ट सहन करता है फल प्राप्त न होने पर उदासीन और निराश हो जाता है। दूसरी ओर, सत्याग्रही के त्याग का फल कभी निष्फल नहीं होता, वह हमेशा प्रसन्नचित्त रहता है, निराशा तो उससे कोसों दूर रहती है। सत्याग्रही हमेशा सफल होता है।

(8) निष्क्रिय प्रतिरोध का क्षेत्र सीमित है परन्तु सत्याग्र० का क्षेत्र असीमित है। जहाँ निष्क्रिय प्रतिरोध राजनीतिक अधिकारों को प्राप्त करने तक सीमित है वहाँ सत्याग्रह सभी क्षेत्रों में—सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक, इत्यादि—इसका प्रयोग

किया जा सकता है। प्रभाव में भी निष्क्रिय प्रतिरोध सीमित है परन्तु सत्याग्रह से सारा ब्रह्माण्ड प्रभावित हो सकता है।

9 निष्क्रिय प्रतिरोध अन्याय और अत्याचार का सामना सुदृढता से नही कर सकता जबकि सत्याग्रह इनका सामना सुदृढता से कर सकता है।

10 निष्क्रिय प्रतिरोध युद्ध का नतिक विकल्प नही, सत्याग्रह युद्ध का नैतिक विकल्प है।

11 निष्क्रिय प्रतिरोध नैतिक दृष्टि से निबल है, सत्याग्रह नतिक दृष्टि से सुदृढ है।

सत्याग्रह के युद्ध कौशल (स्वरूप)
(Forms of Satyagrah War)

सत्याग्रह के युद्ध कौशल मुख्य रूप से निम्न प्रकार से हैं —

1 असहयोग तथा उसके स्वरूप (Non Cooperation and its forms)
  (अ) हडताल (Strike)
  (ब) सामाजिक बहिष्कार (Social Ostracism)
  (स) घरना (Picketing)
2 प्रव्रजन या हिजरत (Hijrat)
3 सविनय अवज्ञा (Civil Disobedience)
4 उपवास (Fast)

1 असहयोग

सत्याग्रह की प्रविधियो (techniques) म असहयोग प्रथम प्रविधि है। गाधी जी इसे "सन्तप्त प्रेम की अभिव्यक्ति"[1] कहते थे। इसका अभिप्राय यह है कि जिसे व्यक्ति असत्य', 'अवध', 'अनैतिक' या अहितकर समझता है अर्थात जिसे व्यक्ति बुराई समझता है उसके साथ सहयोग नही करता। गाधीजी क लिए बुराई के साथ असहयोग करना न कवल व्यक्ति का कत्तव्य है बल्कि उसका धम भी है। 'जो शासक कुशासन करते है उनकी शासन मे सहायता करन से इकार प्रजा का चिर काल से प्रमाणित अधिकार रहा है। अपमान या बुराई को चुपचाप सहना न केवल नतिकता के विरुद्ध है बल्कि विधि के भी विरुद्ध है। गाधीजी की यह धारणा थी कि जब लिखा पढी, याचिकाएँ असफल हो जाती है तो बुराई के साथ असहयोग करके सफलता प्राप्त की जा सकती है।

---

1 It is the "expression of anguished love"—Gandhi, M K Young India, Vol I, p 241

असहयोग केवल सरकार की भ्रष्ट नीतियो तक ही सीमित नही बल्कि जाति और समाज म विद्यमान बुराइयो को दूर करने के लिए भी इसका प्रयोग किया जा सकता है। जहा दमन है, शोषण है, अत्याचार है वहा असहयोग सम्भव है। यह सगे सम्बन्धियो, सामाजिक तथा राजनीतिक सस्थाओ के विरुद्ध, यदि वे भ्रष्ट है प्रयोग किया जा सकता है। सहयोग त्याग का अभिप्राय यह है कि उक्त व्यक्ति, सस्था या सरकार का इतना शक्तिहीन बना दिया जाय कि वह याय करने पर बाध्य हो जाय। गाधीजी का विश्वास था कि एक निरकुश अत्याचारी, भ्रष्ट, अन्यायी और क्रूर तथा निर्दयी अधिनायक भी बहुत देर तक शासन नही कर सकता जब तक कि उसके सहायक अत्याचार सहने वालो म से ही न मिले।

गाधीजी असहयोग को 'स्वर्णिम अस्त्र', 'देवास्त्र" कहते थे। "यदि *असहयोग अन्तिम सीमा तक चला जाय तो सरकार या उक्त व्यक्ति व समाज का काय* बिल्कुल ठप्प कर देने मे यह सफल हो सकता है।"[1]

गाधीजी असहयोग को वधानिक मानते थे क्योकि इसका उद्देश्य तोड फोड नही बल्कि रचनात्मक काय करना है। गाधीजी ने असहयोग की तुलना उस सर्जन से की है जो विषले फोडे को अच्छा करने के लिए उसे चीरता है। उस सर्जन के चीड फाड का उद्देश्य रोगी को अच्छा करना है। इसी प्रकार असहयोगी का उद्देश्य दुष्ट को दुष्टता से अत्याचारी को अत्याचार से, अन्यायी को अन्याय करने से बचाना है। अर्थात जो सरकार बुराई म प्रवृत्त है उसे उससे बचाना ही असहयोग का उद्देश्य है। असहयोगी न केवल बुराइ का अन्त करता है बल्कि बुरा करने वाले को भी पवित्र करता है, शुद्ध करता है। जब अन्यायी अपने अन्याय को छोड देता है तो उससे सहयोग करना भी सत्याग्रही का कत्तव्य है। असहयोग तो केवल बुराई के साथ है।

असहयोग कई प्रकार का रूप धारण कर सकता है —

(अ) हडताल, (ब) सामाजिक बहिष्कार, (स) धरना

(अ) हडताल (Strike)

विरोध स्वरूप काय को स्वेच्छापूवक बन्द करने को हडताल कहते हैं। 'हडताल स्वेच्छापूवक तथा अन्त शुद्धि के लिए आत्मोत्सग है जो अनुचित माग पर जाने वाले विरोधी का हृदय परिवतन करने वाला होता है।'[2] हडताल एक ऐसा साधन है जिसके द्वारा व्यक्तियो का समूह या समाज अपने भावो को प्रकट कर सकता है। हडताल जहा, एक ओर जनता के दुख दद को प्रकट करने का माध्यम है वहाँ, दूसरी ओर सरकार के काय के प्रति अपनी घोर असहमति या अप्रसन्नता प्रकट करने

---

1 *Young India* dt 29-7-1920

2 It is a voluntary purifying suffering undertaken to convert the erring opponent —*Gandhi, M K*

का तथा लोगो मे जागृति लाने का सर्वोत्तम साधन है। गाधीजी का पूर्ण विश्वास था कि राष्ट्र की राय प्रकट करने का यह तरीका विराट सभाओ की अपेक्षा कही अधिक प्रबल है। गाधीजी के शब्दो म, 'मानव वाणी उस दूरी तक कभी नही पहुँच सकती जिस दूरी तक अत करण की मौन लघुवाणी पहुँचती है।"[1]

सत्याग्रही हडताल मे जोर जबरदस्ती, लूट मार, गुण्डागर्दी या आतक का कोई स्थान नही। यह स्वच्छ अ त करण पर आधारित होने से ही सफल हो सकती है। कृत्रिम हडताल का प्रभाव नही होता। दबाव भय या हिंसा द्वारा कराई गई हडताल को गाधीजी सत्याग्रही हडताल नही मानते थे।

गाधीजी ने हडताल को बध कष्टो को दूर कराने का शस्त्र बताया है परन्तु हडतालियो का केवल भ्रष्टाचार, अ याय, अदक्षता या अदूरदर्शी लालच पर ही आक्रमण करना चाहिए। गाधीजी ने यह भी चेतावनी दी कि हडतालियो की मागे न्यायपूर्ण, स्पष्ट और सम्भाव्य होनी चाहिए ताकि उनके प्रति सावजनिक सहानुभूति हो सके। अनुचित हडताल या हडतालियो की अनुचित मागें कभी सफल नही हो सकती और न ही वे सावजनिक सहानुभूति प्राप्त कर सकती ह। इस प्रकार की हडताल लाभ देने के स्थान पर हानि पहुँचाती है।

गाधीजी ने सत्याग्रही हडताल को केवल सच्ची धार्मिक भावना के रूप म स्वीकार नही किया वल्कि इस सीधी कायवाहिया (direct actions) की शृखला की भूमिका क रूप म सोचा था। यह सीधी कायवाही ही थी जिसने दक्षिण अफ्रीका म जनरल स्मटस के होश ठीक किय थे और यह सीधी कायवाही ही थी जिसने चम्पारन मे बहुत पुरानी शिकायत दूर कराई थी।

(ब) सामाजिक बहिष्कार (Social Ostracism)

सामाजिक बहिष्कार एक बहुत पुरानी परम्परा है जिसका ज म जातियो के उदय के साथ हुआ। यह निषेधात्मक है और एक ऐसा भयकर दण्ड है जिसका प्रयोग बडे प्रभावशाली ढग से किया जा सकता है। उदाहरणत जिस व्यक्ति का बहिष्कार किया जाता है उसे समाज द्वारा एक प्रकार का दण्ड दिया जाता है क्योकि उस समाज के अ य सदस्यो से मेल जोल बढाने का उसे कोई अवसर नही दिया जाता और व्यक्ति को सबसे बडा दण्ड उसे समाज से अलग करना है। इसी तरह जिस वस्तु का बहिष्कार किया जाता है उसके उत्पादन और खपत पर प्रहार करके बहिष्कार न केवल उस वस्तु का समाप्त करने का प्रयास करता है वल्कि अप्रत्यक्ष रूप से उसके

1 सत्याग्रह पुस्तिका अङ्क 9 स —28 4 1919

उत्पादकों को हानि पहुँचा कर उन्हें भी दण्डित करता है। इसलिए गांधीजी ने बहिष्कार को 'घेरेव दी'[1] की सज्ञा दी है।

गांधीजी ने बहिष्कार को ऐसा कड़ा शस्त्र माना है जिसका प्रयोग मर्यादा में रह कर ही किया जा सकता है। इसका कदापि यह अभिप्राय नहीं है कि विरोधी को अनिवार्य सामाजिक सेवाओं जैसे सेवक की सुविधायें, भोजन तथा वस्त्र की सुविधायें या डाक्टरी सहायता की सुविधाओं से ही वंचित कर दिया जाय। ऐसा करना दबाव या हिंसा होगी।

(ख) धरना (Picketing)

धरना देने का उद्देश्य विचारों को बदलना' से है। यह अनिवार्य रूप से शान्तिमय होना चाहिए। इसमें 'असभ्यता का व्यवहार", "जोर जबरदस्ती', 'धमकी", *का प्रयोग नहीं होना चाहिए। यह दबाव पुतलों (effigies) को जलाने या गाड़ने* अथवा भूख हड़ताल से रहित होना चाहिए। गांधीजी के शब्दों में, "शान्तिमय धरना उस व्यसन के खिलाफ एक दोस्ताना चेतावनी है जिसे सुधारक बुरा समझता है।'[2] उदाहरणतः यदि शराब की दुकानों पर धरना दिया जाय तो शराबी या नशेबाज को शराब की हानियां बता कर उसके विचारों को बदला जाय न कि उसके मार्ग में बाधा प्रस्तुत की जाय। गांधीजी चाहते थे कि यदि धरना शान्त न रह सके तो उसे एकदम बन्द कर देना चाहिए। सज्जनता और मौन प्रयास द्वारा सुधारक कलंकी के हृदय को जीतता है। धरना जन निन्दा द्वारा कलंकियों को लज्जित करता है हिंसा के भय द्वारा नहीं। गांधीजी ने धरना (अनशन) का भी ईश्वर की प्रेरणा पर आधारित किया है। उनके शब्दों में 'यदि अनशन की प्रेरणा ईश्वर के अनुग्रह से न हुई हो तो वह और बुरा नहीं तो कम से कम अकारण भूखा मरना तो अवश्य ही है।'

2 प्रव्रजन या हिजरत (Hijrat)

हिजरत वह प्रक्रिया है जिसके द्वारा व्यक्ति अपने निवास स्थान को छोड़कर दूसरे स्थान पर चला जाता है। इसका सहारा तब लिया जाता है जब व्यक्ति या जन समूह अपने आत्म सम्मान को छोड़े बिना घरों या गांव या देश में नहीं रह सकता तथा वह व्यक्ति या जन समूह अहिंसात्मक ढंग से या हिंसात्मक ढंग से अपनी रक्षा करने में असमर्थ है। दूसरे शब्दों में जब व्यक्ति या जन समूह के पास न तो आत्मा की शक्ति हो और न उसके पास हिंसा की शक्ति (अस्त्र शस्त्रों की शक्ति) हो तो उस समय हिजरत की क्रिया की जाती है। गांधीजी ने आत्म सम्मान को बचाने के लिए सन 1928 में बारदोली और सन् 1939 में लिम्बड़ी (Limbdi) जूनागढ़ (Junagarh) और विठलगढ के सत्याग्रहियों को अपने घर छोड़ने की सलाह दी थी।

---

1 Navajivan, dt 18 5 1924

2 Navajivan, dt 23 4 1931

3 सविनय अवज्ञा (Civil Disobedience)

सविनय अवज्ञा सत्याग्रह की एक महत्त्वपूर्ण शाखा है। इसका अभिप्राय "अनतिक अधिनियमित कानून को भग करना है। यह एक प्रकार की "अहिंसक क्रान्ति है।" गाधीजी ने इसे "पूर्ण प्रभावी और सशस्त्र क्रान्ति का रक्तहीन स्थानापन्न कहा है।"[1] यह प्रतिरोधी के विद्रोह का अहिंसक ढग से प्रकट करता है। यह कई रूप ले सकता है जैसे करो को देने से इन्कार करना राज्य सत्ता को ही मानने से इन्कार करना या एक-एक करके सारे अनतिक कानूनो का विरोध कर सरकार के ढाचे को ठप्प करना, इत्यादि।

यहाँ यह समझ लेना अनिवाय है कि जहा सत्याग्रह के अन्य स्वरूप व्यक्ति व्यक्ति समूह, जाति समाज तथा सरकार के विरुद्ध प्रयोग मे लाय जा सकते हैं वहा सविनय अवज्ञा केवल सरकार के विरुद्ध प्रयोग म लायी जा सकती है। यह कभी भी सामान्य शब्दावली (general terms) मे नही हो सकती, यह अनिवाय रूप से विशिष्ट (Specific or definite) होगी और केवल उन कानूनो, नियमो या कायपालिका आदेशो क विरुद्ध होगी जिसे सत्याग्रही अनतिक, अन्यायिक, और हानिकारक समझता है। कानूना का उल्लघन कर सत्याग्रही परिणामो को स्वेच्छा से स्वीकार करता है। यह शिकायतें दूर कराने का दृढ तरीका है।

गाधीजी सविनय अवज्ञा मे सविनय शब्द पर अर्थात अहिंसा पर बल देते थे। उनका विश्वास था कि 'सविनयता, अनुशासन, विवेक और अहिंसा के बिना की गयी अवज्ञा निश्चय ही ध्वस है। प्रेम मिश्रित अवज्ञा ही जीवन का प्राणद जल है।'[2]

गाधीजी यह स्वीकार नही करते थे कि सविनय अवज्ञा अराजकता को जन्म देती है। वह कहते थ कि 'जब सविनय प्रतिरोधी किसी से घृणा नही करता, शस्त्र का प्रयोग नही करता तो अराजकता फलने का प्रश्न ही नही उठता।" कानून के प्रति भक्ति तो उसी समय सम्भव है जब वह नतिक हो और प्रजातान्त्रिक तरीके से बनाया गया हो। अनतिक कानून की अवज्ञा वास्तव म उच्च नैतिक नियम (सत्य) की पालना है।

गाधीजी का विश्वास था कि सविनय अवज्ञा प्रचार और शिक्षा का सर्वोत्तम माध्यम है। यह न केवल राष्ट्र की जनता को शिक्षित करने का सर्वोत्तम साधन है बल्कि विश्व जनमत को भी शिक्षित करने का तरीका है। उदाहरणत 'नमक कानून' भग करने के समय जो जन जाग्रति भारतीयो मे पैदा हुई तथा जो विश्व जनमत पैदा हुआ वह इस बात का प्रमाण है कि यह प्रचार का सर्वोत्तम साधन है।

---

1 It is 'complete, effective, and bloodless substitute of armed revolt' Gandhi, M K

2 *Young India*, dt 5 1 1922

4 उपवास (Fasting)

उपवास ऐसा कष्ट है जिसे व्यक्ति अपने ऊपर स्वय लागू करता है। यह सत्याग्रह के शस्त्रागार म सबसे शक्तिशाली अस्त्र है। इसके परिणाम भयकर होने से इसका प्रयोग बडी सावधानी और समक्ष से करना चाहिए और तभी इसका सहारा लेना चाहिए जब सब सवधानिक तरीके, याचिकायें तथा प्रार्थना पत्र असफल हो गये हा।

उपवास को गाधीजी ने "आध्यात्मिक औषधि" की सज्ञा दी है जिसका प्रयोग इसमे निपुण वैद्य ही कर सकता है। यह चिकित्सा विशिष्ट रोगो म ही फलदायी होती है। गलत जगहो पर प्रयोग करने मे इसमे भारी जोखम होता है। इस तरह अनुकूल परिस्थितियो म ही उपवास परम श्रेष्ठ अपील है।

उपवास कई आधारो पर किये जा सकते हैं, आत्म शुद्धि के लिये (इसे गाधीजी ने तप की सज्ञा दी है), स्वास्थ्य के लिए, पश्चाताप के लिए, सावजनिक हित के लिये, अन्याय का प्रतिरोध करने के लिए या बुराई करने वाले का हृदय परिवतन करने के लिये। गाधीजी ने न केवल आत्मशुद्धि और पश्चाताप के लिए बल्कि अन्याय और अत्याचार को दूर करने के लिए अर्थात सामान्य कल्याण के लिए उपवास किये। उपवास कसा भी हो प्रत्येक मे सावधानी और सतकता की आवश्यकता होती है।

उपवास म कई मर्यादायें भी हैं जैसे उपवासी म स्वाथ, रोष, अविश्वास का तनिक भी स्थान नही होना चाहिए, धैय दृढता, पवित्रता एकाग्रता और शान्ति तो उसम अद्वितीय होनी चाहिए, उपवास काल मे उसका मन निमल कल्मषहीन, विशुद्ध होना चाहिए। उपवास को सर्वेश्वर प्रभु मे नियोजित करना चाहिए। सयम इसमे बडी कारगर प्राथना है। स्वाथ रहित उपवास तो शुद्धता की देवी है। सत्य और अनुकूल परिस्थितिया पर आधारित हा तो उपवास अमोघ शस्त्र है जो मृतक आत्माओ मे जान डाल देता है, गिरी हुई आत्माओ म खलबली मचा देता है यह ऐसी हृदय की भाषा है जो विरोधी को स्पश किय बिना नही रह सकती। गाधीजी के शब्दो मे, लोग कहने से चेतते ही नही। उपवास से ही हजारो को सदेश पहुँचाया जा सकता है।'[1]

उपवास गाधीजी के जीवन अग बन चुके थे। वह कहा करते थे, जिस प्रकार बाह्य जगत के लिए आख काम देती है उसी प्रकार अ तजगत के लिए उपवास काम देता है।'[2] गाधीजी ने अपने जीवन म कई उपवास रखे जैसे सन 1924 म हिन्दू मुस्लिम एकता के लिए 21 दिन का उपवास मौलाना मुहम्मद अली के घर पर शुरू किया, सन् 1932 मे सर मैकडानल्ड के साम्प्रदायिक निणय के विरुद्ध यवदा जेल मे आमरण

---

1 11 7 1934 को सरदार पटेल का लिखे पत्र म से 'बापू के पत्र सरदार वल्लभ भाई के नाम, पृ० 105

2 Navajivan, dt 3 12 1925

उपवास शुरू किया, आत्म शुद्धि के लिए भी 21 दिन का उपवास यवदा जेल मे शुरू किया, इत्यादि ।

सत्याग्रह का मूल्याकन
(Evaluation of Satyagrah)

गाधीजी के सत्याग्रह युद्ध की आलोचको ने कई आधारो पर कटु आलोचना की है जिनमे से मुख्य निम्न है —

1 अहिंसक सीधी कार्यवाही बल प्रयोग है

गाधीजी के सत्याग्रह म हडताल, बहिष्कार और उपवास के प्रयोग की आलोचको ने "बल प्रयोग" (Coercion) कह कर निन्दा की है । आथर मूर इन्हे "मानसिक हिंसा"[1] कहता है । सी० एम० केस का मत है कि इनमे "विरोधी को बलपूवक दबाया जाता है यद्यपि यह बल प्रयोग अहिंसक है । वहिष्कार और हडताल तो मानसिक हिंसा है जो विभाजनकारी और नतिकता की दृष्टि से अवनति भी है ।"[2]

गाधीजी के उपवास को तो त्रास (terrorism) की सना भी दी गई है, विशेषकर जब इसका प्रयोग राजनीतिक उद्देश्यो के लिए किया जाता है । इसे 'राजनीतिक दबाव' (political blackmail)[3] भी कहा गया है। जाज अरून्डेल के शब्दो मे इसम विरोधी के पास एक ही विकल्प है *"आत्म समपण या उपवासी की आत्म हत्या ।"*[4] उपवास न केवल विरोधी की भावनाओ, उसकी मानवता, वीरता और दया का शोषण है बल्कि जो बहुत हानिकारक बात है, वह यह है कि यह स्वच्छन्द वातावरण को दूषित कर नि स्वाथ भावना से सोचने क अवसरो को समाप्त कर देता है ।

2 सत्याग्रह का प्रयोग सभी परिस्थितियो मे नहीं किया जा सकता

यह कहना बहुत कठिन है कि सत्याग्रह हर जगह, हर परिस्थिति मे और हर प्रकार के लोग इसका प्रयोग कर सकते हैं । सत्याग्रह भले ही स्वतन्त्र समाजो मे, जहा मानवता के प्रति आदर और न्याय के शासन के प्रति सद्भावनाये विद्यमान होती हैं, सफल हो सकता है परन्तु निरकुश शासनो मे, जहाँ व्यक्ति की स्वतन्त्रता का कोई

---

1 'Mental Violence'' Arthur Moore (S Radhakrishnan (ed) Mahatma Gandhi, pp 192 93)

2 Quoted in Gopinath Dhawan's *The Political Philosophy of Mahatma Gandhi*

3 "I regard the use of a fast for political purposes as a form of political blackmail for which there can be no moral justification " From letter of Viceroy to Gandhi, dt 5 2 1943

4 "The action of an opponent has no alternative between surrender and the fasting individual s suicide '—Arundale, G Quoted in Gopinath Dhawan, Ibid, p 151

महत्त्व नहीं होता और प्रजातान्त्रिक अधिकार अनुपस्थित होते हैं छापाखाने पर कड़ा नियन्त्रण होता है, गुप्त पुलिस का बोलबाला होता है, वहां इसकी सफलता संदिग्ध है। हिटलर, मुसोलिनी और स्टालिन जैसे निरंकुश शासनों के अधीन सत्याग्रह को कैसे संगठित किया जा सकता है यह समझ नहीं आता। डा० बन्दुरा के शब्दों मे, "इस बात का सामान्यीकरण करना कि (सत्याग्रह द्वारा) कहीं भी और किसी भी प्रकार के लोग अन्यायी विरोधी का हृदय परिवर्तन कर सकते हैं आत्मनाशक है।"[1]

3 यह कहना कठिन है कि सत्याग्रही के कारण ही विरोधी का हृदय परिवर्तन हुआ

इस बात का प्रमाण मिलना भी बहुत कठिन है कि क्या सत्याग्रही के न्याय के पक्ष से प्रभावित होकर विरोधी का हृदय परिवर्तित हुआ या किन्हीं अन्य कारणों से जिन्हें मनोवैज्ञानिक और सामाजिक तत्त्व कहा जा सकता है। वास्तव में सत्याग्रह की सफलता विरोधी की नैतिकता और मानवता की भावना पर निर्भर करती है। गांधीजी कह सकते हैं कि कोई व्यक्ति आत्मा रहित नहीं होता परन्तु यह तो परिकल्पना (hypothesis) है तथ्य (fact) नहीं जिसे वैज्ञानिक ढंग से नापा जा सके।

4 यह आवश्यक नहीं कि सत्याग्रह एकता पैदा करे विघटन भी पैदा कर सकता है

गांधीजी सत्याग्रह द्वारा भारत की स्वतन्त्रता तो प्राप्त कर सके परन्तु राजनीतिक एकता नहीं। जिन्ना जैसा हठधर्मी हो तो उसका हृदय परिवर्तन करना बहुत कठिन है। यह बात ध्यान देने की है कि जिन्ना से मूल भेद होते हुए भी गांधीजी ने उसके विरुद्ध कभी सत्याग्रह नहीं किया, निरंकुश शासन के विरुद्ध भी उन्होंने कभी सत्याग्रह नहीं किया। साम्प्रदायिक समस्या का हल अभी तक पूरी तरह नहीं हुआ।

5 आक्रमण का विरोध करने के लिए असहयोग का सुझाव व्यावहारिक नहीं

वर्तमान विश्व में असहयोग द्वारा आक्रमण का सामना करना व्यावहारिक प्रतीत नहीं होता क्योंकि (i) युद्ध कला दूरी की लड़ाई में निपुण बनने से सत्याग्रहियों का आक्रमणकारियों से सीमा पर सामना होना सम्भव नहीं (ii) छापामार लड़ाई में आक्रमणकारी की स्थिति का पता लगाना कठिन है (iii) कोई राष्ट्र अहिंसक साधनों पर निर्भर कर अपने नागरिकों की स्वतन्त्रता व सुरक्षा खतरे में नहीं डाल सकता, (iv) यह भी आवश्यक नहीं कि विरोधी मानवता के मूल्यों का महत्त्व देगा, (v) परमाणु युद्ध में तो सत्याग्रह का प्रश्न ही नहीं उठता क्योंकि अधिकांश जनता तो इस प्रकार के युद्ध में समाप्त हो चुकी होगी। राज्य द्वारा हिंसा का परित्याग सम्भव नहीं।

---

1 Bondurant Quoted in Buddhadeva Bhattacharyya, *Evolution of the Political Philosophy of Gandhi* p 343

6 अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र मे हिंसा का पूर्ण त्याग सम्भव नहीं

गाधीजी अन्तर्राष्ट्रीय समस्याओ को बहुत सरल समझते थे जो वास्तव म सरल नही। यह इस बात को भूल गये कि अन्तर्राष्ट्रीय सघर्ष केवल शस्त्रो से उत्पन्न नही होते बल्कि अ तर्निहित उद्देश्यो जैसे राष्ट्रवाद, राजनीतिक प्रतिद्वन्द्विता, आर्थिक प्रतियोगिता, धर्म जाति भिन्न भिन्न सामाजिक तथा राजनीतिक प्रणालियो के कारण होते ह। अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र म हिंसा का प्रयोग पूर्णतया समाप्त होना सम्भव नही। हक्सले के शब्दो म "केवल अच्छी भावनाये और निष्ठा ही विश्व को बचाने के लिए पर्याप्त नही वैज्ञानिक तरीको को अच्छी भावनाओ और निष्ठा से मिलाना होगा।'

7 समूह की नैतिकता का स्तर व्यक्ति की नैतिकता के स्तर के समान होना कठिन है। इसके अतिरिक्त सत्याग्रह तब सफल हो सकता जब सारी जनता इसका समर्थन करे। अच्छे नेताओ की सर्वदा उपलब्धि होनी भी कठिन है।

8 अहिंसक साधना से सामाजिक और आर्थिक परिवर्तन लाना कठिन है

साम्यवादी, अराजकतावादी तथा अन्य क्रान्तिकारी दार्शनिक सामाजिक तथा आर्थिक स्थिति मे परिवर्तन लाने के लिए अहिंसक साधना को अपर्याप्त समझते ह। इनका विश्वास है कि अभिमान्य स्थिति प्राप्त व्यक्ति अपनी अभिमान्य स्थिति को स्वेच्छा स नही छोडेगे। इसलिए पूजीपतियो तथा अन्य सामाजिक भिन्नताओ को समाप्त करने के लिए हिंसा की आवश्यकता है।

उपर्युक्त वर्णन स स्पष्ट है कि सत्याग्रह पर कई प्रकार से प्रहार किया गया है। यद्यपि आलोचको न इस 'बल प्रयोग की सज्ञा दी है और वर्तमान समस्याओ के निवारण म अपर्याप्त माना है पर तु गाधीजी के लिए यह न ही तो बल प्रयोग है और न ही अपने म अपर्याप्त। गाधीजी के लिए सत्याग्रह ही विश्व म स्थायी शान्ति लाने का सर्वोत्तम मार्ग है और सामाजिक सम्ब धो को सुधारने का तरीका है। चाहे हम गाधीजी के सत्याग्रह के सिद्धा त स पूर्ण सहमत हो या नही हम यह तो स्वीकार करना होगा कि इसम (1) जन जाग्रति पैदा करने, जनमत निर्माण करने, जन आरम्भन, की भावना पैदा करने नैतिकता की भावनाये पैदा करने, इत्यादि की प्रचण्ड शक्ति है। (2) सच्चे सत्याग्रही के अनुशासन म त्याग, नि स्वार्थ सेवा आदि ऐसे मनोवैज्ञानिक तथा सामाजिक तत्त्व ह जो विरोधी के मन म एक बार हलचल तो अवश्य पैदा कर देते ह। (3) यद्यपि यह अपने उद्देश्यो को पूर्णतया प्राप्त न कर सके परन्तु यह लोगो की शिकायतो के प्रति समाज और सरकार का ध्यान तो आकर्षित करता ही है। (4) यद्यपि यह उक्त विवाद को हल करने म सफल न हो पर तु यह स्थिति को गम्भीर बनने से तो रोकता है। यद्यपि यह सभी सामाजिक विवादो के लिए इलाज नही, यह कम से कम उ ह शान्त तो करता है। (5) यह आत्म शुद्धि का सर्वोत्तम साधन है। (6) इसम अपने अनुयायियो मे धैर्य,

श्रमय और आत्म पीडन की भावनायें पैदा करने की असीम शक्ति है। इस तरह "जब तक मानव जाति मे प्रतिरोध का सन्देश समाप्त नही होता तब तक सत्याग्रह सतत रहेगा।"[1]

क्या सत्याग्रह सवैधानिक है ?
(Is Satyagrah Constitutional ?)

निरकुश सम्प्रभुता के समर्थक दार्शनिको का विश्वास है कि राज्य सत्ता के विरुद्ध प्रतिरोध—चाहे वह सत्याग्रह द्वारा हो या अन्य तरीको द्वारा—असवैधानिक है। परन्तु इस विचारधारा का खण्डन लास्की तथा अन्य बहुलवादियो ने किया है। इन लेखको का पूर्ण विश्वास है कि व्यक्ति का सर्वोत्तम कर्तव्य अपनी आत्मा के प्रति सच्चा होना है। गाधीजी का भी विश्वास था कि "अन्यायपूर्ण नियम को स्वीकार करना स्वतन्त्रता का अनैतिक विनिमय है।"[2] इसके अतिरिक्त सत्याग्रह का तरीका किसी रूप मे असवैधानिक प्रतीत नही होता क्योकि इसमे हिंसा का प्रयोग बिल्कुल नही, विरोधी को किसी प्रकार का कष्ट नही दिया जाता, आत्मपीडन द्वारा ही जाग्रति पैदा करने का प्रयास किया जाता है। यदि यह कहा जाय कि सत्याग्रह मे सवैधानिक कानूनो की अवज्ञा असवैधानिक है तो यह भी मिथ्या है क्योकि कानूनो का मुख्य उद्देश्य सामाजिक जीवन को व्यवस्थित करना है, अन्याय और अत्याचार को समाप्त करना है, फिर, यदि कानून, चाहे वे सवैधानिक ही क्यो न हो, ऐसा नही करते बल्कि अन्याय और अत्याचार को बढावा देते है तो उनकी उल्लघना करना न केवल कर्तव्य है बल्कि अधिकार भी है। इसके अतिरिक्त प्रत्येक प्रजातान्त्रिक समाज मे असहमति प्रकट करने, जनमत को शिक्षित करने का पूरा अधिकार होता है। यदि सत्याग्रह अन्यायो के प्रति जनमत पैदा करता है तो यह कोई असवैधानिक कार्य नही। यदि यह कहा जाय कि सविनय अवज्ञाकारी गलती पर था फिर भी उसका कार्य असवैधानिक नही होता क्योकि वह विरोधी को कष्ट नही देता। गाधीजी ने, इसलिए, स्पष्ट कहा है कि "सविनय अवज्ञा को दबाने का प्रयास आत्मा को बन्दी बनाने का प्रयास है।"[3] यह कहा जा सकता है कि सामाजिक जीवन को पूर्ण बनाने के प्रयासो मे स्वय कष्ट अर्थात सत्याग्रह का सिद्धान्त सर्वदा विद्यमान रहेगा। यह भी ध्यान रखने की बात है कि सत्याग्रह तभी आरम्भ किया जाता है जब सवैधानिक तरीके अन्याय को दूर करने मे असफल हो जाते हैं।

---

1 Bhattacharya, Buddhadeva, *Ibid*, p 346

2 Gandhi, M K *Young India*, 10-11 1921

3 Gandhi, M K *Young India*, Vol I p 943

गाधीजी के आर्थिक विचार
(Economic Thoughts of Gandhiji)

गाधीजी अर्थशास्त्री नही थे । इसलिए उनके आर्थिक विचार किसी अथशास्त्र के सिद्धान्त परआधारित नही थे। अपने आर्थिक विचारो मे उन्होने अर्थशास्त्र के नियमो का पालन भी नही किया। उन्होने स्वय किसी आर्थिक सिद्धान्त की रूप रेखा को स्पष्ट रूप से तैयार भी नही किया।

गाधीजी का आर्थिक समस्याओ पर दृष्टिकोण उद्धारक (Eclectic[1]—to select the best) था और उनके सुझाव समय, आवश्यकता और मानवता की दृष्टि से प्रेरित होते थे । उनके ये सुझाव वास्तविकता और स्वय के अनुभव पर आधारित थे। यही कारण है कि गाधीजी के आर्थिक विचार बदलते रहे। जहा हिन्द स्वराज[2] म गाधीजी के विचार "वतमान सभ्यता विरोधी", "यन्त्र विरोधी" और 'पूंजी" विरोधी प्रतीत होत हैं वहा बाद म उनके विचार व्यावहारोपयोगी और यन्त्रो से समझौता करने वाले दिखाई देते है। यह भी हो सकता है कि उनके विचार उपनिवेश शासन से भी प्रभावित[3] हुए हो।"

गाधीजी के आर्थिक विचारो की मूल धारणायें

जिस प्रकार स पूंजीवाद और समाजवाद की अपनी अपनी मूल धारणायें ह उसी प्रकार गाधीवाद के अथशास्त्र की भी मूल धारणायें है। ये धारणायें निम्न प्रकार से ह —

(1) ये विचार परम सत्य (ultimate truth) से भरे पडे है। इन्हे अधि-अथशास्त्र (Meta economics)[4] कहा गया है।

(2) य विचार सामाजिक न्याय और नतिक मूल्यो (Social Justice and Moral Values) पर आधारित हैं। "सच्चा अथशास्त्र अथ का न्याय है।'[5]

(3) ये विचार मानव तथा उसके कल्याण पर आधारित है।

---

1 See Bhattacharyya Buddhadeva *"Evolution of the Political Philosohpy of Gandhi*, Ch 8 pp 197 280

2 See Gandhi M K *Hind Swaraj* Also refer to Harijan and Young India (both Weeklies) for Gandhiji s later views on Machinery, Industrialization and labour capital relations

3 "His mental horizon was bound by the economics of colonial rule"—Dantwala, M L Seminar 46, June 1963, p 20

4 Bihari, Bipin *Gandhian Economic Philosophy*, p 2

5 True economics is the economics of Justice

(4) इन विचारों में अर्थशास्त्र और नीति शास्त्र दो भिन्न सत्तायें (entities) नहीं। जो अर्थशास्त्र राष्ट्र के कल्याण को हानि पहुँचाता है वह अनैतिक है इसलिए अधम (sinful) है। गांधीजी के अर्थशास्त्र का मापदण्ड नैतिक मर्यादा है। "जो अर्थशास्त्र लक्ष्मी पूजा सिखाता है और निर्बल की कीमत पर शक्तिशाली को धन एकत्रित करने में प्रोत्साहन देता है वह झूठा और उदासीन विज्ञान है।"[1]

(5) ये विचार सरलता (Simplicity) पर आधारित हैं। इनका आदर्श सादा स्वस्थ और संयत जीवन है। इनमें आवश्यकताओं को बढ़ाने के स्थान पर कम करने पर बल दिया जाता है। ये भौतिक विलास को नैतिक विकास के लिए सहायक नहीं मानते।

(6) ये विचार मानवता के विचारों से भरे पड़े हैं, इनमें अर्थशास्त्र, नीति शास्त्र, मनोविज्ञान और धर्म संश्लेषित हैं।

(7) ये विचार सम्पत्ति का समान वितरण चाहते हैं परन्तु व्यावहारिक कठिनाइयों के कारण साम्यिक वितरण (equitable distribution) का प्रयास करते हैं, ये व्यक्ति को अभाव (want) से मुक्ति दिलाना चाहते हैं और उसकी अनिवार्य आवश्यकतायें—रोटी, कपड़ा, मकान—पूरी करना चाहते हैं।

(8) ये विचार वर्तमान सभ्यता को लोभ और शोषण पर आधारित मानते हैं, इसलिए वर्तमान सभ्यता मिथ्या है।

अध्ययन की सुविधा की दृष्टि से गांधीजी के आर्थिक विचारों को दो भागों में बांटा जा सकता है

(i) वर्तमान सभ्यता पर गांधीजी के विचार अर्थात औद्योगीकरण, यन्त्रीकरण पूँजीवाद, पूँजी तथा श्रम और वर्ग संघर्ष पर गांधीजी के विचार।

(ii) आर्थिक असन्तोष, शोषण और संघर्ष से छुटकारा पाने के लिए गांधीजी के सुझाव अर्थात अपरिग्रह अस्तेय, ट्रस्टीशिप रोटी के लिए श्रम, स्वदेशी और खादी के अर्थशास्त्र पर गांधीजी के विचार।

भाग 1—वर्तमान सभ्यता पर विचार

(अ) यन्त्र पर गांधीजी के विचार

गांधीजी ने अपनी पुस्तक हिन्द स्वराज में वर्तमान सभ्यता की भर्त्सना की है। यन्त्र के बारे में गांधीजी के विचार रस्किन, टालस्टाय और आर० सी० दत्त[2] के

1 Gandhi M K *Harijan* dt 9 10 1937

2 See R C Dutta s *Economic History of India*, specially p 179

विचारो से प्रभावित थे। यन्त्र की तुलना गाधीजी ने उस "साधन से की है जो मानव या पशु श्रम का पूरक या उसकी कुशलता बढ़ाने वाला नही बल्कि उसका ही स्थान प्राप्त करने वाला है।"[1] यन्त्र मे बुराइया विद्यमान होने से गाधीजी उसे अवाछनीय मानते हैं। उनके लिए यन्त्र मे मुख्य तीन बुराइया हैं—(1) इसकी नकल हो सकती है, (11) इसके लिए विकास की कोई सीमा नही, (111) यह मानव श्रम का स्थान ले लेता है। इन बुराइयो के अतिरिक्त यन्त्रो मे निम्न नैतिक और आर्थिक बुराइया पायी जाती है—

नैतिक बुराइया

(i) यन्त्र कार्य के घण्टे कम करता है जबकि नैतिक विकास के लिए कुछ न्यूनतम घण्टो के लिए कार्य अनिवार्य है।

(ii) यन्त्र अच्छे जीवन मे बाधक है, उच्च विचारो और नैतिक मूल्यो का विकास केवल सरल समाजो मे ही सम्भव है, औद्योगिक और जटिल समाजो मे नही।

(iii) यन्त्र (मिल प्रथा) मानव मे दास वृत्ति का विकास करता है, इसमे मानव की दशा शोचनीय होती है।

(iv) यन्त्र ने मानव की सृजनात्मक (creative) और कलात्मक (artistic) शक्तियो का ह्रास किया है, इसने मानव प्रकृति को यान्त्रिक बना दिया है।

(v) तकनीकी विकास ने मुद्रा प्रणाली (Monetary System) को जन्म दिया है जिससे असमानता और शोषण को बढावा मिला है।

(vi) यन्त्रो ने आर्थिक प्रतियोगिता को बल दिया है जिससे मानव मे सहयोग भावना का ह्रास हुआ है।

आर्थिक बुराइया

(i) यन्त्र मानव श्रम का स्थान लेता है, इससे बेरोजगारी बढ़ती है।

(ii) यन्त्रीकरण पूँजी के एकत्रीकरण की भावना को बढाता है जिससे समाज मे भिन्नताये और असमानताये पैदा होती है। मानव कल्याण के स्थान पर लाभ वृत्ति को प्रोत्साहन मिलता है।

(iii) यन्त्रीकरण से बड़े पैमाने पर उत्पादन होता है जिससे वितरण की समस्याये उत्पन्न होती है पाखण्ड और सट्टावृत्ति को बढ़ावा मिलता है।

(iv) यन्त्रो से बड़े पैमाने पर उत्पादन होने से अत्युत्पादन (over production) होता है जिससे आर्थिक सकट (economic crisis) उत्पन्न होते है।

---

1 Quoted in Tendulkar, D G *Ibid*, Vol VII, p 17?

यन्त्र सार्वजनिक नियन्त्रण में होने चाहिए।" इस तरह गांधीजी की पूर्ण आर्थिक विचारधारा में "सर्वोच्च तत्त्व मानव" है। इस आदर्श स्थिति को छोड़े बिना गांधीजी ने यन्त्रों की आवश्यकता को उसी प्रकार स्वीकार किया जिस प्रकार आत्मा की मुक्ति के लिए शरीर की आवश्यकता को स्वीकार किया।

(ब) पूँजीवाद पर गांधीजी के विचार

गांधीजी ने पूँजीवाद की भर्त्सना बड़े कड़े शब्दों में की है। उनका विश्वास है कि पूँजीवाद ने दरिद्रता, बेरोजगारी, शोषण और साम्राज्यवाद की भावनाओं को बढ़ावा दिया है। उनके लिए पूँजी का एकत्रीकरण अनैतिक है। उनका कहना है कि जो व्यक्ति अपनी आवश्यकताओं से अधिक लेता है या एकत्रित करता है वह चोरी करता है क्योंकि ऐसा करके वह दूसरों को उससे वंचित करता है।

उपर्युक्त पूँजीवाद के विरोध से यह नहीं समझना चाहिए कि गांधीजी मार्क्स की भाँति पूँजीवाद का विरोध करते हैं। जहाँ मार्क्स "अतिरिक्त मूल्य" के पूँजीपति द्वारा हड़पने के आधार पर पूँजीवाद का विरोध करता है वहाँ गांधीजी पूँजीवाद द्वारा उत्पन्न असमानताओं के आधार पर उसका विरोध करते हैं। गांधीजी का विरोध पूँजी से नहीं उसके द्वारा उत्पन्न असमानताओं से है।

गांधीजी पूँजी और श्रम में किसी प्रकार का विरोध नहीं मानते थे जैसा कि मार्क्स मानता था। वास्तव में गांधीजी इन दोनों में समुचित सम्बन्ध स्थापित करना चाहते थे। वह दोनों को एक दूसरे पर आश्रित मानते थे। वह दोनों में से किसी एक की सर्वोच्चता नहीं चाहते थे। गांधीजी के शब्दों में, "आदर्श समाज में भी असमानतायें हो सकती हैं परन्तु संघर्ष और कटुता नहीं रहेगी।"

गांधीजी वर्ग संघर्ष की अनिवार्यता पर भी विश्वास नहीं करते थे जैसाकि मार्क्स करता था। गांधीजी हिंसा द्वारा पूँजीपतियों को अपने धन से भी वंचित नहीं करना चाहते थे जैसाकि मार्क्स चाहता था। गांधीजी पूँजीपतियों का सफाया नहीं बल्कि उनका हृदय परिवर्तन कर उन्हें ही अपने फालतू धन (superfluous wealth) के ट्रस्टी बनाना चाहते थे। इस तरह जहाँ मार्क्स पूँजीपतियों का उन्मूलन कर सर्वहारा वर्ग के अधिनायकवाद की बात करता है वहाँ गांधीजी पूँजीपतियों को समाप्त नहीं करना चाहते थे बल्कि उनमें लाभ, शोषण की वृत्ति को बदलना चाहते थे। गांधीजी पूँजीपतियों की अधिक धन कमाने की योग्यता को कुंठित नहीं करना चाहते थे वह तो उनके फालतू धन को सार्वजनिक कल्याण में लगाना चाहते थे।

भाग 2—वर्तमान आर्थिक विषमताओं को दूर करने के गांधीजी के सुझाव

(क) वर्ण व्यवस्था

वर्ण व्यवस्था से गांधीजी का अभिप्राय केवल इतना है कि व्यक्ति को अपने पूर्वजों के पेशों को अपनाना चाहिए अर्थात् जिस व्यवसाय को उसके पूर्वज करते

(v) उत्पादन की खपत के लिए विदेशी मण्डियां की खोज से साम्राज्यवादी प्रवृत्तियों को बढ़ावा मिलता है।

(vi) यन्त्रों से भूमि की उर्वरता (fertility) नष्ट होती है।

(vii) यन्त्रीकरण और औद्योगीकरण से सकुलित नगरों (congested cities) का विकास होता है, शीघ्र सचार साधनों का विकास होता है जिससे मानव स्वास्थ्य पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है।

उपर्युक्त बुराइयों से स्पष्ट है कि गांधीजी यन्त्रीकरण को "पाप का प्रतिनिधि" मानते हैं। उनका कहना है कि 'यन्त्र के पक्ष में एक भी अच्छा बिन्दु उनके ध्यान में नहीं है।" अपने जीवन के अन्तिम क्षणों तक उनका यही विश्वास रहा कि आदर्श समाज में यन्त्र होने ही नहीं चाहिए।

यन्त्रों की उपर्युक्त बुराइयों से यह नहीं समझ लेना चाहिए कि गांधीजी यन्त्र के बिल्कुल विरोधी थे और वह किसी प्रकार के यन्त्र के पक्ष में नहीं थे। वास्तव में वह यन्त्रों के अन्धाधुन्ध बढ़ाव (indiscriminate multiplication) के विरोधी थे यन्त्र के नहीं। इतना ही नहीं, जैसे जैसे उनके जीवन का व्यावहारिक अनुभव बढ़ता गया वैसे वैसे वे यन्त्र से समझौता करते गये। गांधीजी के शब्दों में, "मैं मिल उद्योग का विकास चाहता हूँ परन्तु मैं इसका विकास देश की कीमत पर नहीं चाहता।"[1] गांधीजी विनाशकारी यन्त्रों के विरोधी थे, वह उन यन्त्रों के विरोधी नहीं थे जो मानव श्रम को बचाते तथा उसके बोझ को हलका करते हैं जैसा कि सिंगर सिलाई मशीन (Singer Sewing Machine)। इस तरह गांधीजी "यन्त्र" के नहीं "यन्त्र की होड़" के विरोधी थे, वह यन्त्र के दुरुपयोग के विरोधी थे, वह व्यक्ति को यन्त्रों का दास नहीं बनाना चाहते थे। वह यन्त्र को मानव के लिए न कि मानव को यन्त्र के लिए बनाना चाहते थे।

गांधीजी यन्त्रों का उन्मूलन नहीं चाहते थे। वह उन्हें केवल सीमित करना चाहते थे। गांधीजी उन बड़े उद्योगों (यन्त्रों) को रखने में भी आपत्ति नहीं करते थे जो सार्वजनिक कल्याण के लिए अनिवार्य हैं परन्तु उन पर वह निजी स्वामित्व के स्थान पर सार्वजनिक (सरकारी) स्वामित्व चाहते थे ताकि उनमें उत्पादन 'प्रेम' और सार्वजनिक कल्याण की भावना से प्रेरित हो न कि 'लाभ' की भावना से। गांधीजी के शब्दों में 'मैं इतना समाजवादी अवश्य हूँ कि इन कारखानों को सार्वजनिक नियन्त्रण में रखा जाय या उनका राष्ट्रीयकरण कर दिया जाय, उन्हें केवल आदर्श शर्तों में ही कार्य करना है, लाभ के लिए नहीं, मानवता के कल्याण के लिए, 'लाभ' के स्थान पर प्रेरक शक्ति प्रेम की होगी।" "सार्वजनिक उपयोगिता वाले

---

1 *Young India*, dt 13 11 1924

यन्त्र सावजनिक नियन्त्रण म होने चाहिए।" इस तरह गाधीजी की पूण आर्थिक विचारधारा मे "सर्वोच्च तत्त्व मानव" है। इस आदश स्थिति को छोडे बिना गाधीजी ने यन्त्रो की आवश्यकता को उसी प्रकार स्वीकार किया जिस प्रकार आत्मा की मुक्ति के लिए शरीर की आवश्यकता को स्वीकार किया।

(ब) पूँजीवाद पर गाधीजी के विचार

गाधीजी ने पूँजीवाद की भत्सना बडे कडे शब्दा मे की है। उनका विश्वास है कि पूजीवाद ने दरिद्रता, बेरोजगारी, शोषण और साम्राज्यवाद की भावनाओ को बढावा दिया है। उनके लिए पूजी का एकत्रीकरण अनैतिक है। उनका कहना है कि जो व्यक्ति अपनी आवश्यकताओ से अधिक लेता है या एकत्रित करता है वह चोरी करता है क्योकि ऐसा करके वह दूसरो को उससे वचित करता है।

उपयु क्त पूजीवाद के विरोध से यह नही समझना चाहिए कि गाधीजी माक्स की भाँति पूजीवाद का विरोध करते हैं। जहाँ माक्स "अतिरिक्त मूल्य" के पूँजीपति द्वारा हडपन के आधार पर पूँजीवाद का विरोध करता है वहाँ गाधीजी पूँजीवाद द्वारा उत्पन्न असमानताओ के आधार पर उसका विरोध करते हैं। गाधीजी का विरोध पूँजी से नही उसके द्वारा उत्पन्न असमानताओ से है।

गाधीजी पूँजी और श्रम म किसी प्रकार का विरोध नही मानत थे जैसा कि माक्स मानता था। वास्तव म गाधीजी इन दोनो म समुचित सम्ब ध स्थापित करना चाहत थे। वह दोनो को एक दूसर पर आश्रित मानते थे। वह दोनो मे से किसी एक की सर्वोच्चता नही चाहत थे। गाधीजी के शब्दा म, "आदश समाज मे भी असमानताये हो सकती हैं परन्तु सघष और कटुता नही रहेगी।"

गाधीजी वग सघष की अनिवायता पर भी विश्वास नही करते थे जैसाकि माक्स करता था। गाधीजी हिंसा द्वारा पूँजीपतिया को अपन धन से भी वचित नही करना चाहत थे जैसाकि माक्स चाहता था। गाधीजी पूँजीपतियो का सफाया नही बल्कि उनका हृदय परिवतन कर उन्हे ही अपने फालतू धन (superfluous wealth) के ट्रस्टी बनाना चाहते थे। इस तरह जहा माक्स पूँजीपतियो का उन्मूलन कर सवहारा वग के अधिनायकवाद की बात करता है वहाँ गाधीजी पूँजीपतियो को समाप्त नही करना चाहते थे बल्कि उनमे लाभ शोषण की वृत्ति को बदलना चाहते थे। गाधीजी पूँजीपतिया की अधिक धन कमाने की योग्यता को कुंठित नही करना चाहते थे वह तो उनके फालतू धन को सावजनिक कल्याण म लगाना चाहते थे।

भाग 2—वर्तमान आर्थिक विषमताओ को दूर करने के गाधीजी के सुझाव

(क) वण व्यवस्था

वण व्यवस्था से गाधीजी का अभिप्राय केवल इतना है कि व्यक्ति को अपने पूवजो के पेशो को अपनाना चाहिए अर्थात् जिस व्यवसाय को उसके पूवज करते

आये है उसी के द्वारा अपना जीविकापाजन करना चाहिए। गाधीजी का विश्वास था कि इस सिद्धात का अनुकरण करने से, एक ओर, प्रतिस्पर्धा और लाभ की वृत्ति नष्ट होगा और, दूसरी ओर, उस कला म निपुणता और कुशलता बढेगी। गाधीजी ने इस अवस्था म विद्यमान ऊच नीच की भावना को स्वीकार नही किया।

(ख) अस्तेय और अपरिग्रह

अस्तेय का अभिप्राय यह है कि प्रत्येक व्यक्ति को अपनी सम्पत्ति रखने का अधिकार है और किसी अन्य व्यक्ति को उसके इस अधिकार की उल्लघना नही करनी चाहिए। देखने मे तो यह सिद्धान्त अपरिग्रह के सिद्धान्त के विरुद्ध प्रतीत होता है परन्तु गाधीजी के लिए एसा नही है। उनके लिए तो किसी प्रकार का शोषण तथा आवश्यकता स अधिक वस्तुओ को अपन पास रखना या आवश्यकता से अधिक उनका प्रयोग करना चोरी है। गाधीजी कहते है कि जीवन म निरपेक्ष अपरिग्रह (absolute non possession) सम्भव नही। इसलिए मानव को अनिवाय न्यूनतम आवश्यकताओ को पूरा करन के लिए ही सम्पत्ति रखने का अधिकार है बाकी आवश्यकताधिक सम्पत्ति सर्वोदय अर्थात सामान्य कल्याण के प्रयोग म आनी चाहिए।

(ग) ट्रस्टीशिप का सिद्धा त

वतमान आर्थिक असन्तोष को समाप्त करने के लिए गाधीजी न तो पश्चिमी अथ व्यवस्था को पसन्द करते थे क्योकि यह व्यवस्था पूँजीवाद पर आधारित होन से शोषण, प्रतिद्वद्विता और सघष को जन्म देती है और न ही पूर्वी (विशेष कर रूसी) समष्टिवादी अथ व्यवस्था (collectivist economic system) को पसन्द करते थे क्योकि यह हिंसा पर आधारित है, इसम केन्द्रीयकरण की प्रवृत्ति अधिक है और यह राज्य सत्ता के बढान म विश्वास करती है।

इस तरह दोनो आर्थिक व्यवस्थाओ (पूँजीवाद व समष्टिवाद) के दोषो को दूर करन के लिए गाधीजी न एक नये सिद्धान्त का निर्माण किया जिसे उन्होन ट्रस्टी शिप की सज्ञा दी। उनका यह विश्वास था कि ट्रस्टीशिप की व्यवस्था 'निजी उद्यम और सरकार नियन्त्रित उद्यम मे समझौता है।"

गाधीजी का ट्रस्टीशिप का सिद्धा त इस प्रकार है

'अमीर व्यक्ति का धन उसके पास ही रख दिया जायगा, जिसम से वह अपनी उचित जरूरतो के लिए खर्च करेगा और बाकी बच हुए धन का वह ट्रस्टी होगा जिसका प्रयोग समाज के लिए किया जायगा।"[1]

---

1 The rich man will be left in the possession of his wealth of which he will use what he reasonably requires for his personal needs and will act as a trustee for the remainder to be used for the society "—*Harijan*, dt 25 8 1940

उपर्युक्त ट्रस्टीशिप के सिद्धान्त से स्पष्ट है कि यह सिद्धान्त एकत्रित किये हुए (accumulated wealth) या अपनी आवश्यकताओं से अधिक कमाये हुए धन पर (earnings beyond one's needs) लागू होता है। इस सिद्धान्त में निजी सम्पत्ति के अधिकार को वहां तक स्वीकार किया गया है जहां तक यह व्यक्ति के नैतिक, बौद्धिक और शारीरिक विकास के लिये आवश्यक है।

ट्रस्टीशिप के सिद्धान्त में दो बातें निहित हैं—(i) अपेक्षाधिक धन पूंजीपति के पास एक न्यास के रूप में रहेगा, (ii) अपेक्षाधिक धन का प्रयोग समाज कल्याण के लिए होगा।

गांधीजी का विश्वास था कि ट्रस्टीशिप के इस सिद्धान्त में न तो निजी स्वामित्व के दोष हैं और न ही सार्वजनिक स्वामित्व के दोष हैं। इसमें न तो निजी उद्यम द्वारा उत्पन्न असमानतायें और शोषण की स्थिति पैदा होती है और न ही सार्वजनिक उद्यम की हिंसा और स्वतन्त्रता के हनन की सम्भावना पैदा होती है। इस व्यवस्था में वर्ग संघर्ष की सम्भावनायें भी कम हो जायेंगी। इसमें ऐसी सहकारी संस्थाओं की स्थापना होगी जिसमें श्रम और पूंजी के सम्बन्धों में तालमेल रहेगा।

गांधीजी ट्रस्टीशिप द्वारा वर्ग विभाजन (class distinction) को समाप्त नहीं करना चाहते थे, वह तो वर्ग संघर्ष (class conflict) को समाप्त करना चाहते थे।[1] उनके शब्दों में, "वर्ग विभाजन तो होगा ही परन्तु वह समतल (horizontal) होगा लम्बरूप (verticle) नहीं।" जैसाकि ऊपर लिखा जा चुका है, वह पूंजीपतियों और जमींदारों का सफाया नहीं चाहते थे, वह तो उनके और समूहों के (श्रमिकों और कृषकों) सम्बन्धों में परिवर्तन लाना चाहते थे। वह स्वामियों (धनिकों, मिल मालिकों, जमींदारों, राजाओं) का सफाया करके समाज को उनकी योग्यताओं से वंचित नहीं करना चाहते थे। (क्योंकि वे जानते हैं कि धन कैसे एकत्रित किया जाता है) वह तो उन्हें अपेक्षाधिक धन के ट्रस्टी बनाना चाहते थे। इस तरह गांधीजी ट्रस्टीशिप में दो उद्देश्यों को प्राप्त करना चाहते थे—(1) इसमें अपरिग्रह की बात भी रह जाती है और (2) परिग्रह वाले की ममता पर आघात भी नहीं होता। इस तरह ट्रस्टीशिप द्वारा गांधीजी पूंजीपति को समाप्त किये बिना पूंजीवाद की बुराइयों का अन्त करना चाहते थे।

गांधीजी के ट्रस्टीशिप के सिद्धान्त में 'दोहरे स्वामित्व' (Double ownership) की बात निहित है जिसे उन्होंने 'वैध' (legal) और "नैतिक' (moral) स्वामित्व की संज्ञा दी है। वैध रूप से सम्पत्ति/भूमि पर पूंजीपति या जमींदार का स्वामित्व रहेगा परन्तु नैतिक रूप से उस पर समाज का स्वामित्व रहेगा। इस प्रकार

1 See Jayantanuja Bandyopadhyaya —"*Social and Political Thought of Gandhi*", p 132

सारी सम्पत्ति पर, जिसे गाधीजी समाज की उत्पत्ति मानते हैं, धनिको और श्रमिको अथवा जमीदारो और कृषको का स्वामित्व रहेगा। वह उनसे (पूँजीपतियो तथा जमीदारो से) कहा करते थे कि "आप अपने धन का उपभोग उसे त्याग कर करें।"[1]

गाधीजी की यह भी धारणा थी कि यदि पूँजीपति या जमीदार अपने आप अपेक्षाधिक धन (superfluous wealth) के ट्रस्टी नही बनते तो उन्हे अहिंसक असहयोग द्वारा ट्रस्टी बनने के लिए बाध्य किया जायगा और यदि ऐसा होने पर भी वे ट्रस्टी नही बनते तो कम से कम हिंसा का प्रयोग करते हुए उस धन पर सरकारी स्वामित्व स्थापित कर दिया जायगा। ऐसी स्थिति मे गाधीजी निजी स्वामित्व से सावजनिक स्वामित्व को पसन्द करते थे। इस तरह जिस सामान्य कल्याण की विचार धारा के आधार पर गाधीजी ने निजी सम्पत्ति के अधिकार का समथन किया उसी सामान्य कल्याण के आधार पर राज्य के नियन्त्रण की भी माग की। अँग्रेजी उदारवादियो की तरह गाधीजी सरकारी स्वामित्व के पक्ष म नही थे परन्तु यदि सर्वोदय के लिये यह आवश्यक हो जाय तो वह निजी स्वामित्व के साथ सरकारी स्वामित्व के विरुद्ध आपत्ति नही करते। उनका उद्देश्य केवल एक था कि सम्पत्ति का प्रयोग केवल सामान्य कल्याण के लिये किया जाय।

ट्रस्टी के लिए कमीशन भी गाधीजी राज्य द्वारा निर्धारित करना चाहते थे यद्यपि वह आशा करते थे कि ट्रस्टी अपना कमीशन स्वेच्छा से न्यूनतम निर्धारित करेगा।

गाधीजी का विश्वास था कि ट्रस्टी का कोई उत्तराधिकारी नही होता और यदि कोई है तो वह जनता है। वध अधिकार तो मौलिक ट्रस्टी मे ही है, राज्य मे नही क्योंकि "सम्पत्ति को जप्त होने से बचाने के लिये ही तो ट्रस्टीशिप के सिद्धान्त को चालू किया गया था।"[2] फिर भी गाधीजी इसे राज्य द्वारा नियन्त्रित करना चाहते है क्योंकि इस प्रकार की व्यवस्था से राज्य और ट्रस्टी दोनो पर नियन्त्रण रहता है।

सक्षेप मे, गाधीजी की ट्रस्टीशिप व्यवस्था मे निम्न तत्त्व विद्यमान हैं —

1 यह वतमान पूँजीवादी व्यवस्था को समान समाज (egalitarian society) मे परिवर्तित करने का साधन है।
2 इसमे पूँजीवाद का स्थान नही। परन्तु धन के वतमान स्वामियो को अपने आपको सुधार लेने का यह उन्हे अवसर प्रदान करता है।
3 यह हृदय परिवतन म विश्वास करता है, इसकी धारणा है कि मानव को धन तथा लोभ की वृत्ति से मुक्ति दिलाई जा सकती है।

---

1 "Enjoy thy wealth by renouncing it" —Gandhi, M K

2 Quoted in Buddhadeva Bhattacharyya, *Ibid*, p 239

4 यह सम्पत्ति के निजी स्वामित्व के अधिकार को स्वीकार नही करता, यह केवल व्यक्ति की उचित आवश्यकताओ को स्वीकार करता है जिन्हे समाज स्वीकार करता है।

5 आवश्यकता पडने पर यह सम्पत्ति को राज्य कानून द्वारा नियन्त्रित करने के पक्ष मे है।

6 इसमे सम्पत्ति को स्वार्थ हित की सिद्धि के लिये न तो अपने पास रखा जा सकता है और न इसका समाज के हितो के विरुद्ध प्रयोग किया जा सकता है।

7 इसका सम्बन्ध वस्तु या धन के स्वामित्व से अधिक न होकर समाज कल्याण से अधिक है।

8 इसमे आय की न्यूनतम और अधिकतम सीमायें निर्धारित की जायगी, इस न्यूनतम और अधिकतम आय मे भिन्नतायें उचित और साम्यिक (equitable) होगी, समय पर इनमे परिवर्तन होता रहेगा जिसका उद्देश्य इन भिन्नताओ को समाप्त करना होगा।

9 इसमे उत्पादन लाभ द्वारा निर्धारित नही होगा बल्कि "सामाजिक आवश्यकता" द्वारा निर्धारित होगा।

(घ) आर्थिक समानता

गाधीजी आर्थिक समानता के आदर्श मे विश्वास करते थे। परन्तु इसका यह अभिप्राय नही कि वह योग्यता के आधार पर भिन्नता नही चाहते थे या योग्य व्यक्ति को अधिक कमाने से मना करते थे। आर्थिक समानता से गाधीजी का यह भी अभिप्राय नही था कि सभी को सासारिक वस्तुए समान मात्रा मे प्राप्त होगी परन्तु आर्थिक समानता से उनका यह अभिप्राय अवश्य था कि प्रत्येक के रहने के लिये उचित घर की व्यवस्था हो, उसके पास खाने के लिये पर्याप्त और सन्तुलित भोजन हो और शरीर ढकने के लिये पर्याप्त खादी हो। गाधीजी प्रत्येक उस वस्तु को वर्जित नही करना चाहते थे जो जीवन की अनिवार्य न्यूनतम आवश्यकताओं से ऊपर है। उनका केवल यह कहना था कि इनकी गणना या पूर्ति तभी होनी चाहिये जब सबकी अनिवार्य आवश्यकतायें पूरी हो जायें। वह तो उन निर्दयी असमानताओ को दूर करना चाहते थे जो आज विद्यमान हैं।

भौतिक भावनाओ को सीमित रखने के विचार से यह नही समझ लेना चाहिए कि गाधीजी भौतिक विकास नही चाहते थे। वह विकास चाहते थे परन्तु साथ ही पूंजीपतियो और श्रमिको को उद्योग के सहभागी (Co partners) बनाना चाहते थे। वह कहा करते थे "तुम (पूजीपति से) अपना धन (सम्पत्ति) उद्योग मे लगाओ वे (मजदूर) अपना धन (श्रम) उद्योग मे लगायें।" इसका अभिप्राय यह था कि उद्योग के विकास से समाज के सभी वर्गों का कल्याण होना चाहिए।

(ड) रोटी के लिए श्रम (Bread Labour)

रोटी के लिए श्रम सिद्धान्त गाधीजी के लिए न केवल एक दर्शन था बल्कि उनकी सारी आर्थिक विचारधारा इस पर आधारित थी। उनके 'जीवन दर्शन' में ही यह सिद्धान्त निहित था।

गाधीजी का रोटी के लिये श्रम का सिद्धान्त प्रत्येक व्यक्ति—अमीर-गरीब, *बुद्धिजीवी या मजदूर—पर लागू होता है। सभी समाज के लिए कार्य करेंगे, क्या* डाक्टर, क्या वकील। प्रत्येक को 'अपना भङ्गी स्वयं बनना होगा।" बुद्धिजीवियो पर भी गाधीजी इस सिद्धान्त को लागू करते थे। वह कहते थे कि "शरीर की आवश्यकतायें शरीर द्वारा ही प्राप्त होनी चाहिए बुद्धि द्वारा नही।" यह हो सकता है कि बुद्धि की योग्यतायें शरीर की योग्यताओ से सर्वोच्च हो परन्तु बुद्धि शरीर के लिए उपकल्प (substitute) नही हो सकती। इस सिद्धान्त द्वारा गाधीजी 'शारीरिक श्रम' सबको सिखाना चाहते थे परन्तु गाधीजी इस सिद्धान्त को अनिवार्य नही बनाना चाहते थे क्योकि अनिवार्य करने से "दरिद्रता, बीमारी और असन्तोष" पैदा होगा। वह इस सिद्धान्त को स्वेच्छा से पालन करने पर बल देते थे क्योंकि स्वेच्छा से किया गया कार्य सन्तोषजनक व मनोरजक होता है।

इस सिद्धान्त द्वारा गाधीजी एक साथ कई उद्देश्यो को प्राप्त करना चाहते थे। (1) जब सब श्रम करेंगे तो ऊँच नीच का भेद समाप्त हो जायगा, असमानतायें दूर हो जायेंगी, (2) श्रम से शरीर पुष्ट होने से रोगो की मात्रा कम होगी, (3) *निष्क्रियता और आलस्य की समस्या नही रहेगी, (4) आत्म निर्भरता की भावना* उत्पन्न होगी, (5) शोषण कम होगा, (6) चौमुखी विकास होगा इत्यादि।

श्रम पर गाधीजी कितना महत्त्व देते थे यह उनकी बुनियादी शिक्षा प्रणाली से स्पष्ट हो जाता है, यह शिक्षा कुटीर उद्योग और हस्तकला पर आधारित है।

(च) स्वदेशी

स्वदेशी की परिभाषा गाधीजी ने इस प्रकार दी है "हममे यह वह प्रेरणा है जो हम इस बात के लिए प्रेरित करती है कि हम अपने नजदीक के वातावरण का प्रयोग करें और दूर के वातावरण को छोड दें, जैसे धर्म में, हम अपने धर्म का पालन करें, राजनीति में, हम भारतीय राजनीतिक सस्थाओ (पचायत) का प्रयोग करें, आर्थिक क्षेत्र में, हम अपने पडौसी द्वारा बनाई गई वस्तुओ का प्रयोग करें और उन भारतीय उद्योगो को कुशल एव पूर्ण बनायें जिनमें हम कमजोरियाँ नजर आती हैं।[1] स्वदेशी की इस परिभाषा से यह नही समझ लेना चाहिए कि गाधीजी सभी विदेशी

1 See speeches and writings of Mahatma Gandhi G A Natesan & Co Madras, 4th edn p 336

वस्तुओ को वर्जित करना चाहते थे, उनकी स्वदेशी की परिभाषा किसी रूप मे सकीण नही थी। वह केवल उन विदेशी वस्तुओ को स्वीकार करते थे जो घरेलू या भारतीय उद्योगो को अधिक कुशल बनाने म अनिवाय है। वह वस्तुओ के विनिमय और अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार म विश्वास करते थे। गाधीजी भारत को विश्व से अलग नही करना चाहते थे, वह तो केवल स्वावलम्बन पर बल देते थे। वह विदेशी पूजी और तकनीकी ज्ञान से भी समझौता कर सकते थे यदि उन्हे भारतीय नियन्त्रण म रखा जाय।

(छ) खादी का अथशास्त्र (Economics of Khadi)

भारत के आर्थिक पुनर्निर्माण की गाधीवादी योजना मे खादी के अथशास्त्र का मुख्य स्थान है। गाधीजी का विश्वास था कि आर्थिक सकट की समस्या को हल करने के लिए खादी अर्थात् चर्खा बहुत ही प्राकृतिक, सरल, सस्ता और व्यावहारिक तरीका है।

गाधीजी का पूण विश्वास था कि पूजी और सत्ता के केन्द्रीयकरण से उत्पन्न होने वाली समस्याओ का तथा उत्पादन और वितरण की समस्याएँ खादी के पुनरुद्धार से हल की जा सकती हैं।

खादी के अथशास्त्र म भी गाधीजी एक जीवन दशन की झलक देखते थे। जहाँ खादी, एक ओर, जीवन की आवश्यकताओ को देश मे ही पूरा करने की प्रेरणा देती है वहाँ, दूसरी ओर, ग्रामो का स्वावलम्बी बनाने का तरीका भी है ताकि कुछ गिने चुने शहर ग्रामो का शोषण न कर सकें। यह मिल व्यवस्था के अति केन्द्रीयकरण का विकल्प है। इनके अतिरिक्त, राजनीतिक दृष्टिकोण से यह सगठन और जन सम्पक (mass contact) का आन्दोलन भी था, स्वतन्त्रता सग्राम मे तो यह राष्ट्रवादियो के लिए एक चिन्ह बन गया जिसे प्रत्येक भारतीय आसानी से समझ सकता था।

यद्यपि खादी का अथशास्त्र अमीर बनने के अथशास्त्र की माँगो को सन्तुष्ट नही करता परन्तु यह आलस्य और बेकारी की समस्या का तत्काल और स्थायी हल है। यह कृषि का पूरक भी है क्योकि यह अन्य कुटीर उद्योगो का विकास करता है।

सक्षेप म, गाधीजी के आर्थिक विचारो को निम्न प्रकार से व्यक्त किया जा सकता है —

1 ये विचार आर्थिक नियमो पर आधारित नही हैं बल्कि आध्यात्मिकता और नतिकता पर आधारित हैं।
2 इनमे मर्यादा कानून की नही नतिकता की है।
3 इनम विकेन्द्रीकरण और स्वावलम्बन पर बल दिया गया है।

4 इनमे मानव जीवन सादा, सरल और सयत है जिसमे मानव आवश्यकतायें न्यूनतम हैं।

5 इनमे द्रव्य का स्थान, श्रम की अपेक्षा, गौण है।

6 इनम सम्पत्ति मानव कल्याण का साधन है शोपण का नही।

7 इनम जीवन का आधार शारीरिक श्रम है, रोटी के लिए सब शारीरिक श्रम करते है।

8 इनमे परिवतन का साधन अहिसा है।

9 जो कुछ व्यक्ति के पास है—गुण, कुशलता, धन, प्रतिभा, इत्यादि—सब भगवान् की देन है। इन सबका प्रयोग समाज कल्याण के लिये होना चाहिए।

10 इनमे उत्पादन 'लाभ' या शोषण के उद्देश्य से नही बल्कि सामाजिक आवश्यकता के आधार पर होता है।

गाधीजी के आर्थिक विचारो का मूल्याकन

गाधीजी के आर्थिक विचारो की यह कह कर आलोचना की गई है कि ये अव्यावहारिक है, ये मानव समाज को उसकी प्रारम्भिक स्थिति मे ले जाने वाले हैं, ये मानव प्रकृति के एक पहलू पर ही बल देते हैं तथा उसकी भौतिक आवश्यकताओ की उपक्षा करते हैं। इन्होने यन्त्रो की अनावश्यक भर्त्सना की है तथा वतमान सभ्यता और उसकी देन का सही मूल्याकन नही किया। खादी का सिद्धान्त न केवल वतमान परिस्थितियो मे गलत है बल्कि यह तकनीकी ज्ञान की उपलब्धियो की उपेक्षा भी करता है। ये विचार इतिहास की गति से अनभिज्ञ भी हैं।

गाधीजी का ट्रस्टीशिप का सिद्धान्त अव्यावहारिक है क्योकि यह सिद्धान्त वस्तुनिष्ठ क्षेत्र (objective sphere) म परिवतन लाने के स्थान पर व्यक्तिनिष्ठ क्षेत्र (subjective sphere) मे परिवतन लाने पर बल देता है। यह हृदय और मस्तिष्क म परिवतन लाना चाहता है परन्तु यथापूव स्थिति (status quo) को स्थायी रखना चाहता है। एम० एन० राय के शब्दो मे, "गाधीजी पूजीवाद की निन्दा तो करते है परन्तु उसे समाप्त करने को नही कहते डिजरैली की भाति वह उन्हे चीनी चढाकर कडवी गोली निगलने को कहते हैं।"[1]

ट्रस्टीशिप का सिद्धान्त एक ऐसा 'काल्पनिक यन्त्र' (utopian engineering)[2] है जो मानव की स्वार्थपरता और अगाध प्रेरणाओ को ठीक प्रकार से नहा आक सका। दूसरे शब्दो म, यह सिद्धान्त मानव की नतिक शक्तियो पर जरूरत स

---

1 Roy, M N India s Message Fragments of a Prisoner's Diary, pp 124 128

2 It is Karl Popper's terminology

ज्यादा विश्वास करता है। गाधीजी ने सामाजिक सघर्ष की जटिलताओ को बहुत सरल समझा जो वास्तव मे सरल नही। इसके अतिरिक्त उन्होने समाज को ऐसे नैतिक तत्त्वो से सगठित करने का प्रयास किया जो वर्तमान मे विद्यमान नही। यही कारण है कि भारत मे ही ट्रस्टीशिप के सिद्धान्त को स्वीकार या अस्वीकार करना तो दूर, अभी यह एक शैक्षणिक रुचि का विषय ही है।

आलोचको का यह भी कथन है कि गाधीजी ट्रस्टीशिप द्वारा वर्तमान आर्थिक असमानताओ को बनाये रखना चाहते थे। गुन्नर मायरडल के शब्दो म, "ट्रस्टीशिप का सिद्धान्त मूल रूप से पैतृरिक (paternalistic), सामन्त और पूर्व प्रजातान्त्रिक समाज मे ही लागू हो सकता है, यह इतना लचीला है कि असमानता सिद्ध करने के लिये इसका प्रयोग किया जा सकता है।'[1] प्रो० अमलान दत्ता के शब्दो मे, "वर्तमान समाज म प्रभावी वर्गो को अपदस्थ करने के किसी भी आन्दोलन के विरुद्ध गाधीजी का सिद्धान्त एक रक्षा कवच का काम करता है।'[2]

गाधीजी का विश्वास था कि ट्रस्टीशिप का सिद्धान्त पूजीपतियो और श्रमिको तथा जमीदारो और कृषको के सम्बन्धो को सुधारने म सहायक होगा। परन्तु सम्बन्ध तो समान स्तर वाले व्यक्तियो मे होना सम्भव है, असमान व्यक्तियो या समाजो म सम्बन्ध होना न केवल अप्राकृतिक है बल्कि हानिकारक भी है क्योकि उच्च वर्ग तो सर्वदा अपनी अधिमान्य स्थिति को बनाये रखने के लिये प्रयत्नशील रहेगा चाहे इसके लिये उसे निम्न वर्गो को अपना यन्त्र ही बनाना पडे। यह कहना कोई अतिशयोक्ति नही कि "जब तक वर्ग विभाजन रहेगा तब तक मानवता केवल खोखली कल्पना है।" समाजवादियो का कहना है कि जब तक उत्पादन के साधनो पर व्यक्तिगत स्वामित्व की प्रणाली विद्यमान है तब तक मानव के सम्बन्धो म सामजस्य रखना कठिन है।

ट्रस्टीशिप का सिद्धान्त स्वमेव मे खोखला है। एक ओर, गाधीजी निजी स्वामित्व मे विश्वास नही करते और, दूसरी ओर, ट्रस्टीशिप म वैध स्वामित्व पूजी-पति या जमीदार के पास ही रखना चाहते हैं। यदि उनका वध स्वामित्व राज्य के अनुचित हस्तक्षेप के विरुद्ध गारण्टी है और इस उद्देश्य को सार्वजनिक निगमो की स्थापना द्वारा प्राप्त किया जा सकता है तो गाधीजी ने नैतिक स्वामित्व की बात क्या की और यदि अन्त म राज्य द्वारा सम्पत्ति को जब्त किया जाना है तो ट्रस्टीशिप का सारा सिद्धान्त निराधार और खोखला है।

समाजवादियो का कहना है कि गाधीजी का हृदय परिवर्तन का सिद्धान्त

---

1 Myrdal Gunnar *Asian Drama* An Inquiry into the Poverty of Nations

2 Datta, Amlan *For Democracy*, p 59

असम्भव है क्योंकि उनका विश्वास है, इतिहास इस बात का साक्षी है, कि आर्थिक सम्बन्धों को बदलने के लिए केवल हृदय परिवर्तन ही पर्याप्त नहीं। गांधीजी ने ट्रस्टी के हृदय में ईमानदारी की कल्पना इतनी अधिक की है कि उन्होंने मानव की भौतिक आवश्यकताओं और वसुन्धरा की प्रेरणाओं को भुला दिया है।

गांधीजी, एक ओर, राज्य की सत्ता और शक्ति को शंका की दृष्टि से देखते हैं और, दूसरी ओर, वह राज्य के हाथों में वे उद्योग रखना चाहते हैं जो सार्वजनिक कल्याण के लिये अनिवार्य हैं। इस तरह दो सिद्धान्तों की सेवा करने की इच्छा रखने से वह एक की भी सेवा करने में सफल नहीं हुए, न तो वह अराजकतावादियों की तरह राज्य को अस्वीकार करते हैं और न ही समाजवादियों की तरह (कम से कम संक्रांति काल में—यद्यपि समाजवाद भी इस काल की सीमा निर्धारित करने में असमर्थ है) राज्य के यन्त्र को स्वीकार करते हैं।

गांधीजी एक ही समय पर निजी स्वामित्व और सार्वजनिक स्वामित्व की बात करते हैं। यह समझ नहीं आता कि सामाजिक व्यवस्था में परिवर्तन लाने के लिये गांधीवादी व्यवस्था क्यों नहीं स्पष्ट रूप से राज्य पर भरोसा करती? और यदि राज्य सत्ता और शक्ति का प्रतीक है, जैसाकि गांधीवाद मानता है, तो क्यों न अकल्याणकारी संस्था करार देकर इसे अस्वीकार कर दिया जाय? और यदि इसे कल्याणकारी तथा सार्वजनिक लाभ में वृद्धि करने वाली संस्था मानते हैं तो क्यों न इसकी शक्ति को बढ़ाया जाय? इन सब प्रश्नों का उत्तर गांधीवादी विचारधारा में नहीं मिलता। वे तो अपने नैतिक मूल्यों द्वारा ही परिवर्तन चाहते हैं और जब जनता द्वारा इन नैतिक मूल्यों की व्यावहारिकता को ही चुनौती दी जाती है तो उस पर बनाया गया भवन स्वमेव गिर जाता है।

गांधीजी ने यन्त्रों की भर्त्सना की है। उन्होंने 'पाप' या 'बुराई' कहकर पुकारा है। उनका विश्वास है कि बेरोजगारी, शोषण तथा साम्राज्यवाद की भावनायें यन्त्रीकरण से पैदा होती है। परन्तु आलोचक गांधीजी के यन्त्रों के प्रति इस विरोध को मिथ्या, निराधार, और बुद्धि की दासता मानते हैं। उनका कहना है कि यन्त्रों को अस्वीकार करना "उत्पत्ति के नियम की भर्त्सना है।" (It is to denounce principle of creativity)। यन्त्रों से उत्पन्न होने वाली जिन आर्थिक सामाजिक, राजनीतिक तथा नैतिक समस्याओं का वर्णन गांधीजी ने किया है वे वास्तव में यन्त्रों के कारण पैदा नहीं होतीं बल्कि यन्त्रों की गलत व्यवस्था", "उत्पादन और वितरण की गलत प्रणालियां" और 'नगरों की गलत योजनाओं' से पैदा होती हैं। इन बुराइयों को इन व्यवस्थाओं में सुधार करके दूर किया जा सकता है और गांधीजी ने स्वयं भी तो सार्वजनिक उपयोगिता वाले यन्त्रों को स्वीकार किया है।

गांधीजी का यह विचार भी मिथ्या है कि यन्त्रीकरण से मानव स्वास्थ्य पर

प्रतिकूल प्रभाव पडता है तथा भूमि की उपयोगिता नष्ट होती है। वास्तविकता तो यह है कि जिन राष्ट्रा का औद्योगीकरण हुआ है वे राष्ट्र अधिक समृद्धिशाली तथा खुशहाल हैं, वहाँ लोगा का जीवन अधिक स्वस्थ है।

गाधीजी का यह विचार भी उचित प्रतीत नही होता कि यन्त्रीकरण से साम्राज्यवाद की भावनायें पदा होती हैं और यदि इसे मान भी लिया जाय तो इस बात से इन्कार नही किया जा सकता कि यन्त्रा के कारण ही स्वतन्त्रता तथा राष्ट्रीय भावनाओ का भी विकास हुआ है जो साम्राज्यवाद के लिये वज्र हैं। इसके अतिरिक्त वतमान म प्रत्यक स्वतन्त्र राष्ट्र अपनी प्रारम्भिक स्थिति स निकलने के लिये यन्त्रो का सहारा ले रहा है, एक राष्ट्र दूसरे राष्ट्र के विकास म सहायक बन रहा है और विश्व एक विस्तृत परिवार की ओर झुक रहा है।

यन्त्र स्वय तो न वितरण की समस्या पैदा करते ह, न पूजी का केन्द्रीयकरण करते हैं और न ही श्रमिक को बेघर करते है। और यदि ऐसा मान भी लिया जाय तो इन दोषा को विकेन्द्रीकरण, सामाजीकरण और श्रमिको म जागृति पदा करके दूर किया जा सकता है।

यह विचार भी मिथ्या है कि तकनीकी विकास और आध्यात्मिक विकास एक दूसरे के विरोधी है। वतमान समय मे जितने भी तात्विक दार्शनिक (Metaphysical thinkers) हुए है उनमे केवल गाधीजी को छोडकर बाकी सब तकनीकी विकास को आध्यात्मिक विकास के लिए पूरक (complementary) और समजित (consistent) मानते ह। उनका विश्वास है कि तकनीकी विकास मानव स्वतन्त्रता के क्षेत्र का विकसित करता है। श्री आरविन्दु और रवीन्द्रनाथ टगोर इसी विचारधारा के है। टैगोर की तो यह धारणा थी कि भौतिक आवश्यकताओ से इन्कार करना मानव को दासता म रखना है। टैगोर गाधीजी के उस स्वराज को भारतीय बुद्धिमत्ता की बेइज्जती मानते हैं जो चर्खे पर आधारित है। उनका विश्वास है कि स्वराज चौमुखी विकास की कल्पना करता है।

गाधीजी के राजनीतिक विचार
(Political Ideas of Gandhiji)

गाधीजी ने अपने आदश अहिंसक समाज की रूप रेखा स्पष्ट रूप स तैयार नही की थी जिस प्रकार कि प्लेटो, रूसो तथा काल मार्क्स ने अपने आदश समाज की रूप रखा तैयार की थी। जान वी० बन्दुरा के शब्दो म 'वह राजनीतिक काय कर्ता और व्यावहारिक दार्शनिक थे, वह सिद्धान्त निर्माता नही थे।'[1] गाधीजी ने स्पष्ट

---

1 Bondurant, Joan V Conquest of Violence The Gandhian Philosophy of Conflict, p 7

लिखा है कि "मैं पहले से ही यह नहीं बता सकता कि पूर्णत अहिंसा पर आधारित शासन कैसा होगा।" फिर भी उनकी पुस्तक हिन्द स्वराज (Hind Swaraj) से और उनके द्वारा समय समय पर भाषणो, लेखों, वक्तव्यों, भेंटो (Interviews) में व्यक्त किये गये विचारो से उनके आदर्श समाज की कल्पना की जा सकती है।

यहां यह भी समझ लेना आवश्यक है कि गाधीजी का निरन्तर विकसित होने वाला व्यक्तित्व था और उनका तरीका "निगमनात्मक, प्रयोगात्मक, व्यावहारिक और ऐक्लेक्टिक" था। गाधीजी के विचारो में आध्यात्म शास्त्र, नैतिकशास्त्र, अर्थशास्त्र, समाजशास्त्र और राजनीति शास्त्र के विचारो का सम्मिश्रण था। वह इन्हें पृथक नहीं समझते थे। वह राजनीति का आध्यात्मीकरण[1] चाहते थे।

राज्य पर गाधीजी के विचार

गाधीजी के राज्य सम्बन्धी विचार दार्शनिक अराजकतावादियो से मिलते जुलते हैं। उनकी तरह गाधीजी आदर्श व्यवस्था में राज्य के किसी भी स्वरूप को स्वीकार नहीं करते। गाधीजी राज्य का निम्न दो कारणो से अस्वीकार करते हैं

(1) राज्य सत्ता का प्रतिनिधित्व करता है।

(2) राज्य सगठित हिंसा का प्रतीक है।

गाधीजी के लिए राज्य अनैतिक सस्था है। उनकी धारणा है कि सत्ता व्यक्ति की स्वतन्त्रता के लिए घातक है। राज्य शक्ति की बाध्यता न केवल व्यक्ति के कार्य के नैतिक मूल्यों को नष्ट कर देती है बल्कि उसके विकास को भी कुठित करती है। कार्य तभी तक नैतिक है जब तक स्वच्छिक है, स्वतन्त्र वातावरण में ही विकास सम्भव है। जब व्यक्ति राज्य रूपी यन्त्र में पुर्जे की तरह कार्य करता है तो उसमें नैतिकता का प्रश्न ही नहीं उठता। कार्य तभी नैतिक है जब उसे ज्ञान पूर्वक और कर्तव्य समझ कर किया जाय।

गाधीजी राज्य शक्ति में वृद्धि को शका की दृष्टि से देखते हैं। वह उसे आत्म हीन सस्था मानते हैं। उनके शब्दों में, "राज्य एक केन्द्रित एवं व्यवस्थित रूप में हिंसा का प्रतिनिधि है, व्यक्ति की आत्मा होती है राज्य आत्म विहीन यन्त्र है, राज्य को हिंसा से दूर नहीं किया जा सकता क्योंकि इसका अस्तित्व ही इस पर निर्भर करता है मैं राज्य की शक्ति में वृद्धि को बड़े भय से देखता हूँ क्योंकि यद्यपि ऐसा प्रतीत होता है कि यह शोषण को कम कर अच्छाई में वृद्धि कर रहा है परन्तु यह व्यक्ति के व्यक्तित्व को नष्ट कर, जो सब विकास के मूल में है, मानव मात्र को बड़ी हानि

---

1 He was for, in Toynbee's language, 'etherialization", that is, spiritualization of politics

पहुँचाता है। जिस चीज को मैं अस्वीकार करता हूँ वह हिंसा पर आधारित सगठन है और राज्य हिंसा पर आधारित सगठन है। सगठन ऐच्छिक होना चाहिए।"[1]

गाधीजी के उपर्युक्त शब्दो से स्पष्ट है कि उनके आदर्श समाज मे राज्य का कोई स्थान नही। वह राज्य विहीन प्रजातन्त्र समाज के इच्छुक हैं जहाँ सामाजिक जीवन इतना स्वच्छ, पूर्ण और ज्ञान युक्त है कि वह स्वत नियमित (self regulated) होता है। गाधीजी के शब्दो मे, "ऐसे राज्य (समाज) मे प्रत्येक अपना शासक है। वह अपने आपको इस प्रकार शासित करता है कि वह अपने पडोसी के लिए कभी बाधक नही होता। इस तरह आदर्श राज्य मे कोई राजनीतिक सत्ता नही क्योकि कोइ राज्य नही।"[2] यही गाधीजी की ज्ञानयुक्त अराजक व्यवस्था (enlightened anarchic system) है। गाधीजी ने सन् 1940 मे स्वय कहा था कि "आदर्श अहिंसक राज्य व्यवस्थित अराजकता होगी।"[3]

यहाँ यह स्पष्ट समझ लेना भी अनिवार्य है कि गाधीजी वर्तमान सगठित हिंसक राज्य को अपदस्थ करने के लिए हिंसक साधना का समर्थन नही करते। जहाँ अराजकतावादी दार्शनिक—बकुनिन (Bakunin) इत्यादि—राज्य रूपी सगठित हिंसा को नष्ट करने के लिए क्रान्तिकारी हिंसा का प्रयोग करते है वहाँ गाधीजी इसे नष्ट करने के लिए पूर्ण अहिंसक साधना का प्रयोग करना चाहते हैं।

ससद पर गाधीजी के विचार
(Gandhiji's Views on Parliament)

पश्चिमी प्रजातन्त्र के आलोचक (A Critic of Western Democracy)

गाधीजी न केवल राज्य को अस्वीकार करते थे बल्कि ससदो को भी अस्वीकार करते थे। उन्होंने ब्रिटिश ससद की तुलना, जिस ससदो का जननी कहा जाता है, एक बाझ स्त्री (a sterile woman) और वेश्या से की है। उनका विश्वास है कि बाँझ स्त्री की भाँति इसने कोई अच्छा कार्य नही किया और वेश्या की भाँति यह मन्त्रियो के हाथो की कठपुतली बन कर रह जाती है जो आते और चले जाते हैं अर्थात् समय समय पर बदलते रहते हैं। इसके कार्यों मे निश्चितता नही होती। जो आज किया जाता है उसे कल नष्ट किया जा सकता है। इसके सदस्य मिथ्यावादी और

1 Gandhi, M K Quoted in Tendulkar, D G Mahatma Life of Mohandas Karamchand Gandhi, Vol IV, pp 11 13

2 Gandhi M K Young India, dt. 2 7 1931

3 Gandhi, M K Quoted in Tendulkar, D G *Ibid*, Vol V p 313

स्वार्थी होते है, इनकी विचारधारा दलीय होती है जो सत्ता को बनाये रखने मे लगी रहती है। गाधीजी अच्छी से अच्छी स्थिति मे भी ज्ञान युक्त अराजकता (enlightened anarchy) के स्थान पर ससद को स्वीकार करने के लिए तयार नही थे।

विकेन्द्रित राजनीतिक व सामाजिक व्यवस्था

गाधीजी सत्ता के केन्द्रीयकरण के विरोधी थे, उनका विश्वास था कि केन्द्रीयकरण जीवन को जटिल बनाता है, व्यक्ति की अभिक्रमशीलता (initiative), साधनपणता (resourcefulness) साहस, और निमाण शक्ति को नष्ट करता है। उन्होने स्पष्ट लिखा है कि "केन्द्रीयकरण और अहिंसक समाज परस्पर विरोधी है।"[1] केन्द्रीयकरण मे व्यक्ति अपना महत्त्व खो बठता है और वह depersonalized हो जाता है। उनका यह भी विश्वास था कि 'केन्द्रीयकरण हिंसा द्वारा ही स्थायी रखा जा सकता है।"[2] इसलिए गाधीजी सामाजिक और राजनीतिक जीवन के लिए विकेन्द्रित व्यवस्था का समथन करते है। प्रजातन्त्र को सफल बनाने के लिए भी विकेन्द्रीकरण आवश्यक है क्योकि विकेन्द्रीकृत व्यवस्था म ही जन समूह उन विषयो म भाग ले सकते हैं जो उनसे सम्बन्धित हैं। उनका यह भी विश्वास है कि राष्ट्र के सभी स्रोतो को एकत्रित करने के लिए तथा लोगो म अपनत्व (sense of belongingness) की भावना पैदा करने के लिए विकेन्द्रीकरण आवश्यक है। इस तरह गाधीजी का आदश प्रजातन्त्र स्वशासित, स्वावलम्बी सत्याग्रही ग्रामो का सघ है, इसका आधार अहिंसा है, इसम सहयोग स्वेच्छिक है, इसमे व्यक्ति की स्वतन्त्रता सुरक्षित एव स्वनियन्त्रित है तथा उसका जीवन शान्तिमय है।

गाधीजी छोटे छोटे समूहो पर वल देते हैं, इन समूहो के सामाजिक जीवन म समानता वण सकर के आधार पर स्थापित की जायगी, इनम अपरिग्रह (non possession), अस्तेय (non stealing) और "रोटी के लिए श्रम" (bread labour) के नियम प्रचलित होगे, इनकी सभ्यता कृषक और ग्रामीण (देहाती) होगी जो हस्तकला पर आधारित होगी, इनम न कोई शोषक होगा न शोषित, न पूँजीवादी व्यवस्था होगी न जमीदारी, इनमे उत्पादन लाभ के स्थान पर सामाजिक आवश्यकता के आधार पर होगा, इनमे यन्त्रो का प्रयोग मानव श्रम को विस्थापित (displace) करने के लिए नही वल्कि उसे कुशल बनाने के लिए किया जायगा इसम न्याय आपसी मेल जोल, वातचीत, अनुराध या पच फसला द्वारा या कभी कभी आत्म कष्ट

---

1 Gandhi, M K Harijan, dt 18 1 1942

2 Gandhi, M K Harijan, dt 30 12 1939

द्वारा किया जायगा, इस व्यवस्था मे न बडे नगर होंगे न भारी वाहन, न बडे अस्पताल, न डाक्टरो की श्रेणिया, न न्यायालय व्यवस्था होगी न वकील प्रणाली।

गाधीजी के इस विकेन्द्रित अहिंसक आदर्श समाज का स्वरूप पारिवारिक होगा। इसमे परिवार के सदस्यो की भाति व्यक्ति और समाज का सम्बन्ध गहरी अन्योन्याश्रितता (close interdependence) का होगा। गाधीजी उस व्यक्तिवाद को अस्वीकार करते हैं जो सामाजिक कर्तव्यो की उपेक्षा करता है, वे उस आदर्शवाद या साम्यवाद को भी अस्वीकार करते हैं जिसमे व्यक्ति की राज्य रूपी देवी पर बलि चढा दी जाती है या उसे सामाजिक यन्त्र मे केवल एक पुर्जा मात्र बना कर रख दिया जाता है। गाधीजी के शब्दो मे, 'हमने व्यक्ति की स्वतन्त्रता और सामाजिक प्रतिरोध मे मध्यम मार्ग (middle way) अपनाना सीखा है।" इस तरह गाधीजी का विश्वास है कि पूर्ण समाज के कल्याण के लिए सामाजिक प्रतिबन्धो को स्वेच्छा से स्वीकार करना व्यक्ति और समाज दोनो के जीवन की समृद्धि करना है।

परन्तु जहाँ व्यक्ति और समाज मे चयन की बात है वहाँ गाधीजी के दर्शन मे व्यक्ति को प्राथमिकता मिलती है। गाधीजी पूछते हैं "यदि व्यक्ति का कोई महत्त्व नही तो समाज मे शेष रह ही क्या जाता है।'[1] गाधीजी व्यक्ति को समाज का केन्द्र मानते हैं। उनके शब्दो मे, 'अन्तत व्यक्ति ही इकाई है।"[2] उनका यह भी विश्वास है कि राज्य और सरकार की शक्ति का केन्द्र भी व्यक्ति है, व्यक्ति के अभाव मे ये सस्थाये तथा अन्य समुदाय शक्तिहीन तथा व्यर्थ हैं। इसलिए सामाजिक कर्तव्यो पर बल देते हुए भी गाधीजी के दर्शन मे 'सर्वोच्च विचार ही व्यक्ति है"[3] "व्यक्ति तो मेरे लिए प्रथम है' गाधीजी कहते थे। गाधी दर्शन का प्रधान राग (key note) ही व्यक्ति की नैतिक शक्ति का बल है। प्रत्येक विकास व्यक्ति से आरम्भ होना चाहिए।

व्यक्ति को महत्त्व देते हुए भी गाधीजी उसे सामाजिक कर्तव्यो के प्रति जागरूक रखते है। इसमे गाधीजी धर्म, अहिंसा और नैतिकता के तत्त्वो को प्रयोग मे लाते है।

---

1 Gandhi, M K Harijan, dt 1-2-1942
2 Gandhi, M K Harijan, dt 28 7-1946
3 'The supreme consideration is man"—Gandhi, M K Young India, dt 13 11 1924
4 "With me man comes first"—Gandhi, M K. Quoted in Bhattacharyya, Buddhadeva, *Ibid*, p 488

गाधीजो का विश्वास है कि यथाथ अहिंसा का विकास करके ही व्यक्ति राज्य विहीन, वग विहीन, सत्याग्रही समाज की स्थापना कर सकता है। क्योकि यथाथ अहिंसा की सिद्धि अप्राप्य है और क्योकि व्यक्ति अपने अहम का पूणत त्याग सकने म असफल है और क्योकि उसम मानव दुबलतायें हैं इसलिए गाधीजी अपने आदश समाज की कल्पना और व्यावहारिकता म समझौता कर लेत हैं और वतमान सस्थाओ का—जसे राज्य व ससद—नष्ट नही करना चाहत वल्कि उन्हें आवश्यक बुराई के रूप म स्वीकार कर लेते हैं।

गाधीजो की अहिंसक क्रान्ति के द्वारा जो राज्य का स्वरूप प्रकट होगा वह आदश अहिंसक समाज और मानव प्रकृति की अपूणताओ अर्थात वतमान व्यवस्थाओ मे एक समझौते का स्वरूप होगा। यह 'मध्यम माग'[1] (middle way) होगा। "इसम विशुद्ध अहिंसा का शासन होगा"[2]। इसम निबल और शक्तिशाली दोनो को समान अवसर प्राप्त होगा, स्वतन्त्रता और समानता न केवल इस राज्य के आन्तरिक जीवन के चिन्ह होंगे बल्कि वाह्य जीवन के भी लक्षण होग। गाधीजी न तो यथेच्छाकारी दाशनिको की तरह (व्यक्तिवादियो की तरह) राज्य को कवल पुलिस काय ही सौपते है और न ही समाजवादियो की तरह राष्ट्रीय महत्व के काय और न ही साम्यवादियो की तरह केन्द्रीयकरण म विश्वास करत हैं, वे तो अहिंसा, हस्तकला सभ्यता, सादा और सरल जीवन व विकेन्द्रीकरण म विश्वास करते हैं। इस तरह न तो वह पूर्ण व्यक्तिवादी हैं और न समाजवादी, वह कुछ व्यक्तिवादी और कुछ समाजवादी दोनो ही हैं।

गाधीजी राज्य को एक साधन मानत है, साध्य नही। उनके शब्दो म, 'राज्य (अर्थात राजनीतिक सत्ता) जीवन के प्रत्यक क्षेत्र म अपनी अवस्था को अच्छा बनाने के लिए लोगो के हाथो मे एक माध्यम है।[3] गाधीजी हीगल की इस विचारधारा को स्वीकार नही करत कि राज्य स्वय म साध्य है या स्वय मे सर्वोच्च नतिकता है या सर्वोच्च व्यक्तित्व है। गाधीजी फासिस्टवाद और नाजीवाद के इस विचार को भी स्वीकार नही करते कि 'प्रत्यक चीज राज्य के अन्दर, कुछ राज्य के बाहर नही कुछ राज्य के विरुद्ध नही।' गाधीजी ग्रीन और बोसाके जैसे आदशवादियो के इस विचार से भी सहमत नही कि राज्य 'समुदायो का समुदाय' है। गाधीजी राज्य को सबके कल्याण को सुरक्षित रखने के लिए केवल 'एक माध्यम (One of the means) मानते है। उनके लिए राज्य कोई मानास्पद (Sacrosanct) सस्था नही, यह मानव दुबल-

---

1 Young India, Vol II, p 659

2 Harijan, dt 13 10 1940

3 Gandhi, M K *Young India*, dt 2 7 1931

ताओ के लिए एक रियायत है। वास्तव मे गाधीजी राज्य पर अविश्वास करते हैं और सत्याग्रह द्वारा लोगो मे यह शक्ति पदा कर देना चाहते है कि जब कभी राज्य अपनी शक्ति का दुरुपयोग कर तो लोग उसका विरोध कर सकें। गाधीजी कहा करते थे "राज्य व्यक्ति के लिय है व्यक्ति राज्य के लिये नही, वह तो समाज के लिय है।"

अराजकतावादियो और बहुलवादियो की तरह गाधीजी राज्य के निरकुश सम्प्रभुता के सिद्धान्त को स्वीकार नही करते। उन्होने हाब्सन, आस्टिन और हीगल द्वारा वर्णित निरपेक्ष और अनुत्तरदायी सम्प्रभुता का खण्डन किया है। वह 'लोगो की उस सम्प्रभुता मे विश्वास करते ह जो शुद्ध नतिक शक्ति पर आधारित है।'[1] उन्होने स्पष्ट कहा है कि राज्य के प्रति लोगो की भक्ति उसके आदशो की नतिकता पर निभर करती है। अन्य समुदायो की तरह राज्य के प्रति लोगो की भक्ति सीमित और सापेक्ष है। जितनी मात्रा मे राज्य के निणय मानव आत्मा को अपील कर पाते ह उतनी ही मात्रा म व्यक्तियो की भक्ति राज्य के प्रति होती है उससे अधिक नही। यहा गाधीजी की विचारधारा स्पष्ट रूप से लास्की की इस विचारधारा से मिलती है कि "हमारा प्रथम् कत्तव्य अपनी अन्त आत्मा के प्रति शुद्ध होना है।'[2] गाधीजी कहते हैं, "यह हमार पुरुषत्व के विरुद्ध है कि हम उन नियमो का पालन करें जो हमारी आत्मा के विरुद्ध हैं।"[3] "म राज्य के कानूनो का सम्मान करता हूँ परन्तु मैं उच्चतम कानून—अन्त आत्मा की आवाज—की पालना करता हूँ।'[4] यद्यपि इस प्रकार की सापेक्ष भक्ति अराजकता के खतर को निमन्त्रण देती है परन्तु गाधीजी का विश्वास है कि यह राजनीतिक सत्ता को दूषित या भ्रष्ट होने स बचाने का आवश्यक सरक्षण है। यह वास्तविक प्रजातन्त्र की कुजी है। इस अराजकता के विरुद्ध भी तो गाधीजी ने "अहिंसक साधना" को सरक्षण के रूप मे प्रस्तुत किया है।

राम राज्य अथवा पूर्ण समाज
(Ram Rajya or Perfect Society)

गाधीजी का राम राज्य "न्याय" और "पूणता" का राज्य है। यह पृथ्वी पर नीति-परायणता (righteousness) का राज्य है। इसम सम्प्रभुता लोगो की "शुद्ध

---

1 Gandhi, M K Harijan, dt 2 1 1937

2 'Our first duty is to be true to our conscience' —Laski, Harold J *A Grammar of Politics* p 289

3 'It is contrary to our manhood if we obey laws contrary to our conscience"— Gandhi, M K *Hind Swaraj*, p 58

4 "I respect the law of the state but I obey a higher law—the 'Voice of inner conscience" —Gandhi, M K Young India, dt 24 4 1930

नैतिक शक्ति" पर आधारित है। यह सामाजिक, राजनीतिक, धार्मिक और आर्थिक स्वतन्त्रता का राज्य है। यह सर्वोदय राज्य है जिसमे निम्न से निम्न व्यक्ति की भी स्वतन्त्रता सुरक्षित है और उसे जीवन की आवश्यक वस्तुएँ आसानी से उपलब्ध होती है।

राम राज्य के मुख्य लक्षण निम्न प्रकार से चार भागो मे विभाजित किये जा सकते हैं —

1 धार्मिक दृष्टि से —यह ईश्वर का राज्य है।

2 राजनीतिक दृष्टि से—यह सच्चा प्रजातन्त्र है, इसमे किसी प्रकार की—लिंग, धर्म, जाति, भाषा प्रदेश, रंग, सम्पत्ति—अन्यायी (un just) असमानतायें नही, इसमे भूमि तथा राजनीतिक सस्थायें लोगो की हैं, इसमे न्याय पूर्ण, सस्ता और शीघ्र है, इसमे व्यक्ति सब स्वतन्त्रताओ—भाषण, समुदाय, धर्म, छापाखाना—का स्वच्छन्द उपभोग करता है, इसमे प्रतिबन्ध नैतिक है अर्थात व्यक्तियो के कार्य स्वत नियन्त्रित होते है, इसमे सत्ता विकेन्द्रित है, इसमे स्वशासित, स्वावलम्बी तथा स्वय पूर्ण ग्राम तथा ग्राम समुदाय हैं, इसमे सत्ता के आधार सत्य और अहिंसा हैं।

3 सामाजिक दृष्टि से—समाज का स्वरूप पारिवारिक है, सभी समान है, किसी प्रकार के भेद भाव नही।

4 आर्थिक दृष्टि से —आर्थिक व्यवस्था विकेन्द्रित है, जीवन सरल, सादा और सयत है, मानव की आवश्यकतायें बहुत कम है, उत्पादन 'लाभ" के स्थान पर "मानवीय आवश्यकताओं" के आधार पर होता है, प्रत्येक व्यक्ति "रोटी के लिए श्रम" (bread labour) के आधार पर कार्य करता है, इत्यादि।

इस तरह गाधीजी का राम राज्य से अभिप्राय उस समान अहिंसक प्रजातान्त्रिक व्यवस्था से है जो नैतिक मूल्यो पर आधारित है। वी० पी० वर्मा के शब्दो मे, 'गाधीजी के राम राज्य के सिद्धान्त मे आगस्टाइन के पृथ्वी पर ईश्वर के राज्य के विचारो और लोगो की सम्प्रभुता के प्रजातान्त्रिक आदर्श का सश्लेषण है, यह भी कहा जा सकता है कि 'इसमे टामस के प्राकृतिक कानून और रूसो की सामान्य इच्छा के सश्लेषण की सिद्धि है।"[1]

---

1 Varma, Vishwanath Prasad The Political Philosophy of Mahatma Gandhi and Sarvodaya, p 216, 218

गाधी और मार्क्स—एक तुलनात्मक अध्ययन
(Gandhi and Marx—a Comparative Study)

गाधीजो और मार्क्स की तुलना करना कुछ असङ्गत सा प्रतीत होता है क्योकि विचार (thought idea) और कार्य (action) की दृष्टि से दोनो विरोधी विचारधाराओ का प्रतिनिधित्व करते है। मार्क्स, लेनिन या स्टालिन की भाँति गाधीजी का समाजवाद किसी सिद्धान्त या किसी पुस्तक मे दिये गये तथ्यो पर आधारित नही या और न ही वे किसी सिद्धान्त या प्रणाली का निर्माण करना चाहते थे। वे व्यावहारिक आदर्शवादी थे जिनका समाजवाद उनके नैतिक और आध्यात्मिक विचारो के प्राकृतिक विकास का परिणाम था। वे पूर्णत धार्मिक व्यक्ति थे और उनका समाजवाद अहिंसा और हृदय परिवर्तन पर आधारित था। गाधीजी का सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक तथा अन्य समस्याओ पर दृष्टिकोण इन्ही धार्मिक विचारधाराओ के प्रभाव का फल था। वे सामाजिक न्याय (Social Justice) मे विश्वास तो करते थे परन्तु इसे वह अहिंसक तरीको द्वारा प्राप्त करना चाहते थे, हिंसक तरीको द्वारा नही।

गाधीजी मार्क्स की भाति राज्य विहीन, वर्ग विहीन समाज की कल्पना करते थे। इस दृष्टि को सामने रख कर कुछ लेखको ने यह विचार व्यक्त किया है कि गाधीजी के उद्देश्य (साध्य) और मार्क्स के उद्देश्य म कोई भेद नही, उनम केवल उस उद्देश्य की प्राप्ति के लिए प्रयोग म लाये जाने वाले साधनो मे भेद है। जैसा कि किशोरीलाल मशरूवाला ने लिखा है कि "गाधीवाद हिंसा रहित मार्क्सवाद है।" परन्तु अधिकाश लेखक ऐसे हैं जो गाधीजी द्वारा प्रस्तुत सामाजिक पुनर्गठन की विचारधारा को मार्क्स से बिल्कुल भिन्न मानते हैं। विनोबा भावे के शब्दो मे, "तथ्य तो यह है कि दोनो सिद्धात असमञ्जस्य (Irreconcilable) हैं, दोनो म मूल भेद हैं।[1] इन मूल भेदो को स्पष्ट करते हुए विनोबा भावे लिखते हैं कि "दो आदमी एक दूसरे से इतने मिलते जुलते हैं कि लोगो को बडी आसानी से एक दूसरे के बारे मे भ्रम हो जाता था, परन्तु उनम अन्तर केवल इतना था कि एक सास ले सकता था और दूसरे की सास गायब थी"। उनके शब्दो मे, "साम्यवाद हिंसा को अपना शस्त्र मानता है और ईश्वर को मानने से इन्कार करता है, इसलिए वह मुझे कभी मन्जूर नही हो सकता।" प्रो० डी० के० मुकर्जी के शब्दो मे, "जहाँ तक गाधीजी राज्य मे अपरिग्रह के विचार को सस्थापित करते है और जहाँ वे सम्पत्ति को राज्य के हाथो म, 'लोभ' और 'लाभ" के स्थान पर, सब कल्याण के लिए छोड देते हैं वहाँ तक तो

---

1 Bhave, Vinoba Introduction to K G Mashruwala 'Gandhi & Marx"

गाधीजी समाजवादी ता क्या साम्यवादी है पर तु अन्तर यह है कि गाधीजी के समाजवाद की उत्पत्ति औद्योगिक सभ्यता, तकनीकी मूल्यो, वग सघप और द्वात्मक नियमो के फलस्वरूप नही हुई ।[1]

गाधीवाद और माक्सवाद की भिन्नताओ को निम्न बिन्दुओ म व्यक्त किया जा सकता है—

1 मावसवाद और गाधीवाद के मूल तत्त्वो मे भिन्नता है

माक्सवाद समाज के एक वग (श्रमिक वग—सवहारा वग) का सिद्धान्त है जो वग सघप मे विश्वास करता है, राज्य की सत्ता को प्राप्त करना चाहता है, (कम से कम सक्रान्ति काल मे), इसम हिंसा का प्रयोग उचित है, यह समाज पर सवहारा वग के अधिनायकवाद की स्थापना करना चाहता है, इसमे व्यक्ति की स्वत त्रता का कोई महत्त्व नही, इसके लिए समाज ही सब कुछ है यह उद्योग मे स्वशासन चाहता है। गाधीवाद के मूल तत्त्व इससे सवथा भिन्न हैं। गाधीवाद के मूल आधार सत्य, अहिंसा, नतिकता इत्यादि ऐसे ही तत्त्व हैं, इसम वग सघप का काई स्थान नही, यह समाज के किसी एक वग को समाप्त कर दूसरे वग का अधिनायकवाद नही चाहता। यह मूलत हृदय परिवतन और अहिंसक साधनो द्वारा पूँजीपति तथा श्रमिक और जमीदार तथा कृषक म तालमेल पदा करना चाहता है, यह मानव की श्रेष्ठता मे विश्वास करता है, इसम हिंसा का कोई स्थान नही, यह राज्य की शक्ति का शका की दृष्टि से देखता है, यह राज्य की शक्ति बढाने के पक्ष मे नही, यह केन्द्रीयकरण और औद्योगीकरण को नतिक विकास के लिए हानिकारक मानता है, यह व्यक्ति तथा उसकी स्वत त्रता का समथक है, यह उद्योग मे पूँजीपति और श्रमिक की सह साझेदारी (Co partnership) का इच्छुक है। इसमे उत्पादन लाभ द्वारा नही समाज की आवश्यकता द्वारा निर्धारित होता है।

2 गाधीजी जीवन को और माक्स द्रव्य को सब कुछ मानता है

गाधीजी के लिए 'जीवन" (life) ही सब कुछ है, माक्स के लिए 'द्रव्य' (matter) ही सब कुछ है, गाधीजी मस्तिष्क को सामाजिक विकास का आधार मानते है, मार्क्सवाद भौतिकवाद है, उसके लिए जीवन की भौतिक व्यवस्थाओ मे सामाजिक परिवतन की कुजी है, गाधीजी सामाजिक परिवतन के लिए नतिक तक प्रस्तुत करते हैं, माक्स समाजवाद की स्थापना के लिए भौतिक कारणो और द्वद्वात्मक नियम को प्रस्तुत करता है। जहाँ वग सहयोग, अहिंसा और ट्रस्टीशिप गाधीजी के नतिक समाज

---

1 Mukerji, D K in his paper on Mahatma Gandhi's views on Machines & Technology—Diversities, p 223

वाद को स्थापित करने के आवश्यक कदम हैं वहाँ वर्ग संघर्ष, शोषण करने वालों का सफाया और सर्वहारा वर्ग का अधिनायकवाद मार्क्सवाद के साम्यवादी व्यवस्था को स्थापित करने के लिए आवश्यक कदम है। गाधीवाद विरोधी से भी प्रेम करना सिखाता है, मार्क्सवाद विरोधी से घृणा करना सिखाता है।

3 गांधीवाद मिलनवाद है मार्क्सवाद विग्रहवाद है

गाधीवाद की आँख अखण्ड ऐक्य पर है, यह मिलनवाद है। मार्क्सवाद द्वन्द्व और द्वित्व से आगे स्वय नही देखता, न देखने की अनुमति देता है, यह विग्रहवाद है। सक्षेप म, गाधीवाद सास्कृतिक और सग्रहात्मक है मार्क्सवाद राजनीतिक और विग्रहात्मक है।

4 आध्यात्मिक दृष्टि मे अन्तर

गाधीवाद आध्यात्मिक मूल्यो (नतिकता, धम सत्य, अहिंसा) पर आधारित है, ईश्वर श्रद्धा और ईश्वर विश्वास उसके मूल आधार हैं, धम उसका प्राण है, परोपकारिता अर्थात मानवमात्र की नि स्वाथ सेवा आत्म सिद्धि का मुख्य साधन है। मार्क्सवाद का आध्यात्मिक मूल्यो पर विश्वास नही, उसके लिए "आत्मा या "अध्यात्म" नाम की कोई चीज नही, धम और ईश्वर को वह मानव के अन्ध विश्वास का परिणाम मानता है, मार्क्स के लिए धम सामाजिक परिवतन मे बाधक (Brake) है, यह "शोषण" और "दासता" का पोषक है। इसलिए मार्क्स ने धम को 'जनता के लिए अफीम की गोली" (opium of the masses) "सताये हुए प्राण की सुसकी" (The sob of the oppressed creature), "क्रूर विश्व का हृदय' (The heart of a heartless world) कह कर निन्दित किया है, ऐंजिल्स के लिए, 'धम म पहला शब्द झूठ है" लेनिन के लिए धम 'अत्याचार का तरीका" है। मार्क्सवादी, स्पष्ट है, धम और ईश्वर को "बुर्जुआ" मनोवृत्ति के प्रतीक मानत है। परन्तु गाधीजी के लिए धम जीवन रूपी जहाज की पतवार है जो उसे सहारा देती है।

5 साध्य-साधन के सम्बन्ध के आधार मे अन्तर

गाधीवाद साध्य साधना की पवित्रता पर बल देता है, न केवल साध्य ही पवित्र और उच्च होना चाहिए, उसकी प्राप्ति के लिए साधन भी पवित्र और उच्च होने चाहिए। गाधीजी के लिए साध्य साधन सपरिवर्तनीय शब्द (convertible terms) है। साध्य उसी प्रकार साधन से विकसित होता है जिस प्रकार बीज से वृक्ष का विकास होता है। मदन जी० गाधी के शब्दो मे, "साधन साध्य की प्रक्रिया है।"[1]

---

1 Gandhi, Madan G "The means is the end in process'–Gandhi & Marx *Vikas Bharti* Chandigarh—Delhi 1969 (ed) p 75

गाधीजी के लिए साध्य साधन म कोई द्विधात्व (dichotomy विभाजन) नहीं। गाधीजी का विश्वास है कि अशुद्ध साधनो से शुद्ध साध्य की प्राप्ति नही हो सकती। दूसरी ओर, मार्क्सवाद केवल साध्य की पवित्रता पर बल देता है, साधना की पवित्रता पर नही। उसके लिए साध्य साधना का औचित्य है (end justifies the means) और क्राति की सफलता सबसे बडी अच्छाई है।

6 मानव प्रकृति के प्रति दृष्टिकोण के आधार पर अ तर

मार्क्स ने मानव प्रकृति को न तो मैक्यावली और हाब्स की तरह स्वार्थी और न रूसो की तरह अच्छी ही माना वरिक उसने उसे सामाजिक बनावट (Social Construction) माना। उसका विश्वास था कि मानव प्रकृति वातावरण की जात है और उस वातावरण मे परिवतन लाकर मानव प्रकृति को बदला जा सकता है। दूसरी ओर, गाधीजी न तो मानव प्रवृति को स्वार्थी मानते है और न सामाजिक बनावट। वह मानव को स्वभावत अच्छा मानते हैं जिसम दवी शक्ति का अश है तथा उसकी विशेषता है। गाधीवाद बुरे से बुरे व्यक्ति म भी अच्छाई के गुण देखता है यद्यपि यह अच्छाई उसमे प्रसुप्त (dormant) है। गाधीजी का विश्वास है कि सामाजिक ढाचे मे परिवतन से मानव प्रकृति मे परिवतन अवश्य लाया जा सकता है परतु यह परिवतन ऊपरी (Superficial) और अस्थायी होगा, मूल नही। मूल परिवतन तो मूल भावनाओ म ही परिवतन ला कर किया जा सकता है। इस तरह जहा मार्क्स-वाद विश्व के श्रमिको को एकत्रित होने के लिए प्रोत्साहित तो करता है परतु उनकी परिग्रह वृत्ति मे परिवतन लाने म असफल है वहा गाधीवाद अपरिग्रह का नारा देकर मूल भावनाओ म ही परिवतन लाना चाहता है।

7 इतिहास की व्याख्या के आधार पर अ तर

मार्क्स ने इतिहास की भौतिकवादी व्याख्या की, गाधीजी ने उसकी आध्यात्मिक व्याख्या की। मार्क्स के लिए सामाजिक परिवतन और क्रान्तियाँ उत्पादन और विनिमय की विधियो म परिवतन होने से पदा होते हैं, गाधीजी इस बात को स्वीकार नही करते कि सभी झगडो या सामाजिक मूल्यो के कारणो को आर्थिक कारणो म ढूढा जा सकता है। गाधीजी अक्सर कहते थे कि क्या ट्राजन युद्ध (Trojan war) का कारण हैलन नही थी राजपूत युद्धो का मूल आर्थिक कारणो म नही था। गाधीजी के शब्दो मे, "हम ही अपनी बाह्य परिस्थितियो के कारण और निर्माता हैं दूसरा कोई नहीं"। मार्क्सवाद मे विचारो की प्रधानता नही। उसके लिए विचार समाज के स्वरूप को निर्धारित नही करते, समाज का स्वरूप ही विचारो का निर्माण करता है। गाधीवाद म व्यक्ति और समाज तथा सस्थायें एक दूसरे पर प्रभाव डालते हैं।

8 सामाजिक परिस्थितियों की भिन्नता के आधार पर अन्तर

मार्क्स ऐसे समाज में पैदा हुआ जिसमें यथेच्छाचारिता (Laissez faire) का स्वरूप चरम सीमा पर था, औद्योगिक क्रान्ति के फलस्वरूप उत्पादन की प्रणाली पूर्ण भौतिकवादी थी। इस भौतिकतावाद में ही मार्क्स ने पूंजी के पतन के बीज देखे (अति उत्पादन आर्थिक संकट, वर्ग संघर्ष शोषण, बाजारों की प्राप्ति के लिए युद्ध, उपनिवेशवाद, साम्राज्यवाद, पूंजी का केन्द्रीयकरण इत्यादि) और इससे ही उसने अपने आदर्श समाज की कल्पना तैयार की। दूसरी ओर, गांधीजी ऐसे समाज में पैदा हुए जहां नैतिकता, धर्म, ईश्वर अर्थात अध्यात्म का प्रभाव अधिक था। इसलिए गांधीजी ने उपनिवेशवाद, साम्राज्यवाद, जातिवाद, सम्प्रदायवाद, छुआछूत तथा अन्य सामाजिक, राजनीतिक तथा आर्थिक बुराइयों, अन्यायों और अत्याचारों का विरोध अहिंसक साधनों से किया। गांधीजी अपने आदर्श राज्य की कल्पना अहिंसक राज्य में करते हैं। जहां मार्क्स पूंजीवाद को अशोध्य (incorrigible) मानता है वहां गांधीजी उसे शोध्य (corrigible) मानते हैं। जहां मार्क्स पूंजी और श्रम में संघर्ष समझ कर पूंजीवाद तथा पूंजीपति को नष्ट करना चाहता है वहां गांधीजी पूंजी और श्रम में कोई भेद नहीं समझते तथा उन दोनों का, मदन जी० गांधी के शब्दों में, विवाह करना चाहते हैं।" गांधी जी सम्पत्ति को नैतिक आधार प्रदान करते हैं। इस तरह जहां मार्क्स का दर्शन मनोवैज्ञानिक दृष्टि से गलत प्रतीत होता है वहां गांधीजी का दर्शन मनोवैज्ञानिक प्रतीत होता है। जहां मार्क्स के लिए आर्थिक परिस्थितियों के विकास से ही राज्य का जन्म विकास और लोप होता है तथा अन्त में राज्य विहीन, वर्ग विहीन समाज की स्थापना होती है वहां गांधीजी के लिए नैतिक विकास और नैतिक मूल्यों की स्थापना से राज्य विहीन वर्ग विहीन समाज की स्थापना होती है।

9 गांधीजी की अर्थ नीति मानव निष्ठ है मार्क्स की अर्थ निष्ठ

गांधीवाद की अर्थ नीति मानव निष्ठ है, अर्थ प्रधान नहीं, इसका समस्त विचरण हृदय से स्वतन्त्र नहीं, यह सहानुभूति से संयुक्त है, यह केवल बौद्धिक मात्र नहीं, यह किसी भी हालत में यन्त्र को तथा तन्त्र को मानव से अधिक महत्त्व नहीं देती। इसके लिए 'मानव ही सर्वोच्च विचारधारा है' मेरे लिए व्यक्ति सबसे प्रथम् है' दूसरी ओर, मार्क्सवाद आर्थिक और बौद्धिक वैज्ञानिक विचारणा का फल है। वह निर्वैयक्तिक और तान्त्रिक है, इसमें साम्य पर अधिक महत्त्व है, इसमें प्रेम के

---

1 'We are the cause and maker of our surroundings, no body else —Gandhi, M K Quoted by Pyare Lal—*The Last Phase*, Vol II, p 143

लिए अवकाश नहीं। स्पष्ट है कि गांधीवाद में मुख्य विचार मानव तथा उसकी स्वतन्त्रता है जबकि मार्क्सवाद में मुख्य विचार सत्ता तथा समानता है यद्यपि यह शंकास्पद है कि क्या मार्क्सवाद में कल्पित समानता व्यावहारिक है।

10 मार्क्स के लिए श्रम पण्य है, गांधीजी के लिए नहीं

गांधीजी के श्रम (labour) पर विचार मार्क्स से सर्वथा भिन्न हैं। मार्क्स के लिए 'श्रम' एक ऐसा पण्य (Commodity) है जिसे पूँजीपति अपनी इच्छा से अपने दामों पर खरीदता है। मार्क्स 'श्रम' को शोषित वर्ग मानता है। वह 'श्रमिक' को उसकी असहाय व्यवस्था बताकर उसे वर्ग चेतना द्वारा संगठित कर, वर्ग संघर्ष द्वारा पूँजीवाद को नष्ट कर, सर्वहारा वर्ग के अधिनायकवाद को स्थापित करना चाहता है। दूसरी ओर गांधीजी श्रम को पण्य नहीं मानते। उनके लिए 'पूँजी' और श्रम एक दूसरे पर निर्भर करते हैं। गांधीजी दोनों में कोई संघर्ष नहीं देखते। गांधीजी श्रम की नैतिक शक्ति बढ़ा कर अहिंसक असहयोग द्वारा उनके सम्बन्ध को सुधारना चाहते हैं।

11 मार्क्स वर्ग संघर्ष में विश्वास करता है गांधीजी वर्ग सहयोग में

मार्क्स वर्ग संघर्ष में विश्वास करता है। उसके लिए वर्ग संघर्ष विश्व व्यापी सिद्धान्त है। गांधीजी वर्ग संघर्ष के सिद्धान्त का खण्डन करते हैं। वे वर्गों में सहयोग और तालमेल पैदा कर समाज के सभी वर्गों का कल्याण चाहते हैं। वे उद्योग में स्वामियों और सेवकों (पूँजीपतियों और श्रमिकों) को सहभागी (Copartners) बनाना चाहते हैं। स्पष्ट है, जहाँ मार्क्स सर्वहारा वर्ग के अधिनायकवाद की स्थापना चाहता है वहाँ गांधीजी किसी वर्ग का आधिपत्य नहीं चाहते।

12 गांधीवाद विकेन्द्रीकरण और मार्क्सवाद केन्द्रीयकरण में विश्वास करता है

गांधीवाद यन्त्रीकरण और केन्द्रीयकरण का विरोधी है। यह विकेन्द्रित अर्थ व्यवस्था जिसमें ग्रामोद्योगों, गृहद्योगों का महत्त्व हो हिमायती है। मार्क्सवाद के लिए लोकतन्त्र बुर्जुआ विचार है जिसका तख्ता पलटना क्रान्तिकारी जनता का पहला कर्तव्य है। यह सत्ता का केन्द्रीयकरण चाहता है। यह केन्द्रित उत्पादन का समर्थक है।

13 आदर्श राज्य की प्राप्ति के बारे में अन्तर

मार्क्स अपने आदर्श (राज्य विहीन, वर्ग विहीन समाज) की प्राप्ति को अवश्यम्भावी मानता है, परन्तु गांधीजी अपने आदर्श की प्राप्ति को, मानव दुर्बलताओं (imperfections) के कारण, अप्राप्य मानते हैं। इस दृष्टि से मार्क्स गांधीजी की अपेक्षा अधिक काल्पनिक (utopian) है। मार्क्स बलपूर्वक इस बात को कहता है कि साम्यवादी राज्य विहीन, वर्ग विहीन समाज की प्राप्ति हो सकती है जबकि गांधीजी आदर्श की प्राप्ति के लिए किये गये प्रयत्न को ही

पर्याप्त मानव है। गांधीजी का पूर्ण विश्वास है कि क्योंकि मानव पूर्ण अपने अहम् (ego) का त्याग नहीं सकता इसलिए आदर्श की प्राप्ति कठिन है।

जहाँ मार्क्स अपने आदर्श की प्राप्ति हिंसक साधनों द्वारा करता है वहाँ गांधीजी अहिंसक—प्रेम, दया, सहानुभूति क्षमा, त्याग, बलिदान—साधनों द्वारा करते हैं। जहाँ मार्क्स हिंसक साधनों के आधार पर आदर्श की अनिवार्यता पर बल देता है वहाँ गांधीजी का विश्वास है कि हिंसा केवल ऊपरी व अस्थायी परिवर्तन ला सकती है, स्थायी एव मूल परिवर्तन तो अहिंसक साधनों द्वारा ही आ सकते हैं।

गांधीवाद और मार्क्सवाद की भिन्नताओं पर प्रकाश डालने के बाद उनमें जो कुछ समानता है उसे भी समझ लेना उचित है। केवल एक ही बिन्दु में गांधीवाद और मार्क्सवाद एक दूसरे के निकट हैं। दोनों ही समाज के निम्न वर्गों के हिमायती हैं तथा उनका उत्थान करने के इच्छुक हैं। गांधीवाद दरिद्र को उसकी दरिद्रता से छुटकारा दिलाना चाहता है मार्क्सवाद मजदूर और कृषक की दशा सुधारना चाहता है, दोनों को पूँजी को एकत्रित करना तथा उसे सिर चढ़ाना अमान्य है। दोनों सामाजिक अन्याय, आर्थिक शोषण और राजनीतिक अत्याचार के विरोधी हैं। इस तरह दोनों लाखों शोषित व्यक्तियों की आशा के दीप हैं। के० जी० मशरूवाला ने बहुत ही सुन्दर ढंग से गांधीवाद और मार्क्सवाद में समान तत्त्व को इस प्रकार व्यक्त किया है, "गांधी और मार्क्स दोनों में सामान्य बिन्दु यह है कि दोनों मानव जाति के दबाये हुए व सताये हुए, साधनहीन तथा अनभिज्ञ, गूँगे तथा भूखे वर्गों के लिए अत्यधिक चिंतित हैं।"[1]

प्रो० निर्मल चन्द्र भट्टाचार्य ने मार्क्सवादी साम्यवाद और गांधीवाद में निम्न समानताएँ स्पष्ट की हैं —

1 दोनों आदर्श मानव समानता और स्वतन्त्रता पर आधारित हैं।

2 दोनों का शान्ति और विश्व भ्रातृत्व में अटल विश्वास है।

3 साम्यवाद, गांधीवाद की तरह, राज्य को हिंसा का प्रतीक मानता है।

4 दोनों विकेन्द्रित सामाजिक व्यवस्था में विश्वास करते हैं ताकि व्यक्ति जिस समुदाय से सम्बन्धित है उसमें प्रभावपूर्ण ढंग से कार्य करने के लिए स्वतन्त्र हो।

5 दोनों में ऐच्छिक समुदायों की व्यवस्था है जिससे व्यक्ति सामाजिक कर्त्तव्यों के प्रति जागरूक रहते हुए [illegible] रहें।

---

1 Mashruwala, K G *Gandhi and Marx*, p 41.

6 गाधीजी का अहिंसक राज्य, राज्य विहीन समाज की तुलना म, अद्र्मार्ग कहा जा सकता है, इसकी तुलना साम्यवादी दर्शन मे सक्राति काल के सर्वहारा वर्ग के अधिनायक वाद से की जा सकती है ।

7 गाधीजी मार्क्स की भाति निजी सम्पत्ति को बुराई मानते है और पूँजी वादी तथा जमीदारी प्रथा को मानव दासता के मुख्य कारण मानते हैं ।

जी० डी० एच० कोल ने अपनी समाजवाद की परिभाषा मे कहा है कि यह "निम्न वर्ग के लिए व्यापक मानव आन्दोलन है ।"[1] इस दृष्टि से हम गाधी को नतिक समाजवादी और उनकी विचारधारा को, लुई फिशर के शब्दो मे, 'नतिक समाज वाद"[2] कह सकते है ।

गाधीवाद मानवतावाद है

उपर्युक्त विषयो पर व्यक्त किये गये गाधीजी के विचारो से स्पष्ट है कि गाधीजी के सम्पूर्ण दर्शन म मानव सर्वोच्च स्थान प्राप्त किये हुए है । उनके शब्दो मे, "मानव ही सर्वोच्च विचार है ।'[3] "मेरे लिए मानव ही सब से प्रथम है", 'मानव के लिए मेरा प्रेम असीम है ।"[4] बिमन बिहारी मजूमदार के शब्दो म, गाधीजी के 'राज नीतिक दर्शन की सौर प्रणाली मे मानव सूय है ।'[5] चाह क्षेत्र आध्यात्मिक हो या सामाजिक राजनीतिक हो या आर्थिक, राष्ट्रीय हो या अन्तर्राष्ट्रीय उनके लिए केन्द्र बिन्दु मानव ही था । ईश्वर प्राप्ति, आध्यात्मिक शुद्धता की प्राप्ति या मोक्ष की प्राप्ति भी गाधीजी मानव सेवा द्वारा ही प्राप्त करना चाहते थे । वे मानव क्रिया के अति रिक्त किसी धम को स्वीकार नही करते थे । सत्याग्रह का तकनीक मानव आव श्यकताओ को पूरा करने के लिए गढा गया था ।

गाधीजी का मानवतावाद केवल प्रेम की चरम सीमा मात्र नही था वल्कि यह बुराई का प्रतिरोध करने का पुरुषत्व था । गाधीजी के सारे सामाजिक धार्मिक, आर्थिक और राजनीतिक दर्शन के पीछे मानव सम्बन्धो का सुधारने की चेष्टा थी । जहा मानव का अनादर है जहा उसे दास बनाने की वृत्ति है, जहाँ उसका शोषण होता है वहाँ गाधीजी उसकी स्थिति सुधारने के लिए प्रयत्नशील हैं । गाधीजी का मानवतावाद प्रत्येक आख मे से आसू पोछ डालना चाहता है । वह पृथ्वी पर जीवन जीने योग्य बनाना चाहता है ।

---

1 'A broad human movement on behalf of the bottom dog
—Cole, G D H

2 His was a moral socialism '—Fischer Louis *The Life of Mahatma Gandhi* p 359

3 Young India dt 13 11 24

4 Harijan dt 2 3 1934

5 Majumdar, Biman Bihari *Gandian Concept of State*, p 5

गाधीजी का मानवतावाद सामाजिक उत्तरदायित्वा की उपेक्षा नही करता वल्कि सामाजिक उत्तरदायित्वा को पूर्ति मे मानव का कल्याण देखता है । परन्तु गाधीजी के सामाजिक उत्तरदायित्वो मे मानव की न ता आदशवादिया की भाति राज्य रूपी देवी पर वलि चढाई जाती है और न ही समाजवाद की भाँति उसे मशीन मे एक पुरजा मात्र समभा जाता है वल्कि उसे मानव समझ कर उसके जीवन को जीने योग्य वनाया जाता है । गाधीजी का मानवतावाद कुछ सीमा तक समाजवादी है । उनका कहना है कि यदि धनिक लोग स्वेच्छा से अपने अपेक्षाधिक धन के स्वेच्छा से ट्रस्टी नही वनते तो सर्वोदय के लिए, कम से कम हिंसा का प्रयोग करते हुए, राज्य उनकी सम्पत्ति जब्त कर लेगा ।

सक्षेप मे गाधीजी की विचारधारा प्लेटो, रूसा टॉलस्टाय, दयानन्द और तिलक की भाँति वतमान सभ्यता तथा उसकी उपलब्धिया (आडम्वर, कुतक, सुख विलास) का प्रतिरोध करती है, वुद्ध, एक्विनास और काट की भाति वह राजनीति म नतिक शक्ति का समथन करती है, वै थम, स्पे सर, सीन तथा अय व्यक्तिवादियो की भाति सावजनिक कार्या पर अविश्वास करती है, आदशवादिया की भाति, विशेषकर ग्रीन की भाँति, वह सर्वोदय विचारो से भरपूर है परन्तु साथ ही अयाय का विरोध करने के लिए व्यक्ति के प्रतिरोध के अधिकार को सुरक्षित रखती है, स त पॉल, लूथर काट, थारो और वहुलवादिया की भाति, विशेषकर लास्की की भाँति, व्यक्ति की आत्मा के महत्त्व का वताती है तथा हिंसक और निरकुश प्रणालिया का विरोध करती है । वस्तुत गाधीवाद उन सब प्रणालिया का विरोध है जा शक्ति, वग सघप, शोपण, और साम्राज्यवाद को प्रोत्साहन देती हैं तथा उन सव प्रणालिया का समथन करती है जो व्यक्ति क महत्त्व का वताती ह तथा उसक विकास के लिए प्रयत्नशील है ।

गाधीजी की देन

राजनीतिक शास्त्र को गाधीजी की अत्यधिक देन है जिस निम्न रूप स स्पष्ट किया जा सकता है—

1 **विचारो का सश्लिष्ट स्वरूप (Synthetic character of his thought)**

गाधी दशन म सभी विचार सश्लिष्ट हैं—अथशास्त्र, समाज शास्त्र, राजनीति शास्त्र, धम, सभी एक दूसरे से सम्वद्ध है और नये विचारा स सामजस्य का द्वार इसमे सवदा खुला ह ।

2 **राजनीतिक क्षेत्र म नतिक आदशवाद (Ethical Idealism in politics)**

गाधीजी न राजनीति का आध्यात्मीकरण किया और राजनीतिक शब्द म नीति अर्थात धम पर वल दिया ।

3 **विवादो का निपटारा करने के लिए अहिंसक शस्त्र का निर्माण (Non violence as an instrument of resolving conflicts)**

यह गाधीजी की राजनीति शास्त्र को सवसे वडी देन है । सत्याग्रह का पूण

सिद्धान्त अहिंसा पर आधारित है। जहा अब तक विश्व के पास अन्याय का दूर करने का एक ही विकल्प युद्ध के रूप म था वह। गाधीजी ने युद्ध के विकल्प के रूप म सत्याग्रह के सिद्धान्त को प्रस्तुत किया। नतिक आधारा पर अन्याय का प्रतिरोध करने का व्यक्ति को अधिकार देने का श्रेय गाधीजी को है।

4 साधन साध्य की पवित्रता

इन चारो दनो (Contributions) की व्याख्या पहले की जा चुकी है इसलिए दुबारा लिखने स कोई लाभ नही।

गाधीजी के विचारो का मूल्याकन

गाधीजी के विचार नैतिक नियमो—सत्य, अहिंसा, प्रेम, सहानुभूति, सहयोग, इत्यादि—पर आधारित ह। इन नियमो को अस्वीकार करके ही गाधीजी के विचारो की आलोचना की जा सकती है। वास्तव म यह नियम इतने शाश्वत हैं कि इनके अनुकरण करने से ही विश्व म स्थायी शान्ति रह सकती है, तनाव का वातावरण समाप्त हो सकता है और घृणा को प्रेम म परिवर्तित किया जा सकता है। हिंसक उपायो द्वारा—आक्रमण, युद्ध, क्राति, उपद्रव, दमन—कभी भी स्थायी शान्ति स्थापित नही हो सकती। युद्ध न कवल युद्ध को ही जन्म दिया है, शाति को नही। यही कारण है कि गाधीजी के विचारो का समथन करन वाले उनके विचारा का न केवल सवकालिक बल्कि सवदशीय भी मानते है। मनोवज्ञानिक दृष्टि से ये विचार क्रान्तिकारी है क्याकि यह मानव की मूल भावनाओ म ही परिवतन लाना चाहत हैं, नतिक दृष्टि म ये विचार मानव सौहाद्र के जनक और प्रेरक होने के कारण श्रेष्ठ हैं, राजनीतिक दृष्टि स ये अधिक सरल, व्यापक और व्यावहारिक होने से सम्भव है, सामाजिक दृष्टि से य सुसस्कृत हैं, अराजकतावादी हान से अधिक मानवीय व सहयाग उत्पन्न करन वाले हैं, य समाजवाद के एस विस्तृत निर्दोष रूप हैं जिनम व्यक्ति और समाज, राष्ट्रीय और अन्तराष्ट्रीय हित सुरक्षित हैं, ये न कवल पूंजीपतिया की क्रूरता से जनता की सुरक्षा करत ह बल्कि उन्हें भी आध्यात्मिक और नतिक बनान का प्रयास करत हैं। इस तरह कोइ ऐसा क्षेत्र नही—व्यक्ति, समाज, राष्ट्र, अन्तर्राष्ट्रीयता—जहां गाधीजी क विचारा न सत्य, अहिंसा, प्रेम, सहयोग, सहानुभूति, बलिदान और त्याग का पाठ नही सिखाया।

दूसरी ओर, जा लखक गाधीजी क विचारा की आलाचना करत हैं व इन्हे अव्यावहारिक, अवज्ञानिक, एक पक्षीय, मौलिकता रहित, काल्पनिक, कार आदशवाद समाज का पीछे धकलन वाल, पूजीवाद क समथक का भेद का स्थायी रखन वाल, इत्यादि बतात है। गाधीजी क विचारा पर की गइ आलाचनाओ का निम्न भागा म बाटा जा सकता है

1 गांधीजी के विचार अवज्ञानिक हैं

गाधीजी का यह विश्वास है कि अहिंसक साधनो से समाज म व्यवस्था बनाये रखना सम्भव है। परन्तु दनिक तथा ऐतिहासिक अनुभव यह बताता है कि अहिंसक उपाय सवदा सफल नही होत और किसी न किसी रूप मे बुराइया को समाप्त करने के लिए हिंसक साधना की आवश्यकता होती है। स्वय गाधीजी न भी तो कहा है कि कोई सरकार ऐच्छिक सनिक समुदाया की आज्ञा नही दे सकती। परन्तु गाधीजी ने इस प्रश्न का उत्तर नही दिया कि यदि शान्ति को भग करने वाले ऐसे ऐच्छिक सनिक समुदायो का निर्माण हो जाय तो अहिंसक साधना से उन्ह कसे समाप्त किया जा सकता है। यदि मानव इतना शुद्ध पवित्र और यथार्थवादी होता जितना कि गाधीजी अपने सत्याग्रही राज्य मे उसकी कल्पना करते हैं तो पृथ्वी पर ईश्वरीय राज्य की स्थापना होती। परन्तु ऐसा राज्य न तो पृथ्वी पर विद्यमान रहा है और न वतमान म है। ऐसा राज्य काल्पनिक है व्यावहारिक नही।

2 राज्य सगठित हिंसा नहीं बल्कि भिन्न भिन्न मूल्यो का समाधान करने का यन्त्र है

गाधीजी न राज्य को "सगठित हिंसा" और "शक्ति" का प्रतीक माना है। गाधीजी यह भूल गय कि राज्य न केवल अच्छे जीवन के विकास म सहायक है बल्कि समाज म विद्यमान भिन्न भिन्न मूल्यो म समाधान का काय भी राज्य ही करता है। गाधीजी ने मानव प्रकृति क केवल अच्छे (सद) पहलू को ही देखा, वे उसकी स्वाथ और आन्तरिक भावनाओ का सही मूल्याकन नही कर सक।

3 गाधीजी के विचारो मे मौलिकता का अभाव है

गाधीवाद म भिन्न भिन्न विचारधाराओ का सम्मिश्रण है। इसमे व्यक्तिवादी अराजकतावादी, समाजवादी, सर्वोदयवादी, उदारवादी सभी विचारधाराओ के तत्त्व मिलत है। इन सभी को मिलान का परिणाम यह हुआ है कि वह किसी एक विचार-धारा का अनुयायी नही बन सका।

4 पूँजीवाद का समथन

गाधीजी न पूजीवाद का समाप्त करने के स्थान पर पूँजीपतियो को अपनी अतिरिक्त सम्पत्ति के ट्रस्टी बनने के लिए प्रोत्साहित किया। उन्होने वग विभाजन समाप्त करन पर बल नही दिया केवल वग भेदो को दूर करने के नतिक प्रयत्नो म लग रहे। परन्तु हृदय परिवतन का सिद्धान्त कहा तक आर्थिक असमानताओ और वग भेदो को दूर करने म सफल है इसकी प्रामाणिकता अभी तक सिद्ध नही हुई। यही कारण है कि गाधीजी का ट्रस्टीशिप के सिद्धान्त को स्वीकार करना तो दूर अभी यह बौद्धिक वातालाप का ही प्रश्न बना हुआ है।

5 मानव प्रकृति के एक पहलू पर ही बल देता है

गाधीवाद ने मानव प्रकृति के एक पहलू पर ही बल दिया है। जहाँ मानव

में सत्य, अहिंसा, प्रेम, सहयोग, सहानुभूति, सयम, इत्यादि के तत्त्व विद्यमान हैं वहाँ वह स्वार्थी, लालची ईर्ष्यालु भी है। इनके अतिरिक्त मानव में शोध की स्वाभाविक प्रवृत्ति है जिसे वह रोकना चाहता है। गाधीजी यह भूल जाते हैं कि व्यक्ति केवल अपने पडौसी के समान ही नहीं बनना चाहता, वह उससे आगे भी बढ़ना चाहता है। मानव में अन्वेषण, पर्यवेक्षण और परीक्षण की वृत्तियाँ भी विद्यमान हैं।

6 स्वतन्त्रता और समानता वर्तमान सभ्य समाज के लक्षण हैं

स्वतन्त्रता और समानता प्राचीन, सादा और सरल समाज के लक्षण नहीं बल्कि ये सभ्य समाज के लक्षण हैं। वर्तमान प्रजातान्त्रिक राज्यों में नागरिक की स्वतन्त्रता प्राचीन मध्ययुगीन राज्यों की अपेक्षा अधिक सुरक्षित एव स्वच्छ है।

7 गाधीजी का समानता का सिद्धान्त समाज को निर्धन बनाता है

गाधीजी की समानता का सिद्धान्त समाज को निर्धन बनाता है। वह व्यक्ति को सयम और भौतिक इच्छाओं को सीमित रखना सिखाता है। ट्रस्टीशिप का सिद्धान्त परोपकार के लिए भले ही उपयोगी हो, विकास, प्रगति और मानव उपक्रम के लिए उपयोगी नहीं। मानव केवल आध्यात्मिक विकास ही नहीं चाहता, वह आर्थिक और भौतिक विकास भी चाहता है। यदि ऐसा नहीं होता तो अब तक जो विकास हुआ है वह नहीं हो पाता। इतिहास भी इस बात का साक्षी है कि सरल और नैतिक सस्थाओं को स्थापित करने के सभी प्रयास असफल हुए हैं क्योंकि ये न केवल अनुत्पादक होती हैं बल्कि इनमें सामाजिक अनुशासन और सादगी पर इतना अधिक बल दिया जाता है कि साधारण मानव के लिए जीवन असहाय हो जाता है। गाधीजी के ग्राम पचायतों के सघ का स्वप्न भी साकार नहीं हुआ। भारत में पचायती राज तो स्थापित हुआ परन्तु न तो वे स्वावलम्बी हैं न वित्तीय दृष्टि से सुदृढ़, उनमें जीवन न सादा है, न सरल और न सयत। इसके अतिरिक्त भारत के ग्रामों में तो भौतिक सभ्यता की ही अधिक होड़ नजर आती है।

क्या गाधीजी दार्शनिक अराजकतावादी थे? (Was Gandhi a Philosophical Anarchist)?

गाधीजी के विचारों में जो हमें इस प्रकार के शब्द मिलते हैं 'शान्त मुक्त अराजकता", विकेन्द्रित राजनीतिक सत्ता', 'विशुद्ध नैतिक शक्ति पर आधारित लोगों की सम्प्रभुता' तथा अन्य इसी प्रकार के शब्द जो राज्य को सस्था के रूप में अस्वीकार करते हैं उनसे कई लेखकों ने यह मान लिया है कि गाधीजी के राजनीतिक विचारों का मूल केन्द्र दार्शनिक अराजकतावाद है। इन लेखकों में मुख्य हैं गोपीनाथ धवन, निर्मल चन्द्र भट्टाचार्य, धीरेन्द्रनाथ दास, एम० पी० मजुमदार आदि। एच० टावटर, टी० के० यूनियन, ज० बा० वाल्टर, जवाहर लाल नेहरू इत्यादि कुछ ऐसे भी विचारक हैं जिन्होंने गाधीजी को धार्मिक अराजकतावादी और दार

स्टॉय की भाति शातिवादी अराजकतावादी भी कहा है। डा० विनाय सरकार के शब्दो मे, "जहाँ तक राज्य की भत्सना और अहिंसा की वकालत का प्रश्न है गाधीजी टालस्टाय के शाब्दिक अनुवादक है।'[1]

जो लेखक गाधीजी को अराजकतावादी मानने से इन्कार करते हैं उनमे से मुख्य है पी० स्प्राट डा० पाल एफ० पॉवर, हरिदास टी० मजूमदार, जोन वी० बन्दुरा, बिमन विहारी मजूमदार, इत्यादि। इन लेखको का विचार है कि यद्यपि गाधीजी पर टालस्टॉय का अत्यधिक प्रभाव था परन्तु वह दार्शनिक अराजकतावादी नही थे। डा० पॉवर के शब्दो मे, "टालस्टाय के विपरीत गाधीजी ने राज्य विहीन समाज का समर्थन कालिक विश्व के लिए नही किया था। यदि वह ऐसा करते तो वह भारत की स्वतन्त्रता के लिए लड नही सकते थे। राज्य की नैतिक प्रकृति के बारे मे उनके विचार मैक्स वबर के इन विचारो से मिलते है कि *'राज्य कोई ऐसी सस्था नही जिसका आन्तरिक मूल्य है, यह तो एक तकनीकी यन्त्र' है*[2] डा० बान्दुरा के शब्दो म, "गाधीजी और अराजकतावादियो के आदश तो सामान्य हैं परन्तु जहाँ गाधीजी राज्य के सगठन और नियन्त्रण को कुछ हद तक स्वीकार करते हैं अराजकतावादी उसे बिल्कुल स्वीकार नही करते।" डा० बान्दुरा का तो यह भी मत है कि "गाधी आदश मे दबाव के तत्त्व को रखा गया है'[3] यद्यपि यह दबाव का तत्त्व नैतिक है।

यह ठीक है कि गाधीजी आदश रूप म राज्य को अस्वीकार करते है, यह भी ठीक है कि उन्होने नैतिक मूल्यो पर अत्यधिक बल दिया है, यह भी ठीक है कि उन्होने वतमान सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक व्यवस्था को अन्यायिक बता कर उसकी भत्सना की है तथा केन्द्रीयकरण का भी विरोध किया है परन्तु गाधीजी ने स्वय कभी राज्य को नष्ट करने की बात नही की वल्कि मानव दुबलताओ को स्वीकार करते हुए उन्होने राज्य को आवश्यक बुराई और एक रियायत के रूप म स्वीकार किया है। जहाँ अराजकतावादी राज्य से किसी प्रकार का समझौता नही करते वहाँ गाधीजी व्यावहारिक होने म उससे समझौता कर लेते है, जहाँ अराजकतावादी राजनीति विरोधी हैं वहाँ गाधीजी पूणत राजनीतिक हैं। इतना ही नही, कुछ हालातो म, सम्पत्ति को सावजनिक कल्याण के लिए जब्त (confiscation) करने की बात करके तो वह समाजवादियो के निकट आ

---

1 Sarkar, Benoy Kumar Political Philosophies since 1905, p 142

2 Power Dr Paul F Gandhi on World Affairs, pp 46 47

3 Bondurant, Joan V Conquest of Violence The Gandhian Philosophy of Conflict, p 7

गये हैं। "राज्य के बारे में गाधीजी की विचारधारा न तो पूर्णत अराजकतावादियो की तरह है और न साम्यवादियो की तरह। राजनीतिक और आर्थिक विकेन्द्रीकरण के उद्देश्य म तो वह अराजकतावादियो के निकट है और लाखो श्रमिको के हितो की दृष्टि से, जिनके हितो को राज्य मे प्राथमिकता मिलनी चाहिए, वह साम्यवादियो के निकट है।"[1] बुद्धदेवा भट्टाचार्य के शब्दो म, 'गाधी का विशिष्ट गुण यह है कि वह स्वप्न भी ले सकते थे और काय भी कर सकते थे।"[2]

EXERCISES

1 गाधीवाद क्या है ? आलोचनात्मक रूप से व्याख्या कीजिए।

2 गाधीवाद के प्रमुख सिद्धान्त क्या ह ? क्या यह राज्य को कम से कम काय सौंपना चाहता है ?

3 गाधीजी को राजनीतिक दार्शनिक मानना कहा तक उचित है ? राजनीति को उनकी क्या देन है ?

4 गाधीवाद के स्रोतो पर विस्तृत लेख लिखिए।

5 "गाधीजी ने राजनीति का आध्यात्मीकरण किया", "धम को उदार बनाया', व्याख्या कीजिए।

6 'गाधीजी की राजनीति धम और नतिकता स ओत प्रोत थी"। व्याख्या कीजिए।

7 गाधीजी के अहिंसात्मक राज्य के क्या लक्षण ह, क्या ऐसा अहिंसक राज्य सम्भव है ?

8 'गाधीजी व्यावहारिक आदशवादी थे'। व्याख्या कीजिए।

9 गाधीजी ने सामाजिक नियन्त्रण और व्यक्तिगत स्वतन्त्रता म किस प्रकार समन्वय किया है।

10 "गाधीवाद विरोध का सिद्धान्त है" क्या आप इस कथन से सहमत हैं ? कारण लिखिए।

11 सत्याग्रह स आप क्या समझते हैं ? क्या यह विरोध करने का सवैधानिक तरीका है ?

12 सत्याग्रह क भिन्न भिन्न स्वरूपो पर प्रकाश डालिए।

---

1 Bose Nirmal Kumar *Studies in Gandhism* p 85 86

2 'The distinctive merit of Gandhi lies in the fact that he could dream as well as act'—Bhattacharyya, Buddhadeva Evolution of the Political Philosophy of Gandhi, p 482

13 गाधीजी के अहिंसा पर विचारो की आलोचनात्मक व्यारया कीजिये ।
14 "गाधीवाद हिंसा रहित साम्यवाद है और साम्यवाद हिंसा रहित गाधीवाद है" । क्या आप इस कथन से सहमत हैं ? कारण लिखिये ।
15 गाधीजी और मार्क्स के विचारो मे समानताओ और असमानताओ का वणन कीजिये ।
16 क्या गाधीजी दाशनिक अराजकतावादी थे ?
17 "गाधीवाद मानवतावाद है" । व्याख्या कीजिय ।
18 गाधीजी किस दृष्टि से समाजवादी और किस दृष्टि से समाजवादी नही थे ?
19 गाधीजी के आर्थिक विचारो की आलोचनात्मक व्याख्या कीजिए ।
20 ट्रस्टीशिप का सिद्धान्त अव्यावहारिक एव अवैज्ञानिक है । व्याख्या कीजिए ।

' \

13 सर्वोदय
(Sarvodaya)

परिचय

सर्वोदय की कल्पना हमारे प्राचीन ग्रन्थो मे मिलती है जसे "सर्वे भवन्तु सुखिन ", अर्थात सब सुखी हो, कोइ दु खी न हो। यहा 'सब' का अभिप्राय केवल मानव समाज से ही नही है बल्कि इसमे प्राणिमात्र का भी समावेश है जिसको मानव ने अपने कुटुम्ब का हिस्सा मान लिया है जसे गाय, घोडा आदि। 'श नो अस्तु द्विपदा श नो अस्तु चतुष्पदा' अर्थात् न केवल दो पाव वालो (मानवो) का बल्कि चार पाव वालो (पशुओ) का भी भला हो।

गाधीजी को सर्वोदय की प्रेरणा सव प्रथम रस्किन की पुस्तक 'अन्टु दिस लास्ट (Unto This Last) से प्राप्त हुई। उन्होने इस पुस्तक का अनुवाद ही सर्वोदय किया। उनके विचारो का प्रचार करने वाली जो मासिक पत्रिका निकाली गयी उसका नाम भी सर्वोदय रखा गया।

गाधीजी के सर्वोदय समाज का स्वप्न "सवभूत हिते रत" पर आधारित है। इस समाज मे सत्य, अहिसा और प्रेम की प्रतिष्ठा की कल्पना है। इसमे शोषण, अन्याय और विषमता का कोइ स्थान नही। इसमे सघर्ष के स्थान पर सहयोग, ईर्षा के स्थान पर प्रेम और प्रतिद्वन्द्विता के स्थान पर सहयोग और सद्भावना की कल्पना है। यह समाज राजनीतिक और आर्थिक विकेन्द्रीकरण पर आधारित है। इसमे प्रत्येक ग्राम के स्वावलम्बी होने की कल्पना है। इसमे मानव आवश्यकताये बहुत कम हैं तथा जन साधारण मे अनुशासन, सयम और अच्छे चरित्र की कल्पना है। इसमे व्यक्ति वास्तविक स्वतन्त्रता और समानता का उपभोग करता है। आर्थिक व्यवस्था मे इसमे गृह उद्योगो ग्रामोद्योगो और कुटीर उद्योगो का विशेष स्थान है। शारीरिक श्रम इस समाज का स्वैच्छिक नियम है। इस समाज मे राजनीति के स्थान पर लोक नीति पर बल दिया जाता है।

गाधीजी ने सर्वोदय दशन को ज म अवश्य दिया परन्तु उनके जीवन काल मे यह स्वप्न पूरा न हो सका। विनोवाजी आज गाधीजी के उसी स्वप्न को भूदान, ग्रामदान, सम्पत्तिदान, श्रमदान, प्रेमदान, बुद्धिदान, तथा जीवन दान के रूप मे विकसित कर रहे है। ये सब प्रक्रियायें, अहिंसक साधनो द्वारा मानव का हृदय परिवतन कर, समाज मे विद्यमान आर्थिक, राजनीतिक तथा सामाजिक विषमताओ का समाधान कर सर्वोदय समाज की स्थापना करना चाहती हैं तथा गाधीजी के दृस्टीशिप सिद्धान्त को व्यावहारिक रूप देकर ग्राम राज्य के स्वप्न को पूरा करना चाहती हैं तथा भारतीय कृपक को आर्थिक दासता की बेडियो से मुक्ति दिलाना चाहती हैं। आर० पी० मसानी ने ठीक ही कहा है कि यह "समाज के पुनरुत्थान के लिए एक अपूव मानव प्रयास है।" इन सब प्रक्रियाओ की व्याख्या करने से पहले सर्वोदय के अथ और स्वरूप को समझ लेना आवश्यक है।

सर्वोदय का अर्थ तथा स्वरूप

सर्वोदय एक सयुक्त शब्द है जो सब + उदय दो शब्दो को मिलाकर बना है। सब का अभिप्राय है सब (समस्त) और उदय का अथ है विकास या कल्याण। इस तरह सर्वोदय का अथ है सब का कल्याण। सबका जीवन सम्पन्न हो, सबका उदय हो, सबका विकास तथा उन्नति हो, सब सुखी हो, सबके हित की सिद्धि हो सबकी रक्षा हो केवल बहुमत या अल्पमत की रक्षा नही, प्रत्यक व्यक्ति आनन्द पूवक जीवन यापन करे, यही सर्वोदय का आशय है और इससे ही सर्वोदय की सन्तुष्टि होती है।

सर्वोदय की दृष्टि मे जीवन एक विद्या है, एक कला है। यह ऐसी विद्या है जिसमे सबके हित की शिक्षा दी जाती है, यह एक ऐसी कला है जिसम प्राणी मात्र के लिए सहानुभूति का माग दिखाया जाता है। यही कारण है कि सर्वोदय दशन बन्थम के "अधिकतम व्यक्तियो के अधिकतम सुख" के सिद्धान्त और हक्सले के "जिओ और जीने दो' के सिद्धान्त तक अपने आपको सीमित नही रखता। सर्वोदय का यह विश्वास है कि एक के अनिष्ट करने की भावना ही समाज म विरोध सघर्ष, और ध्वस को ज म देती है। अन्त मे इसका परिणाम यह होता है कि बलवान का शासन स्थापित हो जाता है। इसलिए सर्वोदय ऐसे समाज की स्थापना करना चाहता है जिसमे न केवल बलवान बल्कि दुवल भी जीवित रह सके। ऐसे समाज की स्थापना तभी सम्भव है जब सबके, 100 मे से 99 का नही, 100 मे से 100 के ही, हितो का ध्यान रखा जाये। सर्वोदय मे सबके कल्याण की भावना का यही अथ है। विनोबा जी के शब्दो मे, "वह (सर्वोदय) थोडे से व्यक्तियो का उत्थान नही चाहता, बहुत का भी नही। हम अधिकतम व्यक्तियो के अधिकतम सुख से सन्तुष्ट नही हैं। हम तो एक और सबके, ऊँचे और नीचे लोगो के, सबलो और

निर्बलो के, बुद्धिमानो और मूर्खो के कल्याण से ही सन्तुष्ट हो सकते हैं। सर्वोदय शब्द से यह उदात्त एव सवसमावेशी भावना अभिव्यक्त होती है।"[1]

सर्वोदय का साध्य है "मनुष्यो के सहजीवन को स्थापित करना" अर्थात् सब लोग जियें और एक दूसरे के साथ मिल कर जियें। "दूसरो को जिलाने के लिए तुम जिओ।" तुम मुझे जिलाने के लिए जिओ मैं तुम्हे जिलाने के लिऐ जिऊँ। दूसरे शब्दो मे, हर एक व्यक्ति दूसरे की फिक्र रखे और अपनी फिक्र भी ऐसी न रखे कि जिससे दूसरो को कठिनाई या कष्ट हो। दूसरे के हितो की सुरक्षा तथा नि स्वार्थ सेवा ही सर्वोदय है।

सर्वोदय का विरोध किसी के साथ नही। परन्तु इसका उन सबसे विरोध है जो यह मानते हैं कि उदय केवल अधिकतम का हो, सबका न हो या जो कहते हैं कि अल्पमत वालो या विशिष्ट वर्गों का ही उदय हो। यह उन विचारधाराओ का भी विरोध करता है जो कुछ लोगो या जातियो को श्रेष्ठ मानती हैं तथा सत्ता को उन्ही के हाथो म केन्द्रित करना चाहती हैं। सर्वोदय इन विचारधाराओ के विपरीत है। यह सबको समान मानता है, जाति, भाषा, लिंग प्रदेश किसी आधार पर भिन्नता स्वीकार नही करता। यह इस बात मे विश्वास करता है कि श्रमिक के काय की उपयोगिता समाज को उतनी ही है जितनी कि बौद्धिक काय करने वाले या भगी का काय करने वालो की है।

सर्वोदय का आदश है अद्वत और उसकी नीति है समन्वय। मानव जन्य विषमता का वह निराकरण करना चाहता है और प्राकृतिक विषमता को घटाना चाहता है। यह अहम्‌वाद और परमार्थवाद म समन्वय (मेल) करना चाहता है।

सर्वोदय समाज मे एक क्रान्ति लाना चाहता है परन्तु यह क्रान्ति साम्यवादियो की तरह हिंसा के माग को नही अपनाती। इसके अस्त्र प्रेम, त्याग और स्व-बलिदान हैं। इसके शस्त्रागार म सत्य और अहिंसा के शस्त्र हैं। इन शस्त्रो द्वारा सर्वोदय समाज मे निरपेक्ष, शाश्वत और व्यापक मूल्यो की स्थापना होगी और समाज वग विहीन, जाति विहीन तथा शासन विहीन बनेगा।

सर्वोदय मानवीय मूल्यो म भी परिवतन चाहता है। वह घृणा के स्थान पर प्रेम, असहयोग के स्थान पर सहयोग, प्रतिद्वन्द्विता के स्थान पर सद्भावना, स्वाथ और स्पर्धा के स्थान पर त्याग और बलिदान का शासन चाहता है। यह वास्तविक क्रान्ति खून का बदला खून से ले कर नहीं बल्कि शत्रु को गले लगाकर लाना चाहता है। वह निरपक्ष नि स्वार्थ व्रत क पालन म विश्वास करता है तथा पडोसी के लिए जीना और पडोसी के लिए मरना सिखाता है। वह मानव मात्र स प्रेम

1 *Sarvodaya Its Principle and Programme* p 36 Reprint of an article by Vinoba in Harijan dt 26 12 1948

दूर (श्रमिक) का होता है और सम्पत्ति मालिक की हो जाती है। सर्वोदय मार्क्स के इस सिद्धान्त को भी नहीं मानता कि "मेहनत हर एक की, सम्पत्ति सब की" क्योंकि इससे अपनत्व की भावना पैदा नहीं होती। सर्वोदय समाजवाद के इस सूत्र को भी स्वीकार नहीं करता कि "जितनी शक्ति उतना काम, जितनी आवश्यकता उतना दाम।" सर्वोदय तो इस बात में विश्वास करता है कि "मेहनत इन्सान की दौलत भगवान् की"। "तेन त्यक्तेन भुंजीथा" अर्थात् मेहनत करना हमारा कर्तव्य है, फल समाज का। सर्वोदय तो इस बात पर भी विश्वास करता है कि अपने शारीरिक श्रम द्वारा उत्पन्न दौलत पर भी हमारा अधिकार नहीं, उस पर भी समाज का ही अधिकार है।

सर्वोदय में विषमताओं को दूर करना ही प्रगति है। इसका अर्थ यह है कि दूसरों की अक्षमता का निराकरण किया जाय। दूसरे शब्दों में, सर्वोदय अक्षम को सक्षम बनाने में विश्वास करता है (Fitting the unfit to survive)। दूसरों को निज का सा बनाना, अपना बनाना, अभेद की—अद्वैत की—स्थापना करना, ही सर्वोदय के समाजशास्त्र का सिद्धान्त है।

सर्वोदय समाजवाद का सर्वोत्तम स्वरूप है क्योंकि यही एक ऐसी विचारधारा है जिसमें सबके उत्थान और कल्याण की बात कही गयी है। जहाँ मार्क्सवाद या साम्यवाद समाज के एक वर्ग (पूँजीपति वर्ग) का पतन कर दूसरे वर्ग (सर्वहारा वर्ग) के अधिनायकवाद की बात करता है वहाँ सर्वोदय किसी के अधिनायकवाद की कल्पना नहीं करता। इसमें स्वयं का स्वयं पर शासन है किसी दूसरे का नहीं। सर्वोदय में जहाँ निर्धन का उत्थान है वहाँ धनिक का उत्थान भी है। यह धनिक में ट्रस्टीशिप और त्याग की भावना पैदा कर उसका आध्यात्मिक उत्थान करता है और निर्धन का भौतिक उत्थान कर उसका उद्धार करता है। इस तरह सर्वोदय वर्तमान समाजवाद की शाखाओं मार्क्सवाद, साम्यवाद, श्रम संघवाद, श्रेणी समाजवाद—से सर्वथा भिन्न, परन्तु सर्वोत्तम, समाजवाद है। यह कहना गलत है कि समाजवाद लाने के लिए हिंसा, वर्ग संघर्ष और अधिनायकवाद में विश्वास करना अनिवार्य है। समाजवाद अहिंसा सहयोग, सद्भावना, त्याग और बलिदान से भी आ सकता है और सर्वोदय उसी दिशा की ओर एक प्रयास है। फेबियनवाद भी सर्वोदय के समान नहीं क्योंकि वह व्यक्ति को सर्वोदय की भाँति समाज के लिए सर्वस्व त्यागने के लिए नहीं कहता। इसके अतिरिक्त जहाँ पश्चिमी समाजवाद भौतिक और आर्थिक विकास पर बल देता है वहाँ सर्वोदय आध्यात्मिक विकास पर बल देता है।

भूदान—अर्थ तथा विकास

भूदान का अर्थ है भूमि का दान। यह दान उनके लिए है जो भूमिहीन हैं, दरिद्र हैं, जिनके पास जीविकोपार्जन के अन्य साधन नहीं और जो खेती करना जानते हैं तथा खेती करने के इच्छुक हैं और जो दूसरे के खेतों पर मजदूरी करने के लिए मजबूर हैं।

भूदान केवल भूमि को एकत्रित करने तथा उसके वितरण तक ही सीमित नहीं। इसका उद्देश्य तो जीवन में एक क्रान्ति लाना है ताकि समाज में सुख केवल थोड़े से भाग्यवान लोगों के लिए ही न हो बल्कि पूर्ण समाज के लोगों के लिए हो। जयप्रकाश नारायण ने बहुत सुन्दर शब्दों में कहा है कि "यह आर्थिक और सामाजिक क्रान्ति लाने का गांधीवादी मार्ग है, यह नवीन जीवन का सिद्धान्त और व्यवहार है, यह एक नवीन सामाजिक दर्शन है, यह एक नवीन मानवता तथा एक नवीन सभ्यता का सूत्रपात है।"[1] *आर० पी० मसानी के शब्दों में यह आन्दोलन* "कल्पना में विलक्षण रूप से मौलिक, उद्देश्य में क्रान्तिकारी और कार्य पद्धति में अहिंसात्मक, शान्तिपूर्ण, प्रभावशाली एवं अद्वितीय है" और 'जनता की बौद्धिक एवं आत्म शक्ति के आधार पर समाज के नव निर्माण के लिए इतिहास में सबसे महान है एवं शान्तिपूर्ण क्रान्ति के रूप में सफलता प्राप्त करने के इसमें पर्याप्त लक्षण विद्यमान हैं।'[2]

भूदान उत्पादन के साधन (भूमि) को उत्पादक (कृषक जो स्वयं खेती करता है) के हाथों में पहुँचाना चाहता है, यह अर्थ की प्रतिष्ठा को समाप्त करना चाहता है। यह उस स्वामित्व की भावना पर कुठाराघात करता है जिसके द्वारा समाज में विषमतायें, असमानतायें तथा शोषण जैसे दुराचार पनपते हैं। यह मालिकाना प्रवृत्ति का ही अन्त कर देना चाहता है। यह स्वामित्व की भावना को ही समाप्त कर देना चाहता है। इसके अतिरिक्त यह उत्पादक श्रम की प्रतिष्ठा स्थापित करना चाहता है। परन्तु यह इन सब परिवर्तनों को अहिंसक साधनों द्वारा हृदय परिवर्तन के सिद्धान्त के आधार पर लाना चाहता है। इस तरह जहाँ, एक ओर, यह आर्थिक आन्दोलन के साथ राजनीतिक एवं सामाजिक आन्दोलन है वहाँ, दूसरी ओर, यह नैतिक, हृदय परिवर्तन और आत्मशुद्धि का भी आन्दोलन है।

भूदान का आधार यह है कि जिस प्रकार वायु, जल, प्रकाश, गगन आदि भगवान् की देन हैं उसी प्रकार समस्त भूमि भी गोपाल (भगवान) की है क्योंकि वही उसका स्रष्टा है। और जैसे जल, वायु, प्रकाश और गगन का उपभोग व्यक्ति अपनी आवश्यकतानुसार करता है उसी प्रकार भूमि पर भी प्रत्येक व्यक्ति का शारीरिक श्रम द्वारा खेती करने तथा उत्पादन का आवश्यकतानुकूल उपभोग करने का अधिकार है। भूमि का मालिक मानव नहीं भगवान है क्योंकि भगवान ही भूमि को पैदा करता है व्यक्ति नहीं। जब भगवान् अपनी अन्य चीजों (जल, वायु प्रकाश, गगन) का असमान वितरण नहीं करता तो भूमि के असमान वितरण की उसकी इच्छा नहीं। भगवान् ने तो सबके समान उपभोग के लिए "पंचभूत" दान में दिये हैं जिनमें से भूमि एक है।

---

1 Narayan, Jayaprakash *A Picture of Sarvodaya Social Order*, p 11

2 Masani R P *The Five Gifts*, p 17

भूमि की समस्या को लेकर हैदराबाद (भारत) राज्य म तेलगाना नामक स्थान पर साम्यवादियों[1] द्वारा हिंसात्मक आन्दोलन चलाया जा रहा था। भू स्वामियो की हत्या तथा भूमि के जबरदस्ती छीने जान की घटनाये सामान्य हो रही थी। वातावरण पूर्णतया भयपूर्ण था। लोगो का जीवन असहाय हो रहा था। इस समय (1951 मे) विनोबा जी शिवराम पल्ली सर्वोदय सम्मेलन म भाग लेने के लिए तेलगाना आये हुए थे। अप्रल 18 1951 को वह नलगुडा जिले के पोचमपल्ली ग्राम मे थे। वहा निधन हरिजनो की अवस्था दयनीय थी। उनके पास जीविकोपार्जन के लिए भूमि नही थी। उन्होंने विनोबाजी से निवेदन किया कि यदि उन्हे 80 एकड भूमि प्राप्त हो जाये तो वे अपना जीविकोपार्जन कर सकेंगे। गाव का ही एक भूमिपति, श्री रामचन्द्र रेड्डी, 100 एकड भूमि दान म देने के लिए तयार हो गया। विनोबा जी ने भूमि को दान म प्राप्त किया और उसे भूमिहीन हरिजनो को दे दिया। इस तरह पोचमपल्ली ग्राम मे अप्रल 18, 1951 को श्री रामचन्द्र रेड्डी द्वारा 100 एकड भूमि का दान देकर एक क्रान्तिकारी आन्दोलन का आरम्भ हुआ जिसे भूदान आन्दोलन कहते है। विनोबाजी ने इसे भूदान यज्ञ की सज्ञा दी। जहा लोग भूमि के एक गज टुकडे के लिए एक दूसरे की हत्या कर देते हैं वहा एक सौ एकड भूमि का दान मिलना स्वय मे एक शान्तिपूर्ण रक्तहीन क्रान्ति थी। यह मानव के सामाजिक जीवन की अद्भुत घटना थी।

पोचमपल्ली की घटना मे विनोबाजी को भूमि समस्या के समाधान की झलक नजर आयी और उन्होंने इस सन्देश को लेकर तेलगाना तथा अन्य राज्यों[2] म पैदल भ्रमण शुरू किया। यद्यपि निर्धारित लक्ष्य की प्राप्ति नही हुई है फिर भी जो इस आन्दोलन को सफलता मिली है वह अद्वितीय है।

भूदान आन्दोलन के दौरान न केवल भूमि ही दान म प्राप्त हुई बल्कि समस्त ग्राम भी दान मे प्राप्त हुने हैं। ग्रामदान भूदान आन्दोलन की चरम परिणति है और अपने उद्देश्य की प्राप्ति (स्वामित्व भावना का विसर्जन तथा ग्राम का स्वावलम्बन बनना) का सबसे बडा चिन्ह है। समग्र ग्राम के दान का अभिप्राय है कि ग्राम के सभी लोगो ने—न केवल भूमिपतियो ने बल्कि ग्राम के छोटे बडे सभी लोगो ने—भूमि का दान कर भूमि ग्राम को अर्पित कर दो। इससे प्रत्यक व्यक्ति ने स्वामित्व की भावना का त्याग कर दिया। व्यक्तिगत स्वामित्व समाप्त होने पर ग्राम एक परिवार का रूप धारण कर लेता है और ग्राम परिवार की सृष्टि होती है।

---

1 नलगुण्डा और वारगल साम्यवादियो के केन्द्र थे।

2 सेवापुरी सर्वोदय सम्मेलन म जो अप्रल 1952 म सम्पन्न हुआ यह निश्चय किया गया कि भूदान आन्दोलन को सारे देश म चलाया जाय।

विनोवाजी ने भूदान आन्दोलन का "धमचक्र प्रवतन" की सज्ञा दी है। इसके द्वारा सामाजिक क्षेत्र म एक नई विचारधारा को प्रतिष्ठित किया जा रहा है। इस आन्दोलन के द्वारा इस विचारधारा का विस्तार किया जा रहा है कि असग्रह और अपरिग्रह केवल ऋषियो या स यासियो के लिए ही नही है बल्कि सब साधारण लोग भी इसका पालन कर सकते हैं। इस तरह भूदान आन्दोलन अहिंसक साधनो से त्याग और सद्भावना जाग्रत कर एक सामाजिक क्रान्ति ला रहा है। एक ओर, भूदान अमीरो के अहकार, लोभ, और स्वाथ को कम कर रहा है तो, दूसरी ओर, गरीबो की निराशा की भावना को दूर कर रहा है। यह, इस तरह, वग सघष को शिथिल कर रहा है।

भूदान क्रान्ति का उद्देश्य याय और प्रेम के शासन को स्थापित करना है ताकि समाज म वतमान बुराइयो—शोषण, लोभ, स्वाथ—का उन्मूलन हो जाय।

भूदान गाधीजी के सत्याग्रह आन्दोलन का ही विकसित रूप है। यह सत्य और अहिंसा का ऐसा क्रान्तिकारी पहलू है जो समाज मे आर्थिक और सामाजिक अन्याय को शान्तिमय, सद्भावना और सहयोग द्वारा दूर करना चाहता है।

भूदान एक नैतिक आन्दोलन भी है। यह मानव जीवन की एकता मे विश्वास करता है तथा स्वाथ के स्थान पर परमाथ पर बल देता है। यह मानव का हृदय परिवतन करना चाहता है। यह शक्ति प्रयोग द्वारा या हिंसा द्वारा भूमि की समस्या का समाधान नही करना चाहता क्योकि हिंसा मानवता की हत्या कर देती है। भूदान मानव की अह वृत्ति को बदलना चाहता है। यह उसके सम्पत्ति के प्रति मोह को ही बदल देना चाहता है ताकि उसका मन शुद्ध हो।

भूदान को यज्ञ की सज्ञा भी दी गई है। ताकि वह व्यक्ति म यह भाव पदा कर सके कि यज्ञ मे सबका अपना सब कुछ अर्पित कर देना है क्योकि सब कुछ, भूमि सम्पत्ति, बुद्धि, श्रम इत्यादि, ईश्वर का है। व्यक्ति को वही महूप स्वीकार करना है जो उसे प्रसाद रूप मे मिले।

भूदान *जीवन की नई दिशा दिखाता है। भूमिपतियो को यह भूदान की शिक्षा* देता है, सम्पत्तिवानो को यह सम्पत्तिदान की शिक्षा देता है श्रमिको तथा मजदूरो को यह श्रमदान की शिक्षा देता है, बुद्धिजीवियो को यह बुद्धिदान की शिक्षा देता है। सक्षेप मे यह सबको इस बात की शिक्षा देता है कि जो कुछ हमारे पास है उसका उपभोग हम मिल कर करें क्योकि वह किसी व्यक्ति विशेष की उत्पत्ति नही समाज की उत्पत्ति है। इसलिए उसका प्रयोग भी समाज कल्याण के लिए होना चाहिए।

भूदान एक राजनीतिक आन्दोलन भी है क्योकि वह व्यक्ति और समाज की राजनीति मे क्रान्तिकारी परिवतन का द्योतक है। भूदान की राजनीति मे राजनीति

नही लोक नीति है। वह राजनीतिक दलों, चुनावो, सत्ता या सरकार की राजनीति मे विश्वास नही करता क्योकि ये सब बहुमत के शासन पर आधारित हैं। भूदान ऐसे प्रजातन्त्र का निर्माण करना चाहता है जिसमे किसी प्रकार के दल न हो, जहाँ लोग अपना निर्माण स्वय कर सकते हैं। वह ऐसी जन शक्ति का निर्माण करना चाहता है जहाँ लोग अपने कार्यों को स्वय करने की क्षमता रखते हो, जो शासन पर निर्भर न रह कर स्वय पर निर्भर रहते हो। इस तरह भूदान गावो के गणराज्य (Village Republic) की गाधीवादी कल्पना को साथक बनाने का प्रयास है।

भूदान रचनात्मक आन्दोलन भी है जिसकी तुलना उस बहते हुए दरिया से की गई है जो नाव को जीवन तथा गति प्रदान करता है।

भूदान राजनीतिक और आर्थिक सत्ता का विकेन्द्रीकरण कर ग्राम सभाओ, गृह उद्योगो, ग्रामोद्योगो, कुटीर उद्योगो को गति देता है तथा रचनात्मक कार्यों को प्रोत्साहन देता है। गाधीजी के प्राइवेट सेक्रेटरी श्री प्यारे लाल के शब्दो मे "भूदान अहिंसक क्रान्ति का शिखर है जिसका प्रभाव बहुत दूर तक है। यह मानव के परिवर्तन के साथ समाज को भी बदलना चाहता है।'[1] श्री जय प्रकाश नारायण के शब्दो मे, "भूदान परिवर्तन का एक बडा जन आन्दोलन है। यह मानव मूल्यो और विचारो के लिए नया वातावरण पैदा करता है। यह मानव मस्तिष्क और मानव सम्बन्धो मे तत्काल और शाश्वत् क्रान्ति लाता है। यह शोषण और असमान प्रणाली पर न केवल आक्रमण करता है बल्कि उसे शुद्ध भी करता है। यह मानव को शिक्षा देता है कि जो कुछ उसके पास है उसका उपभोग साथियो मे बाँट कर करे।'[2] इस तरह भूदान नये मानव नये समाज और नई मानवता का द्योतक है।

क्या कानून भूमि की समस्या का समाधान नही कर सकता ? कानून अवश्य ही भूमि की समस्या का समाधान कर सकता है और कई देशो मे विशेषकर रूस और चीन मे, ऐसा हुआ भी है। परन्तु जिस दृष्टि और जिस सद्भाव से भूदान भूमि की समस्या का समाधान करना चाहता है वह कानून द्वारा सम्भव नही। कानून नैतिकता और मानवता पैदा नही कर सकता, वह हृदय परिवर्तन नही कर सकता, वह स्वार्थ और लालच की भावना को समाप्त नही कर सकता। श्री जय प्रकाश नारायण ने बहुत ही सुन्दर शब्दो मे कहा है कि शक्ति (कानून) विशिष्ट हितो को नष्ट कर सकती है परन्तु यह व्यक्तियो को नही बदल सकती। यह उनके धन को छीन सकती है परन्तु उन्हे ट्रस्टी के रूप मे कम करने के लिए विवश नही कर सकती।

परन्तु इसका यह अभिप्राय नही कि विनोबाजी या उनके अनुयायी भूमि की

---

1 Pyare Lal Quoted by Jayaprakash Narayan, *Ibid*, p 40

2 Narayan, Jayaprakash, *Ibid*, p 41

समस्या का समाधान कानून द्वारा करना ही नहीं चाहते। विनोबाजी कहते हैं कि कानून तो पीछे आयेगा ही, (परन्तु) मेरे काय से जो वातावरण बनेगा उसकी सहायता के लिए सरकार को निश्चित रूप से कानून बनाना होगा, ऐसा न होने पर सरकार समाप्त हो जायगी, दूसरी सरकार आयगी।"

स्पष्ट है कि भूदान भूमि की समस्या का समाधान करने म कानून निर्माण के माग मे बाधक नही बल्कि वह कानून की सहायतार्थ उस आवश्यक अनुकूल वातावरण को तयार कर रहा है जो कि ऐसे कानून को सप्रेम स्वीकार करने के लिए आवश्यक है। केवल कानून द्वारा भूमि की समस्या का समाधान करने वाले भूल जाते हैं कि प्रत्येक कानून के पीछे 'जन शक्ति' एव जन इच्छा" की "मौन स्वीकृति" होती है। जिन कानूनो के पीछे यह स्वीकृति नहीं होती वे अर्थहीन (dead letter) होते हैं। शारदा एक्ट की भाँति उस कानून के साथ भी वसा ही हो सकता है जिसम भूमि का जबरदस्ती छीनन की व्यवस्था हो। कानून अधिकार दे सकते है वास्तविक शक्ति नहीं वे बाह्य आचरण नियन्त्रित कर सकते है आन्तरिक सदभावना पैदा नही कर सकते, वे प्रतिद्वन्द्विता का नियन्त्रित कर सकते हैं, घृणा या द्वेष की भावना का नहीं। सक्षेप मे, भूदान जिस चीज का प्राप्त कर सकता है कानून उसे प्राप्त नहीं कर सकता। भूदान उस प्रेम के वातावरण और त्याग की भावना को पैदा कर रहा है। जो कानून नही कर सकता। भूदान इस भावना का विकास कर रहा है कि भूमि मेरी नही, सब भूमि गोपाल (ईश्वर) की है।" कानून ऐसी भावना का विकास नही कर सकता।

भूमि की समस्या को शान्तिमय तरीको स हल करने का भूदान ही सर्वोत्तम उपाय है। श्री चारुचन्द्र भण्डारी ने भूदान मे निहित विचारधारा को इस प्रकार व्यक्त किया है भूदान यज्ञ कानून नही चाहता। भूदान यज्ञ चाहता है। धनी लोगो को पडौसी धम की दीक्षा देना, उनके आत्मज्ञान का विकास करना और उनकी आत्मा का परिवार की परिधि से बाहर ले जाना। धनी लोग, अपन परिवार स बाहर जो दरिद्र लोग है, उन्हे अपन परिवार का भागीदार समझना आरम्भ करें। उनके परिवार से बाहर जो भूमिहीन गरीब हैं, उन्हे वे अपना पुत्र मान और उन्हे उनका हिस्सा दें धनी लोगो के पास विद्या, बुद्धि और विचक्षणता है, किन्तु आज उनका समाज सेवा म उपयोग नही हो रहा है। उनकी बुद्धि वृत्ति और हृदय वृत्ति त्यागपूर्ण हो पवित्र हो इससे उनका और सम्पूर्ण समाज का कल्याण होगा। आज गरीब भूमिहीन धूलि धूसरित है। धनी लोगो के स्वेच्छया त्याग से गरीब लोग समाज म सम्मानित स्थान प्राप्त समाज म द्रोहरहित उत्पादक श्रम की मर्यादा पुन प्रतिष्ठित होगी। धनी

धम से दीक्षित हो कर लाक हृदय म सम्मानपूण श्रेष्ठ स्थान प्राप्त करेंगे। यही भू दान का मुख्य लक्ष्य और उद्देश्य है।"[1]

भूदान आन्दोलन तन्त्र मुक्त निधि मुक्त आन्दोलन है। जनवरी 1, 1957, से भूदान समितियो को समाप्त कर दिया गया और गाधी निधि से जो आर्थिक सहायता, कायकर्त्ताओ के निर्वाह के लिए, ली जा रही थी उसे पूणत बन्द कर दिया गया। कायकर्त्ताओ के निर्वाह व्यय के लिए तथा आन्दोलन के अन्य खर्चों को सम्पत्ति दान, सूत्रदान, अन्नदान आदि की सहायता से पूरा करने का सकल्प लिया गया। इस तरह आन्दोलन को जन आधारित बना दिया गया।

परन्तु आन्दोलन को जन आधारित बनाने के लिए सेवा परायण, लोक नीति परायण, आदश निष्ठ, निष्काम और निष्पक्ष कायकर्त्ताओ की आवश्यकता होती है। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिये कायकर्त्ता बनाये गये जिन्हे "सत्याग्रही लोक सेवक" की सज्ञा दी गई।

सक्षेप म, भूदान के उद्देश्यो का निम्न रूप से व्यक्त किया जा सकता है —

1 यह भूदान की समस्या का समाधान अहिंसक साधनो से करना चाहता है।
2 यह गरीबी का अन्त करना चाहता है।
3 यह, अहिंसक साधना द्वारा, वतमान समाज म विद्यमान आर्थिक और सामाजिक विषमताओ को दूर करना चाहता है।
4 यह मानव का हृदय परिवतन कर उसकी स्वामित्व की भावना को ही समाप्त करना चाहता है, इस तरह यह लोभ, अहम और स्वाथ वृत्ति को समाप्त करना चाहता है।
5 यह व्यक्तिगत नतिक मूल्यो का सामाजिक मूल्यो म परिवर्तित करना चाहता है।
6 यह इस बात की शिक्षा देता है कि सब कुछ—भूमि, धन, (सम्पत्ति) ज्ञान, बुद्धि—समाज का है और समाज के सहयोग से ही इन सब की उत्पत्ति होती है। इसलिए इन सबका प्रयोग समाज कल्याण के लिए होना चाहिए।
7 यह अथ की प्रतिष्ठा को समाप्त कर उत्पादक श्रम की प्रतिष्ठा स्थापित करना चाहता है।
8 यह त्याग, बलिदान, प्रेम, सहयोग, सदभावना के विचार पदा करना चाहता है ताकि समाज म नतिक वातावरण उत्पन्न हो।
9 यह वर्गों के मतभेदो को दूर कर समाज का मानवता के आधार पर सगठित करना चाहता है।
10 यह सहयोग की भावना का विकास राष्ट्रीय और अन्तराष्ट्रीय स्तर पर करना चाहता है।

---

1 भण्डारी, चारुचन्द्र भूदान यज्ञ क्या और क्यो, पृ० 116 117

11 यह सहकारिता की भावना का विकास चाहता है।
12 यह राजनीति के स्थान पर लोकनीति का कायल है।
13 यह सत्ता का (राजनीतिक तथा आर्थिक) विकेन्द्रीकरण चाहता है।
14 यह स्वावलम्बी ग्रामों में विश्वास करता है, यह ग्राम गण-राज्यों की स्थापना गृह उद्योगों, ग्रामोद्योगों और कुटीर उद्योगों के आधार पर करना चाहता है।
15 यह शासन विहीन, वर्ग विहीन समाज की स्थापना चाहता है।
16 शान्ति स्थापित करने के लिए यह सत्याग्रही लोक सेवकों और शान्ति सैनिकों के संगठन को स्थापित करना चाहता है।

भूदान का मूल्यांकन

भूदान पर आलोचकों ने कई दृष्टिकोणों से प्रहार किया है। परन्तु सबसे कटु आलोचना साम्यवादियों द्वारा की गयी है। उनका विश्वास है कि इस आन्दोलन को साम्यवादियों को समाप्त करने के लिए शुरू किया गया है। परन्तु साम्यवादियों की यह विचारधारा बिल्कुल मिथ्या है क्योंकि भूदान किसी व्यक्ति या सम्प्रदाय का अन्त नहीं चाहता। वह तो उन भावनाओं, विचारों और प्रवृत्तियों का अन्त चाहता है। जिनके कारण सामाजिक भेद भाव, आर्थिक विषमतायें, राजनीतिक अन्याय तथा नैतिक अपराध जन्म लेते हैं। भूदान साम्यवादियों का सफाया नहीं चाहता वह तो हिंसा और संघर्ष वृत्ति का सफाया चाहता है ताकि समाज में अशान्ति समाप्त हो जाय। वह सम्पत्ति के प्रति मानव मोह को समाप्त करना चाहता है। डॉ० राधाकृष्णन ने बहुत सुन्दर शब्दों में कहा है कि 'भूदान सहमति से क्रान्ति' (Revolution by consent) है जो साम्यवाद कभी नहीं हो सकता।

भूदान पर दूसरा आरोप यह लगाया जाता है कि अहिंसा के मार्ग में परिवर्तन की गति बहुत शिथिल होती है जिससे विकास के मार्ग में विघ्न पड़ता है। डाक्टर राम मनोहर लोहिया के शब्दों में भूदान का 'कार्यक्रम बहुत अच्छा है परन्तु 300 वर्ष तक पूरा होगा'। परन्तु विनोबा कहते हैं कि हिंसा द्वारा तत्काल लायी गयी क्रान्ति चिर स्थायी नहीं होती और उसके परिणाम भी अच्छे नहीं होते। वास्तविक क्रान्ति एक दम नहीं आ सकती। धीरे धीरे हृदय परिवर्तन से ही स्थायी परिवर्तन आ सकता है।

भूदान पर तीसरा आरोप यह लगाया जाता है कि यदि यह आन्दोलन सफल हो जाता है तो भूमि के छोटे छोटे टुकड़े हो जायेंगे जिससे न केवल समाज को हानि होगी बल्कि राष्ट्र की भी क्षति होगी। यह आरोप न केवल साम्यवादियों द्वारा लगाया गया है बल्कि पूँजीपतियों द्वारा भी लगाया गया है। भूदान इस आरोप को स्वीकार नहीं करता कि छोटे छोटे भूखण्ड होने से उत्पादन में हानि होगी। उसका [illegible] है कि उत्पादन भूखण्ड के छोटे या बड़े होने पर [illegible] निर्भर नहीं करता

वैज्ञानिक पद्धति के अपनाने, अच्छे बीजों और खाद की व्यवस्था करने तथा उपयुक्त सिंचाई की व्यवस्था करने पर निर्भर करता है।

भूदान पर चौथा आरोप यह है कि गरीबों से भी भूमि माँग कर "उनके पेट पर लात" मारी जा रही है। परन्तु यह आरोप भी मिथ्या है क्योंकि प्रश्न अमीर और गरीब से भूमि प्राप्त करने का नहीं बल्कि भावनाओं, विचारों, आदतों और स्वभाव का है। आज न केवल हजारों एकड़ भूमि रखने वाला अमीर ही अपने आपको भूमि का स्वामी समझता है बल्कि दो एकड़ भूमि रखने वाला भी अपने आपको भूमि का स्वामी समझता है। विनोबाजी इस स्वामित्व की भावना को नष्ट करने के लिये अमीरों और गरीबों दोनों से भूदान की माँग करते हैं। इसके अतिरिक्त भूदान उस लालसा की भावना को भी समाप्त कर देना चाहता है जिससे थोड़ी भूमि रखने वाला बड़ा भूमिपति बनने की इच्छा रखता है या स्वप्न देखता है। भूदान का एक मनोवैज्ञानिक महत्व यह भी है कि जब बहुसंख्यक, जो आवश्यक रूप से गरीब हैं, किसान अपनी थोड़ी भूमि में से ही भूदान करेंगे तो अल्प संख्यक, जो आवश्यक रूप से धनिक हैं, उन्हें भी उनसे प्रेरणा मिलेगी और वे भूदान में अधिक भूमि का दान करेंगे। इससे जनमत का निर्माण होगा और सर्वोदय समाज की स्थापना में सहायता मिलेगी।

भूदान पर पाँचवा आरोप यह है कि यह गरीब के संगठन को क्षति पहुँचाता है। परन्तु यह आरोप भी निराधार है क्योंकि भूदान स्वयं में एक क्रांति है जो समग्र जीवन में ही क्रान्ति पैदा कर देने की शक्ति रखता है। यह आन्दोलन गरीबों को जीविकोपार्जन के साधन उपलब्ध करा कर उनमें जागृति पैदा करता है। इस तरह भूदान गरीबों के संगठन को निर्बल नहीं प्रबल बनाता है।

भूदान पर छठा आरोप यह है कि यह भिक्षावृत्ति को बढ़ावा देता है। परन्तु विनोबा कहते हैं कि यह भिक्षा वृत्ति नहीं। यह तो ईश्वर द्वारा उत्पन्न वस्तुओं का समान उपभोग है। जैसे जल, वायु, प्रकाश तथा गगन को व्यक्ति अपनी आवश्यकतानुसार प्रकृति से प्राप्त करता है उसी प्रकार भूमि को जोतने तथा उससे उत्पन्न खाद्यान्नों का भी आवश्यकतानुसार भोगने का उसे अधिकार है। भूदान का अर्थ 'बाँट कर खाना' या 'समान विभाजन (equal division) है। यह दूसरों को अपनी सम्पत्ति में भागीदार बनाता है। भूदान के पीछे गांधीजी के ट्रस्टीशिप का सिद्धान्त है जिसमें सामाजिक न्याय की भावना है भिक्षा की नहीं।

भूदान पर सातवाँ आरोप यह है कि इस आन्दोलन में जो भूमि प्राप्त हुई है वह या तो बंजर है या विवादास्पद है। परन्तु विनोबा कहते हैं कि मैं तो हनुमान का कार्य कर रहा हूँ, सारा पहाड़ ही लाकर रख दूंगा उसमें से अच्छी वनस्पति छाँट ली जायगी।

भूदान पर यह भी आरोप लगाया जाता है कि जिन दाताओ ने इसमे भूदान किया उन्होने हृदय परिवतन के कारण नही बल्कि साम्यवादियो के आतक और भय के कारण भूदान किया । आलोचको का यह भी कहना है कि तेलगाना मे जहा साम्यवादियो का प्रभाव था वहाँ तो भूमिपति जाते ही घबराते थे । परन्तु यह आलोचना भी मिथ्या है क्योकि भूदान न केवल उन स्थानो पर किया गया है जहाँ साम्यवादियो का आतक था बल्कि उत्तर प्रदेश, विहार, उडीसा जसे स्थानो पर भी किया गया है जहाँ उनका प्रभाव बिलकुल नगण्य था ।

उपयुक्त वणन से स्पष्ट हो जाता है कि भूदान केवल भूमि को प्राप्त कर उसके पुनर्वितरण तक ही सम्बन्धित नही है और न ही वह गरीबी का बँटवारा है और न ही वह गरीबो के पेट पर लात मारना चाहता है बल्कि वह हृदय परिवतन कर स्वामित्व के बारे मे प्रचलित भावनाओ को बदल देना चाहता है ताकि व्यक्ति ईश्वर प्रदत्त वस्तुओ का उपभोग आवश्यकतानुसार कर सकें और समाज म विद्यमान विषमतायें—शोषण, अ याय—समाप्त हो जायें । यह समाज मे ऐसा मनोवज्ञानिक वातावरण पदा करना चाहता है जिसस सभी परस्पर एक दूसरे का ध्यान रख। "मैं सब म हूँ और सब मुझ म हैं", यही भावना भूदान मे है ।

सम्पत्तिदान

सम्पत्तिदान आ दोलन का प्रारम्भ पाटलिपुत्र नगर म अक्टूबर 23, 1952 को किया गया । इसम आमदनी का षष्ठाश दान मे देने की अपील की गई है । सम्पत्ति दान भी इस भावना पर आधारित है कि सम्पूण सम्पत्ति समाज की उपज है और इसका प्रयोग भी समाज कल्याण के लिए होना चाहिए । इसमे यह भावना निहित है कि अपने शारीरिक श्रम स उपार्जित सम्पत्ति भी केवल अपने लिए नही है बल्कि सबके उपभोग के लिए भगवान् द्वारा उसे दी गई है । बुद्धि, कायक्षमता, शारीरिक शक्ति, पुरुषाथ, स्वास्थ्य, इत्यादि सब ईश्वर की देन है । इसलिए सम्पत्ति को सबम बाँट कर उसका उपभोग करना चाहिए । दादा धर्माधिकारी न बहुत सुन्दर शब्दो म लिखा है कि "सग्रह क निराकरण के लिए, जीविका के शुद्धिकरण के लिए, और अनुत्पादक व्यवसायो के निराकरण क लिए"[1] सम्पत्ति का दान दिया जाना चाहिए ।

सम्पत्ति दान म सम्पत्ति का अथ है "धन का दान", "अथ का दान", "आय का दान" । परन्तु इस सम्पत्ति दान की धन राशि से किसी भण्डार सग्रह, निधि या ट्रस्ट बनाने का इरादा नही । इस सम्पत्तिदान की सम्पत्ति को दाता स्वय अपने पास रखेगा और विनोबा के निर्देशानुसार उस खच करेगा । इस तरह सम्पत्तिदान मे पूण उत्तरदायित्व दाताओ पर ही छोड दिया गया है । उन्हें इस बात की स्वतन्त्रता है

1 धर्माधिकारी, दादा सर्वोदय दशन, पृ० 328

कि वे धन के खर्च के सम्बन्ध में विनोबा को अपनी राय दें। इस तरह सम्पत्ति दान की भावना गांधीजी के ट्रस्टीशिप के सिद्धान्त का व्यावहारिक पहलू है।

सम्पत्तिदान मन की वृत्ति और मस्तिष्क की विचारधारा है। इसलिए विनोबाजी कहते हैं कि जो लोग इसमें दान देते हैं या देना चाहते हैं उनके लिए यह सहज धर्म होना चाहिए। दबाव, लज्जा अथवा भय स्वरूप इसे नहीं देना चाहिए। निष्ठा से दिया गया सम्पत्तिदान ही देने वाले की आत्मा को शुद्ध कर सकता है और लेने वाले का उत्थान कर सकता है।

सम्पत्तिदान में दो संकल्प विद्यमान हैं। पहला यह कि जो व्यवसाय संग्रहवृत्ति को बढ़ाते हैं उन सबका निराकरण किया जाय। ब्याज, किराया, दलाली, अपराध (वकालत तथा वर्तमान न्यायालय) पर चलने वाले व्यवसाय तथा व्यसनों पर चलने वाले नर्तकी, वेश्या, मादक द्रव्य विक्रेता, आदि जैसे व्यवसायों को विसर्जित किया जाय। सम्पत्ति दान का कदापि यह अर्थ नहीं कि एक ओर तो सम्पत्ति का षष्ठांश दान में देते जाओ और दूसरी ओर सम्पत्ति को बढ़ाते जाओ। इसलिए यह कहना मिथ्या है कि सम्पत्तिदान षष्ठांश को स्वीकार कर और बाकी सम्पत्ति को दाता के पास रखकर शोषण या व्यभिचार के जारी रखने में सहयोग देता है। वास्तविकता तो यह है कि सम्पत्ति दान की भावना मानव के सम्पत्ति के प्रति मोह और संग्रह की विचारधारा पर ही कुठाराघात करता है। केवल इतना कहा जा सकता है कि सम्पत्तिदान में वह क्रांतिकारी विचारधारा नहीं जो भूमिदान में है क्योंकि सम्पत्ति उत्पादन का साधन नहीं, वह तो उपभोग वस्तुओं की खरीद का साधन है।

सम्पत्तिदान का दूसरा संकल्प है अस्तेय और अपरिग्रह। दोनों की भावधारा पर सम्पत्तिदान की मूल विचारधारा प्रतिष्ठित होती है। जहाँ अस्तेय अर्थ की प्राप्ति की पद्धति का नियमन करता है (अर्थात शारीरिक श्रम द्वारा रोटी के नियम पर बल देता है) वहाँ अपरिग्रह उसकी मात्रा का नियमन करता है (अर्थात अपनी अनिवार्य आवश्यकता से अधिक जो कुछ भी हमारे पास है हम उसके स्वामी नहीं ट्रस्टी हैं)। जिस प्रकार धर्म आसक्त व्यक्ति को आसक्ति त्यागने की शिक्षा देने के उपरान्त उसे मोक्ष की ओर अग्रसर करता है (आसक्ति को धीरे धीरे छुड़वाकर) उसी प्रकार सम्पत्तिदान दाता को प्रारम्भिक दिशा दिखाकर उसे सारी सम्पत्ति को समाज कल्याण में लगाने के लिए अग्रसर करता है।

श्रमदान

सम्पत्तिदान के बाद श्रमदान आरम्भ किया गया। जिन लोगों के पास न तो भूमि दान देने के लिए है न ही सम्पत्ति या धन देने के लिए है अर्थात् जो लोग इतने गरीब हैं कि उनके पास देने के लिए कुछ भी नहीं उनमें भी दान वृत्ति और समाज कल्याण की भावना पैदा करने के लिए श्रम दान शुरू किया गया।

विनोबाजा कहते हैं कि धनिको के धन और भूस्वामियो के भूदान करने की क्षमता तो सीमित है परन्तु जिनके पास शारीरिक शक्ति और सामर्थ्य है वे तो अपार शक्ति के स्रोत हैं। उनकी दान देने की क्षमता तो असीम है। उन्हें इसलिए, प्रतिदिन अपने शरीर श्रम का दान देना चाहिए। यही श्रमदान की श्रेष्ठता है कि जब तक स्वस्थ और सबल शरीर है तब तक श्रमदान किया जा सकता है। एक अन्य अर्थ मे तो श्रमदान दूसरे सब दानो से उच्चतर है क्योंकि यदि भूमि पर शारीरिक श्रम नही किया जाय तो भूमि उत्पादन नही कर सकती। इसलिए शारीरिक श्रम-दान से बढकर कोई दान नही। यह दान चरित्र निर्माण के साथ सहयोग और सद्भावना का भी विकास करता है। विनोबाजी का विश्वास है कि जब प्रत्येक व्यक्ति श्रम का दान करेगा तो ग्राम मे ऐसा वातावरण उत्पन्न होगा कि सभी श्रम मे गौरव अनुभव करेंगे और श्रम विक्रय और विनिमय की वस्तु नही रहेगा। विनोबा जी द्वारा पैदल यात्रा और कुदाल से शारीरिक श्रम इसी बात के द्योतक है।

प्रेम और बुद्धि दान

जिन व्यक्तियो के पास न भूमि है न धन है, और न स्वास्थ्य है अर्थात् जिनके पास इन तीनो मे कुछ भी दान देने का नही है वे प्रेम का ही दान कर सकते हैं अर्थात वे अपने पडोसी को हृदय से अपने समान मान और उसके प्रति प्रेम भाव रखें। अपने आत्म ज्ञान का विकास ही उनकी साधना होगी। इसे ही प्रेम दान यज्ञ कहते हैं।

जिनके पास बुद्धि, विद्या और विचक्षणता है वे अपना कुछ समय अपनी विद्या और बुद्धि को निःस्वार्थ सेवा के काम मे लगा कर बुद्धि दान का अनुष्ठान कर सकते हैं। उदाहरणतया विचारकगण आपस मे विचार विमर्श कर सकते हैं, वकील लोग गरीबो के मुकद्दमे बिना पारिश्रमिक लिये उनकी पैरवी कर सकते हैं, डाक्टर गरीबो का इलाज मुफ्त कर सकते हैं, अध्यापक तथा विद्यार्थी अवकाश के समय गरीबो को मुफ्त शिक्षा दे सकते हैं, हिसाबी लोग वेतन लिये बिना किसी दातव्य संस्था मे हिसाब का काम कर सकते हैं इत्यादि इत्यादि।

जीवन दान

शान्ति का एक लक्षण यह होता है कि वह आरम्भ तो होती है एक विषय से परन्तु फल जाती है अन्य क्षेत्रो मे भी और अन्त मे वह सारे जीवन को ही अपनी लपेट मे ले लेती है। यही विनोबाजी की शान्ति का फल हुआ है—पहले भूदान, फिर सम्पत्तिदान, फिर श्रम दान, फिर प्रेम और बुद्धिदान, और फिर जीवन दान। इसका अभिप्राय यह है कि व्यक्ति को जीवन ही समाज कल्याण मे लगा देना चाहिए। शरीर, मन, वाणी बुद्धि सब कुछ समाज को अर्पित कर देनी चाहिए।

भूदान म व्यक्ति सब कुछ समाज को अर्पित कर उसे जो प्रसाद रूप मे मिलता है उसे सहर्ष स्वीकार करता है तथा स्वावलम्बी जीवन के लाभो को भोगता है, जीवन सुखमय होता है और व्यक्ति स्वतन्त्र व समान रहता है। समाज मे शोषण और विषमताओ का अन्त हो जाता है।

ग्राम दान के भिन्न भिन्न पहलुओ पर तथा यह कि किस रूप मे यह समाज मे शान्ति का द्योतक है इसका वणन भूदान के अन्तगत लिखा जा चुका है इसलिए उसे यहाँ दोहराने की आवश्यकता नही। यहाँ तो उस व्यवस्था के बारे मे लिख देना उचित होगा जिसकी कल्पना दान मे प्रदत्त ग्राम मे की गई है। यह व्यवस्था निम्न प्रकार से व्यक्त की जा सकती है —

(1) ग्रामदान ग्राम मे भूमि व्यक्ति के हाथ मे रहेगी परन्तु मालकियत ग्राम पचायत के हाथ मे होगी। सभी भूमि को गोपाल (ईश्वर) की समझकर उस पर शारीरिक श्रम से उत्पादन करेंगे। व्यक्तिगत स्वामित्व समाप्त हो जायगा परन्तु सामूहिक स्वामित्व के लाभ सभी को प्राप्त होंगे। भूमि पर उत्पादन सामाजिक आवश्यकता के दृष्टिकोण से होगा लाभ वृत्ति से नही। इस व्यवस्था को आर्थिक क्रान्ति की सज्ञा दी जा सकती है।

(2) प्रत्येक परिवार को 5 एकड भूमि प्राप्त होगी ताकि खाद्योत्पादन के लिए सभी के पास थोडी भूमि रहे। शेष भूमि सामूहिक रहेगी।

(3) प्रति आठ या दस वर्ष के बाद भूमि का पुनर्वितरण परिवार के सदस्यो की सख्या के आधार पर किया जायेगा।

(4) प्रत्येक व्यक्ति भूमि को अपनी समझ कर उसका विकास करेगा।

(5) मालगुजारी की अदायगी सामूहिक भूमि से की जायगी। शिक्षा, चिकित्सा की व्यवस्था तथा अन्य सावजनिक तथा उत्थान मूलक कार्य सामूहिक भूमि से पूरे किये जायेगे।

(6) ग्राम म भूमि की बिक्री नही की जायगी, कोई ऋण नही देगा और न ही कोई ऋण लेगा। सम्पूण ग्राम एक विस्तृत परिवार की भाँति रहेगा।

(7) ग्राम को स्वावलम्बी बनाने के लिए गृह उद्योगो, ग्रामोद्योगो और कुटीर उद्योगो की स्थापना की जायगी। जहाँ तक सम्भव होगा ग्राम की आवश्यकतायें ग्राम मे ही पूरी की जायेंगी। ग्राम मे एक दुकान भी होगी जहाँ से ग्राम वाले अपनी आवश्यकताओ की चीजें प्राप्त कर सकेंगे। यही दुकान आवश्यकता पडने पर आयात और निर्यात करेगी।

(8) ग्राम मे शिक्षा का आधार शिल्प और ब्रह्म विद्या होगा।

(9) ग्राम म शारीरिक श्रम पर बल अधिक दिया जायगा। ग्राम के प्रत्येक व्यक्ति को निश्चित घण्टे भूमि पर काय करना पडेगा। फसल होने पर सभी को आवश्यकतानुसार तज्जन्य पदाथ प्राप्त होगा। यह नियम कि "प्रत्येक से उसकी सामथ्य के अनुसार और प्रत्येक को उसकी आवश्यकतानुसार" सवत्र लागू होगा। न कोई शोषित होगा न कोई शोषक। सभी समान होगे।

(10) ग्रामदान मे किसी प्रकार के भेद भाव—जाति, धम, लिंग, वण, इत्यादि—नही होग। सभी को परमेश्वर की सन्तान समझा जायेगा।

(11) सामाजिक काय—विशेषकर विवाह—ग्राम की ओर से किये जायगे। इसम किसी परिवार विशेष पर बोझ या ऋण का प्रश्न ही नही होता।

उपयु क्त वणन से स्पष्ट है कि 'ग्राम दान' व्यवस्था म 'वसुधैव कुटुम्बकम" की भावना विद्यमान रहगी, सभी सुख दु ख के भागीदार रहगे—खल के खिलाडियो की तरह ग्राम के निवासियो का जीवन होगा। इसमे व्यभिचारो—चोरी, विवाद, मुकदमाबाजी—का अन्त हो जायगा। दूसरे शब्दो म इस व्यवस्था म व्यसन मुक्ति, पुलिस मुक्ति और अदालत मुक्ति होगी। जब स्वाथ, लोभ, और अह नही रहेगा तो व्यभिचारो का प्रश्न ही नही उठेगा। इस व्यवस्था मे प्रेम और सौहाद सवत्र रहेगा। इस तरह ग्राम दान ग्राम समाज मे आर्थिक, सामाजिक, नतिक और आध्यात्मिक गुण विद्यमान हैं। यही साम्ययोग की स्थापना है। राजनीतिक दृष्टि से ग्रामदान ग्राम समाज राज्य या ससद के मुँह की ओर नही देखेगा बल्कि ग्राम का प्रबन्ध करने के लिए एक साधारण ग्राम सभा होगी जिसमे ग्राम के प्रत्येक परिवार मे से एक सदस्य होगा। प्रतिदिन के काय को चलाने के लिए एक 10 15 सदस्यो की समिति की नियुक्ति साधारण सभा द्वारा की जायगी। इस व्यवस्था म चुनाव नही होग, दलगत राजनीति नही होगी क्योकि राजनीति का स्थान लोक नीति ने ले लिया है।

सर्वोदय समाज के लक्षण

विनोबाजी ने तो सर्वोदय समाज के सूत्रो को एक वाक्य म इस प्रकार व्यक्त किया है 'भूदान यज्ञमूलक, ग्रामोद्योगप्रधान, अहिंसात्मक क्रान्ति है।" इस वाक्य म सर्वोदय के नवीन समाज रचना के आधार, स्वरूप, साधन और उद्देश्य को प्रकट किया गया है। भूदानयज्ञ इसका आधार है, ग्रामोद्योग इसका स्वरूप है, अहिंसा इसकी साधना और तरीका है और क्राति इसका उद्देश्य है। सर्वोदय समाज के मुख्य लक्षण निम्न प्रकार से हैं —

1 यह सबका समाज है

सर्वोदय समाज की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि यह कोई सम्प्रदाय या पथ नहीं। इस समाज के केवल वे ही सदस्य नहीं हैं जो इसके औपचारिक सदस्य हैं बल्कि वे भी इसके सदस्य हैं जो मानव सेवा मे लगे हुए है। इस समाज पर जिनकी श्रद्धा है उन्ही का यह समाज है। सबको इसम प्रवेश सुलभ है। मात्र इतना कहना ही इसकी सदस्यता के लिए पर्याप्त है कि "हम इस समाज म हैं।" सज्जनता किसी एक पक्ष की नही होती। वह सबके लिये होती है। इसीलिये सर्वोदय सबके लिय है।

2 यह समाज समानता पर आधारित है

सर्वोदय समाज ऐसा आस्तिक समाज है जिसको मानव मात्र पर विश्वास है। इसम माया, जाति, लिंग, पथ, वर्ग आदि किसी आधार पर भेदभाव नही किया जाता। इसका सार तत्व, उपनिषद की भाषा मे, "एकात्मकता" है। सस्कृतियाँ भिन्न भिन्न हो सकती हैं परन्तु मानवता सवत्र एक है। विचार भिन्न भिन्न हो सकते हैं परन्तु हिता म भिन्नता नही हो सकती।

3 यह समाज सर्वात्मक व्यवस्था है

सर्वोदय समाज जीवन को अविभाज्य मानता है। जीवन के किसी भी अश को अलग हटाकर सर्वोदय की बात नही सोची जा सकती। इसी कारण सर्वोदय समाज का लक्ष्य है नतिक, आर्थिक, सामाजिक, राजनीतिक, सभी क्षेत्रो मे समता की स्थापना करना। इस समता का मूल है आत्मा की एकता। परिवार म समता का यही आदश प्रतिष्ठित हाता है। इसी पारिवारिक एकता और समता को सम्पूर्ण समाज मे प्रसारित करना सर्वोदय समाज का लक्ष्य है।

4 इस समाज की बुनियाद सत्य निष्ठा है

इस समाज मे सत्य ही अनुशासन और सत्य ही कार्यों की प्रेरणा का स्रोत है। इस समाज की कल्पना मे 'मैं हूँ और मेरे म सब हैं" विद्यमान है। इसलिए मैं निजी जीवन म, व्यापार म या अन्य सामाजिक, राजनीतिक तथा आर्थिक कार्यों म असत्य का व्यवहार नही कर सकता क्योकि सवत्र मैं ही हूँ। जहा सत्य है वहाँ असत्य और हिंसा विद्यमान नही रह सकते।

5 यह अहिंसक समाज है

इस समाज मे अहिंसा ही एक मात्र शस्त्र होगा, इसम न केवल साध्य की पवित्रता हागी बल्कि साधनो की भी पवित्रता होगी। इसका विश्वास है कि अशुद्ध साधनो से शुद्ध साधनो की प्राप्ति नही हो सकती। इसलिए यह घृणा को प्रेम से, प्रतिद्वन्द्विता को सहयोग स, और ईर्षा को सदभावना से जीतने का माग बतलाता है।

6 यह विकेन्द्रित समाज है

इस समाज म साम्यवादियो या पूजीवादियो की तरह न तो राज्य के हाथो म

केन्द्रित सत्ता होगी और न ही केन्द्रित उत्पादन होगा क्योंकि एक में राज्य सत्ता का विकास होता है और दूसरी में समाज में शोषण, असमानतायें तथा विषमतायें उत्पन्न होती हैं। इसलिए सर्वोदय समाज में श्रम मूलक, स्वावलम्बित, सहकारी वृत्ति का विकास होगा ताकि सहयोग, सद्भावना और प्रेम का वातावरण सवत्र विद्यमान रहे इसलिए सत्ता का विकेन्द्रीकरण और उत्पादन का विकेन्द्रीकरण किया जायगा। सर्वोदय समाज का विश्वास है कि राज्य विहीन समाज की स्थापना शक्ति के प्रयोग द्वारा नही हो सकती और न ही भ्रातृभाव की भावना का विकास वर्ग सघर्ष के द्वारा हो सकता है।

7 यह नि स्वार्थ समाज की कल्पना है

सर्वोदय समाज का विश्वास है कि वतमान समाज मे जितनी विषमतायें हैं वे सब स्वार्थ और लोभ से उत्पन्न होती हैं। गरीबी, भूख दु ख, शोषण सब स्वार्थ से उत्पन्न होते हैं। इसलिए सर्वोदय समाज नि स्वार्थी समाज की स्थापना चाहता है जहाँ व्यक्ति अपने लिए नही दूसरो के लिए जीवित रहेगा, वह अपने लिए उत्पादन नही बल्कि दूसरो के लिए करेगा, वह अपने सुख की चिन्ता म रत नही रहेगा बल्कि दूसरो के सुख की चिन्ता म रत रहेगा।

8 इस समाज मे अस्तेय और अपरिग्रह के नियम सवत्र विद्यमान रहेगे तथा स्वेच्छा से पालित होगे

अस्तेय का अथ केवल इतना ही नही कि मैं दूसरे की वस्तु चोरी (अर्थात् शोषण) न करूँ बल्कि इसका अथ यह भी है कि मैं दूसरे की वस्तु की आकाक्षा भी न होने दूँ। अपरिग्रह का अथ केवल इतना नहीं कि मैं सग्रह न करूँ इसका यह भी अथ है कि जो कुछ भी मेरे पास है—धन, ज्ञान, इत्यादि—वह सब समाज का है और व्यक्ति केवल उसका ट्रस्टी मात्र है। अपनी अनिवाय आवश्यकताओ से अधिक जो भी चीज है उसे व्यक्ति दूसरो की धरोहर माने यही अपरिग्रह है। जिस प्रकार परमार्थी अपने शरीर को समाज की धरोहर मानता है और ईश्वर भक्त उसे ईश्वर के निवास का स्थान मानता है उसी प्रकार सर्वोदयवादी हर चीज को गोपाल (ईश्वर) की मान कर उसे समाज कल्याण मे स्वेच्छा से लगाता है।

9 इस समाज की मुख्य इकाई ग्राम है

सर्वोदय समाज मे सत्ता का विकेन्द्रीकरण होगा जिसमे ग्राम का स्थान मुख्य होगा। ग्राम स्वशासित गणराज्य होगा। ग्राम मे ही मुख्य सत्ता, उत्पादन सत्ता, सविभाजन सत्ता और सयोजन की सत्ता होगी। ग्राम ही इस बात का निर्धारण करेगा कि आर्थिक और राजनीतिक शक्ति का किस प्रकार विकेन्द्रीकरण होगा अर्थात् ग्राम ही इस बात को निश्चित करेगा कि उत्पादन का कितना दायित्व ग्राम पर होगा और कितना जिला, राज्य और राष्ट्र पर होगा। इन इकाइयो मे प्रतिनिधि भेजने की

पद्धति को भी ग्राम निश्चित करेगा। इस तरह शासन शक्ति और शासन व्यवस्था का मूल ग्राम म रहेगा और जितनी मात्रा म वह इस दिशा की ओर अग्रसर होगा उतनी ही मात्रा मे केन्द्र की सत्ता क्षीण होती जायगी। इस व्यवस्था मे केद्रीय शासन की सत्ता, जहा तक सम्भव होगी, केवल नतिक रहेगी। इस व्यवस्था म ग्राम से राष्ट्र तक प्रत्येक सस्था का प्रतिनिधित्व होगा तथा सम्पूण काय व्यवस्था निष्पक्ष और सव सम्मति से होगी।

10 इस समाज मे राजनीति के स्थान पर लोक नीति (जन शक्ति) का विकास होगा

सर्वोदय समाज मे जन शक्ति का विकास होगा। जसे जसे भूदान द्वारा भूमि समस्या का समाधान होगा और गृह उद्योगो, ग्रामोद्योगो का विकास होगा वैसे वैसे जन साधारण मे आत्म शक्ति का विकास होगा। यही आत्म शक्ति सामुदायिक क्षेत्र मे जन शक्ति कहलाती है। इसकी विशेषता यह है कि इसमे आत्मानुशासन, स्व तन्त्रता, सयम और कतव्य परायणता पर बल दिया जाता है। इसम राजनीति की भाति राज सत्ता, नियन्त्रण और अधिकारो पर बल नही दिया जाता। जहाँ राज नीति मे निणय बहुमत के आधार पर लिये जाते हैं वहा लोक नीति मे सव सम्मति से लिये जाते हैं। इन निणयो के पीछे ग्राम समाज की पूण जन शक्ति होगी, इसम राजनीतिक समाज की भाँति सत्ता, पुलिस या जेल का भय नही रहेगा। इस तरह सर्वोदय जनता म आत्म विश्वास पैदा करना चाहता है।

11 इस समाज मे राजनीतिक दलो का महत्त्व नहीं

सर्वोदय समाज म राजनीतिक दलो, चुनावो व ससदो का महत्त्व नही। इसका विश्वास है कि दल समाज को विभक्त करते हैं। इसलिए सर्वोदय समाज ऐसे प्रजा-तन्त्र का निमाण करना चाहता है जिसम दलो तथा दलीय भावना का अभाव हो। सर्वोदय तो पक्षी और प्रतिपक्षी के चक्कर मे नही पड़ता क्योंकि वह तो सबको मित्र और सहयोगी बनाने का इच्छुक है। यह सबका मच होगा किसी एक दल का नही।

12 यह समाज श्रम निष्ठ समाज है

सर्वोदय समाज मे श्रम व्रत है। वतमान धन निष्ठ और सम्पत्ति निष्ठ समाज को सर्वोदय समाज श्रम निष्ठ समाज बनाना चाहता है। विनोबाजी कहते हैं 'धन वान की धन निष्ठा कम करने के लिए मैं सम्पत्ति दान माँग रहा हूँ, भूमिवान् की भूमिनिष्ठा कम करने के लिए मैं उनसे भूमि माँग रहा हूँ और श्रमवान को श्रम निष्ठ बनाने के लिए मैं श्रमदान माँग रहा हूँ।" इस तरह जब सब रोटी के लिए श्रम करेंगे तो श्रम का बाजार म क्रय विक्रय होना बन्द हो जायगा। समाज मे श्रमवान् की प्रतिष्ठा बढ़ जायगी। परन्तु सर्वोदय समाज म श्रम अनिवाय नही स्वेच्छिक है। इस समाज मे आराम का वही अधिकारी है जो शारीरिक श्रम करता

है। श्रम के बिना किसी वस्तु का उपभोग इस समाज में चोरी की परिभाषा में आता है।

13 यह समाज शारीरिक और बौद्धिक श्रम में अन्तर नहीं करता

सर्वोदय समाज में शारीरिक श्रम और बौद्धिक श्रम में कोई अन्तर नहीं। इसका यह विश्वास है कि सब प्रकार का श्रम समाज के लिए आवश्यक है। विनोबाजी कहते हैं कि "अँगुलियाँ कम वेशी काम देती हैं किन्तु वे सब समान हैं। एक अँगुली से जो काम होता है वह दूसरी से नहीं होता। इसी प्रकार यह समझना आवश्यक है कि समाज में एक की सेवा (श्रम) दूसरे की सेवा (श्रम) से भिन्न हो सकती है परन्तु उनका आर्थिक मूल्य समान होना चाहिए।" हरेक वर्ण की योग्यता दूसरे सब वर्णों के बराबर है बशर्ते कि हरेक अपना कार्य निष्ठापूर्वक करे। एक मामूली झाड़ू देने वाला और एक महान ज्ञानी दोनों अगर अपना कार्य दक्षता से और ईश्वर समर्पण बुद्धि से करते हैं तो दोनों की योग्यता समान है और दोनों ही न केवल समान पारिश्रमिक के अधिकारी हैं बल्कि मोक्ष के भी अधिकारी हैं।

14 इस समाज में विक्रय और विनिमय की भावनायें नहीं होंगी

सर्वोदय समाज विक्रय और विनिमय दोनों को समाज से उठा देना चाहता है। इस समाज में वस्तु का उत्पादन माँग द्वारा निर्धारित नहीं होगा, विनिमय के लिये नहीं होगा बल्कि सामाजिक आवश्यकता के लिए होगा। विनिमय का माध्यम पैसा नहीं होगा क्योंकि वह संग्रह वृत्ति को बढ़ावा देता है। सर्वोदय समाज चलन को चलन रखना चाहता है उसे संग्रह का साधन बनने नहीं देना चाहता।

15 यह समाज मालिकाना (स्वामित्व की भावना) वृत्ति का विसर्जन चाहता है

सर्वोदय समाज भूमि की मलकियत एक से छीन कर (भूमिपति) दूसरे के हाथों (भूमिहीनों) में सौंपना नहीं चाहता बल्कि वह तो इस स्वामित्व की भावना को ही समाप्त कर देना चाहता है। वह तो उत्पादन के साधन उत्पादक के कब्जे में देना चाहता है। इस समाज में, उदाहरणतः भूमि जोतने वाले के कब्जे में होगी, गैर जोतने वाले के कब्जे में नहीं। इस तरह प्रथम कदम के रूप में सर्वोदय समाज में उत्पादक की मलकियत की स्थापना होगी और अनुत्पादक की मलकियत का निराकरण होगा और बाद में मलकियत का ही निराकरण होगा अर्थात उत्पादन के साधन पर किसी की मलकियत नहीं रहेगी। उसका सामाजीकरण हो जायगा। आरम्भ होगा भूमिदान से और परिसमाप्ति होगी ग्रामदान और ग्रामीकरण में।

16 इस समाज में उत्पादन में 'मानव स्पर्श" प्रतिष्ठित होगा

सर्वोदय समाज यन्त्रों के विरुद्ध नहीं परन्तु उसकी टक्नालाजी से यह माँग है कि वह अभाव की पूर्ति तो करे परन्तु कला का नाश न करे। इसी तरह वह मानव का स्थान न ले बल्कि वह मानव की सहायता करे। अर्थात सर्वोदय समाज में यन्त्रों

का प्रयोग यथासम्भव कम होगा और कला का विकास भी साथ होगा। इस तरह सर्वोदय समाज उत्पादन ऐसा चाहता है जिसम मानव की विभूतिया—श्रम, कला, बन्धुत्व और सहानुभूति—का विकास हो।

17 इस समाज मे सह उत्पादन केवल ग्राम तक सीमित नहीं होगा इसका क्षेत्र अन्तर्राष्ट्रीय भी होगा

सर्वोदय समाज की विकेन्द्रित व्यवस्था मे ग्राम न केवल स्वावलम्बी होगे बल्कि दूसरे ग्रामो के साथ परस्परावलम्बन के आधार पर काय करेगे। इह एक दूसर की अपेक्षा रहगी। समन्वयात्मक समाज म सह उत्पादन एक दूसरे के लिए होगा। हर जगह हर क्षेत्र म सह उत्पादन होगा, अन्तर्देशीय सह उत्पादन भी होगा।

18 यह समाज उत्पादको का समाज होगा

सर्वोदय समाज उत्पादको का समाज होगा, इसम स्वय पूणता की दृष्टि से विकेन्द्रीकरण होगा। इस विकेन्द्रित समाज म प्रतिनिधित्व और प्रशासन दोनो समव्याप्त होगे। प्रशासन का उद्देश्य वस्तु नियन्त्रण होगा व्यक्ति नियन्त्रण नही अर्थात वस्तुओ के उत्पादन और वितरण पर नियन्त्रण होगा, मनुष्यो पर नियन्त्रण कम से कम होगा। उत्पादको के इस समाज म मतभेद की गुजाइश बहुत कम रहेगी। वतमान प्रजातन्त्रो की भाति इसम न तो वोट छीने जायेंगे और न बेचे जायेंगे। इस समाज म न तो आरामवादी साहूकार होगा और न लाठी पर जीने वाला गुण्डा।

19 यह समाज शासन मुक्त है

सर्वोदय समाज शासन मुक्त समाज व्यवस्था है। इसका अथ केवल इतना ही नही कि यह शासन हीन समाज होगा बल्कि इसका अथ यह भी है कि इसम सामाजिक शासन भी नही होगा। सभी लोग, इस समाज म, एक दूसरे के साथ अपनी एकता का अनुभव करेगे। किसी का राज्य किसी दूसरे पर नही होगा, मेरा राज आप पर नही, आपका राज मुझ पर नही। अपना राज अपने पर। इस समाज म 'मैं" और 'तू" दोना विलीन हो जाते हैं। अपना राज और अपनी सत्ता, यही लोक सत्ता है अथात मेरी सत्ता तुम पर नही तुम्हारी सत्ता मुझ पर नही, अपनी सत्ता अपने पर यही वास्तविक लोक सत्ता है।

20 यह समाज राज्य की आवश्यकता नहीं समझता

सर्वोदयवादी एसी सामाजिक व्यवस्था की कल्पना करते हैं जिसम भय और शोषण का निराकरण हो जायगा, एक दूसरे पर हरेक को विश्वास होगा, अनुशासन और सयम जीवन के कार्यों को निर्धारित करेंगे, मानव आवश्यकतायें यूनतम हो जायेंगी और प्रत्येक व्यक्ति सत्य, अहिंसा, अस्तेय अपरिग्रह और ब्रह्मचय का पालन स्वेच्छा से करेगा, वर्गों, सम्प्रदायो और जातियो का निराकरण हो जायगा और मानवता सवत्र

है। श्रम के बिना किसी वस्तु का उपभोग इस समाज म चोरी की परिभाषा मे आता है।

13 यह समाज शारीरिक और बौद्धिक श्रम मे अन्तर नहीं करता

सर्वोदय समाज मे शारीरिक श्रम और बौद्धिक श्रम मे कोई अ तर नही। इसका यह विश्वास है कि सब प्रकार का श्रम समाज के लिए आवश्यक है। विनोबाजी कहते हैं कि "अँगुलियाँ कम वेशी काम देती हैं किन्तु वे सब समान हैं। एक अँगुली स जो काम होता है वह दूसरी से नही होता। इसी प्रकार यह समझना आवश्यक है कि समाज मे एक की सेवा (श्रम) दूसरे की सेवा (श्रम) से भिन्न हो सकती है परन्तु उनका आर्थिक मूल्य समान होना चाहिए।" हरेक वण की योग्यता दूसरे सब वर्णों के बराबर है बशर्ते कि हरेक अपना काय निष्ठापूवक करे। एक मामूली झाड़ू देने वाला और एक महान ज्ञानी दोनो अगर अपना काय दक्षता से और ईश्वर समपण बुद्धि से करत हैं तो दोनो की योग्यता समान है और दोनो ही न केवल समान पारिश्रमिक के अधिकारी है बल्कि मोक्ष के भी अधिकारी हैं।

14 इस समाज मे विक्रय और विनिमय की भावनायें नहीं होगीं

सर्वोदय समाज विक्रय और विनिमय दोनो को समाज से उठा देना चाहता है। इस समाज मे वस्तु का उत्पादन माग द्वारा निर्धारित नही होगा विनिमय के लिये नही होगा बल्कि सामाजिक आवश्यकता के लिये होगा। विनिमय का माध्यम पैसा नही होगा क्योंकि वह सग्रह वृत्ति को बढ़ावा देता है। सर्वोदय समाज चलन को चलन रखना चाहता है उसे सग्रह का साधन बनने नहीं देना चाहता।

15 यह समाज मालिकाना (स्वामित्व की भावना) वृत्ति का विसजन चाहता है

सर्वोदय समाज भूमि की मलकियत एक स छीन कर (भूमिपति) दूसरे के हाथो (भूमिहीनो) म सौपना नही चाहता बल्कि वह तो इस स्वामित्व की भावना को ही समाप्त कर देना चाहता है। वह तो उत्पादन के साधन उत्पादक के कब्जे म देना चाहता है। इस समाज म, उदाहरणत भूमि जानने वाल क कब्जे म होगी, गैर जोतने वाले के कब्जे मे नही। इस तरह प्रथम कदम के रूप म सर्वोदय समाज म उत्पादक की मलकियत की स्थापना होगी और अनुत्पादक की मलकियत का निराकरण होगा और बाद मे मलकियत का ही निराकरण होगा अर्थात उत्पादन के साधन पर किसी की मलकियत नही रहगी। उसका सामाजीकरण हो जायगा। आरम्भ होगा भूमिदान स और परिसमाप्ति होगी ग्रामदान और ग्रामीकरण मे।

16 इस समाज मे उत्पादन मे 'मानव स्पश' प्रतिष्ठित होगा

सर्वोदय समाज यन्त्रो के विरुद्ध नही परन्तु उसकी टक्नॉलाजी से यह माग है कि वह अभाव की पूर्ति तो करे परन्तु कला का नाश न करे। इसी तरह वह मानव का स्थान न ले बल्कि वह मानव की सहायता करे। अर्थात सर्वोदय समाज म यन्त्रो

का प्रयोग यथासम्भव कम होगा और कला का विकास भी साथ होगा। इस तरह सर्वोदय समाज उत्पादन ऐसा चाहता है जिसमे मानव की विभूतियों—श्रम, कला, बन्धुत्व और सहानुभूति—का विकास हो।

17 इस समाज मे सह उत्पादन केवल ग्राम तक सीमित नहीं होगा, इसका क्षेत्र अन्तर्राष्ट्रीय भी होगा

सर्वोदय समाज की विकेन्द्रित व्यवस्था म ग्राम न केवल स्वावलम्बी होंगे बल्कि दूसरे ग्रामो के साथ परस्परावलम्बन के आधार पर काय करेंगे। इन्ह एक दूसरे की अपेक्षा रहगी। समन्वयात्मक समाज मे सह उत्पादन एक दूसरे के लिए होगा। हर जगह हर क्षेत्र मे सह उत्पादन होगा, अन्तर्राष्ट्रीय सह उत्पादन भी होगा।

18 यह समाज उत्पादको का समाज होगा

सर्वोदय समाज उत्पादको का समाज होगा, इसमे स्वय पूणता की दृष्टि से विकेन्द्रीकरण होगा। इस विकेन्द्रित समाज म प्रतिनिधित्व और प्रशासन दोना सम-व्याप्त होगे। प्रशासन का उद्देश्य वस्तु नियन्त्रण होगा व्यक्ति नियन्त्रण नही अर्थात वस्तुओ के उत्पादन और वितरण पर नियन्त्रण होगा, मनुष्यो पर नियन्त्रण कम स कम होगा। उत्पादको के इस समाज म मतभेद की गुजाइश बहुत कम रहेगी। वतमान प्रजातन्त्रो की भाति इसमे न तो वोट छीने जायेंगे और न बेचे जायेंग। इस समाज म न तो आरामवादी साहूकार होगा और न लाठी पर जीने वाला गुण्डा।

19 यह समाज शासन मुक्त है

सर्वोदय समाज शासन मुक्त समाज व्यवस्था है। इसका अथ केवल इतना ही नहीं कि यह शासन हीन समाज होगा बल्कि इसका अथ यह भी है कि इसम सामाजिक शासन भी नही होगा। सभी लोग, इस समाज म, एक दूसरे के साथ अपनी एकता का अनुभव करेंगे। किसी का राज्य किसी दूसरे पर नही होगा, मेरा राज आप पर नही, आपका राज मुझ पर नही। अपना राज अपने पर। इस समाज मे "मैं" और 'तू" दोना विलीन हो जाते हैं। अपना राज और अपनी सत्ता, यही लोक सत्ता है अथात मेरी सत्ता तुम पर नही, तुम्हारी सत्ता मुझ पर नही, अपनी सत्ता अपने पर, यही वास्तविक लोक सत्ता है।

20 यह समाज राज्य की आवश्यकता नहीं समझता

सर्वोदयवादी ऐसी सामाजिक व्यवस्था की कल्पना करते हैं जिसम भय और शोषण का निराकरण हो जायगा, एक दूसरे पर हरेक को विश्वास होगा, अनुशासन और सयम जीवन के कार्यों को निर्धारित करेंगे, मानव आवश्यकतायें न्यूनतम हो जायेंगी और प्रत्येक व्यक्ति सत्य अहिंसा अस्तेय अपरिग्रह और ब्रह्मचय का पालन स्वच्छा स करेगा, वर्गों, सम्प्रदायो और जातियो का निराकरण हो जायगा और मानवता सवत्र

विद्यमान होगी । ऐसे शुद्ध समाज मे राज्य की आवश्यकता नही रहेगी, जब विकार और स्वार्थ समाज मे विद्यमान नही रहेंगे तो राज्य की आवश्यकता ही नही रहेगी। सर्वोदय राज्य के समाजवाद (Peoples Socialism) का इच्छुक है। सर्वोदयवादी राज्य को इसलिए भी आवश्यक नही समझते कि वह युद्धो की भावना को प्रोत्साहन देकर शान्ति को खतरे मे डालता है।

21 सर्वोदय समाज मे दण्ड का अभाव होगा

सर्वोदय समाज मे दण्ड का भी अभाव होगा क्योकि दण्ड 'शक्ति' और 'विकारों' का प्रतीक है। जब सर्वोदय समाज शुद्ध होगा और उसमे मानव पवित्र और नैतिक होगा तो दण्ड का प्रश्न ही नही उठेगा।

22 यह समाज क्रान्तिकारी समाज है

सर्वोदय समाज एक क्रान्तिकारी समाज है। परन्तु इसकी क्रान्ति साम्यवादियो या अन्य ऐसी ही विचारधारायें रखने वालो की भाति नही। मानव आवश्यकताओ को पूरा करना सर्वोदय की दृष्टि मे क्रान्ति नही, क्योकि यह मानव की भौतिक आवश्यकताओ की पूर्ति है यह उसकी आत्मा की तृप्ति नही। सर्वोदय उसे क्रान्ति मानता है जिससे मानव का हृदय ही परिवर्तित हो जाय, भावनायें और विचार बदल जायें, सर्वत्र समता, स्वतन्त्रता और साम्य का वातावरण हो, सामाजिक भेद भाव समाप्त हो जायें, शारीरिक श्रम और बौद्धिक श्रम का मूल्य समान हो। उसका विश्वास है कि 'सहानुभूति का अमृत' वहन से ही जीवन की पद्धति मे आमूल परिवर्तन हो सकता है। सर्वोदय इन सबको क्रान्ति की संज्ञा देता है और सर्वोदय समाज ऐसी ही क्रान्ति का प्रतिपादन करना चाहता है और इसके लिए वह प्रयत्नशील है, जैसे, भूदान द्वारा स्वामित्व की भावना का ही विसर्जन किया जा रहा है, सम्पत्तिदान द्वारा गांधीजी के ट्रस्टीशिप को व्यावहारिक रूप दिया जा रहा है अर्थात इसके द्वारा यह सिद्ध किया जा रहा है कि सब कुछ समाज का है, अस्तेय और अपरिग्रह द्वारा समाज मे विद्यमान शोषण लोभ, और स्वार्थ की भावना को नष्ट किया जा रहा है तथा संग्रह वृत्ति को भी नष्ट किया जा रहा है, गृह उद्योग, ग्रामोद्योग और कुटीर उद्योगो द्वारा ग्रामो को स्वावलम्बी बनाया जा रहा है और जनता की शक्ति का विकास किया जा रहा है, सरल, अनुशासित, संयमित जीवन पर बल दिया जा रहा है। ये सभी परिवर्तन निश्चय ही क्रान्तिकारी परिवर्तन है। और इस क्रान्ति की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि यह अहिंसक है, हृदय परिवर्तन पर आधारित है।

सर्वोदय का मूल्यांकन

सर्वोदय की यह यह कह आलोचना की जाती है कि यह अव्यावहारिक है। यह जिस मानव की कल्पना करता है वह इस पृथ्वी पर विद्यमान नहीं और जब तक मानव शुद्ध, चरित्रवान, न्यायप्रिय तथा पूर्ण नैतिक नहीं बन जाता तब तक

सर्वोदय समाज की स्थापना कठिन है। अपूर्ण मानव से बहुत ऊँची आशायें रखना केवल कोरा आदर्श मात्र है। सभी व्यक्तियों का गांधीजी और विनोबाजी जैसा आध्यात्मिक बनना सम्भव नहीं।

सर्वोदय वर्तमान सभ्यता और भौतिक उपलब्धियों का समाप्त कर एक नैतिक तथा ग्राम पर आधारित जीवन का विकास चाहता है परन्तु वह इस बात का उत्तर नहीं देता कि वे मानव समाज जो इस भौतिक सभ्यता का अभ्यस्त हो चुका है तथा जिसकी वृत्ति और स्वभाव ऐसा बन गया है वह आध्यात्मिकता के शिखर पर, जिसकी कल्पना सर्वोदय करता है, कैसे पहुँच सकता है? क्या वर्तमान समाज को पूर्णतया नष्ट कर सर्वोदय समाज की रचना चाहता है?

दृष्टीशिप, अस्तेय और अपरिग्रह सिद्धान्त रूप में तो बहुत ऊँचे और आदर्शात्मक हैं परन्तु व्यावहारिक रूप में समाज स्तर पर इनका पालन होना सम्भव नहीं। इतिहास में भी कोई उदाहरण नहीं जब मानव समाज में इन सिद्धान्तों का पूर्णतः पालन किया गया हो। व्यक्तिगत क्षेत्र के ये नियम व्यक्तिगत क्षेत्र में ही कार्यान्वित किये जा सकते हैं सामाजिक क्षेत्र में नहीं।

सर्वोदयवादी यह कहते हैं कि वर्तमान दल प्रणाली, निर्वाचन व्यवस्था तथा संसद प्रजातन्त्र के नाम पर जनता का शोषण करती हैं तथा इन्हें समाप्त कर देना चाहिए। परन्तु प्रजातन्त्र में ये सब तत्त्व आवश्यक हैं और इनके अभाव में प्रजातन्त्र कार्यान्वित नहीं किया जा सकता। तथ्य तो यह है कि इन्हें समाप्त करने की आवश्यकता नहीं वल्कि इन्हें सुधारने की आवश्यकता है। सर्वोदय वहाँ भूल करता है। जहाँ इन्हें समाप्त करने की वह बात करता है। वर्तमान बड़े राष्ट्रों में ग्राम के प्रजातन्त्र की बात करना न तो सम्भव है और न विवेकपूर्ण। सी० डी० वर्न्स ने बहुत सुन्दर कहा है कि "इस तथ्य से कोई इन्कार नहीं करता कि वर्तमान प्रतिनिधि विधान सभायें त्रुटिपूर्ण हैं परन्तु यदि एक मोटर अच्छी तरह कार्य नहीं करती तो उसमें सुधार की चिन्ता छोड़ बैलगाड़ी में सफर करना क्या मूर्खतापूर्ण नहीं माना जायगा भले ही वह कितना ही अद्भुत विचार क्यों न हो।'

सर्वोदय वादियों का यह कहना भी अतिशयोक्ति पूर्ण है कि बहुमत अल्पमत की सर्वदा उपेक्षा करता है। यह कुछ हालातों में तो ठीक हो सकता है परन्तु बहुमत सर्वदा ही अल्पमत की उपेक्षा करता है और केवल बहुमत के स्वार्थ की बात करता है, यह कहना ठीक नहीं। बहुमत को राष्ट्र की इच्छा का आदर करना पड़ता है जिसमें बहुमत अल्पमत दोनों आ जाते हैं। कोई भी बहुमत राष्ट्र की इच्छाओं की उपेक्षा अपने लिए खतरा मोल लेकर ही कर सकता है। लोक कल्याणकारी प्रजातान्त्रिक राज्य में, जहाँ तक सम्भव होता है, राष्ट्र के बारे में सोचा

जाता है न कि केवल बहुमत के बारे में। बीसवीं शताब्दी की प्रजातान्त्रिक सरकारें तो अल्पमत जातियों, पिछड़े हुए लोगों के उत्थान के बारे में भी सदैव प्रयत्नशील रहती हैं।

गोपाराजू रामचन्द्र राओ (Goparaju Ram Chandra Rao), जिन्हें गोरा (Gora) के नाम से पुकारा जाता है, जैसे सर्वोदय नेताओं का भी विश्वास है कि "सर्वोदय आन्दोलन का अराजनीतिक दृष्टिकोण ही इस जीवन की मुख्य धारा से पृथक करने के लिए उत्तरदायी है।" *उनकी यह धारणा है कि "आन्दोलन को पुन पुष्ट करने के लिए राजनीति में सक्रिय भाग लेने पर बल देना होगा।" सर्वोदय समाज के उन्नीसवें अधिवेशन के, मई 9, 1971* को नासिक में, उद्घाटन भाषण में उन्होंने कहा कि "यदि हमने राजनीतिक दृष्टिकोण से सोचा होता और पंचायत राज पर काबू पाया होता तो हम विकेन्द्रीकरण को प्रभावपूर्ण ढंग से लागू कर सकते थे और लाभकारी ढंग से सरकार को लोगों के नियन्त्रण में रख सकते थे उनकी राजनीति के प्रति उदासीनता ने राजनीतिक शक्ति को व्यावसायिक राजनीतिज्ञों के हाथों में सौंप दिया है ग्रामदान आन्दोलन सिद्धान्त रूप से अच्छा होते हुए भी, राजनीतिक पूरक की कमी के कारण, अधिक प्रगति नहीं कर पाया हम दलों पर प्रतिबन्ध लगा सकते हैं परन्तु राजनीति पर नहीं" उन्होंने यह भी कहा कि हम "जय जगत" का नारा तो लगाते हैं परन्तु हममें से अधिकांश हिन्दू स्वभाव और आदतों से ऊपर नहीं उठ सके अच्छी से अच्छी स्थिति में हम सब धर्मों के प्रति सम्मान बढ़ा सके हैं, सकारात्मक निरपेक्षता की स्थापना नहीं कर सके प्रार्थना को भी व्यक्तिगत क्षेत्र के लिए छोड़ देना चाहिए सामान्य कार्यक्रमों पर इसका प्रयोग नहीं होना चाहिए।'[1] *परन्तु प्रश्न यह है कि इन सब सुझावों को स्वीकार करना क्या सर्वोदय की मूल विचारधारा पर कुठाराघात करना तथा उसे खण्डित करना नहीं होगा?*

इन आलोचनाओं के बावजूद भी यह कहना होगा कि सर्वोदय मानव समाज के समक्ष एक नई सभ्यता का प्रारूप पेश करता है जिसमें स्वार्थ, अहम और लोभ वृत्ति के विसर्जन की माँग की गई है। यह जीवन की वर्तमान विचारधाराओं को बदल कर उन्हें आध्यात्मिकता पर आधारित करना चाहता है यह जीवन को नैतिक रूप से श्रेष्ठ बनाता है। आज हिंसा से पीड़ित विश्व के समक्ष एक ही विकल्प है कि या तो हिंसा को स्वीकार कर अपनी कब्र खोद ले या अहिंसा का मार्ग अपना कर स्थायी शान्ति और आन्तरिक सुख को प्राप्त करे। आर० पी० मसानी के शब्दों में,

---

1 All quotations referred to here are from Indian Express, dt 10 5 1971 *Traslation by the author*

विनोबाजी ने "जनता के हाथो मे जीवन की समस्त समस्याओ के निराकरण के लिए एक कुजी रख दी है और इस अन्धकारपूर्ण काल मे आशा का द्वार खोल दिया है।"[1]

क्या सर्वोदय समाजवाद है ?

कट्टर मार्क्सवादियो का कहना है कि सर्वोदय समाजवाद नही। वे कहते है कि संघर्ष और हिंसा साम्यवाद या समाजवाद लाने के लिये आवश्यक है। परन्तु उनकी यह विचारधारा न केवल मिथ्या है बल्कि बेबुनियाद भी है क्योकि समाजवाद की स्थापना के लिए हिंसा, नियन्त्रण और संघर्ष की आवश्यकता नही बल्कि अहिंसा, सहयोग और सद्भावना की आवश्यकता है। हिंसा द्वारा प्राप्त की हुई चीज हिंसा द्वारा ही स्थापित रह सकती है जो चिरकाल तक नही रह सकती। समाजवाद का वास्तविक अर्थ है सबके साथ समान व्यवहार शोषण का अन्त, आर्थिक विषमताओ का अभाव तथा न्याय की व्यवस्था, इत्यादि। इस दृष्टिकोण से सर्वोदय समाजवाद का सर्वोत्तम रूप है क्योकि इन उद्देश्यो की पूर्ति सर्वोदय अहिंसक साधना द्वारा पूरा करता है। वह न केवल साध्य की बल्कि साधनो की पवित्रता पर भी बल देता है।

यह कहना भी उचित नही कि केवल राज्य के हाथो मे उत्पादन के साधनो को केन्द्रीकृत करके ही समाजवाद का विकास हो सकता है या लोगो के दुःख-दर्द मिट सकते है। समाजवाद विकेन्द्रित व्यवस्था मे जहा छोटे छोटे स्वशासी और स्वावलम्बी ग्राम है तथा जहां स्वार्थ, लाभ, अहम और स्वामित्व की भावना का लोप हो गया है और जहां सर्वत्र सहयोग, सद्भावना, प्रेम और न्याय विद्यमान है, भी सम्भव है। जीवन के ढग और सामाजिक सगठन के रूप मे समाजवाद सर्वदर्शीय है।

समाज का मूल सम्बन्ध मानव के केवल आर्थिक सम्बन्धो से ही नही बल्कि नैतिक और सामाजिक सम्बन्धो से भी है। इस दृष्टि से तो सर्वोदय एक नैतिक, धार्मिक और सामाजिक आन्दोलन भी है। सर्वोदय समाज मानव के स्वतन्त्रता, समानता और बन्धुत्व के मूल्यो पर आधारित है। चीन और रूस के विपरीत—जहाँ व्यक्तिगत इच्छा का गला घोटा जाता है—सर्वोदय समाज मे व्यक्ति रूसो के सामान्य इच्छा के सिद्धान्त की तरह स्वतन्त्र और समान रहता है। सर्वोदय मे अच्छाई की कसौटी मानव का बाह्य और आन्तरिक कल्याण है। सर्वोदय मे ही व्यक्ति और समाज का समन्वय बहुत सुन्दर ढग से किया गया है। यही समाजवाद है। श्री जय प्रकाश नारायण के शब्दो मे, "सर्वोदय जन समाजवाद है (people's socialism)। चाहे प्रत्येक समाजवादी सर्वोदय से सहमत हो या न हो, उसे इस बात से तो सहमत होना चाहिए कि जनता का समाजवाद जितना अधिक होगा और राज्य

---

1 Masani, R P *The Five Gifts*, p 192

जाता है न कि केवल बहुमत के बारे में। बीसवीं शताब्दी की प्रजातान्त्रिक सरकारें तो अल्पमत जातियों, पिछड़े हुए लोगों के उत्थान के बारे में भी सदा प्रयत्नशील रहती हैं।

गोपाराजू रामचन्द्र राओ (Goparaju Ram Chandra Rao), जिन्हें गोरा (Gora) के नाम से पुकारा जाता है, जैसे सर्वोदय नेताओं का भी विश्वास है कि "सर्वोदय आन्दोलन का अराजनीतिक दृष्टिकोण ही इसे जीवन की मुख्य धारा से पृथक करने के लिए उत्तरदायी है।" उनकी यह धारणा है कि "आन्दोलन को पुन पुष्ट करने के लिए राजनीति में सक्रिय भाग लेने पर बल देना होगा।" सर्वोदय समाज के उन्नीसवें अधिवेशन के, मई 9, 1971 को नासिक में, उद्घाटन भाषण में उन्होंने कहा कि 'यदि हमने राजनीतिक दृष्टिकोण से सोचा होता और पंचायत राज पर काबू पाया होता तो हम विकेन्द्रीकरण को प्रभावपूर्ण ढंग से लागू कर सकते थे और लाभकारी ढंग से सरकार को लोगों के नियन्त्रण में रख सकते थे उनकी राजनीति के प्रति उदासीनता ने राजनीतिक शक्ति को व्यावसायिक राजनीतिज्ञों के हाथों में सौंप दिया है ग्रामदान आन्दोलन सिद्धान्त रूप से अच्छा होते हुए भी, राजनीतिक पूरक की कमी के कारण, अधिक प्रगति नहीं कर पाया हम दलों पर प्रतिबन्ध लगा सकते हैं परन्तु राजनीति पर नहीं" उन्होंने यह भी कहा कि हम 'जय जगत्' का नारा तो लगाते हैं परन्तु हममें से अधिकांश हिन्दू स्वभाव और आदतों से ऊपर नहीं उठ सके अच्छी से अच्छी स्थिति में हम सब धर्मों के प्रति सम्मान बढ़ा सके हैं, सकारात्मक निरपेक्षता की स्थापना नहीं कर सके प्रार्थना को भी व्यक्तिगत क्षेत्र के लिए छोड़ देना चाहिए सामान्य कार्यक्रमों पर इसका प्रयोग नहीं होना चाहिए।'[1] परन्तु प्रश्न यह है कि इन सब सुझावों को स्वीकार करना क्या सर्वोदय की मूल विचारधारा पर कुठाराघात करना तथा उसे खण्डित करना नहीं होगा?

इन आलोचनाओं के बावजूद भी यह कहना होगा कि सर्वोदय मानव समाज के समक्ष एक नई सभ्यता का प्रारूप पेश करता है जिसमें स्वार्थ, अहम और लोभ वृत्ति के विसर्जन की मांग की गई है। यह जीवन की वर्तमान विचारधाराओं को बदल कर उन्हें आध्यात्मिकता पर आधारित करना चाहता है यह जीवन को नैतिक रूप से श्रेष्ठ बनाता है। आज हिंसा से पीड़ित विश्व के समक्ष एक ही विकल्प है कि या तो हिंसा को स्वीकार कर अपनी कब्र खोद ले या अहिंसा का मार्ग अपना कर स्थायी शान्ति और आन्तरिक सुख को प्राप्त करे। आर० पी० मसानी के शब्दों में,

1 All quotations referred to here are from Indian Express, dt 10 5 1971 Traslation by the author

विनोबाजी ने "जनता के हाथो मे जीवन की समस्त समस्याओ के निराकरण के लिए एक कुंजी रख दी है और इस अधकारपूर्ण काल म आशा का द्वार खोल दिया है।"[1]

क्या सर्वोदय समाजवाद है ?

कट्टर मार्क्सवादियो का कहना है कि सर्वोदय समाजवाद नही। वे कहते है कि सघर्ष और हिंसा साम्यवाद या समाजवाद लाने के लिये आवश्यक है। परन्तु उनकी यह विचारधारा न केवल मिथ्या है बल्कि बेबुनियाद भी है क्योकि समाजवाद की स्थापना के लिए हिंसा, नियन्त्रण और सघर्ष की आवश्यकता नही बल्कि अहिंसा, सहयोग और सदभावना की आवश्यकता है। हिंसा द्वारा प्राप्त की हुई चीज हिंसा द्वारा ही स्थापित रह सकती है जो चिरकाल तक नही रह सकती। समाजवाद का वास्तविक अर्थ है सबके साथ समान व्यवहार, शोषण का अन्त, आर्थिक विषमताओ का अभाव तथा न्याय की व्यवस्था, इत्यादि। इस दृष्टिकोण से सर्वोदय समाजवाद का सर्वोत्तम रूप है क्योकि इन उद्देश्यो की पूर्ति सर्वोदय अहिंसक साधना द्वारा पूरा करता है। वह न केवल साध्य की बल्कि साधना की पवित्रता पर भी बल देता है।

यह कहना भी उचित नही कि केवल राज्य के हाथो म उत्पादन के साधनो को केन्द्रीकृत करके ही समाजवाद का विकास हो सकता है या लोगो के दुख दर्द मिट सकते हैं। समाजवाद विकेन्द्रित व्यवस्था म, जहा छोटे छोटे स्वशासी और स्वावलम्बी ग्राम हो तथा जहाँ स्वार्थ, लोभ, अहम् और स्वामित्व की भावना का लोप हो गया है और जहा सर्वत्र सहयोग, सदभावना, प्रेम और न्याय विद्यमान है, भी सम्भव है। जीवन के ढग और सामाजिक सगठन के रूप म समाजवाद सर्वदेशीय है।

समाज का मूल सम्बन्ध मानव के केवल आर्थिक सम्बन्धो स ही नही बल्कि नैतिक और सामाजिक सम्बन्धो से भी है। इस दृष्टि से तो सर्वोदय एक नैतिक, धार्मिक और सामाजिक आन्दोलन भी है। सर्वोदय समाज मानव के स्वतन्त्रता, समानता और बन्धुत्व के मूल्यो पर आधारित है। चीन और रूस के विपरीत—जहाँ व्यक्तिगत इच्छा का गला घोटा जाता है—सर्वोदय समाज मे व्यक्ति रूसो के सामान्य इच्छा के सिद्धान्त की तरह स्वतन्त्र और समान रहता है। सर्वोदय म अच्छाई की कसौटी मानव का बाह्य और आन्तरिक कल्याण है। सर्वोदय म ही व्यक्ति और समाज का समन्वय बहुत सुन्दर ढग से किया गया है। यही समाजवाद है। श्री जय प्रकाश नारायण के शब्दो म, सर्वोदय जन समाजवाद है (people s socialism)। चाहे प्रत्येक समाजवादी सर्वोदय स सहमत हो या न हो, उस इस बात से तो सहमत होना चाहिए कि जनता का समाजवाद जितना अधिक होगा और राज्य

1 Masani, R P *The Five Gifts*, p 192

द्वारा थोपा हुआ समाजवाद जितना कम होगा, समाजवाद उतना ही अधिक पूर्ण और उतना ही अधिक वास्तविक होगा।"

EXERCISES

1 सर्वोदय का अर्थ समझाइये। क्या सर्वोदय समाजवाद का एक स्वरूप है?
2. सर्वोदय समाज के लक्षणों का वर्णन कीजिये।
3 "सर्वोदय समाज एक क्रान्तिकारी विचारधारा है"। क्या आप इस कथन से सहमत हैं? कारण लिखिए।
4 सर्वोदय समाज में भूदान और ग्रामदान का क्या महत्त्व है?
5 भूदान आन्दोलन का उद्देश्य बताते हुए भारतीय समाज पर उसके प्रभाव का वर्णन कीजिये।
6 "भूदान 'स्वामित्व' की भावना का विसर्जन चाहता है।" क्या इस उद्देश्य में यह सफल रहा है? यदि नहीं तो क्या इसमें परिवर्तन की आवश्यकता है?
7. सर्वोदय समाज में राज्य की स्थिति का वर्णन कीजिये।
8 सर्वोदय और अराजकतावाद में क्या भेद है?

14 धर्म निरपेक्षता
(Secularism)

धर्म निरपेक्ष विचारो की उत्पत्ति तथा उनका विकास
(Origin of Secular Ideas and their Development)

धम का मानव जीवन म अत्यधिक प्रभाव रहा है। मानव का सामाजिक तथा राजनीतिक जीवन, उसकी विचारधाराएँ तथा त्रिया कलाप धार्मिक भावनाओ स सवदा प्रेरित तथा प्रभावित रहे है। प्राचीन तथा मध्य युग म धम का प्रभाव अत्यधिक था, वतमान समय मे भी, यद्यपि पिछली चार शताब्दियो से धम निरपेक्ष (लौकिक) विचारधाराओ की लहर चल रही है, धम का प्रभाव प्रजातान्त्रिक राज्यो मे भी उतना ही नजर आता है जितना कि निरकुश या सनिक राज्यो में। उदाहरणत तया प्रजात त्र की जननी कहलाय जाने वाले देश इगलण्ड मे, यद्यपि धार्मिक स्वतन्त्रता है, फिर भी प्रोटेस्ट ट धम का अनुयायी ही राज्य सिंहासन पर बठ सकता है, पाकिस्तान तो इस्लाम धम पर ही आधारित है।

इतिहास मे एक समय ऐसा भी गुजरा है जब राजा और पुरोहित दोनों एक ही व्यक्ति होते थ जस प्राचीन यहूदियो म। जहाँ राजा और पुरोहित पृथक पृथक् हुआ करते थे वहाँ पर भी राज्य की नीतिया धर्माधिकारियो क अधीन हुआ करती थी। रोमन सम्राट अपने आपको "ईश्वर" या देवता" ही समझते थ और प्रजा उनकी पूजा भी वैसे ही करती थी। जब सम्राटो या राजाओ का मुकुट पहनाया जाता तो उस समय जिस विशेषण का प्रयोग किया जाता था वह था "ईश्वर के वरदान से।" मध्य युग म जब चच ने लौकिक विषयो म भी अपनी सर्वोच्चता की माग की तो ईश्वर को ही राजनीतिक विचारो का केन्द्र माना।

इतिहास मे अनेक धार्मिक राज्य (Theocratic States) भी हुए हैं। इन राज्यो मे राजा जिस धम का अनुयायी होता था प्रजा को उसी धम का अनुयायी

बनना पड़ता था अथवा उसे दुख, पीडा, सताप आदि का सामना करना पडता। इन राज्यो म उन्ही व्यक्तियो को पूर्ण नागरिक स्वतन्त्रतायें थी जो राज्य धर्म के अनुयायी थे। राज्य धर्म की उल्लघना अपराध माना जाता था। प्राचीन यूनान, मिस्र और रोम म यही स्थिति थी।

धर्म और राजनीति के सम्मिश्रण का बडा कुप्रभाव हुआ। धर्म के नाम पर निर्दोष जनता पर अत्याचार किये गये, उसका शोषण किया गया, उसके विवेक से खिलवाड किया गया तथा उससे राज्य की उचित अनुचित आज्ञाओं का पालन ईश्वरीय आज्ञाओ के रूप मे करवाया गया। राज्याज्ञा की अवहेलना पाप और राज्याज्ञा की पालना मोक्ष समझा जाने लगा। इस तरह धर्म के नाम पर व्यक्ति के व्यक्तित्व को नष्ट करने का प्रयास किया गया।

मध्य काल मे राज्य और धर्म

मध्य युग के प्रारम्भ मे पोप (चर्च या धर्म) का 'आध्यात्मिक मुखिया' (Spiritual head) माना जाता था। परन्तु समय बीतने पर पोप सर्वशक्तिमान बन गया। इतना ही नही उस समय के विचारको ने तो धर्म को राज्य से ऊपर माना। सन्त अम्ब्रोज (St Ambrose) का तो यह विचार था कि धर्म को राजा के अधीन नही होना चाहिए बल्कि राजा को स्वय धर्म की सत्ता को स्वीकार करना चाहिए। उसका विश्वास था कि "ईसाई धर्म के किसी अन्य अनुयायी की भाँति राजा भी चर्च का पुत्र है। वह चर्च के भीतर है, ऊपर नही।"[1] उसकी यह भी धारणा थी कि राजा को धार्मिक विषयो मे पोप से असहमत नही होना चाहिए।

मध्य युग म जहा एक ओर पोप की सत्ता के समर्थक थे वहाँ, दूसरी ओर, उसकी सत्ता के विरोधी भी थे। इनमे मुख्य थे मारसिग्लियो आफ पदुआ (Marsiglio of Padua), विलियम ऑफ आकम (William of Ockam) और डान्टे (Dante)। चौदहवी शताब्दी म मारसिग्लियो आफ पदुआ ने अपनी पुस्तक डिफेन्सर पेसिस (Defensor Pacis) म दैवी और मानवीय कानूनो के भेद को इस प्रकार व्यक्त किया 'नागरिको के अधिकार उनके द्वारा स्वीकृत विश्वास से स्वतन्त्र हैं और किसी व्यक्ति को उसके धर्म के कारण दण्ड नही मिलना चाहिए।'[2]

धर्म और राजनीति के मिश्रण के विरुद्ध समय बीतने पर, एक प्रतिक्रिया

---

1 The emperor like any other Christian is a son of the Church He is within the Church not above it '

2 The rights of citizens are independent of the faith they profess and no man may be punished for his religion Marsiglio of Padua, Defensor Pacis Quoted by D E Smith in his book India is a Secular State, p 12

शुरू हुई जिसके फलस्वरूप राजनीतिक क्षेत्र मे धम की प्रधानता का अस्वीकार कर दिया गया। यह प्रतिक्रिया पुनर्जागरण और सुधार आन्दोलन के रूप म सामने आयी।

पुनर्जागरण तथा सुधार आन्दोलन (Renaissance and Reformation)

पन्द्रहवी शताब्दी के अन्त तक एक नवीन परिवतन हुआ जिसने पोप तथा पादडियो की स्थिति को बहुत निबल कर दिया। बुद्धिजीवियो तथा अनेक पुण्यात्माओं ने जीवन के प्रत्यक क्षेत्र से धम के प्रभाव को स्वतन्त्रताओ पर धम के नियन्त्रण को, धार्मिक अन्ध विश्वास को, राज्य के कार्यों मे धम के अनावश्यक हस्तक्षेप को समाप्त करने के लिए उसके विरुद्ध आवाज उठाई। इससे पुनजागरण का आरम्भ हुआ। पुनर्जागरण ने विचारो की स्वतन्त्रता पर बल दिया, तकहीन अथवा अनुचित चीजो और विश्वासो के प्रति शकायें व्यक्त की और धम निरपेक्षता और विज्ञान का युग आरम्भ हुआ। बुद्धिजीवियो की धारणा थी कि धम का सम्बन्ध विश्वास और परलोक से है इसलिए धम विवेक के विरुद्ध है। जो चीज विवक द्वारा या वज्ञानिक अनुसन्धान द्वारा सिद्ध नही की जा सकती उसका लौकिक विषयो से कोई सम्बन्ध नही होना चाहिए।

मकियावली (Machiavelli) प्रथम आधुनिक लेखक है जिसने राजनीति को धम से पृथक किया। प्रशासन के विषयो म मकियावली नतिक या धार्मिक नियमो को नही मानता। उसका कहना है कि यदि अनतिक नियमो द्वारा भी राज्य को सुरक्षित रखा जा सकता है तो उन अनतिक नियमो का प्रयोग उचित है। उसका पूण विश्वास है कि एक ही समय पर व्यक्ति राज्य और धम की सेवा नही कर सकता। मकियावली के लिए धम का निजी क्षेत्र है इसलिए राज्य म उसे निम्न स्थान प्राप्त होना चाहिए।

सोलहवी शताब्दी मे, यूरोप म, मार्टिन लूथर, जान काल्विन के नेतृत्व म जो क्रान्ति हुई उसने पोप की शक्ति को तो अवश्य कम कर दिया परन्तु व्यक्ति को अभी तक धार्मिक स्वतन्त्रता प्राप्त नही हुई थी। धम सुधार आन्दोलन ने, वास्तव म, सब प्रकार की सत्ता के विरुद्ध क्रान्ति खडी कर दी। इस क्रान्ति न ही नागरिक और धार्मिक स्वतन्त्रता के मापदण्डो को स्थापित किया। साथ म बुद्धिजीवियो ने व्यक्ति को धार्मिक अन्ध विश्वासो, धर्माधिकारियो के नियन्त्रण और धम शास्त्रो की दासता से छुटकारा दिलाने का प्रयास किया। बुद्धिजीवियो के प्रयत्नो के फलस्वरूप धार्मिक सहिष्णुता की भावना का विकास हुआ, धम व्यक्ति के निजी क्षेत्र का विषय बन गया, राज्य और धम पृथक हो गये।

सत्रहवी शताब्दी राजनीतिक और आध्यात्मिक प्रणालियो म प्रधानत धम निरपेक्ष थी। इसके लिए अलथेसियस (Althasices), ग्रोशियस (Grotius) और हाब्स द्वारा प्राकृतिक कानूनो का विकास ही उत्तरदायी था। हॉब्स ने सारी लौकिक सस्थाओ पर, चच सहित, राज्य की सर्वोच्चता के सिद्धान्त का प्रतिपादन किया।

[illegible] के [illegible] के [illegible] न केवल राजनीति से पृथक हो गया बल्कि [illegible] के [illegible]। [illegible] की नीति धार्मिक संस्थाओं का [illegible] के [illegible] किया।

[illegible] के [illegible] लेखक मॉण्टेस्क्यू ने धार्मिक सहिष्णुता पर बल देकर राष्ट्रीय [illegible] का [illegible] किया। [illegible] की नीति माण्टेस्क्यू चर्च को राज्य का एक [illegible] था। माण्टेस्क्यू प्राचीन लेखकों के इस विचार से सहमत नहीं था कि राजनीतिक एकता के लिए धार्मिक एकता अनिवार्य है। उसने इस सिद्धान्त पर बल दिया कि एक देश में अनेक धर्मों के अनुयायी इकट्ठे रह सकते हैं और उनमें राष्ट्रीय एकता का विकास हो सकता है। इस तरह माण्टेस्क्यू ने धार्मिक सहिष्णुता का प्रचार किया। रूसो के विचारों ने भी पारस्परिक प्रेम और भ्रातृभाव को [illegible] के [illegible]। फ्रांस [illegible] ने भी निम्न और सर्वहारा वर्ग [illegible] के विचारों को जन्म दिया। इन सब बातों से पोप की शक्ति [illegible] होती गई, [illegible] विचारों और धर्मनिरपेक्ष विचारों को प्रोत्साहन मिलता गया। इससे यूरोप में एक [illegible] धर्मनिरपेक्ष विश्ववाद को जन्म मिला जिसे प्रबुद्धवाद ([illegible]) कहते हैं।

उन्नीसवीं शताब्दी के समाजवादी सिद्धान्तों ने विश्वव्यापी मानवतावादी न्याय [illegible] सम्बन्धी विचारों का [illegible] किया। सर्वहारा वर्ग का यह प्रयास कि अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर एक ऐसे संगठन का निर्माण किया जाय जो सारी मानवता के लिए [illegible] और [illegible] विचारों को बल दिया।

[illegible] के उत्तरार्द्ध में काण्ट और हीगल आदर्शों ने विचारधारा के [illegible] का उद्देश्य [illegible] है और उसका कार्य अच्छे जीवन [illegible] को दूर करना है ताकि पूर्ण जीवन की सिद्धि हो [illegible] में विश्वास करता था और वह व्यक्तियों में किसी [illegible] होलियोक (Holyocke) ने एक धर्म निरपेक्ष [illegible] रंग, लिंग, धर्म, राष्ट्रीयता, आदि किसी आधार [illegible] भेद [illegible] नहीं किया जाता।

[illegible] है कि [illegible] विचारों ने विचार [illegible] राष्ट्रवाद [illegible] आर्थिक [illegible] करना [illegible] है। [illegible] धर्मनिरपेक्ष प्रवृत्ति [illegible] ही समाज [illegible] कम किया।

बीसवीं शताब्दी में धार्मिक [illegible] जाता [illegible] सन् 1971 [illegible] की पुष्टि [illegible]

पाकिस्तान के आधार (द्वि राष्ट्र का सिद्धान्त जो इस्लाम धर्म पर आधारित था) को ही नष्ट कर दिया है। आज धर्म को केवल निजी (व्यक्तिगत) क्षेत्र का विषय समझा जाता है। धर्म राजनीति से पृथक है।

वर्तमान समय में राज्य धर्म निरपेक्ष हैं। परन्तु यह कहना बहुत कठिन है कि धर्म का प्रभाव राजनीतिक क्रियाकलापों या राजनीतिक सिद्धान्तों पर नहीं पड़ता। यदि विश्व के प्रजातान्त्रिक राज्यों की निर्वाचन प्रणालियों का अध्ययन किया जाय तो स्पष्ट हो जायगा कि धर्म का प्रभाव मतदान पर न्यूनाधिक मात्रा में पड़ता है। स्वयं प्रजातान्त्रिक प्रणाली यहूदी ईसाइयत की धार्मिक विरासत से प्रभावित थी। ग्रिफिथ का विश्वास है कि "जनता के बहुमत को सजीव बनाये रखने के लिये यदि ईश्वर में विश्वास या ईश्वरेच्छा के प्रति श्रद्धा न हो तो प्रजातन्त्र का नाश अवश्यम्भावी है।"[1] जान आस्टिन, जिसे कानूनी वस्तुनिष्ठावाद (legal positivism) का पिता माना जाता है ने भी 'ईश्वर के कानून' को विधि निर्माण का मानक माना है। मकाइवर (MacIver) की तो यह धारणा है कि मानव जाति को 'धर्म की स्वाभाविक भूख है' (natural hunger for religion), विज्ञान धर्म का कोई विकल्प नहीं", 'धर्म की मृत्यु'[2] नहीं हो सकती। इंगलैण्ड में समाजवादी विचारों के प्रसार के बारे में क्लेमेन्ट आर० एटली अपनी रचना "मजदूर दल का स्वरूप" (1937) में लिखता है यद्यपि यह बड़े आश्चर्य की बात प्रतीत होती है, "समाजवादी आन्दोलन के निर्माण में जिस प्रभाव को प्रथम स्थान प्राप्त है वह है धर्म।"[3]

इस तरह आज भी अनेक राजनीतिक स्थितियों में धर्म शक्तिशाली प्रेरक शक्ति है। धर्म ने प्रत्यक्ष रूप से नैतिक नियमों द्वारा या अप्रत्यक्ष रूप से परम्पराओं या रीति रिवाजों द्वारा मानव के व्यवहार को प्रभावित ही नहीं किया बल्कि वर्तमान समाज को उसका स्वरूप तथा सम्बद्धता भी प्रदान की है। परन्तु इस पर भी विश्व के अधिकांश राज्य आज धर्म निरपेक्षता पर आधारित हैं धर्म पर नहीं। आज यह समझा जाता है कि धर्म और राजनीति का गठबन्धन व्यक्ति और समाज दोनों के लिए हानिकारक है। प्रजातान्त्रिक लोक कल्याणकारी राज्य में तो यह अनिवार्य तत्त्व समझा जाता है। एक लेखक ने ठीक ही लिखा है कि 'वास्तव में व्यावहारिक रूप में

---

1 See Brecht Arnold *Political Theory*, p 457

2 MacIver Quoted by Brecht, Arnold, *Ibid* p 465

3 "The first place in the influence that built up the Socialist movement must be given to religion"—Attlee, Clement R The Lobour Party in Perspective (1937) Quoted by Ebenstein, William *Modern Political Thought The Great Issues*, p 543

विश्व या लगभग प्रत्येक राज्य एक धर्म निरपेक्ष राज्य है यद्यपि वह कुछ सीमा तक अपने प्राचीन रीति रिवाजों और परम्पराओं को कायम रखता है। आधुनिक काल में कोई भी सभ्य राज्य धर्म निरपेक्ष राज्य के सिद्धान्त के बिना टिक नहीं सकता"।

इससे पूर्व कि धर्म निरपेक्ष राज्य के अर्थ को स्पष्ट किया जाय कुछ इससे सम्बन्धित शब्दों को पहले समझना लाभकारी होगा। ये शब्द हैं धर्म निरपेक्ष (Secular), धर्म निरपेक्षतावादी (Secularist) तथा धर्म निरपेक्षता (Secularism)।

(i) धर्म निरपेक्ष (Secular)

धर्म निरपेक्ष या लौकिक शब्द का अर्थ उस चीज से है जिसका सम्बन्ध 'इस जीवन' या 'इस विश्व' से है अर्थात् जो धार्मिक नहीं और जो धार्मिक विचारों से बाध्य नहीं। दूसरे शब्दों में, इसका अर्थ है "सांसारिक"। इसका सम्बन्ध वैज्ञानिक उपलब्धियों और भौतिक आवश्यकताओं की पूर्ति से है। नकारात्मक दृष्टि से इसका अर्थ है धर्म या धार्मिक परम्पराओं या धार्मिक शिक्षाओं से वियोजन (dissociation)। क्योंकि राज्य सांसारिक और लौकिक चीज है इसलिये इसका सम्बन्ध बुद्धि और विवेक से है धर्म या विश्वास से नहीं।

धर्म अन्तरात्मा से सम्बन्धित है। यह विश्वास और परलोक की चीज है। यह व्यक्ति को शुद्ध, सात्विक और तेजस्वी बनाने के लिए है। राज्य सामाजिक जीवन के इन सभी पक्षों को संगठित और विकसित करने के लिए है ताकि व्यक्ति अपने दिन प्रति दिन की आवश्यकताओं को ठीक प्रकार से प्राप्त कर सके और उन्हें प्राप्त करने में उसे इतना समय भी मिल सके कि उसकी निर्माणात्मक शक्तियाँ समुचित विकास पा सकें।

(ii) धर्म निरपेक्षवादी (Secularist)

धर्म निरपेक्षवादी उस व्यक्ति को कहते हैं जो धर्म, धार्मिक प्रणाली और पूजा स्वरूपों की ओर ध्यान न देते हुए मानव कल्याण को नैतिकता पर आधारित करता है। इतना ही नहीं वह सार्वजनिक शिक्षा या अन्य सार्वजनिक विषयों के प्रबन्ध में धर्म के प्रवेश का निषेध चाहता है। स्पष्ट है कि धर्म निरपेक्ष व्यक्ति का दृष्टिकोण संकीर्ण और सीमित विचारों से परे होता है। वह धार्मिक कट्टरता नहीं बल्कि वह सभी धर्मों के प्रति सहिष्णुता का पोषक होता है। उसका मुख्य उद्देश्य मानव कल्याण होता है। सार्वजनिक कार्यों में वह किसी प्रकार के धार्मिक तत्त्वों के प्रवेश को स्वीकार नहीं करता।

(iii) धर्म निरपेक्षता (Secularism)

हॉलिओक के शब्दों में "धर्म निरपेक्षता वह सिद्धान्त है जो जीवन के तत्काल कर्तव्य के रूप में, सम्भावित उच्चतम बिन्दु तक, मानव के नैतिक और

बौद्धिक स्वभाव के विकास की खोज करता है।"[1] इस तरह "धम निरपेक्षता का निश्चित उद्देश्य होता है इसके अनुयायियो को उस उद्देश्य के लिए जीना और मरना पडना है और मानव के वतमान जीवन के लिए काय करना पडता है"।

धम निरपेक्षता ऐसा सिद्धान्त है जो देश के नागरिको मे किसी आधार पर —धम, सम्प्रदाय, लिंग, रग, विश्वास, राष्ट्रीयता, जन्म, आदि—कोई भिन्नता नही करता। सभी को अपनी इच्छानुसार किसी धम को अपनाने या छोडने का अधिकार होता है। धम के क्षेत्र म सहिष्णुता का व्यावहार किया जाता है।

धम निरपेक्षता के स्कूल (Schools of Secularism)

धर्म निरपेक्षता के तीन स्कूल हैं जो इस प्रकार है —

(i) एक वह जो पूणतया भौतिक विचारो पर निभर करता है। यह धम से बिल्कुल सम्बध नही रखना।

(ii) दूसरा वह है जो धम के साथ भौतिक व्यवहार को भी बल देता है। यह गर धामिक नैतिकता द्वारा गाइड (guide) होता है।

(iii) तीसरा वह है जो शुद्ध आध्यात्मवाद पर निभर करता है परन्तु इसके क्रिया कलाप गर धार्मिक नतिकता द्वारा निर्देशित होत हैं।

धम निरपेक्ष राज्य का अथ (Meaning of Secular State)

धम निरपेक्ष राज्य का अथ उस राज्य स है जिसका अपना कोई धम नही और जो धम के नाम पर किसी प्रकार की भिन्नता[2] नही करता। इस प्रकार के राज्य मे किसी धम को राज्य द्वारा कोई विशेष सरक्षण न तो प्राप्त होता है और न ही किसी धम विशेष का राज्य प्रचार प्रचलन या नियन्त्रण व निर्देशन करता है। राज्य की दृष्टि मे सब धम समान होते है और सबका एक समान आदर होता है। राज्य की नीतिया किसी धम द्वारा निर्धारित नही होती बल्कि सामाजिक कल्याण द्वारा निर्धारित होती है।

धम निरपेक्ष राज्य किसी व्यक्ति को न कोई धम अपनाने के लिए कहता है और न किसी धम का छोडने के लिए ही कहता है। धम निरपेक्ष राज्य का धम के प्रति दृष्टिकोण धार्मिक सहिष्णुता (religious toleration) का होता है। धम

---

1 'Secularism is that which seeks the development of the moral and intellectual nature of man to the highest possible point, as the immediate duty of life "—Holyack G J *Principles of Secularism*, p 20

2 See (Indian) Constituent Assembly Debates, Vol VII, p 833 Refer to views of Laxmi Kant Maitra and H V Kamath

के क्षेत्र म राज्य की नीति व्यक्ति को अकेला छोडने की होती है। वह इस क्षेत्र म यथेच्छाचारिता (the doctrine of laissez faire) की नीति अपनाता है। इस तरह धम निरपेक्ष राज्य मे धम व्यक्ति का निजी क्षेत्र समझा जाता है। यह उसके आन्तरिक विश्वास की चीज मानी जाती है जिससे राज्य का कोई सम्बध नही। प्रत्येक व्यक्ति किसी धम की अच्छाइयो और बुराइया पर विचार कर स्वतन्त्र रूप से उसे अपना सकता है या उसे छोड सकता है। राज्य इसमे हस्तक्षेप नहा करता।

धम निरपेक्ष राज्य मे व्यक्ति स्वतन्त्र रूप से किसी धम को अपना सकता है, उसका प्रचार कर सकता है, उसके लिए सस्थाआ या इमारतो का निर्माण कर सकता है, शिक्षा केन्द्रो को भी खोल सकता है, शत यह है कि इन शिक्षा केन्द्रो म शिक्षा ग्रहण करने वाले अन्य धर्मों के अनुयायियो के बच्चो को किसी विशेष धम की शिक्षा ग्रहण करने के लिए बाध्य नही किया जाता।

धम निरपेक्ष राज्य म नागरिकता का निर्धारण किसी धम के आधार पर नही किया जाता बल्कि व्यक्ति (individual) के आधार पर किया जाता है। राज्य किसी धम को चलाये रखने के लिए करो को नही लगा सकता, न ही राज्य किसी व्यक्ति से किसी अमुक धम के लिए दान देने के लिए ही कह सकता है।

धम निरपेक्ष राज्य की परिभाषा

धम निरपेक्ष राज्य की प्रमुख परिभाषायें निम्न है —

(1) वेकातारमन के शब्दो मे, "धम निरपेक्ष राज्य वह राज्य है जो धार्मिक नही होता और न ही अधार्मिक होता है और न ही धम विरोधी होता है परन्तु जो धार्मिक सिद्धान्तो और धार्मिक क्रिया कलापो से पूणतया अलग है और इस तरह जो धार्मिक विषयो मे तटस्थ है।"

(2) एच० वी० कमथ के शब्दो मे, "एक धम निरपेक्ष राज्य न ही तो ईश्वर रहित राज्य है, न ही वह अधर्मी राज्य है और न ही वह धम विरोधी राज्य है।"

(3) प० जवाहरलाल नेहरू के शब्दो मे, धम निरपेक्ष राज्य का अथ है धम और आत्मा की स्वतन्त्रता, जिनका कोइ धम नही उनके लिए भी स्वतन्त्रता, इसका अभिप्राय यह है कि सब धर्मों के लिए स्वतन्त्रता इसका अथ है सामाजिक और राजनीतिक समानता।"

(4) डी० ई० स्मिथ के शब्दो मे, "धम निरपेक्ष राज्य निजी और सामूहिक स्वतन्त्रता की गारण्टी देता है। वह व्यक्ति के साथ उसके धम का विचार किये बिना नागरिक के रूप मे व्यवहार करता है। सवैधानिक तौर पर वह किसी धम से सम्बन्धित नही और न किसी धम की वृद्धि की कोशिश करता है और न ही धम मे हस्तक्षेप करता है।'

उपर्युक्त परिभाषाओ से यह नही समझ लेना चाहिए कि धम निरपेक्ष राज्य के नागरिक या कमचारी किसी धम को नही अपना सकते या वे ईश्वर या धार्मिक मान्यताओ मे विश्वास नही रख सकते या सरकारी पद ग्रहण करते समय ईश्वर को साक्षी मान कर शपथ ग्रहण नही कर सकते। टी० के० टोप ने ठीक लिखा है कि "भारत के धम निरपेक्ष होने का यह अर्थ नही कि इसमे ईश्वर के अस्तित्व को नही माना जाता। भारतीय सविधान मे ईश्वर के अस्तित्व को मान्यता प्रदान की गई है। देश के प्रमुख अधिकारियो को पद ग्रहण करते समय ईश्वर के नाम पर शपथ लेनी पडती है।"

धम निरपेक्ष राज्य का अथ है कि राज्य सगठित रूप म किसी धम से न तो सम्बन्धित हो और न किसी धम का प्रचार करे और न ही अपनी नीतियो को किसी धम पर आधारित करे। राज्य म सभी को धार्मिक स्वतन्त्रता प्राप्त हो।

धार्मिक स्वतन्त्रता का यह कदापि अथ नही कि कोई धम अपने अनुयायियो को धर्माज्ञाओ का उलघन करने पर उन्ह दण्डित कर सकता है। धम अधिक से अधिक अपने सदस्यो का बहिष्कार कर सकता है। धार्मिक स्वतन्त्रता का यह भी कदापि अथ नही कि धम की आड म धम के अनुयायी ऐसी नीतिया जैसे अस्पृश्यता का प्रचलन, बहुपत्नी प्रणाली या साम्प्रदायिकता आदि का अनुसरण या प्रचलन कर सकते है जो सामाजिक नैतिकता (social morality) या सावजनिक स्वास्थ्य (public health) या सावजनिक कल्याण या व्यवस्था (public welfare and order) के विरुद्ध हो। कोई व्यक्ति अपने धम का प्रचार करते समय किसी अन्य व्यक्ति की धार्मिक स्वतन्त्रता मे बाधक नही हो सकता। जब कभी समाज मे अनाचार फैलने की सम्भावना होती है तो धम निरपक्ष राज्य का कतव्य है कि वह ऐसे कार्यों पर प्रतिबन्ध लगाये जो सामाजिक नतिकता या सावजनिक कल्याण के विरुद्ध है। यदि राज्य धार्मिक स्वतन्त्रता प्रदान करता है तो धम का भी यह कतव्य हो जाता है कि वह सामाजिक उत्पात (social nuisance) को जन्म न द। और जब धम ऐसी मूखता करता है तो राज्य सवदा सामाजिक व्यवस्था, नतिकता, सावजनिक स्वास्थ्य, सामाजिक कल्याण या सुधार के लिए धार्मिक सस्थाओ या कार्यों पर प्रतिबन्ध लगाने के लिए स्वतन्त्र है और प्रतिबन्ध लगाने भी चाहिए।

धम निरपेक्ष राज्य की विशेषतायें
(Features of Secular State)

धम निरपक्ष राज्य की मुख्य विशेषतायें निम्न हैं —

1 धम निरपक्ष राज्य का कोई अपना धम नहीं होता

धम निरपक्ष राज्य की सबसे बडी विशेषता यह है कि उसका अपना कोई "राज्य धम" नही होता। इस राज्य म सभी धर्मों को समानता क आधार पर

अपना विकास करने का अधिकार होता है। अपने धम का विकास करने के लिए भिन्न भिन्न धर्मों के अनुयायी समुदायो या सघो का निर्माण कर सकते हैं शत यह है कि अपने धम का विकास करते समय वे किसी अय धम या उसके द्वारा स्थापित किसी समुदाय या सघ के काय के रास्ते म रुकावट पदा नही करते और सावजनिक उत्पात पैदा नही करते ।

2 धम निरपेक्ष राज्य धार्मिक विषयों मे तटस्थ होता है

धम निरपेक्ष राज्य की दूसरी महत्त्वपूण विशेषता यह है कि वह धम के विषयो मे तटस्थ होता है। क्योकि राज्य का कोई अपना धम नही होता इसलिए वह न किसी धम को विशेष सरक्षण देता है और न ही किसी धम का प्रचार करता है और न ही किसी धम के विकास या प्रचार मे आर्थिक सहायता देता है। इस राज्य मे धम के नाम पर नागरिको मे किसी प्रकार की भिन्नता नही की जाती। राज्य किसी नागरिक को किसी धम को अपनाने या किसी धम को छोडने के लिए नही कहता। व्यक्ति स्वेच्छा से किसी धम को अपना सकता है, किसी धम को छोड सकता है, किसी धम के प्रचार के लिए सस्थाओ का निर्माण कर सकता है, अपने बच्चो को किसी प्रकार की धार्मिक शिक्षा दिला सकता है। स्पष्ट है कि धम निरपेक्ष राज्य धार्मिक विषयो मे तटस्थ रहता है।

3 धम निरपेक्ष राज्य धार्मिक हठधर्मिता (अधानुयायिता) को हताश करता है

धम निरपेक्ष राज्य धार्मिक विषयो मे तटस्थ अवश्य होता है परन्तु धार्मिक हठधर्मिता (अधानुयायिता—bigotry) का पनपने नही देता। राष्ट्रीय एकता और सुदृढता के लिए तथा सावजनिक कल्याण के लिए राज्य ऐसी सस्थाओ को बढावा देता है जिनका उद्देश्य धार्मिक हठधर्मिता के प्रभाव को कम करना होता है। राज्य उन लोगो के मूल अधिकारो और स्वतन्त्रताओ की रक्षा करता है जो धार्मिक अधभक्तता के शिकार हो जाते हैं।

4 धम निरपेक्ष राज्य सर्वाधिकारवाद का विरोधी होता है

धम निरपेक्ष राज्य धार्मिक सहिष्णुता की नीति पर आधारित होता है। इस राज्य मे न तो किसी धम और न स्वय राज्य के 'साम्राज्य' को स्वीकार किया जाता है। धम को व्यक्ति का निजी क्षेत्र समझा जाता है। यथा सम्भव राज्य इस क्षेत्र मे हस्तक्षेप नही करता। परन्तु जब धम सामाजिक उत्पात बन जाता है तो राज्य तभी हस्तक्षेप करता है। दूसरे शब्दो म, राज्य सामाजिक व्यवस्था, नतिकता, सावजनिक स्वास्थ्य और कल्याण के लिए ही हस्तक्षेप करता है अयथा नहीं।

5 धम निरपेक्ष राज्य नतिकता के नियमो को अस्वीकार नहीं करता

धम निरपक्ष राज्य अधर्मी, विधर्मी या धम विरोधी नही होता। वह अनाचारी, अनैतिक या नास्तिक नही होता। राज्य धम निरपक्ष या धार्मिक विषयो म

तटस्थ होते हुए भी उच्च आध्यात्मिक उद्देश्या जसे सत्य, अहिंसा, विश्व बधुत्व, शान्ति आदि का प्राप्त कर सकता है। इस राज्य म नतिकता का अभाव नही होता केवल धार्मिक हठधर्मिता और धार्मिक कट्टरता का अभाव होता है। नैतिकता ता इस राज्य का आवश्यक सद्गुण होता है। यही नैतिकता, जो राष्ट्रीय और मानवीय आधारो पर स्थित होती है, नागरिका म एकता की कुजी है। सभी का कल्याण इन्ही नतिक नियमो की पालना म है। इस तरह धम निरपेक्ष राज्य नतिकता के नियमो को अस्वीकार नही करता बल्कि उन्ह सावजनिक जीवन म स्वीकार करता है।

6 धम निरपेक्ष राज्य बहुजातीयता के विचार पर आधारित है

प्रत्येक राज्य मे अनेक प्रकार की जातियाँ निवास करती है जिनकी धार्मिक मान्यतायें होती हैं। ये सभी जातियाँ तभी प्रेम पूवक निवास करती हैं या उनका जीवन तभी सहअस्तित्व पर आधारित हो सकता है जब प्रत्येक को अपनी धार्मिक मान्यताओ को पनप सकने का अधिकार हो। इसके अतिरिक्त प्रत्येक राष्ट्र की सस्कृति पर किसी एक धम की मोहर नही होती बल्कि सभी जातियो का न्यूनाधिक मात्रा म उसमे योगदान होता है। नेहरूजी ने ठीक कहा था कि भारत म बसने वाली कोई भी जाति यह दावा नही कर सकती कि भारत के समस्त मन और सारे विचारो पर उसी का एकाधिकार है। भारत आज जो कुछ है, उसकी रचना मे भारतीय जनता के प्रत्येक भाग का योगदान है।"

7 धम निरपेक्ष राज्य मौलिक रूप से लोकतन्त्रात्मक होता है

लोकतन्त्रात्मक शासन व्यवस्था ही एक ऐसी व्यवस्था है जिसमे व्यक्ति को समान समझा जाता है और रग, लिंग, सम्प्रदाय, जाति, धम आदि के भेद भावो के बिना सबको समान सामाजिक, धार्मिक और राजनीतिक अधिकार दिये जाते हैं इसमे ही अन्त करण की स्वतन्त्रता दी जाती है और किसी धम के साम्राज्य को स्थापित नही होने दिया जाता। धम निरपेक्ष राज्य को आध्यात्मिक लोकतन्त्र की सज्ञा दी जा सकती है।

8 धम निरपेक्ष राज्य लोक कल्याण पर आधारित होता है

धम निरपेक्ष राज्य अपने क्षेत्र म आने वाले सभी नागरिका के कल्याण की गारण्टी देता है। समय समय पर राज्य नागरिका के कल्याण के लिए योजनायें बनाता है तथा लोक कल्याणकारी सस्थाओ की स्थापना करता है। इस कल्याण का आधार मानव का उद्धार करना होता है।

9 धम निरपेक्ष राज्य मे धार्मिक शिक्षा राज्य द्वारा प्रदत्त नहीं की जाती

धम निरपेक्ष राज्य किसी प्रकार की धार्मिक शिक्षा की व्यवस्था नही करता। यह उन सस्थाओ का कोई आर्थिक सहायता नही देता जो शिक्षा के क्रम मे धार्मिक शिक्षा प्रदान करती हैं। किसी हालत म भी धम निरपेक्ष राज्य धार्मिक शिक्षा की व्यवस्था स्वय नही करता। यद्यपि राज्य इस बात का प्रयत्न अवश्य करता है कि बिना

किसी धार्मिक रंग (tinge) से शिक्षा के पाठ्यक्रम को इस प्रकार निर्धारित किया जाय कि नागरिक नैतिकता, मानवता और राष्ट्रीयता की भावनाओं का विकास कर सकें और जीवन में इन मानवीय मूल्यों के महत्त्व को समझ सकें।

10 धर्म निरपेक्ष राज्य में कोई धर्म राज्य के कानूनों से मुक्त नहीं होता

धर्म निरपेक्ष राज्य में कोई धर्म या उसके सिद्धान्त या उसके ठेकेदार (पुजारी, मौलवी या पादरी या ग्रन्थी) धर्म निरपेक्ष राज्य के कानूनों से मुक्त नहीं होते। यदि कोई धर्म या उसके सिद्धान्त, उसके अनुयायियों के लिए या सार्वजनिक कल्याण के लिए, हानिकारक होते हैं तो राज्य कानून द्वारा ऐसे हानिप्रद सिद्धान्तों या धार्मिक व्यवहारों की मनाही कर सकता है। यदि किसी धर्म के ठेकेदार धार्मिक संस्थाओं से उत्पन्न होने वाली आय का अपव्यय या दुरुपयोग करते हैं तो भी राज्य कानूनों द्वारा इनकी व्यवस्था ठीक कर सकता है। यह ठीक है कि न्यायालयों को धार्मिक आचार के बारे में छानबीन का अधिकार नहीं होता परन्तु राज्य लोगों को शोषण से बचाने के लिए उचित कार्यवाही कर सकता है और आवश्यकता पड़े तो न्यायालयों से डिक्री (Decree) भी प्राप्त कर सकता है।

धर्म निरपेक्ष राज्य में धर्म का स्थान
(Place of Religion in Secular State)

धर्म निरपेक्ष राज्य में धर्म के महत्त्व को कम नहीं आंका जाता, उसे केवल राजनीति में कोई स्थान नहीं दिया जाता। धर्म को मानवीय सुख का आधार माना जाता है, धर्म मानव की, जैसा कि मैकाइवर ने कहा है, 'स्वाभाविक भूख है।" परन्तु इस भूख की उपयोगिता के क्षेत्र का निजी सीमाओं तक सीमित रखा जाता है।

धर्म निरपेक्ष राज्य में सबसे महत्त्वपूर्ण स्थान 'राष्ट्रीय एकता' को दिया जाता है। इस एकता को 'धार्मिक कट्टरता या हठधर्मिता पर निर्भर नहीं किया जाता बल्कि धार्मिक सहिष्णुता और धार्मिक सहयोग' पर आधारित किया जाता है। धर्म निरपेक्ष राज्य में नैतिकता धार्मिक नहीं राष्ट्रीय बन जाती है, धर्म के उद्देश्य जातीय नहीं रहते बल्कि मानवीय बन जाते हैं, जातीय कल्याण राष्ट्रीय कल्याण में बदल जाता है, राजकीय विषयों में धर्म का कोई महत्त्व नहीं रहता, केवल एकता' का महत्त्व रहता है।

यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि धर्म निरपेक्ष राज्य में धर्म निजी विषय है और राज्य की नीतियों या प्रशासन में उसका कोई प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष सम्बन्ध नहीं। फिर भी धर्म निरपेक्ष राज्य में धर्म का स्थान उस देश के वातावरण, लोगों तथा राज्य के विशेष हितों पर निर्भर करता है।

क्या धर्म निरपेक्ष राज्य धर्म में हस्तक्षेप कर सकता है ?

साधारणतया धर्म निरपेक्ष राज्य धार्मिक विषयों में हस्तक्षेप नहीं करता। परन्तु यदि धर्म या धार्मिक सिद्धान्त या धार्मिक टीकायें, धार्मिक गुरु या धर्म के प्रबन्धक

सावजनिक उत्पात पदा करत हैं या धार्मिक सस्थाओ का कु प्रबन्ध करत हैं या धार्मिक स्थाना से उत्पन्न होने वाली आय या सम्पत्ति का दुरुपयोग करत है तो धम निरपेक्ष राज्य कानून बना कर उन पर नियन्त्रण कर सकता है। धम निरपेक्ष राज्य सवदा सावजनिक कल्याण सावजनिक स्वास्थ्य और सावजनिक नतिकता के लिए धम म हस्तक्षेप कर सकता है।

क्या धम विरोधी राज्य धर्म निरपेक्ष राज्य हो सकता है ?

धम विरोधी राज्य को धम निरपेक्ष राज्य कहना बहुत कठिन है क्योंकि धम विरोधी राज्य मे उसके नेता या दल के सदस्य किसी 'धम', 'ईश्वर' या नतिकता म विश्वास नही करते। जिस तरह बिना नैतिकता के कोई समाज केवल नीच और बेईमान लोगो का उत्पन्न कर सकता है उसी प्रकार धम विरोधी राज्य भी उस भवन की तरह है जिसका कोई ठास आधार नही। जहा नतिकता का अभाव है वहा जीवन के मूल्यो का कोई महत्त्व नही, बाध्यकारी कानून, अच्छे, कृतज्ञ और ईमानदार नागरिक पदा नही कर सकता। नतिकता के अभाव म नागरिक स्वार्थों की पूर्ति और भौतिक सन्तुष्टि म ही सलग्न रहगे।

नागरिका का कृतज्ञ, आज्ञाकारी और कतव्य परायण बनाने के लिए आवश्यक है कि किन्ही नतिक नियमा को अपनाया जाय यद्यपि यह आवश्यक नही कि ये नतिक नियम किसी धार्मिक नतिकता पर आधारित हो। य नतिकता के नियम गर धार्मिक नतिकता के नियमो पर आधारित हो सकत है। उदाहरणतया धम निरपक्ष राज्य मे ऊँचे पदा का ग्रहण करते समय पदाधिकारिया का 'ईश्वर' की शपथ दिलाई जाती है। इसका उद्देश्य किसी धम का प्रचार करना नही बल्कि पदाधिकारिया को अपन साव जनिक कार्यों को ईमानदारी और लाक कल्याण की भावना से करने के लिए प्रेरित करना है। परन्तु धम विराधी राज्य म ता इस प्रकार की व्यवस्था नही होती। वहाँ लोग तो कवल विज्ञान और उसकी उपलब्धिया पर निर्भर करते ह। यह कहा जा सकता है कि इस प्रकार के राज्य मे भय और आतक के आधार पर शासन किया जाता है स्वाभाविक तौर पर नही।

धम निरपेक्ष राज्य वही राज्य हो सकता है जो रग, लिग, धम, सम्प्रदाय, जाति आदि भेद भाव के बिना सभी नागरिका के लाभ के लिए काय करता है। जिसम राष्ट्रीय एकता सभी जातिया क सह अस्तित्व पर निभर करती है, जा नास्तिक नही होता और न ही धार्मिक हाता है, आवश्यकता होने पर जो धम म सावजनिक कल्याण के लिए हस्तक्षेप भी करता है। इस तरह एक धम निरपेक्ष राज्य लाक कल्याणकारी राज्य हाता है।

धर्म निरपेक्ष राज्य का मूल्यांकन
(Evaluation of Secular State)

धम निरपेक्ष राज्य के पक्ष और विपक्ष म जो तक दिय जाते हैं उनका मूल्या कन निम्न प्रकार से है —

1 क्या धम निरपेक्ष राज्य भौतिकवाद पर आधारित है ?

धम निरपेक्ष राज्य की सर्वोत्तम आलोचना यह कह कर की जाती है कि इस प्रकार के राज्य मे जीवन के आध्यात्मिक और नतिक पहलुओ की उपेक्षा की जाती है। इसमे भौतिकवाद पर अधिक बल दिया जाता है जिससे व्यक्ति म मानवता और नतिक गुणो का ह्रास होता है। आलोचको का कहना है कि पुन्ताम्बेकर (Puntambekar) के शब्दो म, "इसके अन्तगत किसी धम अथवा नतिकता के लिए कोई स्थान नही होता और उ ह विश्वास एव आत्मा की वस्तु समझा जाता है न तो वह प्राचीन धार्मिक विचारधाराओ पर जोर न ही आधुनिक सास्कृतिक विचारधाराओ पर चलता है।" धम निरपेक्ष राज्य पर यह भी आरोप लगाया जाता है कि धार्मिक शिक्षा के अभाव म "दवी भय (Godly Fear) या 'प्राकृतिक प्रकोप' (natural calamity) जसी चीजे व्यक्ति म नही रहती और इनके अभाव म व्यक्ति बेईमान, अनुशासनहीन, अकमण्य और अनतिक बन जाता है। इन सब बुराइयो से सावजनिक चरित्र का पतन होता है जिससे सावजनिक कार्यो म उदासीनता, आलस्य और भ्रष्टता का बोलबाला रहता है।

यह ठीक है कि धम निरपक्ष राज्य विज्ञान और उसकी भौतिक उपलब्धियो से अधिक सम्बधित रहता है। पर तु यह कहना गलत है कि धम निरपक्ष राज्य व्यक्ति को नतिक नियमो के अपनाने या उच्च आध्यात्मिक भावनाओ का अनुसरण करन स रोकता है। वास्तविकता यह है कि धम निरपक्ष राज्य म ही उच्च नतिक भावनाओ —सत्य, अहिंसा, प्रेम, विश्व ब धुत्व—का विकास स्वत त्र रूप स हो सकता है। कोई धम निरपक्ष राज्य इन नतिक नियमो को अपनाने से नही रोकता, वह तो सकीण धार्मिक भावनाओ और धार्मिक हठधर्मिता पर ही रोक लगाता है क्योकि य सावजनिक कल्याण क लिए हानिकारक होती है। धम निरपक्ष राज्य के लिए ऐसा करना आवश्यक भी है क्योकि धार्मिक सहिष्णुता ही धम निरपक्ष राज्य का आधार है।

2 क्या धम निरपक्ष राज्य स्वाभाविक लोक कल्याण की भावनाओ का ह्रास करता है ?

धम निरपेक्ष राज्य पर एक आरोप यह लगाया जाता है कि वह व्यक्ति म स्व बलिदान, त्याग आदि भावनाओ को उत्पन्न नही करता क्योकि धम निरपक्ष राज्य

धार्मिक विषया के प्रति उदासीन होता है या अधिक से अधिक तटस्थ होता है। इससे व्यक्तिया म परोपकार की भावनायें जागृत नही होती। आलोचका का मत है कि समाज सेवा की भावनाआ का प्रादुर्भाव नतिक आदर्शो और धार्मिक मा यताआ की प्रेरणा से होता है। उनका विचार है कि धम निरपेक्ष राज्य म मानव विकृत हो जाता है।

आलोचको की यह धारणा एक पक्षीय और सकीण है। यह समय नही आता कि आलोचक धम निरपक्ष राज्य को धम विरोधी या अधर्मी मानने की भूल क्यो करते हैं? वास्तव मे, धम निरपक्ष राज्य न तो अधर्मी होता है और न ही धम विरोधी। इसका तो केवल यह अभिप्राय होता है कि राज्य अपनी नीतियो म किसी धम को पनाह (सरक्षण) नही देगा, किसी धम का स्वय प्रचार नही करेगा और न ही किसी नागरिक का काइ धम मानन के लिए बाध्य करेगा। राज्य की नजरा म सभी धम समान हाते है। जब कभी राज्य किसी धम म हस्तक्षेप करता है तो वह कवल सावजनिक हित, सुरक्षा, व्यवस्था या शान्ति के लिए करता है और इस आधार पर धम, धार्मिक सिद्धान्तो या धार्मिक गुरुओ के कार्या म हस्तक्षेप सावजनिक कल्याण के लिए अनिवाय भी है क्याकि किसी को सामाजिक उत्पात (public nuisance) पदा करन का अधिकार नही। जब राज्य स्वेच्छा स सब धर्मों के विकास के समान अवसर प्रदान करता है तो राज्य अप्रत्यक्ष रूप से नतिक और आध्यात्मिक गुणो के विकास म सहायक हाता है बाधक नही। यह नही भूलना चाहिय कि धम निरपेक्ष राज्य लोक कल्याण की भावनाओ पर आधारित होता है और सावजनिक कल्याण ही उसकी नीतिया का उद्देश्य होता है।

3 क्या धम निरपेक्ष राज्य मे बहुमत समुदाय निर्वाचन द्वारा बहुमत के धर्म के साम्राज्य के स्थापित होने का भय विद्यमान रहता है?

धम निरपेक्ष राज्य पर तीसरा आरोप यह लगाया जाता है कि निर्वाचन के माध्यम से बहुमत समुदाय ससद मे बहुमत प्राप्त कर सकता है तथा ससद द्वारा अपने धर्म के साम्राज्यवाद को स्थापित कर सकता है।

परन्तु यह आरोप न केवल सत्याश से परे है बल्कि प्रजातान्त्रिक सस्थाआ तथा प्रणालियो म अविश्वास का द्योतक भी है। सबसे पहल यह कि धम निरपेक्ष राज्य मे निर्वाचन सामूहिक (सयुक्त निर्वाचन प्रणाली) होता है साम्प्रदायिक नही, दूसरे, यह कि धम निरपेक्ष राज्य का सविधान किसी एक सम्प्रदाय या जाति के लिए नही होता बल्कि सभी नागरिको के लिए होता है जिसम बहुमत और अल्पमत दोनो समुदाया के सदस्य होते है। तीसरे, यह कि नागरिकता धम या जाति पर निभर नही करती, कोई प्रथम या द्वितीय श्रेणी का नागरिक नही होता बल्कि सभी समान होते हैं। चौथे, यह कि यदि यह मान भी लिया जाय कि बहुमत बहुमत के घमण्ड म ऐसी मूखता करता

भी है तो ऐसे मूख कार्यो को दूर करने लिए नव निर्वाचन (new elections) कभी दूर नही होते और फिर कायपालिका अ यक्ष भी अपने निषेधाधिकार का प्रयाग कर सकता है और यदि आवश्यकता हो तो कायपालिका और व्यवस्थापिका को भग भी कर सकता है। पाचवें, धम निरपक्ष राज्य म कानून सामा य हितो पर आधारित होने है भिन्न भिन्न साम्प्रदायिक हितो पर नही, सामा यत सामा य दीवानी और फौजदारी कोड (Common Civil and Criminal Code) सभी नागरिको पर लागू होती हैं और यायालय सभी के लिए समान रूप से खुली रहती है, छटे, धम निरपेक्ष राज्य मे अल्पमत वालो और पिछडे हुए वर्गो के लिए सवधानिक सरक्षण की व्यवस्था होती है। इस पर भी यदि यह कहा जाय कि निवाचन द्वारा बहुमत बहुमत के धम के साम्राज्य को स्थापित कर देगा सिवाय भ्रम और प्रजाता त्रिक प्रणालिया और सस्थाओ पर अविश्वास के अतिरिक्त और कुछ नही।

4 क्या धम निरपेक्ष राज्य को प्रवृत्ति फासिस्टवादी या अधिनायकवादी होती है ?

धम निरपक्ष राज्य पर चौथा आराप यह लगाया जाता है कि यह राज्य म शक्ति को के द्रित करन का प्रयास करता है जिससे फासिस्टवादी या अधिनायकवादी वृत्तियो को बढावा मिलता है। आलाचक यह भी आरोप लगात हैं कि इनम कोई एक व्यक्ति या व्यक्तिया का गुट सत्ता को, अल्पमता क हिता की रक्षा क नाम पर हथिया ले और अपने मनमाने ढग स शासन करने लगे।

पर तु इस प्रकार की आलोचना व्यथ है क्याकि धम निरपक्ष राज्य का सम्ब ध राज्य या शासन के स्वरूप से नही होता। राज्य या शासन का स्वरूप भल ही राजत त्र हो, कुलीन त त्र हा या प्रजात त्र, अधिनायकवादी हा या लोकत त्रवादी सघात्मक हो या एकात्मक, अध्यक्षात्मक हो या ससदात्मक सब प्रकार क रूपा म धम निरपक्षता के उद्देश्य को प्राप्त किया जा सकता है यदि ऐसी इच्छा है। धम निरपक्षता का सम्ब ध आध्यात्मिक और धार्मिक स्वतन्त्रता से है। जहाँ तक व्यक्ति या राज्य के विकृत हान का सम्ब ध है वह ता एक देवत्वपूण अथात् पूणतया धार्मिक व्यक्ति या राज्य भी हो सकता है और एक अधिनायक भी धार्मिक सहिष्णुता का समथन कर सकता है। जब व्यक्ति या राज्य अवाछित रूप ग्रहण करता है तभी यह विकृत होता है। राज्य धम निरपक्षता के सिद्धा त को अपना कर विकृत नही होता।

5 क्या पदाधिकारियो को पद ग्रहण करते समय ईश्वर की शपथ दिलाना धार्मिक है ?

धम निरपक्ष राज्य पर पाचवाँ आराप यह लगाया जाता है कि उच्च साव-जनिक पदो पर नियुक्ति क समय ईश्वर की शपथ दिलाना धम निरपक्षता की प्रवृत्ति (spirit) के विपरीत है।

परन्तु यह आराप भी गलत है। पदाधिकारी का जा शपथ दिलाई जाती है

वह किसी राज्य धर्म के अनुसार नहीं दिलाई जाती बल्कि उस व्यक्ति के स्वयं के धर्म के अनुसार दिलाई जाती है। 'ईश्वर की शपथ' किसी विशेष धर्म से सम्बन्धित नहीं। यह तो केवल इस बात की द्योतक है कि व्यक्ति सार्वजनिक कार्यों में ईमानदारी और निष्पक्षता का व्यवहार करे। इसके अतिरिक्त 'ईश्वर की शपथ' 'ईश्वर' की प्रतीक है किसी धर्म की नहीं और यह उसे अपने सार्वजनिक कर्तव्यों के प्रति जागरूक रखने का तरीका है।

6 क्या धर्म निरपेक्ष राज्य में राष्ट्र के छिन्न भिन्न होने का भय विद्यमान रहता है ?

धर्म निरपेक्ष राज्य पर छठा आरोप यह लगाया जाता है कि इसमें राष्ट्रीय एकता के छिन्न भिन्न होने का भय रहता है। इस प्रकार की आलोचना करने वालों का मत है कि धर्म राष्ट्रीय एकता में अत्यधिक सहायक होता है और यदि राज्य धर्म के प्रति उदासीन होगा तो यह एकता खतरे में पड़ जायगी।

परन्तु आलोचकों की यह धारणा मिथ्या है क्योंकि राष्ट्रीय एकता केवल धर्म पर आधारित नहीं होती। अनेक एतिहासिक घटनायें, अनेक मनोवैज्ञानिक तत्त्व, साथ साथ रहने की भावना, समान आकांक्षायें आदि तत्त्व राष्ट्रीय एकता को उत्पन्न करते हैं। नागरिकों में प्रेम सहयोग, भ्रातृभाव की भावनाओं का तभी विकास हो सकता है जब सभी धर्मावलम्बियों को अपने अपने धर्म का स्वतन्त्रतापूर्वक पालन करने की स्वतन्त्रता हो और यह केवल धर्म निरपेक्ष राज्य में ही सम्भव है। धार्मिक सहिष्णुता राष्ट्रीय एकता में सहायक होती है धार्मिक हठधर्मिता नहीं। बहुजातीय देशों में राष्ट्रीय एकता को सुदृढ़ करने का यही सर्वोत्तम साधन है।

उपर्युक्त वर्णन से स्पष्ट है कि धर्म निरपेक्ष राज्य के विरोध में प्रस्तुत किये गये तर्क त्रुटिपूर्ण, भ्रमपूर्ण और मिथ्या हैं। इन तर्कों का कोई तार्किक आधार नहीं। धर्म निरपेक्ष भावना धर्म विरोधी या अधर्मी भावना का पर्यायवाची नहीं बल्कि धार्मिक सहिष्णुता का पर्यायवाची है। वह इस बात पर आधारित है कि "जो कुछ सीजर का है उसे सीजर को दे दो और जो कुछ ईश्वर का है उसे ईश्वर को दे दो।[1] धर्म निरपेक्ष राज्य में मानवता, भ्रातृभाव और विश्व बन्धुत्व की भावनाओं के अधिक विकास होने की सम्भावना है। इसमें ही बहुमत और अल्पमत मिल जुल कर रह सकते हैं। अल्प संख्यक इस प्रकार के राज्य में ही अपने आपको उसी प्रकार सुरक्षित समझते हैं जिस प्रकार कि बहु संख्यक अपने आपको सुरक्षित समझते हैं। सच्चा लोक-

1 "Render to Caesar the things that are Caesar's, and to God the things that are God's" Mark 12 17 also Luke 20 25

कल्याणकारी राज्य इसी पर आधारित हो सकता है। विश्व सरकार की कल्पना भी धम निरपेक्षता के आधार पर की जा सकती है।

EXERCISES

1 प द्रहवी शताब्दी से बीसवी शताब्दी तक धम निरपेक्ष विचारो के विकास का सक्षिप्त वणन कीजिये।

2 'धम निरपेक्ष', 'धम निरपेक्षवादी', 'धम निरपेक्षता' शब्दो से आप क्या समझते है ? धम निरपेक्षता के स्कूलो का वणन कीजिये।

3 धम निरपेक्ष राज्य की परिभाषा दीजिये। क्या धम विरोधी राज्य धम निरपेक्ष राज्य हो सकता है ?

4 धम निरपेक्ष राज्य की विशेषताओ का सक्षेप मे वणन कीजिये।

5 धम निरपेक्ष राज्य का मूल्याकन कीजिये।

6 धम निरपेक्ष राज्य के गुण और दोषो का वणन कीजिये।

BIBLIOGRAPHY

1 Barker E — Political Thought in England
2 Beer M — A History of British Socialism
3 Berlin Isaiah — Karl Marx
4 Bhandari, Charu Chandra — Bhoodan Yajya Kya Aur Kyon
5 Bhatt, E C — Religious Minorities and Secular State
6 Bihari, Bipin — Gandhian Economic Philosophy
7 Bondurant, Joan V — Conquest of Violence The Gandhian Philosophy of Conflict
8 Bose, N K — Studies in Gandhism
9 Brown, I — English Political Theory
10 Budhadeva, Bhattacharyya — Evolution of the Political Philosophy of Gandhi
11 Burns, Emile — What is Marxism ?
12 Burns E M — Ideas in Conflict
13 Caltin, George — A History of Political Philosophies
14 Cole G D H — Fabian Essays
15 Cole, G D H — Socialist Thought, Fore runners
16 Coker, Francis W — Recent Political Thought
17 Dharmadhikari, Dada — Sarvodaya Darshan
18 *Dhawan Gopinath — The Political Philosophy of Mahatma Gandhi*
19 Durbin E F M — The Politics of Democratic Socialism
20 Ebenstein William — Modern Political Thought
21 Ebenstein William — Today's Isms
22 Gandhi, M K — Sarvodaya
23 Gettell, R G — History of Political Thought
24 Gray, Alexander — The Socialist Tradition
25 Hacker, Andrews — Political Theory
26 Hallowell, John H — Main Currents in Modern Political Thought
27 Hartzler, J O — The History of Utopian Thought
28 Hearnshaw, F J C — A Survey of Socialism

29 Hunt, R N Carew The Theory and Practice of Communism
30 Jayantanuja, Bandyopadhayaya Social and Political Thought of Gandhi
31 Joad, C E M Introduction to Modern Political Theory
32 Kelsen Hans The Political Theory of Bolshevism,
33 Laidler, H W A History of Socialist Thought
34 Laidler, H W Social Economic Movement
35 Laski Harold J Communism
36 Laski, Harold J Karl Marx An Essay
37 Lenin, V I Marx, Engels and Marxism
38 Luthra, Ved Prakash The Concept of a Secular State and India
39 Maxey, Chester C Political Philosophies
40 McGovern W M From Luther to Hitler
41 Merriam and Barnes History of Political Theories Recent Times
42 Narayan, Jayaprakash A Picture of Sarvodaya Social Order
43 Narayan, Jayaprakash Towards a New sociaty
44 Nehru, J L Democracy, Communism, Socialism, and Capitalism,
45 Nolte Ernst Three Faces of Fascism (Tr by Leila Vennewitz)
46 Oakshott, M J. The Social and Political Doctrines of Contemporary Europe
47 Roucek Joseph S Contempory Political Ideologies
48 Roucek, Joseph S Twentieth Century Political Thought
49 Russell, Bertrand Roads to Freedom
50 Sabine George H A History of Political Theory
51 Sargeant, Lyman T Contemporary Political Ideologies
52 Setalvad, M C Secularism
53 Sitaramayya, B P Gandhi and Gandhism
54 Smith, Donald Eugene India as a Secular State
55 Sundaram, Lanka A Secular State in India
56 Tawney R. H Contemporary Political Ideologies
57 Tendulkar, D G Mahatma
58 Watkins Frederick The Political Traditions of the West
59 Wayper C L Political Thought
60 Westmeyer Modern Economic and Social Systems